बीजगणितम् ।

श्रीमद्भास्कराचार्यैः प्रणीतम् ।

जयपुरमहाराजाश्रितेन संस्कृतपाठशालाध्यक्षेण

श्रीदुर्गाप्रसादद्विवेदेन

कृताभ्यां संस्कृत-हिन्दीभाषाव्याख्याभ्यां समलंकृतम् ।

तच

तृतीयावृत्तौ

लक्ष्मणपुरे

श्रीकेसरीदास सेठ, सुपरिंटेंडेंटस्य प्रबन्धेन

नवलकिशोरयन्त्रालये मुद्रितम् ।

१९४१ ई०

श्रीमद्भास्कराचार्यैः प्रणीतम् ।

बीजगणितम् ।

महामहोपाध्याय—

श्रीदुर्गाप्रसादद्विवेदेन

कृताभ्यां संस्कृत-हिन्दीभाषाव्याख्याभ्यां

समलंकृतम् ।

जयपुर-राजकीयसंस्कृतपाठशालायां

प्रधान-ज्योतिःशास्त्राध्यापकेन

श्रीगिरिजाप्रसादद्विवेदेन

संपादितम् ।

तच्च

तृतीयावृत्तौ

लक्ष्मणपुरे

श्रीकेसरीदाससेठस्य प्रबन्धेन

नवलकिशोरयन्त्रालये मुद्रितम् ।

१९४१ ई०

अनुभूमिका

यह बीजगणित भारतीय ज्योतिःशास्त्र के सिद्धान्त-स्कन्ध अर्थात् गणित-स्कन्ध का मूलतत्त्व एवं बीज-शक्ति स्वरूप अव्यक्त वस्तु है। जैसे बीज में वृक्ष गुप्त रहता है वैसे ही गणित शास्त्र के महान् वृक्ष का उत्पादक यह बीज अनन्त शक्तियों का आधार-भूत है। इसकी उत्पत्ति इसी देश में हुई है, जिसका प्रमाण सूर्य-सिद्धान्त आदि प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में अव्यक्तमूलक सिद्धान्तीय प्रश्नों के उत्तर साधक प्रकारों से ज्ञात होता है। वहाँ अव्यक्त से व्यक्त की सिद्धि बीजगणित के विना किसी प्रकार सुगमता से साध्य नहीं है।

परन्तु इसके आर्ष ग्रन्थ कालगति से लुप्त हो गए हैं। यहीं से यह विद्या अरब, ग्रीक एवं इटली, जर्मनी आदि योरप के देशों में फैली है। इसका इँगलैण्ड में सन् १५५७ में सूत्रपात हुआ है। इस समय यह वहाँ पर अपने विशाल एवं व्यापक रूप को प्राप्त हो गई है। यह निष्पक्षपात और निर्विवाद ऐतिहासिक निर्णय है। अस्तु—

सांप्रत में प्रथम आर्यभट (४२१ शक) के बाद जो बीज ग्रन्थ गणितज्ञों ने बनाए उनमें भी कई लुप्त हो चुके हैं। (संस्कृत भूमिका देखिए) केवल भास्कराचार्य का यह बीजगणित ही सर्वत्र प्रचलित और पठन-पाठन के उपयोग में प्राचीन काल से आ रहा है। इस पर कृष्णदैवज्ञ (१४८७ शक) कृत 'नवाङ्कुर', सूर्य-दैवज्ञ (१४६३ शक) कृत बीजभाष्य, रामकृष्ण का बीजगणित प्रबोध और परमसुख की 'बीजविवृतिकल्पलता' आदि टीका उपपत्ति और गणित के ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इनमें कृष्णदैवज्ञ का 'नवाङ्कुर' सब टीकाग्रन्थों से उत्तम एवं गणित के मार्मिक विचारों से पूर्ण है।

इस समय भारतीय संस्कृत विद्यालयों में यह बीजगणित परीक्षा पाठ्य ग्रन्थ है। परन्तु इसका विषय अत्यन्त कठिन होने से विशेष प्रतिभा की अपेक्षा रखता है। प्राय: सर्वसाधारण को इसमें सफलता नहीं प्राप्त होती। यह सब इस विद्या के पथिकों को परिज्ञात है। किसी अंश में गणित जिज्ञासुओं को सहायता मिले इस अभिप्राय से जयपुरमहाराजाश्रित, संस्कृतपाठशालाध्यक्ष म० म० श्री ६ दुर्गाप्रसाद द्विवेदीजी ने * इसकी संस्कृत टीका और हिन्दी में अर्थ, गणित विस्तार आदि के साथ लखनऊ के सुप्रसिद्ध 'नवलकिशोर-प्रेस' से सन् १८९३ में पहले प्रकाशित कराया था। उसके बाद सन् १९१७ में इसका दूसरा संस्करण निकला। अब इसका तीसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। आजकल भारतीय पाठशालाओं में इसी का प्रचार है। इस बार अंत में नवीन रीति से गणित की रीति 'बीजपरिचय' नाम से लगा दी गई है।

हिन्दी-बीजगणित--

सन् १८५७ के बाद इस देश में जो सरकारी शिक्षा की व्यवस्था हुई थी, वह इस समय की प्राय: सभी छोटी-बड़ी प्रत्येक भाषा की शिक्षाओं का प्रारंभ काल जानना चाहिए। हिन्दी भाषा में शिक्षा देना आवश्यक समझा गया, क्योंकि यही देश की व्यापक भाषा है, इस कारण शिक्षा-विभाग के अधिकारियों ने दूरदर्शिता से उस समय के देशहितैषी एवं अधिकारी विद्वानों से गणित की पाठ्य पुस्तकें भी लिखने की इच्छा प्रकट की। तदनुसार काशी के म० म० श्रीबापूदेव शास्त्री ने 'बीजगणित' बहुत ही अपूर्व लिखा जो कि अंग्रेजी के Higher Algebra के नवीन विषयों से भूषित है। इसके बाद पं० मोहनलाल और पं० कुंज-बिहारी ने हिंदी बीजगणित, लघुत्रिकोणमिति और रेखामिति तत्त्व आदि लिखे थे, जो बहुत ही उपयोगी थे।

---

* आप मेरे पूज्यपाद पिता थे। आपका स्वर्गवास संवत् १९९४ के चैत्र मास में स्वदेश 'अयोध्या' में हो गया।

यह सब ग्रन्थ बड़ी योग्यता से सरल रीति और भारतीय दृष्टि से विद्यार्थियों के लिए तैयार किए गए थे। जो आज भी उपयोगी हैं। पर दुःख है, ऐसे सुबोध, सरल ग्रन्थ शिक्षाक्षेत्र से उठाकर बड़ी दूर फेंक दिए गए हैं। अब केवल वैदेशिक दृष्टि के आधार पर अनेक छोटे-बड़े ग्रन्थ पाठ्य में नियत हैं, जिनका वास्तव में कोई उपयोग नहीं है। इधर बहुत दिनों से चक्रवर्ती के चक्र का बोलबाला है, संभवतः अब उसने विश्राम लिया हो।

आशा है, भारतीय बीजगणित पढ़ाने और पढ़नेवालों को इस हिन्दी संस्करण से सहायता मिलेगी।

'सरस्वती-पीठ'
जयपुर
१।४।१९४१

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी

भूमिका

अयि गणितानुरागिणः !

लीलावतीसंज्ञितं व्यक्तगणितं संस्कृत-हिन्दीभाषालेखाभ्यां प्राग् व्याख्यातमस्माभिरिति प्रसिद्धं तावत् । यदनन्तरमेवास्या लीलावत्या द्वित्रा हिन्दीटीका मोहमय्यादिनगर्यां प्रकाशिता इति श्रूयते । संप्रति बीजसंज्ञितमव्यक्तगणितं तथा प्राग् व्याख्यातमेव यथास्थानं परिवर्त्य परिष्कृत्य च प्रकाशितम् । अपि चेदानीमहरहः पाश्चात्त्यनूतनसंकेतेनैव भारतीयगणितोपपत्तीनामुल्लेखो बोभूयते, तत्रैव पुनर्नव्यगाणितिकानां सानुरागा प्रवृत्तिरुपचीयते; तावता मन्ये कतिपयसमयेन प्राचीनगणितप्रक्रिया लुप्ता

---

१ प्राचीन शिलालेख अथवा ताम्रपत्रों में भी बीजगणित के अनुसार संवत् शक आदि का लेख रहता है, इसलिए पुरातत्त्वज्ञों को इस गणित से भी परिचय रखना आवश्यक है। उदाहरण—

'यस्मिन्नह्नि चतुर्षु पक्षतिथिवारर्क्षेषु पक्षो नग-
त्रिघ्नोऽन्यैस्त्रिभिरन्वितः स्मृतिलवः स्यात्साष्टिशाकस्य सः ।
नन्दघ्नस्तिथिरन्ययुक् स च लवो विश्वघ्नवारोऽन्ययुग्
वा तत्त्वघ्नभमन्ययुक्तमथवैषास्योद्धृतौ स्यान्मितिः ॥

यहाँ शक, पक्ष, तिथि, वार और नक्षत्र के मान क्रम से उनके आद्यवर्ण कल्पना करनें से शक आदि के मान ये सिद्ध होते हैं— $\frac{\text{१ ति}}{\text{६ प}}$, $\frac{\text{२ वा}}{\text{१ ति}}$, $\frac{\text{२ न}}{\text{१ वा}}$ फिर कुट्टक द्वारा नक्षत्र का मान ३ रूप जानकर शक आदिकों में उत्थापन देने से यह समय ज्ञात होता है—शक=१६६४ पक्ष=२ तिथि=१२ वार=६ और नक्षत्र=३ अर्थात् शालिवाहन शक १६६४ वैशाख शुक्ल द्वादशी शुक्रवार कृत्तिका नक्षत्र।

जयपुर–यन्त्रालय के 'दक्षिण गोलयन्त्र' पर जो श्लोक खुदे हैं उनमें से यह सातवाँ श्लोक है। इसका संशोधन और गणित मेरे शिष्य श्रीमाधवशास्त्री पुरोहित ने किया है।

भविष्यतीति । सेयं गणितशैली भारतीयैर्दत्तहस्तावलम्बा लुप्ता माभूद् एतदर्थमत्र विशिष्यप्राचीनपरिपाट्या गणितजातं विश्वविद्यालयच्छात्रतुष्ट्यै प्रादर्शि । किं बहुना, यथा विस्मृतबीजगणितानामपि ग्रन्थपाठमात्रेणाधीतस्मरणं स्याद्, यथा वा परीक्षाकामुकानां गणितकरणमन्तरेण बोधः स्यात्, तथात्र प्रयत्नोऽकारि । भवति चात्र श्लोकः—

अत्युत्तानतरप्रमेयरचनापारम्परीबन्धुरं
स्पष्टोदाहरणक्रमं क्वचिदहो नूत्नक्रियामांसलम् ।
एवं बालकबोधसाधनकृते टीकान्तरेभ्योऽधिकं
भाषाभाष्यमिदं पठन्तु गणका व्युत्पत्तिसंपत्तये ॥

एतदेव श्रीमद्भास्करीयं बीजगणितं संप्रति सर्वत्र पठनपाठनव्यवहारेषु प्रवर्तते । श्रीधरपद्मनाभबीजे तु नामतो ज्ञायेते । यद् ब्रह्मगुप्तबीजं ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तान्तर्गतं दृश्यते, तत्तु शब्दार्थतः संकुचितमेव । एकं बीजं ज्ञानराजदैवज्ञैरुपनिबद्धं तदपि स्वल्पम् । एवं नारायणीयबीजमपीति दिक् ।

बीजगणिते प्रसङ्गादुद्धृतानि प्राचां वाक्यानि यथा—

(१) द्वौ राशी क्षिपेत्तत्र (इष्टहतेऽधोराशौ) पृ. १३४ ।
(२) 'पञ्चकशतदत्तधनात्—' पृ. २३६ ।
(३) 'चतुराहतवर्गसमैः—' श्रीधराचार्यसूत्रम् । पृ. २६६ ।
(४) 'व्यक्तपक्षस्य चेन्मूलं—' पद्मनाभबीजे । पृ. ३२८ ।
(५) 'राशिक्षेपाद् वधक्षेपः—' पृ. ३३२ ।
(६) 'त्रिभिः पारावताः पञ्च—' पृ. ३७४ ।
(७) 'निराधारा क्रिया यत्र—' पृ. ४२४ ।

(८) 'षडष्टशतकाः क्रीत्वा—' पृ. ४२६ ।
(९) 'आलापो मतिरमला—' पृ. ४२७ ।
(१०) 'राशियोगकृतिः—' पृ. ४५१ ।
(११) 'यत्स्यात्साल्पवधार्धतः—' पृ. ४८३ ।
(१२) 'राश्योर्ययोः कृतियुतिवियुती—' पृ. ५०२ ।
(१३) 'को राशिस्त्रिभिरभ्यस्तः—' पृ. ५१४ ।
(१४) 'हरभक्ता यस्य कृतिः—' पृ. ५२१ ।

आशासे मदीयेनानेन प्रयत्नेन गणितप्रणयिनः सफलसमीहिता भविष्यन्तीति ।

जयपुरम्.
चैत्र कृ. ८ शुक्रे.
वि० सं० १९७३.

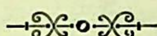
दुर्गाप्रसादद्विवेदी



श्रीगणेशाय नमः ।

बीजगणितम् ।

विलासिनामकेन व्याख्यानेनालंकृतम् ।



जयति जगदमन्दानन्दमन्दारकन्दो
वृजिनशमनबीजं पार्वतीजानिरेकः ।
तदनु गणितविद्यानाटिकासूत्रधारो
जयति धरणिरत्नं भास्कराचार्यवर्यः ॥ १ ॥
तातश्रीसरयूप्रसादचरणस्वर्वृत्तसेवापरो
मातृश्रीहरदेव्यपारकरुणापीयूषपूर्णान्तरः ।
हृत्पद्मभ्रमरायमाणगिरिशो दुर्गाप्रसादः सुधी-
रध्येतृप्रतिभोद्गमाय कुरुते बीजोपरि व्याकृतिम् ॥ २ ॥

अथ तत्रभवान् भास्कराचार्यो ग्रहगणितरूपं सिद्धान्तशिरोमणिं चिकीर्षुस्तदुपयोगितया तदध्यायभूतां लीलावतीनामिकां व्यक्तगणितपाटीं निर्माय तथाभूतं बीजगणितमारभमाणः प्रत्यूहव्यूहनिरासाय शिष्यशिक्षार्थं मङ्गलमादौ निबध्नाति—

उत्पादकं यत्प्रवदन्ति बुद्धे-
रधिष्ठितं सत्पुरुषेण सांख्याः ।

व्यक्तस्य कृत्स्नस्य तदेकबीज-
मव्यक्तमीशं गणितं च वन्दे ॥ १ ॥

उत्पादकमिति । पद्यमिदमर्थत्रयवाचि । तत्र प्रथमं तावदव्यक्तपक्षे व्याख्यायते—तद् अव्यक्तं प्रधानं सांख्यशास्त्रे जगत्कारणतया प्रसिद्धं वन्दे अभिवादये । सांख्याः सेश्वराः श्रीभगवत्पतञ्जलिमतानुसारिणो यद् बुद्धेः महत्तत्त्वस्य उत्पादकमभिव्यञ्जकं प्रवदन्ति कथयन्ति । ननु प्रधानमचेतनं कथं कार्यमुत्पादयेदित्यत उक्तं पुरुषेणाधिष्ठितं सदिति । यथाहि—कुलालादिना चेतनेनाधिष्ठितं कपालादि घटाद्युत्पादकं तद्वदित्यर्थः । निरीश्वराः कपिलमतानुसारिणस्तु पुरुषनिरपेक्षमेव प्रधानमुत्पादकं प्रवदन्ति ।

तदुक्तं श्रीमदीश्वरकृष्णाचरणैः—

'वत्सविवृद्धिनिमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य ।
पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य' ॥ ५७ ॥

'यथा तृणोदकं गवा भक्षितं क्षीरभावेन परिणम्य वत्सविवृद्धिं करोति पुष्टे च वत्से निवर्तते । एवं पुरुषविमोक्षनिमित्तं प्रधानमित्यज्ञस्य प्रवृत्तिः' इति तद्भाष्यम् । ननु तादृशे प्रधाने किं प्रमाणमित्यत आह—कृत्स्नस्य व्यक्तस्यैकबीजमिति । समस्तस्य व्यक्तस्य कार्यजातस्य एकं बीजं कारणमिति ॥ अथेशपक्षे—अत्र यत्तदोर्लिङ्गविपरिणामेन यदिति स्थाने यं तदिति स्थाने तं चेति बुद्धिमता व्याख्येयम् । तमीशं सच्चिदानन्दरूपं वन्दे । सांख्याः, सम्यक ख्यायते ज्ञायते आत्मा यया सा संख्या आत्माकारान्तःकरणवृत्तिः, सा विद्यते येषां ते सांख्याः आत्मज्ञानिन इत्यर्थः । सत्पुरुषेण नित्यानित्यवस्तुविवेकेहामुत्रफलभोगविरागशमदमादिसंपत्तिमुमुक्षुत्वेतिसाधनचतुष्टयसंपन्नेन अधिष्ठितमादरनैरन्तर्याभ्यां श्रवणविषयीकृतं सन्तं बुद्धेस्तत्त्वज्ञानस्योत्पादकं प्रवदन्ति । ननु तस्याजनकत्वाद्बुद्धिजनकत्वे मानाभाव इत्यत आह—समस्तस्य व्यक्तस्य एकमसाधारणं बीजमुपादानमित्यर्थः । 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इति 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः' इति च । अथ गणित-

पद्ये—तदव्यक्तं गणितं बीजगणितमिति यावत् । वन्दे । गणितवन्दनेन तदधिष्ठात्री देवता वन्द्यत इति सांख्याः संख्याविदो गणकाः सत्पुरुषेण स्वरूपयोग्येन अधिष्ठितमभ्यस्तं यद् बुद्धेः प्रज्ञायाः उत्पादकं प्रवदन्ति। कीदृशम् । समस्तस्य व्यक्तगणितस्य एकं बीजं मूलमित्यर्थः । उपजातिवृत्तमेतत् ॥ १ ॥

भाषाभाष्य ।

सकलभुवनैकहेतुं सेतुं संसारसागरस्यैकम् ।
आर्यापदा[1]रविन्दं जितकुरु[2]विन्दं नमस्कुर्मः ॥ १ ॥

श्रीभास्कराचार्यविनिर्मितस्य
विधाय पाटीगणितस्य टीकाम् ।
अद्यास्य बीजस्य चिकीर्षुरस्मि
[3]भव्याकृतिव्याकृतिरत्नमार्याः ॥ २ ॥

प्रणम्य सादरं मूर्ध्ना पित्रोः पादारविन्दयोः ।
दुर्गाप्रसादः कुरुते भाषाभाष्यं मिताक्षरम् ॥ ३ ॥

श्रीभास्कराचार्य, लीलावती पाटीगणित को बनाकर अब बीजगणित की निर्विघ्न समाप्ति के लिए आरंभ में मङ्गलाचरण करते हैं—

सांख्यशास्त्रसंबन्धी पहला अर्थ—

सांख्यशास्त्र में जो बुद्धि अर्थात् महत्तत्त्व का अभिव्यंजक—प्रकृति-पुरुष की संनिधि से कहा जाता है, संसार के अद्वितीय कारण उस अव्यक्त—प्रधान (प्रकृति) की मैं वन्दना करता हूँ ।

उत्तरमीमांसा (वेदान्त) शास्त्रसंबन्धी दूसरा अर्थ—

आत्मज्ञानी, जिसको सत्पुरुष अर्थात् [4]साधनसंपन्न पुरुष के द्वारा

---

१ गौरीचरणपङ्कजमित्यर्थः। २ कान्त्या तिरस्कृतप्रवालमित्यर्थः। ३ भव्या दोषहानेन रम्या आकृती रचनाविशेषो यस्य तत् ।

४ 'ब्रह्म ही एक नित्य वस्तु है, उससे भिन्न संपूर्ण वस्तु अनित्य हैं' ऐसे विवेचन को 'नित्यानित्यवस्तुविवेक' कहते हैं । गन्ध, माल्य, चन्दन, वनिता आदि लौकिक विषय भोग और अमृतपान, नन्दनवनक्रीड़ा आदि पारलौकिक विषयभोग से अत्यन्त

भली भाँति आराधित बुद्धि अर्थात् तत्त्वज्ञान का उत्पादक कहते हैं, उस ब्रह्माण्डोदरवर्ती घटपटादि कार्यों का असाधारण कारण एवं सच्चिदानन्दस्वरूप ईश्वर की मैं वन्दना करता हूँ।

ज्योतिःशास्त्रसंबन्धी तीसरा अर्थ—

संख्या (गिनती) के ज्ञाता ज्योतिषी लोग, जिसको सूक्ष्मबुद्धि और परिश्रमशाली पुरुषों द्वारा अभ्यस्त किया गया, जो बुद्धि अर्थात् मति का उत्पादक बतलाते हैं, उस संपूर्ण व्यक्तगणित (पाटी-गणित) के मूलभूत बीजगणित की मैं वन्दना करता हूँ॥ १ ॥

पूर्वं प्रोक्तं व्यक्तमव्यक्तबीजं
प्रायः प्रश्ना नो विनाऽव्यक्तयुक्त्या।
ज्ञातुं शक्या मन्दधीभिर्नितान्तं
यस्मात्तस्माद्वच्मि बीजक्रियां च॥ २॥

इदानीं प्रेक्षावत्प्रवृत्तिहेतुविषयादिचतुष्टयं संगतिं च प्रदर्शयति—पूर्वमिति। तस्माद्धेतोः बीजस्य यावत्तावदादिवर्णकल्पनाभिः क्रियमाणस्य गणितस्य क्रियामितिकर्तव्यतां वच्मि ब्रुवे। यस्माद्

विरक्ति को 'इहामुत्रफलभोगविराग' कहते हैं। तत्त्वज्ञान के सहायक श्रवण, मनन आदि विषयों को छोड़ अन्य विषयों से मनोवृत्ति के रोकने को 'शम' कहते हैं। तत्त्वज्ञान के साधन श्रवण मननादिकों को छोड़कर शब्दादि विषयों में प्रवृत्त कर्णादि बाह्येन्द्रियाँ जिस वृत्ति से निवृत्त हों, उसको 'दम' कहते हैं। तत्त्वज्ञान के सहयोगी श्रवण, मननादि छोड़कर शब्दादि विषयों से बाह्येन्द्रियों के उपराम को 'उपरति' कहते हैं। अथवा पर्याप्त भोग के बाद गन्ध, माल्य प्रभृति विषयों के चतुर्थाश्रम (संन्यास) में परित्याग को 'उपरति' कहते हैं। शीत और उष्ण की सहनशीलता को 'तितिक्षा' कहते हैं। शब्दादि विषयों से रोके हुए मन का, तत्त्वज्ञानोपकारक श्रवण आदि में समाधिस्थ होने को 'समाधान' कहते हैं। गुरु और वेदान्तवाक्यों में निश्चल विश्वास को 'श्रद्धा' कहते हैं। मोक्षविषयक इच्छा को 'मुमुक्षुता' कहते हैं। नित्यानित्यवस्तुविवेक, इहामुत्रफलभोगविराग, शम आदि छः पदार्थ और मुमुक्षुता ये चार साधन वेदान्तशास्त्र में सुप्रसिद्ध हैं।

व्यक्तं वर्णकल्पनानिरपेक्षं गणितं पूर्वं प्रोक्तम् । ततः किमित्यत आह—अव्यक्तबीजमिति । अव्यक्तं बीजगणितं मूलं यस्य तत् । तथा च पूर्वं प्रोक्तमपि व्यक्तं तावत्सम्यक्तया न ज्ञायते यावद्बीजक्रिया नोपपद्यते । तत्किं व्यक्तज्ञानार्थमेवारम्भो न चेत्याह—यस्मात्सुधीभिः प्राज्ञैरव्यक्तयुक्त्या विना प्रश्नाः प्रायो ज्ञातुं नो शक्याः । मन्दधीभिस्तु नितान्तं ज्ञातुं नो शक्याः । अशक्या एवेत्यर्थः । प्रश्नाश्चात्रसिद्धान्तशिरोमण्युक्ताः । इतरे च पृच्छकेच्छावशादपि ज्ञातव्याः । अत्र बीजक्रियां वच्मीति वदता आचार्येण एकवर्णसमीकरणानेकवर्णसमीकरणमध्यमाहरणभावितरूपभेदचतुष्टयाभिन्नं गणितं विषयत्वेन प्रदर्शितम् । तदुपयुक्ततया धनर्णषड्विधखषड्विधवर्णषड्विधकरणीषड्विधकुट्टकवर्गप्रकृतिचक्रवालान्यपि विषयत्वेन प्रदर्शितानि । विषयस्य शास्त्रस्य च प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावः संबन्धोऽपि बीजक्रियां वच्मीत्यनेन दर्शितः । प्रयोजनं तु प्रश्नोत्तरार्थज्ञानं गोलज्ञानं च । परम्परया जगतः शुभाशुभफलादेशश्च । अध्येतॄणां धर्मार्थकामप्राप्तिश्च वेदाङ्गत्वादिति । शालिनीवृत्तमेतत् ॥ २ ॥

प्रथम पाठकों की प्रवृत्ति के लिये विषय, संबन्ध, प्रयोजन, अधिकारी और ग्रन्थसंगति कहते हैं—

जिसका अव्यक्त अर्थात् बीजगणित मूल सिद्धांत है; उस व्यक्त अर्थात् लीलावती नामक पाटीगणित को मैंने पहले बनाया है। परंतु बीजगणित की युक्तियों के विना प्रश्नों के उत्तर लाने की रीति प्रायः स्पष्ट ज्ञात नहीं होती और वह मंदबुद्धियों के लिए तो बहुत ही कठिन पड़ती है । इस ग्रंथ में एकवर्ण समीकरण से लेकर भावित तक चार प्रकार के बीजभेद और उनके उपयोगी धनर्णषड्विध आदि एवं कुट्टक, वर्गप्रकृति और चक्रवाल यह विषय है । विषय अर्थात् प्रतिपाद्य का प्रतिपादक अर्थात् बीजगणित शास्त्र का सम्बन्ध है । प्रश्नोत्तर

ज्ञान प्रयोजन है। सुपात्र पढ़ने और पढ़ाने के अधिकारी हैं। इसलिये अब मैं बीजगणित की क्रिया (रीति) को भी कहता हूँ।

धनर्णसंकलने करणसूत्रं वृत्तार्द्धम्—

योगे युतिः स्यात्क्षययोः स्वयोर्वा
धनर्णयोरन्तरमेव योगः ॥

अथ धनर्णसंकलनां तावदुपजातिकापूर्वार्धेनाह—योगे युतिरिति। क्षययोः ऋणयोः स्वयोर्धनयोर्वा योगे कर्तव्ये युतिः स्यात्। अस्यायमभिप्रायः—ययो राश्योर्योगो विधेयोऽस्ति तौ रूपात्मकौ वर्णात्मकौ करण्यात्मकौ वा स्यातां, तर्हि तयो राश्योः 'कार्यः क्रमादुत्क्रमतोऽथ वाङ्कयोगः—' इति व्यक्तोक्तरीत्या योगः कार्यः स एवात्र योगः स्यात्। करण्योस्तु योगोऽन्तरं वा 'योगं करण्योर्महतीं प्रकल्प्य—' इत्यादिवक्ष्यमाणप्रकारेण विधेयम्। एवं बहूनामपि। इत्थं सजातीययोगोऽवधेयः। यत्र त्वेकराशिर्धनमपर ऋणं तयोर्योगे कर्तव्ये किं करणीयमित्याह—धनर्णयोरन्तरमेव योग इति। उर्वरितस्य धनर्णत्ववशाद्युतेरपि धनर्णत्वमवसेयम्॥

संकलन (जोड़ने) का प्रकार—

यदि दो राशि धन अथवा ऋण हों तो उनका व्यक्तगणित की रीति से योग ही यहाँ भी योग होता है। एक राशि धन और दूसरा ऋण हो तो भी व्यक्तगणित के प्रकार से उनका अन्तर यहाँ पर योग होता है। यहाँ शेष धन बचे तो धन और ऋण बचे तो ऋण होता है।

उपपत्ति—

(अ) ने (क) से तीन रुपये ऋण लिया, फिर चार रुपये ऋण लिया, इस प्रकार (अ) ने सात रुपये ऋण लिया। फिर (अ) को तीन रुपये और चार रुपये इस प्रकार सात रुपये मिले परन्तु धन कुछ नहीं बचा, क्योंकि सात रुपये ऋण लिया था। अब जो (अ) चार रुपये

ऋण करे और तीन रुपये अर्जन (पैदा) करे तो उसके एक रुपया ऋण रहेगा । यदि चार रुपये अर्जन करे और तीन रुपये ऋण करे तो अवश्य ही एक रुपया धन रहेगा । इससे 'योगे युतिः—' यह सूत्र उपपन्न हुआ ।

उदाहरणम्—

रूपत्रयं रूपचतुष्टयं च
क्षयं धनं वा सहितं वदाशु ।
स्वर्णं क्षयं स्वं च पृथक् पृथङ् मे
धनर्णयोः संकलनामवैषि ॥ १ ॥

अत्र रूपाणामव्यक्तानां चाद्याक्षराण्युपलक्षणार्थं लेख्यानि यानि ऋणगतानि तान्यूर्ध्वबिन्दूनि च ।

न्यासः । रू ३̇ रू ४̇ योगे जातम् रू ७̇
न्यासः । रू ३ रू ४ योगे जातम् रू ७
न्यासः । रू ३ रू ४̇ योगे जातम् रू १̇
न्यासः । रू ३̇ रू ४ योगे जातम् रू १

एवं भिन्नेष्वपि

इति धनर्णसंकलना *।

---

* अत्रेदं पद्यं स्मरणीयम्—
अणोरणीयान् महतो महीयानचिन्त्यमूलप्रकृतिप्रभावः ।
महेश्वरो वा ऋणरूपराशिर्विचारणीयो हृदि सांख्यविद्भिः ॥

उदाहरण—

तीन ऋण, चार ऋण या तीन धन। चार धन, या तीन धन चार ऋण, या तीन ऋण और चार धन इनका योग अलग अलग क्या होगा?

यहाँ सुगमता के लिये रूप और अव्यक्तराशि के आदि के अक्षर लिखते हैं। जैसे 'रूप' को रू और 'अव्यक्त राशि यावत्तावत्' इत्यादि को या इत्यादि। ऋण राशि के मस्तक पर एक बिन्दु का चिह्न देते हैं। जैसा—रू १̇। रूप उस राशि को कहते हैं जिसका मान ज्ञात हो और अव्यक्त राशि वह है जिसका मान अज्ञात हो। जैसा कि 'रू ३̇ रू ४̇' इस पहले उदाहरण में, रूप तीन तथा रूप चार ऋण हैं, इसलिये इनके शिर पर बिन्दु का चिह्न लगाया गया है। अब इन दोनों का योग उक्त प्रकार से रूप सात ऋण होता है रू ७̇ ऐसा ही आगे भी जानना चाहिए।

(१) न्यास। रू ३̇ रू ४̇। इनका योग रू ७̇ हुआ।
(२) ,, । रू ३ रू ४। इनका योग रू ७ हुआ।
(३) ,, । रू ३ रू ४̇। इनका योग रू १̇ हुआ।
(४) ,, । रू ३̇ रू ४। इनका योग रू १ हुआ।

इसी प्रकार, भिन्नाङ्कों का भी योग किया जाता है, परंतु वहाँ समच्छेद विधि का स्मरण रखना चाहिए।

संकलन समाप्त।

धनर्णव्यवकलने करणसूत्रं वृत्तार्धम्—
संशोध्यमानं स्वमृणत्वमेति
स्वत्वं क्षयस्तद्युतिरुक्तवच्च ॥ ३ ॥

अथ धनर्णव्यवकलनमुपजात्युत्तरार्धेनाह—संशोध्यमानमिति। संशोध्यते अपनीयते यत्तत्संशोध्यमानम् रूपं वर्णः करणी चेति त्रिलिङ्गी। सामान्यान्नपुंसकत्वम्। तद्यदि धनमस्ति तर्हि ऋण-त्वमेति, यदि क्षयोऽस्ति तर्हि धनत्वमेति। पश्चादुक्तवद्योगश्च।

अस्यायमभिप्रायः—ययोरन्तरं कर्तव्यमास्ते तयोर्मध्ये संशोध्यमानस्य धनर्णतावैपरीत्यं विधाय 'योगे युतिः स्यात्—' इत्यादिना तयोर्योगः कार्यस्तदेव व्यवकलनफलमवधेयम् ॥ ३ ॥

व्यवकलन (घटाने) का प्रकार—

जो राशि घटाई जाती है, उस को संशोध्यमान कहते हैं । वह संशोध्यमान (घटनेवाली) राशि धन हो तो ऋण और ऋण हो तो धन हो जाती है । फिर उनका योग 'योगे युतिः स्यात् —' इस प्रकार से करना ॥

उपपत्ति—

(अ) के धन सात रुपयों से धन तीन रुपया घटाना है, तो सात रुपयों का स्वरूप 'रू ४ रू ३' यह हुआ । अब, इसमें से तीन रुपया घटाने से, शेष 'रू ४' रहा । इसी प्रकार ऋण सात रुपयों से, ऋण तीन रुपया घटाना है, तो सात रुपयों का स्वरूप 'रू ४̇ रू ३̇' यह हुआ । इसमें तीन रुपया जोड़ने से शेष 'रू ४̇' रहा । यह बात संशोध्यमान राशि के धन-ऋण के वैपरीत्य से सिद्ध होती है । इसी प्रकार धन सात रुपयों से ऋण तीन रुपया घटाना है, तो धन सात रुपयों का स्वरूप 'रू १० रू ३̇' हुआ । इसमें तीन रुपये जोड़ देने से अन्तर सिद्ध होता है, तो यहाँ भी संशोध्यमान राशि का वैपरीत्य सिद्ध हुआ । इसी प्रकार ऋण सात रुपयों से धन तीन रुपया घटाना है, तो ऋण सात रुपयों का स्वरूप 'रू १०̇ रू ३' यह हुआ । इसमें तीन रुपया घटाने से 'रू १०̇' यह अन्तर हुआ । यहाँ पर भी संशोध्यमान राशि का वैपरीत्य सिद्ध हुआ । ऐसा ही सर्वत्र जानना । 'इससे संशोध्यमानं स्वमृणत्वमेति' इस प्रकार की उपपत्ति स्पष्ट प्रकाशित होती है ॥ ३ ॥

उदाहरणम्—

त्रयाद् द्वयं स्वात्स्वमृणादृणं च
व्यस्तं च संशोध्य वदाशु शेषम् ॥

न्यासः । रू ३ रू २ अन्तरे जातम् रू १ ।
न्यासः । रू ३̇ रू २̇ अन्तरे जातम् रू १̇ ।
न्यासः । रू ३ रू २̇ अन्तरे जातम् रू ५ ।
न्यासः । रू ३̇ रू २ अन्तरे जातम् रू ५̇ ।

इति धनर्णव्यवकलनम् ।

उदाहरण—

तीन धन में दो धन, वा तीन ऋण में दो ऋण, वा तीन धन में दो ऋण, अथवा तीन ऋण में दो धन घटाने पर शेष क्या बचेगा ?

(१) न्यास । रू ३ रू २ इन का अन्तर रू १ हुआ ।
(२) ,, । रू ३̇ रू २̇ इन का अन्तर रू १̇ हुआ ।
(३) ,, । रू ३ रू २̇ इन का अन्तर रू ५ हुआ ।
(४) ,, । रू ३̇ रू २ इन का अन्तर रू ५̇ हुआ ।

व्यवकलन समाप्त ।

गुणने करणसूत्रं वृत्तार्धम्—

स्वयोरस्वयोः स्वं वधः स्वर्णघाते
क्षयः ——————————————— ॥

अथ गुणनं भुजंगप्रयातपूर्वार्धखण्डेनाह—स्वयोरिति । स्वयोर्धनयोः अस्वयोर्ऋणयोर्वा वधो गुणनं एकस्यापरतुल्यावृत्तिर्धनं भवति । स्वर्णघाते तु क्षयः स्यात् । एतदुक्तं भवति—यदि गुण्यो गुणकश्चेति द्वावपि धनमृणं वा स्यातां तर्हि तदुत्पन्नं फलं धनं स्यात् । अत्र गुणनफलस्य धनर्णत्वमात्रं प्रतिपादितम् । अङ्कतस्तु व्यक्तोक्ताः सर्वेऽपि गुणनप्रकारा द्रष्टव्याः ॥

गुणन का प्रकार—

गुणन के दो राशियों में एक को गुण्य और दूसरी को गुणक कहते हैं। दोनों राशि धन वा ऋण हों, तो उन का घात धन होगा और उन में एक धन दूसरा ऋण हो तो उन का घात ऋण होगा।

उपपत्ति—

गुण्य की गुणक के समान आवृत्ति को गुणनफल कहते हैं और गुण्य, गुणकों में एक को गुण्य दूसरे को गुणक मान सकते हैं। (यह बात लीलावती के 'गुण्यान्त्यमङ्कं—' इत्यादि गुणनसूत्रों के व्याख्यान से स्पष्ट है) गुण्य और गुणक धन हों तो गुणनफल धन होगा। उन में एक धन दूसरा ऋण हो तो गुणनफल ऋण होगा, क्योंकि गुणकतुल्य स्थानगत ऋण गुण्यों का योग ऋण होता है। अथवा, पूर्वोक्त रीति से यदि धन और ऋण दो समान राशि हों तो उनका योग शून्य होता है। जैसे 'रू२रू२̇' इनका योग रू० हुआ। इन को किसी एक तुल्य अङ्क से गुणाने से भी योग शून्य ही होगा। इस लिये 'रू २ रू २̇' इन को धन तीन से गुणाने से पहले स्थान में धन-धन का घात रू ६ धन हुआ। दूसरे स्थान में, धन और ऋण का घात यदि ऋण न मानें तो 'रू ६ रू ६̇' इन का योग शून्यात्मक न होगा। इस कारण, धन और ऋण का घात ऋण ही होगा। इसी प्रकार 'रू २ रू २̇' इन दो राशियों को ऋण तीन से गुणाने से पहले स्थान में धन और ऋण का घात ऋण रू ६̇ हुआ। दूसरे स्थान में यदि ऋण-ऋण का घात धन न माने तो 'रू ६̇ रू ६̇' इन का योग शून्य न होगा। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ऋणात्मक राशियों का घात धन ही होता है। इस प्रकार स्वयोरस्वयोः स्वं वधः—' इस गुणनसूत्र की उपपत्ति स्पष्ट होती है॥

उदाहरणम्—

धनं धनेनर्णमृणेन निघ्नं
द्वयं त्रयेण स्वमृणेन किं स्यात्॥ २॥

न्यासः। रू २ रू ३ धनं धनघ्नं धनं स्यादिति जातम् रू ६

न्यासः। रू २̇ रू ३̇ ऋणमृणघ्नं धनं स्यादिति जातम् रू ६

न्यासः। रू २ रू ३̇ धनमृणगुणमृणं स्यादिति जातम् रू ६̇

न्यासः। रू २̇ रू ३ ऋणं धनगुणमृणं स्यादिति जातम् रू ६̇

इति धनर्णगुणनम्।

उदाहरण—

घन दो को धन तीन से, वा ऋण दो को ऋण तीन से, वा धन दो को ऋण तीन से अथवा ऋण दो को धन तीन से गुणने से गुणनफल अलग अलग क्या होगा ?

(१) न्यास। रू २ रू ३। धन को धन से गुणने से गुणनफल रू ६ धन हुआ।

(२) न्यास। रू २̇ रू ३̇। ऋण को ऋण से गुणने से गुणनफल रू ६ धन हुआ।

(३) न्यास। रू २ रू ३̇। धन को ऋण से गुणने से गुणनफल रू ६̇ ऋण हुआ।

(४) न्यास। रू २̇ रू ३। ऋण को धन से गुणने से गुणनफल रू ६̇ ऋण हुआ।

धन-ऋण राशि का गुणन समाप्त।

—भागहारेऽपि चैवं निरुक्तम् ॥

उदाहरणम्—

रूपाष्टकं रूपचतुष्टयेन
धनं धनेनर्णमृणेन भक्तम् ।
ऋणं धनेन स्वमृणेन किं स्याद्-
द्रुतं वदेदं यदि बोबुधीषि ॥ ३ ॥

न्यासः । रू ८ रू ४ । धनं धनहृतं धनं स्यादिति जातम् रू २ ।

न्यासः । रू ८̇ रू ४̇ । ऋणमृणहृतं धनं स्यादिति जातम् रू २ ।

न्यासः । रू ८̇ रू ४ । ऋणं धनहृतमृणं स्यादिति जातम् रू २̇ ।

न्यासः । रू ८ रू ४̇ । धनमृणहृतमृणं स्यादिति जातम् रू २̇ ।

इति धनर्णभागहारः ।

अथ भागहारं भुजंगप्रयातपूर्वार्धशेषशकलेनाह—भागहार इति। भागहारेऽपि गुणनवदेव निरुक्तमित्यर्थः । अस्यायमभिप्रायः—भाज्यभाजकयोरुभयोरपि धनत्वे ऋणत्वे वा लब्धिर्धनमेव स्यात् । यदा त्वेकतरस्य धनत्वमितरस्य ऋणत्वं तदा लब्धिर्ऋणमेव भवति ॥

भागहार का प्रकार—

भाज्य और भाजक दोनों धन या ऋण हो तो लब्धि धन होती है। यदि एक धन और दूसरा ऋण हो तो लब्धि ऋण होती है।

उपपत्ति—

भागहार में गुणन के समान संपूर्ण क्रिया होती है। जैसा—गुणन में धन-धन का, या ऋण-ऋण का घात धन होता है, वैसा ही यहाँ पर धन राशि में धन राशि का, या ऋण राशि में ऋण का भाग देने से लब्धि धन होती है, क्योंकि धन या ऋण राशियों का घात धन ही होता है। इसी प्रकार भाज्य और भाजक में कोई एक धन हो और दूसरा ऋण तो भी लब्धि ऋण होगी, क्योंकि धन और ऋण का घात ऋण होता है। और हर लब्धि का घात सर्वत्र भाज्य राशि के समान होता है। इससे 'भागहारे—' यह उपपन्न हुआ।

उदाहरण—

धन आठ में धन चार का, या ऋण आठ में ऋण चार का, या ऋण आठ में धन चार का, अथवा धन आठ में ऋण चार का, भाग देने से क्या लब्धि होगी ?

(१) न्यास। रु ८ रु ४। धन ८ में धन ४ का भाग देने से धन रु २ लब्धि मिली।

(२) न्यास। रु ८̇ रु ४̇। ऋण ८̇ में ऋण ४ का भाग देने से धन रु २ लब्धि मिली।

(३) न्यास। रु ८̇ रु ४। ऋण ८̇ में धन ४ का भाग देने से ऋण रु २̇ लब्धि मिली।

(४) न्यास। रु ८ रु ४̇। धन ८ में ऋण ४̇ का भाग देने से ऋण रु २̇ लब्धि मिली॥

धन ऋण राशि का भागहार समाप्त।

वर्गादौ करणसूत्रं वृत्तार्धम्—

कृतिः स्वर्णयोः स्वं स्वमूले धनर्णे
न मूलं क्षयस्यास्ति तस्याकृतित्वात् ॥ ४ ॥

उदाहरणम्—

धनस्य रूपत्रितयस्य वर्गं
क्षयस्य च ब्रूहि सखे ममाशु ॥

न्यासः । रू ३ रू ३̇ जातौ वर्गौ रू ९ रू ९ ।

उदाहरणम्—

धनात्मकानामधनात्मकानां
मूलं नवानां च पृथग्वदाशु ॥ ४ ॥

न्यासः । रू ९ । मूलम् ३ वा ३̇ ।

न्यासः । रू ९̇ । एषामवर्गत्वान्मूलं नास्ति ।

इति धनर्णवर्गमूले ।

इति धनर्णषड्विधम् ।

अथ वर्गं तन्मूलं च भुजंगप्रयातोत्तरार्धेनाह—कृतिरिति । स्वस्य धनस्य ऋणस्य च वा वर्गः स्वं स्यात् । अथ मूलमाह—स्वमूले धनर्णे इति । स्वस्य धनस्य मूले धनर्णे भवतः । धनस्यैव वर्गस्य मूलमृणमपि भवतीति भावः । अथात्र विशेषमाह—न मूलं क्षयस्या-

स्तीति। अत्र हेतुं प्रदर्शयति–तस्या कृतित्वादिति। वर्गस्य मूलं लभ्यते। ऋणाङ्कस्तु न वर्गः कथमतस्तस्य मूलं स्यात् ॥ ४ ॥
इति द्विवेदोपाख्याचार्यश्रीसरयूप्रसादसुत–दुर्गाप्रसादोन्नीते लीलावतीहृदयग्राहिणि बीजविलासिनि धनर्णषड्विधविवरणं समाप्तम् ॥

वर्ग-वर्गमूल का प्रकार—

धन अथवा ऋण राशि का वर्ग धन होता है और उस धनात्मक राशि का वर्गमूल धन वा ऋण होता है। ऋणराशि का मूल नहीं होता, क्योंकि वह (ऋणात्मक राशि) वर्ग नहीं है ॥ ४ ॥

उपपत्ति—

किसी एक राशि के समान दो घात को वर्ग कहते हैं। धनात्मक राशि को धनात्मक राशि से, या ऋणात्मक राशि को ऋणात्मक राशि से गुण देने से उन का घात धन होता है, यह बात सिद्ध है, इसलिये वर्गात्मक राशि सदा धन होती है और उसका मूल धन वा ऋण होता है। ऋणात्मक राशि वर्ग नहीं है, क्योंकि धन, ऋण राशि का घात ऋण होता है वह किसी का समद्विघात नहीं हो सकता। इस से 'कृतिः स्वर्णयोः—' उपपन्न हुआ ॥ ४ ॥

उदाहरण—

धन तीन और ऋण तीन इनका वर्ग क्या है ?

(१) न्यास। रू ३। इसका वर्ग रू ९ हुआ।

(२) ,, । रू ३̇। इसका वर्ग रू ९ हुआ।

उदाहरण—

धन नौ अथवा ऋण नौ का वर्गमूल क्या होगा ?

(१) न्यास। रू ९ इसका मूल रू ३ धन, या रू ३̇ ऋण हुआ।

(२) ,, रू ९̇ यह वर्गात्मक राशि नहीं है, इस कारण इस का मूल नहीं मिलता है।

धन-ऋण राशि का वर्ग-वर्गमूल समाप्त।
दुर्गाप्रसादरचिते भाषाभाष्ये मिताक्षरे।
वासनाभङ्गिसुभगं संपूर्णं स्वर्णषाड्विधम् ॥

खसंकलनव्यवकलने करणसूत्रं वृत्तार्धम्—
खयोगे वियोगे धनर्णं तथैव
च्युतं शून्यतस्तद्विपर्यासमेति ॥

अथ शून्यस्य संकलनव्यवकलने भुजंगप्रयातपूर्वार्धेनाह—खयोग इति । रूपस्य यावत्तावदादिवर्णस्य करण्या वा शून्येन सह योगे वियोगे वा कर्त्तव्ये रूपादिकं धनमृणं तथैव भवेत् । योगवियोगकृतो न कश्चिद्विशेष इत्यर्थः । अत्र खयोगो द्विविधः । खेन योगो रूपादेः खयोग इत्येकः । खस्य योगो रूपादिना खयोग इति द्वितीयः । एवं वियोगोपि द्विविधः । खेन वियोग इत्येकः । खाद्वियोग इति द्वितीयः । तत्र द्विविधेऽपि खयोगे पूर्वस्मिन्खवियोगे च रूपादिकं धनमृणं वा यथास्थितमेव । खाद्वियोगे विशेषमाह—च्युतमिति । धनमृणं वा रूपादिकं शून्यतः शोधितं सद्विपर्यासं वैपरीत्यमेति प्राप्नोति । धनं शून्यतश्च्युतमृणमृणं चेद्धनं भवतीत्यर्थः ॥

शून्य के जोड़ने-घटाने का प्रकार—

शून्य को किसी राशि में जोड़ने या शून्य में किसी राशि को जोड़ने और शून्य को किसी राशि में घटाने से भी धन या ऋण का विपर्यास अर्थात् हेर फेर नहीं होता । जो शून्य में किसी राशि को घटा दें तो वह धन हो तो ऋण और ऋण हो तो धन हो जाती है ।

उपपत्ति—

जो योग करने की संख्या केवल दो हो तो, उनमें से जिस संख्या में दूसरी संख्या जोड़नी होगी, उस पहली संख्या को योज्य और दूसरी को योजक कहते हैं । योज्य और योजक के बीच में, योजक का जितना ह्रास (कमी) होगा, उतना ही योगज फल अर्थात् जोड़ का भी ह्रास होगा । इस प्रकार योजक के तुल्य योजक का ह्रास होने से, योगज फल में भी योजकतुल्य ह्रास होगा । उस दशा में,

योज्य के समान योगज फल सिद्ध होगा। और जब योज्य योजक में योज्य के समान ह्रास होगा, तब योजक के तुल्य योगज फल होगा। इसलिये कहा है कि, शून्य को किसी राशि में जोड़ दें अथवा शून्य में किसी राशि को जोड़ दें, तो भी वह राशि ज्यों की त्यों रहती है।

घटाने की दो संख्याओं में, बड़ी संख्या को वियोज्य और छोटी को वियोजक कहते हैं। वियोज्य का वियोजक के तुल्य ह्रास होने से अन्तर सिद्ध होता है और वियोजक का जितना ह्रास होगा, उतना ही अन्तर की वृद्धि होगी। अब जो वियोजक के तुल्य वियोजक का ह्रास हो तो, अन्तर में वियोज्य तुल्य वृद्धि होगी अर्थात् वियोज्य संख्या के तुल्य अन्तर सिद्ध होगा। इस लिये कहा है कि, शून्य को किसी राशि में घटाने से उसका मान नहीं बिगड़ता। वियोज्य का जैसे जैसे ह्रास होता जायगा वैसे ही अन्तर का भी ह्रास होगा, यह प्रसिद्ध है। जैसा, वियोज्य ५ और वियोजक ३ है तो अन्तर २ हुआ, अब यहाँ ४ वियोज्य रक्खा तो अन्तर १ हुआ, ३ वियोज्य रक्खा तो अन्तर ० हुआ, २ वियोज्य रक्खा तो अन्तर १̇ हुआ, १ वियोज्य रक्खा तो अन्तर २̇ हुआ, और ० शून्य वियोज्य रक्खा तो अन्तर ३̇ हुआ। इस लिये कहा है कि, शून्य में किसी राशि को घटाने से, उस के धन-ऋण चिह्न बदल जाते हैं अर्थात् वह धन हो तो ऋण और ऋण हो तो धन हो जाता है। इससे 'खयोगे वियोगे धनर्णं तथैव'—यह सूत्र उत्पन्न हुआ॥

उदाहरणम्–

रूपत्रयं स्वं क्षयगं च खं च
किं स्यात्खयुक्तं वद खंच्युतं* च॥

न्यासः। रू ३ रू ३̇ रू ०। एतानि खयुतान्यविकृतान्येव।

---

* बहुत्र 'खाच्च्युतम्' इति पाठो दृश्यते स प्रामादिक एव।

न्यासः । रू ३ रू ३̇ रू० । एतानि खाच्च्युतानि रू ३̇ रू ३ रू० ।

इति खसंकलनव्यवकलने ।

रूपत्रयमिति । धनं रूपत्रयम् ऋणं रूपत्रयं खं च एतत्त्रयमपि पृथक् पृथक् खयुक्तं किं स्यात् । अत्र खेन युक्तं खयुक्तम् । खे युक्तं खयुक्तम् । इत्युदाहरणद्वयमपि द्रष्टव्यम् । एवं खच्युतमित्यत्रापि तृतीयापञ्चमीतत्पुरुषाभ्यामुदाहरणद्वयं द्रष्टव्यम् ।

उदाहरण—

धन तीन, ऋण तीन और शून्य, इन में शून्य को जोड़ने से अथवा, शून्य में इन को जोड़ने से और उन्हीं में शून्य को घटाने से वा शून्य में उन को घटाने से, क्या फल होगा ?

न्यास—

(१) योज्य, रू ३ रू ३̇ रू०
योजक, रू ० रू ० रू०
योग रू ३ रू ३̇ रू०

(२) योज्य, रू० रू० रू०
योजक, रू ३ रू ३̇ रू०
योग रू ३ रू ३̇ रू०

(३) वियोज्य, रू ३ रू ३̇ रू०
वियोजक, रू० रू० रू०
अन्तर रू३ रू३̇ रू०

(४) वियोज्य, रू० रू० रू०
वियोजक, रू३ रू३̇ रू०
अन्तर रू३̇ रू३ रू०

यहाँ चार उदाहरण दिये हैं, पर पहले तीन उदाहरणों में, योग

और अन्तर करने से कुछ विकार नहीं हुआ। चौथे उदाहरण में ऋण और धन का व्यत्यय हुआ है।

शून्य का जोड़ना-घटाना समाप्त ॥

खगुणनादिषु करणसूत्रं वृत्तार्धम्—

*वधादौ वियत्खस्य खं खेन घाते
खहारो भवेत्खेन भक्तश्च राशिः ॥ ५ ॥

अथ खगुणनादिकं भुजंगप्रयातोत्तरार्धेनाह—वधादाविति। यथा पूर्वं खयोगवियोगयोर्द्वैविध्यमुक्तं तथा खगुणनभजनयोरपि द्वैविध्यमास्ते। खस्येति खेनेति च। वर्गादिषु तु खस्येत्येक एव प्रकारः संभवति। वर्गादिकरणे द्वितीयसंख्यानपेक्षणात्। तत्र खस्येति प्रकारेष्वाह—खस्य शून्यस्य वधादौ गुणनभजनवर्गतन्मूलघन-तन्मूलेषु कर्तव्येषु गुणनफलादिकं शून्यं स्यात्। खेनेतिगुणन-प्रकारे फलमाह—खं खेन घात इति। खेन शून्येन घाते कस्य-चिदङ्कस्य गुणनफलं खं स्यात्। अत्र 'खगुणश्चिन्त्यश्च शेष-विधौ' इति व्यक्तोक्तो विशेषो द्रष्टव्यः। अन्यथा

'त्रिभज्यकोन्मण्डलशङ्कुघाता-
च्चरज्यया‍प्तं खलु यष्टिसंज्ञम्'

इत्यानयने गोलसंधौ यष्ट्यभावापत्तिः स्यात्। तत्र तु गोलज-रीत्या लम्बज्यासमाना यष्टिरायातीति विस्तर उपपत्तीन्दुशेखरे द्रष्टव्यः। खेनेति भजनप्रकारे फलमाह—खहारो भवेदिति खेन

---

* अत्र जीवन्मुक्तदृष्टान्तः—

शून्याभ्यासवशात्खतामुपगतो राशिः पुनः खोद्धृतो-
ऽप्यावृत्तिं पुनरेव तन्मयतया न प्राक्तनीं गच्छति।
आत्माभ्यासवशादनन्तममलं चिद्रूपमानन्ददं
प्राप्य ब्रह्मपदं न संसृतिपथं योगी गरीयानिव ॥

भक्तो राशिः खहारो भवेत् । खं शून्यं हारश्छेदो यस्य स खहारोऽनन्त इत्यर्थः ॥ ५ ॥

शून्य के गुणन-भजन-वर्ग-वर्गमूल का प्रकार—

जैसा शून्य का योग और अन्तर दो प्रकार का होता है, वैसा ही गुणन और भजन भी दो प्रकार का होता है। वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल यह सब एक ही प्रकार के हैं। क्योंकि इन के करने में दूसरी संख्या की अपेक्षा नहीं पड़ती। गुणन में, शून्य को किसी राशि से गुणा दें अथवा, किसी राशि को शून्य से गुणा दें तो भी गुणनफल शून्य ही होगा। भागहार में इतना विशेष है कि—शून्य में किसी राशि का भाग देने से फल शून्य ही मिलता है, पर शून्य का किसी राशि में भाग देने से, वह राशि खहर अर्थात् उस के नीचे शून्य छेद (हर) हो जाता है।

उपपत्ति—

अङ्क के अभाव में, उस स्थान की पूर्ति के लिए शून्य० यह चिह्न विशेष लिखते हैं। गुणक, यह आवर्तक है। क्योंकि गुणकतुल्य, गुण्य की आवृत्ति करने से, गुणनफल होता है। इस कारण गुण्य के अभाव से गुणनफल का भी अभाव सिद्ध हुआ। इसी प्रकार, भाज्य के ह्रासवश से, लब्धि का भी ह्रास होता है, जब कि भाज्य शून्य है, तो लब्धि अवश्य ही शून्य होगी। इसी प्रकार जैसे भाजक का ह्रास होगा वैसे ही लब्धि की वृद्धि होगी। और जब कि भाजक का परम ह्रास होगा, उस दशा में लब्धि की परमवृद्धि होगी। इसी हेतु लब्धि की अनन्तता कही है। इससे 'वधादौ वियत्'— सूत्र की उपपत्ति स्पष्ट प्रतीत होती है ॥ ५ ॥

उदाहरणम्—

द्विघ्नं त्रिहृत्खं खहृतं त्रयं च
शून्यस्य वर्गं वद मे पदं च ॥ ५ ॥

न्यासः। गुण्यः रू० । गुणकः रू२ गुणिते जातम् रू० ।

न्यासः। भाज्यः रू० । भाजकः रू ३ भक्ते जातम् रू० ।

न्यासः। भाज्यः रू ३ । भाजकः रू० भक्ते जातम् रू $\frac{३}{०}$

अयमनन्तो राशिः खहर इत्युच्यते ।

द्विघ्नमिति । द्वाभ्यां हन्यते गुण्यते तद् द्विघ्नमिति व्युत्पत्त्या शून्ये गुण्ये द्वौ हन्तीति व्युत्पत्त्या शून्ये गुणके च पृथगुदाहरणं द्रष्टव्यम् । इन्द्रवज्राछन्द इदम् ॥

उदाहरण—

शून्य को दो से गुणाने से या दो को शून्य से गुणाने से, शून्य में तीन का भाग देने से, या तीन में शून्य का भाग देने से क्या फल मिलेगा ? और शून्य का वर्ग, वर्गमूल क्या होगा ?

(१) न्यास । गुण्य रू० गुणक रू२ गुणनफल रू० हुआ ।
(२) ,, गुण्य रू २ गुणक रू० गुणनफल रू० हुआ ।
(३) ,, भाज्य रू० भाजक रू ३ भजनफल रू० हुआ ।
(४) ,, भाज्य रू ३ भाजक रू० भजनफल रू $\frac{३}{०}$ हुआ ।

यह $\frac{३}{०}$ अनन्तराशी खहर कहलाती है ।

अस्मिन्विकारः खहरे न राशा-
वपि प्रविष्टेष्वपि निःसृतेषु ।
बहुष्वपि स्याल्लयसृष्टिकाले
ऽनन्तेऽच्युते भूतगणेषु यद्वत् ॥ ६ ॥

न्यासः । रू० अस्यवर्गः रू० । मूलम् रू० एवं खघनादि ।

इति खषड्विधम् ॥

अथात्रखहरराशेरविकारताद्दृष्टान्तप्रसङ्गेन भगवन्तमनन्तं स्तौति अस्मिन्निति । प्रलयकाले कल्पान्तसमये भगवति अष्टैश्वर्यसंपन्ने अनन्ते अन्तरहिते अच्युते विष्णौ बहुष्वपि भूतगणेषु प्रविष्टेषु लीनेषु । अपि वा सृष्टिकाले निःसृतेषु देहादिमत्तया भगवतोऽच्युतात्पृथग्भूतेष्वपि यद्वद्विकारो नास्ति । नहि तेषु प्रविष्टेषु महान् भवति निःसृतेषु वा लघुर्भवति । तथास्मिन् खहरे राशावपि बहुष्वपि राशिषु प्रविष्टेषु निःसृतेषु वा विकारो नास्तीति । उपजातिवृत्तमेतत् ॥ ६ ॥

इति द्विवेदोपाख्याचार्यश्रीसरयूप्रसादसुत-दुर्गाप्रसादोन्नीते
लीलावतीहृदयग्राहिणि बीजविलासिनि
खषड्विधविवरणं समाप्तम् ।

इस खहर राशि में कोई राशि जोड़ी जाय अथवा घटाई जाय तो भी कुछ विकार नहीं होता । जैसे प्रलयकाल में परमेश्वर के शरीर में अनेक जीव प्रविष्ट होते हैं और सृष्टिकाल में निकल आते हैं, तो भी उस (परमेश्वर) के शरीर में कुछ विकार नहीं होता कि, जीवों के प्रविष्ट होने से मोटा और निकलने से दुबला हो जाय । यद्यपि इस खहर राशि में भिन्नाङ्क के जोड़ने आदि से स्वरूप में विकार पड़ जाता है, तो भी उस की लब्धि का अनन्तत्व (अनन्तपना) नहीं नष्ट होता । जैसे अवतारों के भेद होने से उस परमेश्वर के स्वरूप में तो अन्तर पड़ जाता है, पर अभीष्ट फलदान में कुछ विकार नहीं होता । ऐसी ही खहर राशि को भी जाननी चाहिये ।

इस खहर राशि में विशेष यह है—जैसे $\frac{३}{०}$ इस में ३ जोड़ना

है तो 'कल्प्यो हरो रूपमहारराशेः' इस व्यक्तगणित की रीति के अनुसार १ हर कल्पना किया, क्योंकि जिस राशि में ३ को जोड़ना है, वह राशि भिन्न है अर्थात् उसके नीचे शून्य का छेद लगा हुआ है। फिर 'अन्योन्यहाराभिहतौ हरांशौ——' इस प्रकार से समच्छेद करके, उन दो राशियों का योग वा अन्तर करने से कुछ विकार नहीं पड़ा अर्थात् वह योग और अन्तर से उत्पन्न राशि का स्वरूप समान ही रहा। न्यास $\frac{३}{०}$ में $\frac{३}{१}$ को जोड़ने के लिये समच्छेद करने से $\frac{३}{०}$ + $\frac{०}{०}$ ऐसा स्वरूप हुआ और इन का योग $\frac{३}{०}$ वही अविकृत राशि हुई। इसी प्रकार अन्तर करने से भी वही राशि हुई $\frac{३}{०}$।

यहां पर स्वरूप में विकार नहीं पड़ा, परन्तु भिन्नाङ्क के साथ योग या अन्तर करने से, विकार पड़ेगा। जैसे $\frac{३}{०}$ में $\frac{१}{२}$ को जोड़ना है, तो समच्छेद करने से $\frac{६}{०}$ + $\frac{०}{०}$ ऐसा स्वरूप हुआ, इनका योग $\frac{६}{०}$ हुआ। यदि कहें कि एक राशि के छेद से दूसरे राशि के छेदांश को गुणने से, समान छेद हो जाने पर आगे का श्रम व्यर्थ है। जैसे, प्रकृत में $\frac{३}{०}$ खहर राशि के शून्य हर से; दूसरे राशि $\frac{१}{२}$ के छेद और अंश को गुणा देने से $\frac{३}{०}$ $\frac{०}{०}$ समान छेद वाली हो गईं। अब इनका योग अथवा, अन्तर करने से कुछ भी विकार नहीं होता तो भी खहर का खहर राशि से योग अथवा, अन्तर करने में अवश्य विकार होगा। जैसे $\frac{३}{०}$+$\frac{५}{०}$ यह दो खहर राशि हैं, इनके तुल्य हर होने से योग $\frac{८}{०}$ हुआ। अब इस अवस्था में क्योंकर कह सक्ते हैं कि अवश्य विकार हुआ, पर वास्तव में यहाँ पर भी फल में नहीं, किन्तु स्वरूपमात्र में विकार हुआ। ऐसा नहीं होता कि ३ तीन में ० शून्य का भाग देने से भिन्न फल मिले और ८ आठ में भाग देने से दूसरा, किन्तु दोनों स्थानों में अनन्तता का व्यभिचार नहीं होता।

जैसे 'उन्नतांशजीवारूप शङ्कु में दृग्ज्याभुज तो इष्ट द्वादशाङ्गुल आदि शङ्कु में क्या? इस त्रैराशिक से सिद्धान्त ग्रंथ में छायासाधन किया गया है। वहाँ उदयकाल में उन्नतांश की जीवा का अभाव होता है और दृग्ज्या त्रिज्या १२० के समान होती है। अब दो, तीन, चार आदि अङ्गुल के शङ्कुओं पर से, उक्त त्रैराशिक से यह खहर

छाया सिद्ध होती हैं $\frac{२४०}{०}$ । $\frac{३६०}{०}$ । $\frac{४८०}{०}$ इन में फल का भेद नहीं है । अर्थात् उस काल में न्यूनाधिक प्रमाण वाले भी शङ्कुओं से जो छाया सिद्ध की गई हैं उन की अनन्तता ही है । उसी काल में ३४३८, १२०, १००, ९० इन त्रिज्याओं पर से उक्त त्रैराशिक से द्वादशाङ्गुल शङ्कु की यह छाया आती हैं $\frac{४१२५६}{०}$ । $\frac{१४४०}{०}$ । $\frac{१२००}{०}$ । $\frac{१०८}{०}$ इन में भी फल भेद नहीं है । इसी विषय पर श्रीमुनीश्वर (उपनाम-विश्वरूप) ने **पाटीसार** नामक ग्रन्थ में कहा है—

ननु यो ये न भक्तोऽसौ तद्धरः स्यादतो न सत् ।
खभक्त इति पृच्छाया उत्तरं खहरात्मकम् ॥ १ ॥
तस्मात्खभक्तराशेः किं फलं प्रश्नार्थगोचरम् ।
अस्योत्तरं खहारोऽयमनन्तफल उच्यते ॥ २ ॥
भाज्याद्धरापचयकेन फलस्य वृद्धि-
रस्मात्परापचितखात्महरेण भक्तात् ।
लब्धे परोपचय एतदनन्तसंख्या-
मारोहतीति नियते परता न चास्ति ॥ ३ ॥
श्रीभास्करार्येण कृतेऽत्र बीजे
खहारराशौ परमेशसाम्यात् ।
उक्तं यतोऽङ्केन वियोजितोऽयं
संयोजितश्चाविकृतोऽस्ति नित्यम् ॥ ४ ॥
अस्मिन्विकारः खहरेस्ति राशौ
भिन्नाङ्कयोगे त्वथ भिन्नहीने ।
योगोऽन्तरं तुल्यहरत्वपूर्वं
कार्यं ततः केचिदिदं वदन्ति * ॥ ५ ॥
तन्नैव युक्तं गुणनेन जातो
विकारको नैव युतेर्वियोगात् ।
यतः समच्छेदतया वियोग-
योगाङ्गता तद्गुणनस्य सिद्धा ॥ ६ ॥

---

* सिद्धान्तसुन्दरकर्तारः श्रीज्ञानराजदैवज्ञाः ।

विकारेऽपि नानन्तलब्धेर्विकारो
यतस्तुल्यलब्धं द्वयोर्नाधिकोनम् ।
यतश्चोदयेऽनेकराशित्रयज्या—
वशाच्छून्यहारप्रभेदेऽपि भैक्यम् ॥ ७ ॥
एवं * पितृव्याः प्रवदन्ति बीज—
नवाङ्कुरे ते खहराः समानाः ।
फलेन सिद्धान्तजवासनाभि—
र्युक्ता यतस्तत्खलु युक्तियुक्तम् ॥ ८ ॥
एवं त्वभिन्नत्रयमौर्विकोत्था
अनेकशङ्कुप्रविकल्पितेन ।
तत्रोदयास्ते खहराः प्रभिन्ना-
स्तल्लब्धिसाम्यं गणकैरमान्यम् ॥ ९ ॥
शङ्कुप्रभेदोद्भवभाः प्रभिन्नाः
सिद्धान्तयुक्त्या कथमन्यथा भाः ।
तद्भिन्नकालेऽपि समाः कुतो न
त्वन्ते खहारास्तु फलैर्न तुल्याः ॥ १० ॥
तस्मात्फलोनाधिकशून्यहारे—
ष्वानन्त्यरूपेण फलप्रसाम्यम् ।
युक्तं समाभाति सुवासनाढ्यं
संख्यागतं नैव फलं यतोऽत्र ॥ ११ ॥

(१) न्यास । रू० इसका वर्ग रू० हुआ ।
(२) ,, । रू० इसका वर्गमूल रू० हुआ ।
इसी भाँति शून्यराशि के घनादिकों को भी जानना चाहिए ।

सोपपत्तिक खषड्विध समाप्त ।

दुर्गाप्रसादरचिते भाषाभाष्ये मिताक्षरे ।
वासनाभङ्गिसुभगं संपूर्णं शून्यषड्विधम् ॥

---

* नवाङ्कुरटीकाकाराः कृष्णदैवज्ञाः ।

यावत्तावत्कालको नीलकोऽन्यो
वर्णः पीतो लोहितश्चैतदाद्याः ।
अव्यक्तानां कल्पिता मानसंज्ञा-
स्तत्संख्यानं कर्तुमाचार्यवर्यैः ॥ ७ ॥

अथाव्यक्तषड्विधत्वं निरूपयति—तत्र द्वित्र्यादीनां राशीना-मव्यक्तत्वे संजाते भेदमन्तरेण तत्संकरः स्यादतस्तन्निरासाय अव्यक्तसंज्ञा आह—यावदिति । 'यावत्तावत्' इत्येका संज्ञा । शेषं सुगमम् ॥ शालिनीवृत्तमेतत् ॥ ७ ॥

अव्यक्त राशियों की संज्ञा——

पूर्वाचार्यों ने अव्यक्त (अज्ञातमान) राशियों की गणना करने के लिये उन की यावत्तावत्, कालक, नीलक, पीतक और लोहितक आदि संज्ञाएँ की हैं, जिन से अलग-अलग राशियों के मान आपस में मिल न जायँ ॥ ७ ॥

अव्यक्तसंकलनव्यवकलने
करणसूत्रं वृत्तार्धम्—

योगोऽन्तरं तेषु समानजात्यो-
र्विभिन्नजात्योस्तु पृथक् स्थितिश्च ॥

अव्यक्तसंज्ञा-अभिधाय तत्संकलनव्यवकलने उपजातिपूर्वार्धेनाह—योगोऽन्तरमिति । तेषु वर्णेषु मध्ये, रूपेष्वपि द्रष्टव्यम् । समानजात्योः, समाना एका यावत्तावत्त्वादिधर्मरूपा जातिर्ययो-स्तौ । तथा तयोः समानजात्योः पूर्वोक्तो योगोऽन्तरं वा स्यात् । अत्र 'स्यात्' इति पदमुत्तरदलस्थमन्वेति देहलीदीपन्यायेन । 'समानजात्योः' इत्युपलक्षणम् । तेन समानजातीनामित्यपि द्रष्टव्यम् । विभिन्ना जातिर्ययोस्तौ । तयोर्योगेऽन्तरे वा क्रियमाणे

पृथक् स्थितिरेव स्यात् । अस्यायमभिप्रायः—रूपस्य रूपेण, यावत्तावतो यावत्तावता, कालकस्य कालकेन, यावत्तावद्वर्गस्य यावत्तावद्वर्गेण, यावत्तावद्घनस्य यावत्तावद्घनेन, एवं कालकवर्गस्य कालकवर्गेण, कालकघनस्य कालकघनेन, कालकनीलकभावितस्य कालकनीलकभावितेन, एवं समानजात्योर्योगेऽन्तरे वा कर्तव्ये योगोऽन्तरं वा प्रोक्तवद्भवति । रूपस्य यावत्तावता कालकादिना वा, एवं भिन्नजात्योर्योगेऽन्तरे वा पृथक्स्थितिरेव । अत्रैकपङ्क्ताविति द्रष्टव्यम् । अन्यथा योगान्तरज्ञापकाभावादिति ॥

अव्यक्तराशि के जोड़ने-घटाने का प्रकार—

यावत्तावत् आदि जो अव्यक्तराशियों के द्योतक वर्ण कल्पना किये हैं, वे सजातीय अर्थात् एक जाति के हों तो उन का योग और अन्तर उक्त प्रकार से करना और यदि विजातीय हों तो उनको एक पङ्क्ति में लिख देना । इस प्रकार क्रिया करने से योग और अन्तर होगा । यहाँ पर साजात्य से यह जानना कि रूप का रूप के साथ, यावत्तावत् का यावत्तावत् के साथ, यावत्तावत् वर्ग का यावत्तावद्वर्ग के साथ इसी प्रकार घन का घन के साथ, कालक का कालक के साथ, कालकवर्ग का वर्ग के साथ, घन का कालकघन के साथ योग-अन्तर होता है । इसी प्रकार, उन-उन वर्गों के चतुर्घात, पञ्चघात आदि उन्हीं वर्गों के चतुर्घात पञ्चघात आदि के सजातीय होते हैं और यावत्तावत्, यावत्तावद्वर्ग, यावत्तावद्घन, कालक, कालकवर्ग, कालकघन आदि विजातीय कहलाते हैं । यह बात उदाहरणों से और भी स्पष्ट प्रतीत होगी ।

उपपत्ति—

इसकी युक्ति यह है कि ५ पैसे, ५ रुपये और ५ अशर्फियों के द्योतक, क्रम से ५ या, ५ का, ५ नी, यदि कल्पना किये जायँ तो राशियों का योग १५ पैसे या १५ रुपये या १५ अशर्फियाँ नहीं हो सकता । किंतु –)। पैसे ५) रुपये ५)) अशर्फियाँ यही होगा, क्योंकि वे आपस में एक जाति के नहीं हैं, इससे सिद्ध हुआ कि

उनको अलग-अलग स्थापित करना चाहिए। यदि एक जाति के होते तो योग निर्विवाद ही था। इसी प्रकार अन्तर में भी, सजातीय और विजातीय वर्णों की व्यवस्था जाननी चाहिए। इस से 'योगो-ऽन्तरं तेषु समानजात्योः' यह सूत्र उत्पन्न हुआ ॥

उदाहरणम्—

स्वमव्यक्तमेकं सखे सैकरूपं
धनाव्यक्तयुग्मं विरूपाष्टकं च ।
युतौ पक्षयोरेतयोः किं धनर्णे
विपर्यस्य चैक्ये भवेत् किं वदाशु ॥७॥

न्यासः। या १ रू १। या २ रू ८̇। अनयो-योगे जातम् या ३ रू ७̇।

आद्यपक्षस्य धनर्णव्यत्यासे

न्यासः। या १̇ रू १̇। या २ रू ८̇। अन-योर्योगे जातम् या १ रू ९̇।

द्वितीयस्य व्यत्यासे

न्यासः। या १ रू १। या २̇ रू ८।
योगे जातम् या १̇ रू ९।

उभयोर्व्यत्यासे

न्यासः। या १̇ रू १̇। या २̇। या ८। योगे जातम् या ३̇ रू ७

अथोदाहरणान्याह—स्वमव्यक्तमिति । 'एकरूपयुक्तमेकं धनमव्यक्तम्, इत्येकः पक्षः । 'अष्टभी रूपै रहितं धनमव्यक्तयुग्मम्' इति द्वितीयः पक्षः । एतयोः पक्षयोः संकलने किं फलं स्यात् । अथ पक्षयोर्धनर्णे विपर्यस्य विपर्यासं विधाय युतौ किं फलं स्यात् । इह पूर्वपक्षमात्रव्यत्ययेन उत्तरपक्षमात्रव्यत्ययेन उभयपक्षव्यत्ययेन च प्रश्नत्रयं व्यत्ययाभावे चैक इत्युदाहरणचतुष्टयं द्रष्टव्यम् । 'धनर्णे' इत्यत्र भावप्रधानो निर्देशः ॥

उदाहरण—

यावत्तावत् एक और रूप एक, यह पहला पक्ष और यावत्तावत् दो, रूप आठ ऋण, यह दूसरा पक्ष है । इन दोनों पक्षों का योग क्या होगा ? और यदि पहले, दूसरे पक्ष के या दोनों पक्षों के ऋण धन चिह्न बदल दिये जायँ तो योग क्या होगा ?

(१) न्यास । या १ रू १ । या २ रू ८̇ । यहाँ पहले पक्ष में यावत्तावत् १ का और रूप १ का योग २ नहीं होता, क्योंकि एकजाति के नहीं हैं, इस कारण एक पङ्क्ति में लिखने से एकपक्ष सिद्ध हुआ, प्रथमपक्ष=या १ रू १ । इसी प्रकार धन यावत्तावत् २ में से रूप ८ को घटाना है तो 'संशोध्यमानं स्वमृणत्वमेति—' इस सूत्र के अनुसार रूप ८̇ ऋण हुआ, अब इन दोनों धन, ऋणों को 'धनर्णयोरन्तरमेव योगः' इस सूत्र के अनुसार ६ योग नहीं होता, किंतु एकजाति के न होने से अलग-अलग स्थापित किये गये तो दूसरा पक्ष सिद्ध हुआ, द्वितीयपक्ष=या २ रू ८̇ । योग के लिये दोनों पक्षों का न्यास—

प्रथम-पक्ष = या १ रू १
द्वितीय-पक्ष = या २ रू ८̇

अब उक्त रीति के अनुसार, धन यावत्तावत् १ और धन यावत्तावत् २ का योग धन यावत्तावत् ३ हुआ । धन रूप १ और ऋणरूप ८̇ का योग ऋणरूप ७̇ हुआ । ऐसा ही आगे भी जानना ।

(२) पहले पक्ष के चिह्न बदलने से दो पक्ष सिद्ध हुए—

प्रथम-पक्ष = या १̇ रू १̇ ।

द्वितीय-पक्ष = या २ रू ८̇ ।

इनमें सजातीय ऋण यावत्तावत् १̇ और धन यावत्तावत् २ का योग धन यावत्तावत् १ हुआ । इसी प्रकार सजातीय ऋण रूप १̇ और ऋण रूप ८̇ इनका योग ऋणरूप ९̇ हुआ ।

(३) दूसरे पक्ष के बदलने से दो पक्ष और सिद्ध हुए—

प्रथम-पक्ष = या १ रू १ ।

द्वितीय-पक्ष = या २̇ रू ८ ।

इनमें सजातीय धन यावत्तावत् १ और ऋण यावत्तावत् २̇ का योग ऋण यावत्तावत् १̇ हुआ । इसी प्रकार सजातीय धन रूप १ और धन रूप ८ का योग धन रूप ९ हुआ ।

(४) दोनों पक्षों के बदलने से दो पक्ष और उत्पन्न हुए—

प्रथम-पक्ष = या १̇ रू १̇

द्वितीय-पक्ष = या २ रू ८

अब इन दोनों पक्षों में सजातीय ऋण यावत्तावत् १̇ ऋण यावत्तावत् २ का योग ऋण यावत्तावत् ३̇ हुआ । इसी प्रकार सजातीय ऋण रूप १̇ और धन रूप ८ इनका योग धन रूप ७ हुआ । इसी प्रकार सर्वत्र ऋण, धन, सजातीय और विजातीय का विवेचन जानना चाहिए ।

उदाहरणम्—

धनाव्यक्तवर्गत्रयं सत्रिरूपं
क्षयाव्यक्तयुग्मेन युक्तं च किं स्यात् ॥

न्यासः । याव ३ रू ३ । या २̇ । योगे जातम् याव ३ या २̇ रू ३ ।

धनाव्यक्तयुग्माहणाव्यक्तषट्कं
सरूपाष्टकं प्रोभय शेषं वदाशु ॥ ८ ॥

न्यासः। या २। या ६ रू ८। शोधिते जातम्
या ८ रू ८ं।

इत्यव्यक्तसंकलनव्यवकलने ।

अथ त्रयाणां वैजात्ये सत्युदाहरणं भुजंगप्रयातपूर्वार्धेनाह– त्रिभी रूपैः सहितं धनमव्यक्तवर्गत्रयं त्तयाव्यक्तयुग्मेन युक्तं किं स्यात्तच्चाशु वदेति पूर्वेणान्वयः। अथोत्तरार्धेन व्यवकलनोदाहरणमाह–धनाव्यक्तयुग्मादिति । धनं यद् अव्यक्तयुग्मं तस्मात् रूपाष्टकेन सहितं ऋणमव्यक्तषट्कं प्रोभय अपास्य शेषं व्यवकलन-संभूतं फलं आशु वदेति ॥

उदाहरण—

रूप तीन से युक्त धन यावत्तावत्वर्ग तीन और ऋण यावत्तावत् दो इन का योग क्या होगा ?

(१) न्यास। याव ३ रू ३। या २ं। इस उदाहरण में यावत्तावद्वर्ग ३ और रूप ३ का यावत्तावत् २ के साथ योग नहीं हो सकता; क्योंकि परस्पर में एक जाति के नहीं हैं, इसी कारण इनकी पृथक् स्थिति हुई—याव ३ या २ रू ३।

उदाहरण—

धन यावत्तावत् दो में से, धन रूप आठ से युक्त ऋण यावत्तावत् दो को घटाने से शेष क्या बचेगा ?

(१) न्यास। या २। या ६ं रू ८। यहाँ भी यावत्तावत् २ में से यावत्तावत् ६ं और रूप ८ घटाने में 'संशोध्यमानं स्वमृणत्वमेति–' इस सूत्र के अनुसार यावत्तावत् ६ धन और रूप ८ं ऋण हुए। अब सजातीयों के योग करने से यावत्तावत् ८ धनरूप ८ं ऋण हुआ, यही उत्तर है।

अव्यक्तराशि का जोड़ना-घटाना समाप्त।

अव्यक्तादिगुणने करणसूत्रं सार्धवृत्तद्वयम्—

स्याद्रूपवर्णाभिहतौ तु वर्णो
द्वित्र्यादिकानां समजातिकानाम् ॥८॥
वधे तु तद्वर्गघनादयः स्यु-
स्तद्भावितं चासमजातिघाते ।
भागादिकं रूपवदेव शेषं
व्यक्ते यदुक्तं गणिते तदत्र ॥ ९ ॥

अथ वर्णगुणनमुपजातिकोत्तरार्धेनोपजातिकया चाह—स्यादिति । वर्णगुणनं द्विधैव संभवति, रूपेण सजातीयवर्णेन विजातीयवर्णेन वा । तत्र रूपेण गुणने 'स्याद्रूपवर्णाभिहतौ तु वर्णः' इति रूपवर्णाभिहतौ वर्णः स्यात् । अस्यायमभिप्रायः—रूपेण वर्णे गुणनीये वर्णेन वा रूपे गुणनीये अङ्कतस्तु गुणनफलं भवति, नाम तु वर्णस्यैव । अथ सजातीयवर्णेन गुणने समजातिकानां द्वित्र्यादिकानां वर्णानां वधे तु तद्वर्गघनादयः स्युः । एतदुक्तं भवति—यावत्तावता यावत्तावति गुणिते समजात्योर्द्वयोर्घात इति यावत्तावद्वर्गः स्यात् । स चेत्पुनर्यावत्तावता गुण्यते तदा समत्रिघातत्वात् यावत्तावद्घनः स्यात् । अयमपि चेत्तेन गुण्यते तदा समचतुर्घातत्वाद् यावत्तावद्वर्गवर्गः स्यात् । असावपि तेन गुणितश्चेत्पञ्चघातत्वाद् यावत्तावद्वर्गघनयोर्घातः स्यात् । एवं षड्घाते यावत्तावद्वर्गघनो यावत्तावद्घनवर्गो वा भवेत्, इत्यादि । कालकादीनामपि समद्वित्र्यादिवधे कालकादिवर्गघनादयो ज्ञेयाः । अथ विजातीयवर्णेन गुणने 'असमजातिघाते तद्भावितं स्यात्' इति विजातीयवर्णयोर्घाते तयोर्वर्णयोर्भावितं स्यात् । तथा यावत्तावता कालके गुणिते यावत्तावत्कालकभावितं स्यात् । कालकेन नीलके

गुणिते कालकनीलकभावितं स्यात् । इत्यादि बुद्धिमता ज्ञेयम् । यावत्तावत्कालकभावितं यदि कालकेन गुण्यते तदा यावत्तावत्कालकवर्गभावितं स्यात् । इदमपि यदि यावत्तावता गुण्यते तदा यावत्तावद्वर्गकालकवर्गभावितं स्यात् । एवमग्रेऽपि सुधियावधेयम् । एवं गुणनमभिधायेदानीं भागादिकमाह–भागादिकमिति । शेषं भागादिकं भागवर्गवर्गमूलघनघनमूलादिकं यद् व्यक्तगणित उक्तं तदत्र रूपवदेव ज्ञेयम् । 'भाज्याद्धरः शुध्यति-' इत्यादिना भजनफलमवधेयम् । 'समद्विघातः कृतिः' इत्यादिना वर्गो ज्ञेय इति । भागादीनां गुणनपूर्वकत्वाद्गुणनसंज्ञाविशेषस्य चोक्तत्वात्तत्र कोऽपि विशेषो वक्तव्यो नास्तीति भावः । इदमुपलक्षणम् । अत्रासंकरार्थं गुणनफलसंज्ञामात्रमुक्तम् । अङ्कतस्तु गुणनादिकं व्यक्तगणिते यदुक्तं तदत्रापि वेदितव्यम् ॥ ८ । ९ ॥

अव्यक्तराशि के गुणन का प्रकार—

रूप और वर्ण के गुणन से फल वर्ण होता है । अर्थात् रूप से वर्ण को गुणने से अथवा, वर्ण से रूप को गुणने से गुणनफल अङ्कात्मक और रूप के स्थान में वर्ण हो जाता है अर्थात् 'रू' इस अक्षर के आगे लिखे हुए जो अङ्क हों, उन का और यावत्तावत् आदि वर्ण के आगे लिखे हुए अङ्कों का, आपस में व्यक्तगणित में कही रीति से गुणन होगा और 'रू' अक्षर के स्थान में, यावत्तावत्, कालक, नीलक आदि संज्ञाओं के पहले के वर्ण या, का, नी आदि अक्षर लिखे जाते हैं । सजातीय वर्णों से, सजातीय दो, तीन आदि वर्णों को गुणने से, उनके वर्ग, घन, चतुर्घात आदि होते हैं । आशय यह है कि, यावत्तावत् को यावत्तावत् से गुणने में, उन दो सजातीयों के समद्विघात होने से, यावत्तावद्वर्ग होता है । जो यही फिर यावत्तावत् से गुणा दिया जाय तो, समान तीन घात होने से यावत्तावद्घन होगा, वह फिर यावत्तावत् से गुणा जाय तो समान चार घात होने से यावत्तावद्वर्गवर्ग होगा, वह भी जो यावत्तावत् से

गुण दिया जाय तो समान पांचघात होने के कारण, यावत्तावद्वर्ग और उसके घन का घात होगा । इसी भाँति षड्घात करने में यावत्तावत् के वर्ग का घन या यावत्तावत् के घन का वर्ग होगा । इसी प्रकार, कालक आदि वर्णों के समान दो, तीन आदि घात करने से, उन के वर्ग, घन आदि होंगे । विजातीय वर्णों के घात में, उन का भावित होता है अर्थात् यावत्तावत् से कालक को गुणने से यावत्तावत्कालकभावित होगा, कालक से नीलक को गुणने से कालकनीलकभावित होगा, जो यावत्तावत्कालकभावित कालक से गुण दिया जाय तो यावत्तावत्कालकवर्गभावित होगा, यह जो यावत्तावत् से गुण दिया जाय तो यावत्तावत्वर्ग-कालकवर्गभावित होगा, यहाँ पर लाघव के लिये यावत्तावत्कालकभावित के स्थान पर केवल 'याकाभा' उन के आद्याक्षर लिखते हैं । इस प्रकार, गुणन की रीति कहकर, अब भागहार आदि कहते हैं—भागहार, वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल ये जिस प्रकार व्यक्तगणित (लीलावती) में कहे हैं वैसा ही यहाँ पर भी जानना अर्थात् 'भाज्याद्धरः शुध्यति—' सूत्र के अनुसार भागहार और 'समद्विघातः कृतिः—' सूत्र के अनुसार वर्ग और '—वर्गघनप्रसिद्धावाद्याङ्कतोवाविधिरेष कार्यः' सूत्र के अनुसार जैसे व्यक्तगणित में आदि-अङ्क से वर्ग और घन सिद्ध किये जाते हैं, वैसे ही यहाँ पर भी सिद्ध करना ।

उपपत्ति—

'रूप' से १, २, ३, आदि ज्ञात संख्या जाननी चाहिए । उन को रूप से गुण देने से गुणनफल रूपात्मक ही होता है । रूप से वर्ण को गुणने में गुणनफल रूप होगा अथवा वर्ण, इस संदेह की निवृत्ति के लिये अज्ञातराशि को रूपसमूह मानकर, युक्ति दिखलाते हैं—कोई अन्न सात आढक के मान पात्र से मापने में एक मान होता है । यदि उसको सात से गुण देवें तो गुणनफल रूपात्मक होगा या समूहात्मक ? जो रूपात्मक मानें, तो सात आढक अन्न होगा, पर ऐसा मानना उचित नहीं है । क्योंकि गुणन करने के प्रथम ही सात-आढक अन्न विद्यमान था, अब गुणन के बाद उनचास आढक अन्न

होंगे, इस कारण समूहात्मक कहना उचित है। सात-आढक अन्न का समूह सात है, इससे 'स्याद्रूपवर्णाभिहतौ वर्णः' यह सूत्रखण्ड उपपन्न हुआ। 'रूप' यह एक व्यक्त संख्या का बोधक है, इससे गुणन करने में अङ्कों से गुणन होता है किंतु अक्षरों से नहीं; यदि ऐसा संदेह हो कि रूप और अव्यक्त संख्या के भेद के लिये संख्या के बोधक अङ्क ही लिखे जायँ। रूप के प्रथम अक्षर लिखने का क्या प्रयोजन है? पर यहाँ अङ्क में ऐसा कोई चिह्न भेद दिखलानेवाला नहीं है कि जिससे रूप और वर्णाङ्क के संनिधि में, उन का भेद स्पष्ट प्रतीत हो। इस कारण, रूप का आदि अक्षर लिखते हैं। अब सजातीय वर्णों के गुणन में वर्ण को रूप समूह मान कर, युक्ति दिखलाते हैं—जैसा सात आढक धान्य का १ एक समूह वर्तमान है, इस को इसी से गुण देने से १ हुआ, अब इस सात आढक के समूहात्मक होने से, एक से गुणित समूह अथवा, समूह से गुणित समूह, इस का भेद दुर्ज्ञेय होता है। पर, एक गुण्य में, गुणक के भेद होने से गुणनफल में अवश्य भेद होता है। इसलिये गुणनफल को, समूह-वर्गरूपी कहना उचित है, तो यहाँ उनचास आढक हुए। इस कारण सजातीय दो वर्णों का घात वर्ग होता है, यह बात सिद्ध हुई। इसी प्रकार दो, तीन, चार आदि सजातीय वर्णों के घात करने से उन के घन, और वर्गवर्ग आदि होते हैं। इससे 'द्वित्र्यादिकानां समजातिकानां वधे तु तद्वर्गघनादयः स्युः' सूत्रखण्ड उपपन्न हुआ।

अब विजातीय वर्णों के घात करने में उनका भावित होता है इसकी युक्ति दिखलाते हैं—सात आढक धान्यवाला १ एक समूह है और पाँच आढक धान्यवाला दूसरा १ एक समूह है, इन दोनों समूहों का घात १ हुआ। अब इसको सात आढक धान्यवाला समूह नहीं कह सकते हैं; क्योंकि, एक गुणित और समूहगुणित का अभेद होगा। एवं समूहवर्ग भी नहीं कह सकते, क्योंकि, समूह को अपने से गुणने से और दूसरे समूह के गुणने से, जो गुणनफल उत्पन्न होंगे, उन का भेद होना उचित है। इस कारण, उन दोनों समूहों का घात एक विलक्षण ही है, ऐसा मानने से ३५ आढक

होते हैं । इसलिये विजातीय वर्णों का घात अन्तर से होना युक्त है। यहाँ आचार्यों ने घात की 'भावित' यह संज्ञा रक्खी है। यदि 'वध' यह संज्ञा की जाती तो कदाचित् यावत्तावत्वर्ग के साथ संकर (मेल) होता, 'घात' संज्ञा करने से कभी यावत्तावत् घन के साथ भी संकर होना संभव था । इस से 'तद्भावितं चासमजातिघाते' यह सूत्र-खण्ड उपपन्न हुआ ॥ ८ । ६ ॥

गुण्यः पृथग्गुणकखण्डसमो निवेश्य-
स्तैः खण्डकैः क्रमहतः सहितो यथोक्त्या ।
अव्यक्तवर्गकरणीगुणनासु चिन्त्यो
व्यक्तोक्तखण्डगुणनाविधिरेवमत्र ॥ १० ॥

अथ शिष्यजनसौकर्यार्थं 'गुण्यस्त्वधोधो गुणखण्डतुल्यः—' इत्यादिव्यक्तोक्तखण्डगुणनं वसन्ततिलकया विशदयति—गुण्य इति । गुणकस्य यावन्ति खण्डानि तावत्सु स्थानेषु पृथग्गुण्यो निवेश्यः। अत्र खण्डानि संज्ञाभेदेन अवगन्तव्यानि । अथ पृथङ्-निवेशितो गुण्यस्तैर्गुणकखण्डैः प्रथमस्थाने प्रथमखण्डेन, द्वितीय-स्थाने द्वितीयखण्डेन, तृतीयस्थाने तृतीयखण्डेन, एवं क्रमेण 'स्याद्रूपवर्णाभिहतौ तु वर्णः—' इत्यादिना गुणितः सन् यथो-क्त्या पूर्वोक्तप्रकारेण 'योगोऽन्तरं तेषु समानजात्योः—' इत्यादिना 'योगे युतिः स्यात् क्षययोः स्वयोर्वा—' इत्यादिना च सहितः। अत्र अव्यक्तगणिते अव्यक्तवर्गकरणीगुणनासु तथा अव्यक्तगुण-नासु वर्गार्थं वर्गगुणनासु करणीगुणनासु च व्यक्तोक्तखण्डगुणना-विधिरेवं चिन्त्यः। एवमन्येऽपि गुणनप्रकारा द्रष्टव्याः॥ १० ॥

अब 'गुण्यस्त्वधोधो गुणखण्डतुल्यः—' इस खण्ड गुणन की रीति को विशद करते हैं—

गुणक के जितने खण्ड किये जायँ उतने स्थानों में अलग-

अलग गुण्य को स्थापन करके प्रथम स्थान में प्रथम खण्ड से, दूसरे में दूसरे खण्ड से, तीसरे में तीसरे खण्ड से गुणा करना। 'स्याद्रूपवर्णाभिहतौ तु वर्णः—' के अनुसार गुणन फल को उक्त 'योगोऽन्तरं तेषु समानजात्योः—' और 'योगे युतिः स्यात् क्षययोः स्वयोर्वा—' इस सूत्र की रीति से जोड़ने से वह गुणनफल होगा। यहां भी अव्यक्त के गुणन में वर्ग के गुणन और करणी के गुणन में, खण्डगुणन का प्रकार जानना चाहिए।

उपपत्ति—

इस की उपपत्ति लीलावती की टीका में देखनी चाहिए॥

उदाहरणम्—

यावत्तावत्पञ्चकं व्येकरूपं
यावत्तावद्भिस्त्रिभिः सद्विरूपैः।
संगुण्य द्राग् ब्रूहि गुण्यं गुणं वा
व्यस्तं स्वर्णं कल्पयित्वा च विद्वन्॥ ६॥

न्यासः। गुण्यः या ५ रू १̇। गुणकः या ३ रू २।
गुणनाज्जातं फलम् याव १५ या ७ रू २̇।

गुण्यस्य धनर्णत्वव्यत्यासे

न्यासः। गुण्यः या ५̇ रू १ गुणकः या ३ रू २
गुणनाज्जातम् याव १५̇ या ७̇ रू २।

गुणकस्य धनर्णत्वव्यत्यासे

न्यासः। गुण्यः या ५ रू १̇ गुणकः या ३̇ रू २̇
गुणनाज्जातम् याव १५̇ या ७̇ रू २।

द्वयोर्धनर्णत्वव्यत्यासे

न्यासः । गुण्यः या ५̇ रू १ गुणकः या ३̇ रू २̇
गुणनाज्जातम् याव १५ या ७ रू २̇

उदाहरण—

रूप १ से हीन यावत्तावत् ५ को रूप २ से युक्त यावत्तावत् ३ से गुण कर और गुण्य-गुणक को धन-ऋण अथवा, व्यस्त अर्थात ऋण-धन मान कर, गुणन करने से जो अलग अलग गुणनफल हों उन्हें कहो ।

(१) न्यास । गुण्य=या ५ रू १̇ । गुणक=या ३ रू २ ।
अब स्थान गुणन की रीति से—

या ५ रू १̇
या ३ रू २
―――――――
याव १५ या ३̇
　　　या १० रू २̇
―――――――――――
गुणनफल=याव १५ या ७ रू २̇ हुआ ।

(२) गुण्य या. ५ रू १̇ में यावत्तावत् पांच को ऋण और ऋण रूप एक को धन मानकर स्थान गुणन की रीति से—

या ५̇ रू १
या ३ रू २
―――――――
याव १५̇ या ३
　　　या १̇० रू २
―――――――――――
गुणनफल=याव १५̇ या ७̇ रू २ हुआ ।

(३) गुणक या ३ रू २ में यावत्तावत् तीन और रूप दो को ऋण मान कर स्थान. गुणन की रीति से—

या ५ रू १̇
या ३̇ रू २̇

याव १५̇ या ३
या १०̇ रू २

गुणनफल=याव १५̇ या ७̇ रू २ हुआ।

(४) गुण्य या ५ रू १̇ और गुणक या ३ रू २ में धन ऋण का व्यत्यास करके स्थान गुणन की रीति से—

या ५̇ रू १
या ३̇ रू २̇

याव १५ या ३̇
या १० रू २̇

गुणनफल=याव १५ या ७ रू २̇ हुआ।

भागहारे करणसूत्रं वृत्तम्—

भाज्याच्छेदः शुध्यति प्रच्युतः सन्
स्वेषु स्वेषु स्थानकेषु क्रमेण।
यैर्यैर्वर्णैः संगुणो यैश्च रूपै-
र्भागाहारे लब्धयस्ताः स्युरत्र॥ ११॥

पूर्वगुणनफलस्य स्वगुणच्छेदस्य प्रथमपक्षस्य भागहारार्थं न्यासः।

भाज्यः। याव १५ या ७ रू २̇।
भाजकः। या ३ रू २।
भजनादाप्तो गुण्यः या ५ रू १̇

द्वितीयस्य न्यासः ।

भाज्यः । याव १५̇ या ७̇ रू २ ।
भाजकः । या ३ रू २ ।
भजनेन लब्धो गुणः या ५̇ रू १ ।

तृतीयस्य न्यासः ।

भाज्यः । याव १५̇ या ७̇ रू २ ।
भाजकः । या ३̇ रू २̇ ।
हरणादाप्तो गुणः या ५ रू १̇ ।

चतुर्थस्य न्यासः ।

भाज्यः । याव १५ या ७ रू २̇
भाजकः । या ३̇ रू २̇
हृते लब्धो गुणः या ५ रू १ ।

इत्यव्यक्तगुणनभजने

अथ 'भाज्याद्धरः शुध्यति–' इत्यादिना भजनफलसिद्धावपि वर्णसंज्ञावधानार्थं मन्दावबोधनार्थं च पुनः शालिन्या विशदयति–भाज्यादिति । छेदो हरः । स यैर्यैर्वर्णैर्यै रूपैश्च गुणितः सन् भाज्यात् स्वेषु स्वेषु स्थानेषु यथास्वं समानजातिषु प्रच्युतः सन् शुध्यति नावशिष्यते ता अत्र लब्धयः स्युः । ते वर्णाः तानि च रूपाणि लब्धयः स्युरित्यर्थः ॥ ११ ॥

अव्यक्त-राशि के भागहार का प्रकार—

अब 'भाज्याद्धरः शुध्यति—' इस सूत्र के अनुसार भजनफल के सिद्ध होने पर भी, वर्णसंज्ञा का परिचय स्पष्ट करते हैं—जिन-जिन वर्ण और रूपों से गुणित भाजक, भाज्य से अपने अपने स्थानों में घटाने से शुद्ध हो अर्थात् शेष न रहे, वे वर्ण और रूप यहां लब्धि अर्थात् भजनफल होते हैं।

उपपत्ति—

इसकी उपपत्ति मेरी लीलावती की टीका में स्पष्ट लिखी है।

(१) भाज्य=याव १५ या ७ रू २। भाजक=या ३ रू २ यहां भाज्य में पहले यावत्तावत् वर्ग १५ हैं, इस कारण उनमें यावत्तावत् वर्ग को ही घटाना युक्त है। भाजक में पहले यावत्तावत् ३ हैं, उनको रूप से गुणाने से 'स्याद्रूपवर्णाभिहतौ तु वर्णः' सूत्र के अनुसार वर्ण ही होता है, किंतु उन का वर्ग नहीं होता। यावत्तावत् से गुण देने में समान जातियों के घात होने से यद्यपि यावत्तावत् वर्ग होगा, तो भी अङ्कों में तीन होंगे। इसलिये शोधन करने पर भी, भाज्य में यावत्तावत् वर्ग न घट सकेगा। इस कारण, यावत्तावत् पांच से भाजक को गुणाने से, यावत्तावत्वर्ग पंद्रह होगा तो घट जायगा। अब या ५ से भाजक 'या ३ रू २̇' को गुणाने से 'याव १५ या १०' को भाज्य 'याव १५ या ७ रू २̇' में यथास्थान घटाने से शेष 'या ३̇ रू २̇' बचा। यावत्तावत् पांच से गुणित भाजक शुद्ध हुआ है, इसलिये यावत्तावत् ५ लब्धि आई। अब भाज्य शेष में यावत्तावत् तीन हैं, इस कारण भाजक को रूप से गुण देने से जो गुणनफल होगा, वह भाज्यशेष में घट सकेगा। परंतु धन रूप से गुणन करने में 'संशोध्यमानं स्वमृणत्वमेति' सूत्र के अनुसार दोनों के ऋण होने से योग होगा तो शुद्धि न होगी। इस कारण ऋणरूप के गुणाने से शुद्धि होगी। अब 'रू १̇' से भाजक 'या ३ रू २' को गुणाने से 'या ३̇ रू २̇' हुआ इस को 'या ३̇ रू २̇' इस भाज्य शेष में घटाने से

ऋणरूप १̇ लब्धि मिली, इस प्रकार 'या ५ रू १̇' यह संपूर्ण लब्धि हुई यही पहला गुणय था।

(२) भाज्य=याव १५̇ या ७̇ रू २। भाजक=या ३ रू २। यहां पर भी उक्त रीति के अनुसार 'या ५̇ रू १' यह लब्धि मिली।

(३) भाज्य=याव १५̇ या ७ रू २। भाजक=या ३̇ रू २। यहां पर भी उक्त प्रकार के अनुसार लब्धि 'या ५ रू १̇' आई।

(४) भाज्य=याव १५ या ७ रू २̇ भाजक=या ३̇ रू २̇। उक्त प्रकार से लब्धि मिली या ५̇ रू १।

अव्यक्त-राशि का गुणन भागहार समाप्त।

वर्गोदाहरणम्—

रूपैः षड्भिर्वर्जितानां चतुर्णा-
मव्यक्तानां ब्रूहि वर्गं सखे मे ॥ ९ ॥

न्यासः या ४ रू ६̇ । जातो वर्गः याव १६ या ४८̇ रू ३६ ।

अथ यद्यपि वर्गसूत्रमन्तरा तदुदाहरणं वक्तुमनुचितं तथापि वर्गस्य समद्विघातरूपत्वाद् गुणनसूत्रेणैव तत्सिद्धेः 'अव्यक्तवर्ग-करणीगुणनासु चिन्त्यः' इति विशेषोक्तेश्च तदुचितमेवेति शालिन्युत्तरार्धेन तदाह—रूपैरिति। स्पष्टोऽर्थः।

अब वर्ग के समद्विघातरूप होने से गुणनसूत्र ही से उसका साधन कहते हैं—ऋणरूप छह (६) से घटा हुआ यावत्तावत् चार (४) का वर्ग क्या है?

न्यास। या ४ रू ६̇ इनके वर्ग के लिये स्थान-गुणन की रीति से—

या ४ रू ६̇
या ४ रू ६̇
———————
याव १६ या २४̇
या २४̇ रू ३६
———————

* गुणनफल=याव १६ या ४८̇ रू ३६ यही वर्ग हुआ ।

वर्गमूले करणसूत्रं वृत्तम्—

कृतिभ्य आदाय पदानि तेषां
द्वयोर्द्वयोश्चाभिहतिं द्विनिघ्नीम् ।
शेषात्त्यजेद्रूपपदं गृहीत्वा
चेत्सन्ति रूपाणि तथैव शेषम् ॥ १२ ॥

अथ वर्गे दृष्टे कस्यायं वर्ग इति मूलाङ्कज्ञानार्थमुपायमुपजातिकयाह-कृतिभ्य इति । तेषां वर्गराशिगताव्यक्तानां मध्ये कृतिभ्यो वर्गेभ्यः पदानि मूलान्यादाय तेषां पदानां परस्परं द्वयोर्द्वयोरभिहतिं द्विनिघ्नीं शेषाद्विशोधयेत्, यदि शुद्धिर्भवेत्तदा तानि तस्य वर्गस्य पदानि भवेयुरित्यर्थादुक्तं भवति । कृत्योरित्यपि द्रष्टव्यम् । अथ यदि वर्गराशौ रूपाणि सन्ति तर्हि रूपपदं गृहीत्वा शेषं तथैव द्वयोर्द्वयोश्चाभिहतिं द्विनिघ्नीं शेषात्त्यजेदिति । रूपेषु सत्सु यदि रूपपदं न लभ्यते तदा स वर्गराशिर्नेत्यर्थादुक्तं भवति ॥ १२ ॥

---

* यहां पर 'गुण्यस्त्वधोधो गुणखण्डतुल्यः—' इस खण्डगुणन से भी 'स्थानैः पृथग्वा गुणितः समेतः' इस स्थानगुणन में अधिक सौकर्य होता है । इस कारण प्रायः सर्वत्र स्थानगुणन की ही रीति पर गणित दिखलाया है । वर्ग भी इस रीति से तुरंत सिद्ध होता है । इस कारण—'वर्गघनप्रसिद्धावाद्याङ्कतो वा विधिरेष कार्यः' इस सूत्र के अनुसार, जो आद्याङ्कविधि से लाघव से वर्ग आदि सिद्ध किये जाते हैं, उसकी भी कुछ विशेष आवश्यकता नहीं है ।

अव्यक्तराशि के वर्गमूल का प्रकार—

वर्गराशि में जितने अव्यक्त अर्थात् वर्ण हों उनका मूल लेकर उन मूलों में से, दो-दो मूलों के दूने घात को, शेष में (जिस वर्गात्मक राशि से मूल लिया गया था, उसमें) घटा दें तो वे मूल होते हैं। इसी प्रकार, यदि वर्गराशि में रूप हों तो उनका मूल ले कर उक्त क्रिया करनी, जो रूपों के होने पर उनका मूल न मिले, तो वह वर्गराशि ही नहीं है।

उपपत्ति—

राशि का समान दो घात वर्ग होता है, यह पारिभाषिक संज्ञा है। जिसका वर्ग किया जाता है, वह राशि गुण्य और गुणक दोनों होती है। वहां एक खण्डात्मक वर्ग में, किसका यह समद्विघात है, उस समद्विघात के खोज करने से, मूल का जानना सुगम है। अब दो खण्डवाली राशि के वर्ग के लिये न्यास।

गुण्य=या ४ रू ६̇

गुणक=या ४ रू ६̇

पहली पङ्क्ति=याव १६ या २४̇

दूसरी पङ्क्ति= या २४̇ रू ३६

गुणनफल=याव १६ या ४८̇ रू ३६

यहां पहली पङ्क्ति में पहले खण्ड का (या ४ का वर्ग १६) वर्ग और दोनों खण्डों का घात (या ४ रू ६̇ का घात या २४̇) है इसी प्रकार, दूसरी पङ्क्ति में, दोनों खण्डों का घात (या ४ रू ६̇ का घात या २४̇) और दूसरे खण्ड का वर्ग (रू ६̇ का वर्ग रू ३६) है। अर्थात् दोनों पङ्क्ति में दोनों खण्डों का घात है। अब उन दोनों खण्डों का योग करने से दूना दोनों खण्डों का घात होता है। वही द्विगुण दोनों खण्डों का घात या ४८̇ गुणनफल की पङ्क्ति में लिखा है। इस से स्पष्ट मालूम होता है कि, दो खण्डवाली राशि के वर्ग करने में, तीन खण्ड होते हैं। खण्डों के वर्ग और दूना खण्डों का घात=याव १६ या ४८̇ रू ३६।

तीन खण्डवाली राशि के वर्ग के लिये न्यास—

गुण्य = या ३ का ४ नी ५
गुणक = या ३ का ४ नी ५

पहली पङ्क्ति = याव ९ या·का १२ या·नी १५
दूसरी पङ्क्ति = का·या १२ काव १६ का·नी २०
तीसरी पङ्क्ति = नी·या १५ नी·का २० नीव २५

गुणनफल=याव ९ या·का २४ या·नी ३० काव १६ कानी ४० नीव २५

यहां पहली पङ्क्ति में, पहले खण्ड का वर्ग, पहले खण्ड का दूसरे का घात और पहले खण्ड का तीसरे का घात है। दूसरी पङ्क्ति में, दूसरे खण्ड का वर्ग, पहले खण्ड का दूसरे का घात और दूसरे खण्ड का तीसरे का घात है। तीसरी पङ्क्ति में, तीसरे खण्ड का वर्ग, पहले खण्ड का तीसरे का घात और दूसरे खण्ड का तीसरे का घात है। अर्थात् वर्ग करने में, हर एक खण्डों का वर्ग और दूना दोनों खण्डों का घात होता है। इसको देखने से 'कृतिभ्य आदाय—' इस सूत्र की उपपत्ति स्पष्ट ज्ञात होती है ॥ १२ ॥

पूर्वसिद्धस्य वर्गस्य मूलार्थं न्यासः। याव १६ या ४८ं रू ३६। लब्धं मूलम् या ४ रू ६ं

इत्यव्यक्तवर्गवर्गमूले।

इत्यव्यक्तषड्विधम्।

'रूपैः षड्भिः—' इस प्रश्न के अनुसार साधित वर्ग का वर्गमूल दिखलाते हैं—

न्यास। याव १६ या ४८ं रू ३६। इस वर्गराशि में यावत्तावत वर्ग सोलह और रूप छत्तीस दो वर्ग हैं, इनका मूल या ४ रू ६ मिला, इन दोनों के द्विगुण घात या ४८ को 'संशोध्यमानं स्वमृणत्वमेति'— के अनुसार, शेष या ४८ं में घटाने पर ऋणों का योग हो जाने से न घट सका, इसलिये उन दोनों में से, एक को ऋण

कल्पना किया तो द्विगुण दोनों का घात या ४८̇ 'संशोध्यमानमृणं धनं भवति' इस रीति से धन होने पर 'धनर्णयोरन्तरमेव योगः।' के अनुसार घट गया तो या ४ रू ६̇ अथवा या ४̇ रू ६ मूल मिला परंतु यहां पर पूर्व मूल ही अपेक्षित है, क्योंकि इसी मूल का वर्ग किया गया था ॥

अव्यक्त राशि का वर्ग-वर्गमूल समाप्त ।

अथानेकवर्णषड्विधम् ।

तत्र संकलनव्यवकलनयोरुदाहरणम्—

यावत्तावत्कालक—
नीलकवर्णास्त्रिपञ्चसप्तधनम् ।
द्वित्र्येकमितैः क्षयगैः
सहिता रहिताः कति स्युस्तैः ॥ १० ॥

न्यासः । या ३ का ५ नी ७ । या २̇ का ३̇ नी १̇ । योगे जातम् या १ का २ नी ६ । वियोगे जातम् या ५ का ८ नी ८ ।

इत्यनेकवर्णसंकलनव्यवकलने

अब अनेकवर्णषड्विध के उदाहरण कहते हैं—अनेकवर्ण के संकलन और व्यवकलन का उदाहरण—

धन यावत्तावत् तीन, कालक पांच और नीलक सात ये ऋण यावत्तावत् दो, कालक तीन और नीलक एक से सहित और रहित क्या होंगे ।

(१) न्यास ।

योज्य =या ३ का ५ नी ७ } इनका योग या १ का २ नी ६
योजक=या २̇ का ३̇ नी १̇ } हुआ ।

(२) न्यास ।

वियोज्य =या ३ का ५ नी ७ } इनका अन्तर उक्त प्रकार से
वियोजक=या २̇ का ३̇ नी १̇ } या ५ का ८ नी ८ हुआ ।

अनेकवर्णों का संकलन व्यवकलन समाप्त ।

गुणनादेरुदाहरणम्—

यावत्तावत्त्रयमृणमृणं कालकौ नीलकः स्वं
रूपेणाढ्या द्विगुणितमितैस्ते तु तैरेव निघ्नाः ।
किंस्यात्तेषां गुणनजफलं गुण्यभक्तं चाकिंस्याद्
गुण्यस्याथप्रकथयकृतिंमूलमस्याःकृतेश्च ११॥

न्यासः ।

गुण्यः या ३̇ का २̇ नी १ रू १
गुणकः या ६̇ का ४̇ नी २ रू २

गुणिते जातम् याव १८ काव ८ नीव २
या का भा २४ । या नी भा १२̇ का नी भा ८̇
या १२̇ का ८̇ नी ४ रू २ ।

अस्मादेव गुणनफलाद् गुण्येनानेन या ३̇ का २̇
नी १ रू १ भक्तादाप्तो गुणकः या ६̇ का ४̇
नी २ रू २ ।

इत्यनेकवर्णगुणनभजने ।

पूर्वगुण्यस्य वर्गार्थं न्यासः ।

या ३̇ का २̇ नी १ रू १

जातो वर्गः याव ९ काव ४ नीव १ याकाभा १२
यानीभा ६̇
कानीभा ४̇ या ६̇ का ४̇ नी २ रू १ ।
वर्गादस्मान्मूलम् या ३̇ का २̇ नी १ रू १

इत्यनेकवर्णवर्गवर्गमूले ।

इत्यनेकवर्णषड्विधम् ॥

इति द्विवेदोपाख्याचार्यश्रीसरयूप्रसाद-सुतदुर्गाप्रसादोन्नीते लीलावतीहृदयग्राहिणि बीजविलासिन्यनेकवर्णषड्विधं समाप्तम् ।

अनेक-वर्ण के गुणन का उदाहरण--

धनरूप एक से जुड़ा हुआ ऋण यावत्तावत् तीन, ऋण कालक दो और धन नीलक एक, इनको धनरूप दो से युक्त ऋण यावत्तावत् छ, ऋण कालक चार और धन नीलक दो से गुण कर, गुणन-फल कहो ।

(१) न्यास ।

गुण्य=या ३̇ का २̇ नी १ रू १
गुणक=या ६̇ का ४̇ नी २ रू २

याव १८ या. का १२ या. नी ६̇ या ६̇
का. या १२ काव ८ का. नी ४̇ का ४̇
नी. या ६̇ नी. का ४̇ नीव २ नी २
या ६̇ का ४̇ नी २ रू २

गुणनफल=याव १८ या·का २४ या·नी १२ं या १२ं काव ८का·
नी ८ं का ८ं नीव २ नी ४ रू २।

अनेकवर्ण के भजन का उदाहरण—

याव १८ या·का २४ या· नी १२ं या १२ं काव ८ का· नी ८ंका ८ं नीव २ नी ४ रू २ इस में या ३ं का २ं नी १ रू १ इस का भाग देने से क्या लब्धि मिलेगी ?

(१) यहाँ पर 'भाज्याच्छेदः शुध्यति'—इस रीति के अनुसार लब्धि लेनी चाहिये। भाज्य में प्रथम यावत्तावद्वर्ग अठारह हैं और भाजक में यावत्तावत् तीन हैं। भाजक को यावत्तावत् तीन से गुण देने से ऋण यावत्तावद्वर्ग अठारह होते हैं। इन को यदि घटा देवें तो धन हो जाने के कारण, योग होगा, अन्तर न होगा। किंतु ऋण यावत्तावत् छः से भाजक को गुण देने से शोधन होगा। इस कारण या ६ं से भाजक को गुणने से 'याव १८ या· का १२ या· नी ६ं या ६ं' इस को भाज्य में यथास्थान घटाने से 'या. का १२ या· नी ६ं या ६ं काव ८ का·नी ८ं का ८ं नीव २ नी ४ रू २' शेष रहा। लब्धि या ६ं मिली। अब भाज्य में यावत्तावत्कालक भावित है, तो ऋण कालक चार से भाजक को गुणने से 'या· का १२ काव ८ का· नी ४ं का ४ं'। इस को भाज्य में यथास्थान घटा देने से 'या. नी ६ं या ६ं का· नी ४ं का ४ं नीव २ नी ४ रू २' शेष बचा और लब्धि का ४ं मिली। फिर भाज्य में यावत्तावन्नीलक भावित है, तो नीलक २ से भाजक को गुण देने से 'या· नी ६ं का· नी ४ं नीव २ नी २' इसको भाज्य में यथास्थान घटाने से 'या ६ं का ४ं नी २ रू २' शेष रहा। लब्धि नी २ मिली। फिर भाज्य में यावत्तावत् ६ं हैं, भाजक को रूप दो से गुणने से जो गुणनफल होगा वह भाज्य से शुद्ध होगा। इस कारण रूप २ से भाजक 'या ३ं का २ं नी १ रू १' को गुणने से या ६ंका ४ं नी २ रू २' इसको भाज्य शेष 'या ६ं का ४ं नी २ रू २' में घटाने से शेष कुछ नहीं बचा और सब लब्धि या ६ं का ४ं नी २ रू २ मिली।

अनेकवर्ण का गुणन-भजन समाप्त।

अनेकवर्ण के वर्ग का उदाहरण—

रूप एक से सहित ऋण यावत्तावत् तीन, ऋण कालक दो और धन नीलक एक, इन का वर्ग क्या होगा ?

(१) वर्ग के लिये न्यास—

या ३̇ का २̇ नी १ रू १
या ३̇ का २̇ नी १ रू १

याव ९ या· का ६ या· नी ३̇ या ३̇
का· या ६ काव ४ का· नी २̇ का २̇
नी· या ३̇ नी. का २̇ नीव १ नी १
या ३̇ का २̇ नी १ रू १

वर्ग=याव ९ या· का १२ या. नी ६̇ या ६̇ काव ४ का· नी ४̇ का ४̇ नीव १ नी २ रू १ ।

अनेकवर्ण के मूल का उदाहरण—

'याव ९ या· का १२ या. नी ६̇ या ६̇ काव ४ का· नी ४̇ का ४̇ नीव १ नी २ रू १' इस वर्गात्मक संख्या का मूल क्या होगा?

(१) यहां 'कृतिभ्य आदाय पदानि' सूत्र के अनुसार याव ९ काव ८ नीव १ और रू १ इन के मूल 'या ३ का २ नी १ रू १' मिले। इन में दो, दो का दूना घात करने से 'या. का १२ या.नी ६ या ६' हुआ, इस को वर्ग शेष में घटाना है तो 'संशोध्यमानं स्वमृणत्वमेति—' इस रीति के अनुसार यद्यपि यावत्तावत्कालकभावित के ऋण होने के कारण 'धनर्णयोरन्तरमेव योग:' इस से शुद्धि होगी, तो भी यावत्तावन्नीलकभावित और यावत्तावद् वर्ण साजात्य के कारण दूने हो जायँगे तो शुद्धि न होगी। इसलिये ऋण यावत्तावत् तीन मूल कल्पना किया क्योंकि 'स्वमूले धनर्णे' कहा है। अब दो, दो राशि के दूना घात करने से 'या. का १२̇ या· नी ६̇ या ६̇' हुआ यहां पर यद्यपि 'संशोध्यमानं स्वमृणत्वमेति—' के अनुसार यावत्तावन्नीलकभावित और यावत्तावत् की शुद्धि होगी। तो भी यावत्तावत्कालकभावित के दूना हो जाने से शुद्धि न होगी। इसलिये यावत्तावन्नीलकभावित और यावत्तावत् के व्यत्यास के लिये

नीलक और रूप को ऋण कल्पना करना चाहिये अथवा यावत्तावत्कालकभावित के लिये कालक को ऋण मानना चाहिये। इस प्रकार दो पक्ष हैं, तो मूल 'या ३̇ का २̇ नी १ रू १' अथवा 'या ३ का २ नी १̇ रू १̇' यह हुआ। इन दोनों मूलों का आपस में दो, दो का दूना घात तुल्य ही होता है या० का १२ या० नी ६̇ या ६̇ का० नी ४̇ का ४̇ नी २' इसके घटाने से सर्वशुद्धि होती है। इस कारण उन दोनों का मूलत्व सिद्ध हुआ। अनेकवर्णषड्विध समाप्त।

दुर्गाप्रसादरचिते भाषाभाष्ये मिताक्षरे।
वासनाभङ्गिसुभगं संपूर्णं वर्णषड्विधम्॥

अथ करणीषड्विधम्।

तत्र संकलनव्यवकलनयोः करणसूत्रं वृत्तद्वयम्—

योगं करण्योर्महतीं प्रकल्प्य
घातस्य मूलं द्विगुणं लघुं च।
योगान्तरे रूपवदेतयोः स्तो
वर्गेण वर्गं गुणयेद्भजेच्च॥ १३॥
लघ्व्या हतायास्तु पदं महत्याः
सैकं निरेकं स्वहतं लघुघ्नम्।
योगान्तरे स्तः क्रमशस्तयोर्वा
पृथक्स्थितिः स्याद्यदि नास्ति मूलम्॥ १४

अथ करणीषड्विधं व्याख्यायते—तत्र तावदिन्द्रवज्रोपजातिकाभ्यां करणीसंकलनव्यवकलने गुणनभजनयोश्च विशेषं प्रतिपादयति—यस्य राशेर्मूलेऽपेक्षिते निरग्रं मूलं न संभवति स 'करणी'

इत्युच्यते । करण्योर्योगेऽन्तरे वा कर्तव्ये रूपवत् कृतो यः करणी-योगः सा 'महती करणी' इति कल्पयेत् । करण्योर्घातस्य मूलं द्विगुणं सा 'लघुः करणी' इति कल्पयेत् । तयोर्लघुमहत्योः कल्पितकरण्यो रूपवत्कृते ये योगान्तरे ते प्रथमकरण्योर्योगान्तरे स्तः । अथ 'अव्यक्तवर्गकरणीगुणनासु चिन्त्यः' इत्यादिना 'भाज्याद्धरः शुध्यति—' इत्यादिना च करणीगुणनभजनयोः सिद्धौ सत्यामपि तत्र विशेषमाह—'वर्गेण वर्गं गुणयेद्भजेच्च' इति । एतदुक्तं भवति—करणीगुणने कर्तव्ये यदि रूपाणां गुण्यत्वं गुण-कत्वं वा स्यात् करणीभजने कर्तव्ये यदि रूपाणां भाज्यत्वं भाजक-त्वं वा स्यात्तर्हि रूपाणां वर्गं कृत्वा गुणनभजने कार्ये । करण्या वर्गरूपत्वादिति । वर्गस्यापि समद्विघाततया गुणनविशेषत्वादुक्त-वत्सिद्धिः । 'स्थाप्योऽन्त्यवर्गो द्विगुणान्त्यनिघ्नाः—' इत्यादिना व्यक्तोक्तप्रकारेण वा करणीवर्गस्य सिद्धिः स्यात् । किंतु 'वर्गेण वर्गं गुणयेत्' इत्युक्त्वात् 'द्विगुणान्त्यनिघ्नाः' इत्यत्र चतुर्गुणान्त्य-निघ्ना इति द्रष्टव्यम् । मूलज्ञानार्थं तु सूत्रं वक्ष्यति ॥१३॥ अथ प्रकारान्तरेण योगान्तरे 'लघ्व्या हृतायाः—' इत्यादिना निरूप-यति—लघ्व्या करण्या हृतायाः महत्याः करण्या यत्पदं तदेकत्र सैकमपरत्र निरेकं कार्यम् । उभयमपि वर्गितं लघुकरणीगुणितं च क्रमेण करण्योर्योगान्तरे स्तः । अत्र लघ्व्या महत्या भागे यदि भिन्नता स्यात्तर्हि मूलाभावे मूलार्थं यथासंभवमपवर्तो द्रष्टव्यः । अत्र करण्योर्मध्ये याङ्कतो लघुः सा लघुः । याङ्कतो महती सा मह-तीति ज्ञेयम् । अत्र लघ्व्या हृताया महत्या यदि मूलं न लभ्यते तर्हि योगान्तरे कथं कर्तव्ये इत्यत आह—'पृथक्स्थितिः स्याद्यदि नास्ति मूलम्' इति ॥ १४ ॥

करणी के जोड़ने-घटाने का प्रकार—

जिस राशि का पूरा मूल न मिले उसको 'करणी' कहते हैं ।

योज्य-योजक अथवा वियोज्य-वियोजक रूप जो करणी हों उन का योग करके उस को महती संज्ञा रख लो। फिर उन्हीं करणियों के घात को दूना करके उसकी लघु संज्ञा रखनी। इस प्रकार महती और लघु संज्ञक करणियों का रूप के समान योग और अन्तर करना। करणी के गुणन में जो रूप गुण्य और गुणक हों, भजन में भाज्य और भाजक हों, तो रूपों का वर्ग करके फिर गुणन और भजन करना चाहिए।

दूसरा प्रकार—

योज्य-योजक और वियोज्य-वियोजक रूप दो करणियों में जो अङ्क से बड़ी हो उसको 'महती' और जो छोटी हो उसे 'लघु' कहते हैं। महती में लघु का भाग देकर, फल के मूल को दो स्थानों में रखना। प्रथम स्थान में १ जोड़ दूसरे स्थान में घटाकर उन के वर्ग को लघुकरणी से गुणा देना। फिर उनका योग और अन्तर रूपराशि के समान करना। यदि महती-करणी में लघुकरणी का भाग देने से मूल न मिले, तो उन को एक पङ्क्ति में अलग-अलग लिख देना।

पहले प्रकार की उपपत्ति—

(१) योज्य और योजकरूप करणियों के मूलों का योग, जिस का मूल होगा, वह करणियों का योग है और वही मूलों के योग का वर्ग है। अन्यथा उसका मूल मूलों का योग कैसे होगा ? इसी प्रकार वियोज्य-वियोजक रूप करणियों के मूलों का अन्तर जिस का मूल होगा, वह करणियों का अन्तर है और वही मूलों के अन्तर का वर्ग है। अन्यथा उस का मूल मूलों का अन्तर न होगा। यहां जो करणी हैं वे मूलवर्ग हैं, इस कारण, प्रथम करणियों का मूल लेकर, पीछे जो योग वर्ग किया जायगा वह उनका योग होगा। इसी प्रकार करणियों के मूलों के अन्तर का वर्ग उन का अन्तर होगा। परंतु करणी का मूल नहीं मिलता, इस कारण उपाय करते हैं—यहां पर योगवर्ग और अन्तरवर्ग साधना है, वे वर्गयोग के ज्ञान से जाने जाते हैं। वह इस स्थान में करणियों के वर्गरूप होने

के कारण इन का योग ही वर्गयोग है । वर्गयोग के ज्ञान से योगवर्ग और अन्तरवर्ग जाने जाते हैं—जैसा ३ और ५ राशि के वर्गयोग ३४ में, इन्हीं का दूना घात ३० जोड़ने से योगवर्ग ६४ सिद्ध हुआ। ऐसे ही ३ और ८ राशि को वर्गयोग ७३ में, इन्हीं का दूना घात ४८ घटा देने से, अन्तरवर्ग २५ सिद्ध हुआ। इस से स्पष्ट मालूम पड़ता है कि, उद्दिष्ट दो राशियों के वर्गयोग में, उन का द्विगुण घात जोड़ने से युतिवर्ग और घटाने से अन्तरवर्ग सिद्ध होता है। यह प्रकार और इसकी वासना एकवर्ण मध्यमाहरण में लिखी है। यहां मूलों का जो वर्गयोग है, वही करणियों का योग होता है। इस कारण इसमें दो करणियों का दूना मूलघात युतिवर्ग के लिये जोड़ते और अन्तरवर्ग के लिए घटाते हैं। करणियों के मूलों का घात और करणियों के घात का मूल एक ही होता है कारण कि जो वर्गों का मूलघात होता है, वही घातमूल भी होता है। वर्गक्रिया में उद्दिष्ट राशि का समान दो घात होने से वर्गघात चतुर्घात होता है, इसी प्रकार, उद्दिष्ट दो राशि को दो स्थानों में रखकर और उनका घात करने से वह चतुर्घात—वर्गघात होता है। जैसा—३ । ५ दो राशि हैं। इन के वर्गघात अथवा घातवर्ग के लिये चार राशि होंगी ३ । ३ । ५ । ५ इनका वर्ग ९ । २५ और घात १५ । १५ हुआ। अब उन वर्गों का घात २२५ और घातों का घात २२५ पहिले के चार राशियों का घात है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि वर्गघात और घातवर्ग का भेद न होने से, जो घातवर्ग का मूल होता है, वही वर्गघात का मूल है। और घातवर्ग वर्गघात इन का मूल घात ही होता है। इससे 'योगं करण्योर्महतीं प्रकल्प्य घातस्य मूलं द्विगुणं लघुं च। योगान्तरे रूपवदेतयोः स्तः—' इतना सूत्र उपपन्न हुआ।

(२) करणीषड्विध में करणियों के मूलों का षड्विध साधन करते हैं जैसा—क २ । क ८ का योग १० सिद्ध होने पर भी, मूलों के योग के लिये क १८ सिद्ध की है। वैसा ही करणियों का गुणन, ऐसा करना चाहिये जिस में उन के मूल गुणे जावें, केवल करणियों को दो आदि संख्याओं से गुण देने से, उन के मूल दो आदि

संख्याओं से नहीं गुणे जाते। इसलिये उन को दो आदि संख्याओं के वर्ग से गुणाना योग्य है। जैसा—४ राशि को दूना करना है, तो इसके वर्ग १६ को दूना किया ३२ हुआ, परंतु इस का मूल दूना नहीं हुआ। इस कारण राशि के वर्ग को दो के वर्ग से गुण देने से मूल दूना हो जायगा। इसी प्रकार, भजन में भी युक्ति जाननी चाहिए इस प्रकार 'वर्गेण वर्गं गुणयेद्भजेच्च' यह सूत्र शेष भी उपपन्न हुआ।

दूसरे प्रकार की उपपत्ति—

(२) यहाँ पर भी करणियों का मूलयोगवर्ग और मूलान्तरवर्ग साधना है। परंतु करणियों का मूल नहीं मिलता, इस कारण दोनों करणियों में ऐसा अपवर्तन देना चाहिये जिससे मूल मिले। परंतु वैसे मूल मिलने पर भी, उन के योगवर्ग और अन्तरवर्ग अपवर्तित आवेंगे। क्योंकि अपवर्तित करणी का मूल अपवर्तनाङ्क के मूल से अपवर्तित है। और उन के मूलों का योग भी अपवर्तनाङ्क के मूल से अपवर्तित आवेगा। योगवर्ग अपवर्तनाङ्क के मूलवर्ग से अपवर्तित है और अपवर्तनाङ्कमूलवर्ग अपवर्तन का अङ्क है। इससे यह सिद्ध होता है कि, योगवर्ग और अन्तरवर्ग को अपवर्तन के अङ्क से गुण देना चाहिये। अब जो महती करणी को अपवर्तनाङ्क कल्पना करें, तो उसका लघुकरणी में अपवर्तन न लगेगा। इस कारण लघुकरणी का अपवर्तन देने से, उसके स्थान में रूप होगा, उसका मूल रूप ही है। और महतीकरणी में अपवर्तन देने से, लब्धि का मूल लेना चाहिये, इसलिये 'लब्ध्या हृतायास्तु पदं महत्याः' यह कहा है। अपवर्तित महती-करणी का मूल रूप से भिन्न है और अपवर्तित लघु-करणी का मूल रूप अर्थात् १ है। इसलिये इनके योग और अन्तर करने में, महती करणी के मूल में एक जोड़ना और घटाना कहा है। इस कारण 'सैकं निरेकं' यह सूत्रखण्ड उपपन्न हुआ। इस प्रकार करणियों का मूलयोग और मूलान्तर सिद्ध हुआ। अब इन का वर्ग करने से योगवर्ग और अन्तरवर्ग होता है। परंतु यह अपवर्तित हैं, इस कारण, लघुकरणी रूप अपवर्तनाङ्क से इन को गुण दिया है। इससे 'स्वहतं लघुघ्नम्' यह उपपन्न हुआ।

यहाँ पर जो लघुकरणियों का अपवर्तन देना कहा है, वह उपलक्षण है । इस कारण जिस का अपवर्तन देने से, करणियों का मूल मिले, उसका अपवर्तन देकर, करणियों का मूल लेना और उनके युतिवर्ग, अन्तरवर्ग को अपवर्तन के अङ्क से गुण देना तब वह करणियों का योग और अन्तर होगा । इसी अभिप्राय से—

'आदौ करण्यावपवर्तनीये
तन्मूलयोरन्तरयोगवर्गौ ।
इष्टापवर्ताङ्कहतौ भवेतां
क्रमेण विश्लेषयुती करण्योः ॥'

इस श्लोक को किसी गणितज्ञ ने बनाया है ॥ १४ ॥

उदाहरणम्—

द्विकाष्टमित्योस्त्रिभसंख्ययोश्च
योगान्तरे ब्रूहि पृथक्करण्योः ।
त्रिसप्तमित्योश्च चिरं विचिन्त्य
चेत्षड्विधं वेत्सि सखे करण्याः ॥ १२ ॥

न्यासः । क २ क ८ योगे जातम् क १८ । अन्तरे च क २ ।

द्वितीयोदाहरणे—

न्यासः । क ३ क २७ योगे जातम् क ४८ । अन्तरे च क १२ ।

तृतीयोदाहरणे—

न्यासः । क ३ क ७ अनयोर्घाते मूलाभावा-

रपृथक्स्थितिरेव योगे जातम् क ३ क ७।
अन्तरे च क ३ क ७।

इति करणीसंकलनव्यवकलने

उदाहरण—

करणी दो, करणी आठ और करणी तीन, करणी सत्ताईस एवं करणी तीन, करणी सात, इन दो-दो करणियों के योग और अन्तर अलग-अलग क्या है ?

(१) क २ क ८ का योग क १० हुआ, इस की महती संज्ञा है। फिर क २ क ८ का घात १६ के मूल ४ को दुना किया तो ८ हुआ इस की लघुसंज्ञा है अब महती क १० और लघु क ८ का योग क १८ और अन्तर क २ हुआ।

(२) क ३ क २७ का योग क ३० हुआ, फिर इन के घात ८१ के मूल ९ को दूना किया तो क १८ हुआ अब महती और लघुकरणियों का योग क ४८ अन्तर क १२ हुआ।

(३) क ३ क ७ का योग क १० और इन का घात क २१ हुआ। अब करणीघात इक्कीस का मूल नहीं मिलता, इस कारण क ३ क ७ यह पृथक् स्थिति ही योग हुआ। इसी प्रकार क ३ क ७ अन्तर हुआ।

इस प्रकार, प्रथम विधि के अनुसार करणियों के योग और अन्तर का गणित दिखलाया। अब दूसरी विधि के अनुसार गणित दिखलाते हैं—

(१) क ८ में क २ का भाग देने से लब्धि ४ आई इसका मूल २ हुआ, इस में १ जोड़ा और घटाया तो क ३। क १ हुई इन का वर्ग रू ९। रू १ हुआ। बाद इनको लघु करणी से गुण दिया तो योग क १८ और अन्तर क २ हुआ।

(२) क २७ में क ३ का भाग देने से ९ लब्धि मिली इस का मूल ३ हुआ। इसमें १ जोड़ा और घटाया तो क ४, क २

हुई । इन का वर्ग रू १६, रू ४ हुआ इन को लघु करणी से गुणा दिया तो योग क ४८ और अन्तर क १२ हुआ ।

(३) क ७ में क ३ का भाग देने से मूल नहीं मिलता, इस कारण अलग-अलग रख देने से क ७ क ३ योग और क ३ क ७ अन्तर हुआ ।

करणी का जोड़ना-घटाना समाप्त ।

गुणनोदाहरणम्—

द्वित्र्यष्टसंख्या गुणकः करण्यो-
गुण्यस्त्रिसंख्या च सपञ्चरूपा ।
वधं प्रचक्ष्वाशु विपञ्चरूपे
गुणेऽथ वा त्र्यर्कमिते करण्यौ ॥१३॥

न्यासः । गुणकः । क २ क ३ क ८
गुण्यः । क ३ रू ५

अत्र गुण्ये गुणके वा, भाज्ये भाजके वा, करणीनां करण्योर्वा, यथासंभवं लाघवार्थं योगं कृत्वा गुणनभजने कार्ये । तथा कृते जातः ।

गुणकः । क १८ क ३
गुण्यः । क २५ क ३

गुणिते जातम् रू ३ क ४५० क ७५ क ५४ ।

अथ गुणने उदाहरणद्वयमुपजातिकयाह—द्वित्र्यष्टेति । अत्र

पञ्चरूपसहिता त्रिसंख्या करणी गुण्यः । गुणकस्तु द्वित्र्यष्टसंख्याः करण्यः । पञ्चरूपोने त्र्यर्कमिते करण्यौ वा । अत्र गुणक-द्वयादुदाहरणद्वयं ज्ञेयम् ॥

उदाहरण—

रूप पाँच से युक्त करणी तीन को, करणी-दो, करणी-तीन, करणी-आठ से, और रूप पाँच से सहित करणी-तीन को, रूप पाँच से रहित करणी-तीन, करणी-वारह से गुणा करें तो गुणनफल अलग-अलग क्या होगा।

यहाँ पर गुण्य, गुणक और भाज्य, भाजक में लाघव के लिए जिन-जिन करणियों का उक्त रीति के अनुसार योग हो सके, उनका योग करके गुणन तथा भजन करते हैं और उदाहरण में रूप हो तो उसको करणी के स्वरूप में बदल लेते हैं।

(१) क २ क ३ क ८ इस गुणक में 'क २ क ८' का योग क १८ होता है। इस लिये क १८ क ३ गुणक हुआ। गुण्य में रूप पाँच का करणीगत रूप करने से क २५ हुआ। अब स्थान गुणन की रीति से—

गुण्य=क २५ क ३
गुणक=क १८ क ३

क ४५० क ५४
क ७५ क ९

गुणनफल=रू ३ क ४५० क ७५ क ५४

विशेषसूत्रं वृत्तम्—

क्षयो भवेच्च क्षयरूपवर्ग-
श्चेत्साध्यतेऽसौ करणीत्वहेतोः ।
ऋणात्मिकायाश्च तथा करण्या
मूलं क्षयो रूपविधानहेतोः ॥ १५ ॥

द्वितीयोदाहरणे न्यासः ।

गुणकः क २५ क ३ क १२ ।

गुण्यः क २५ क ३ ।

अत्र गुणके करण्योर्योगे कृते गुणकः क २५ क २७ गुणिते जातम् क ६२५ क ६७५ क ७५ क ८१ । एतास्वनयोः क ६२५ क ८१ मूले रू २५ रू ९ अनयोर्योगे जातम् रू १६ अनयोः क ६७५ क ७५ अन्तरे योग इति जातो योगः क ३०० यथाक्रमं न्यासः रू १६ क ३०० इति करणीगुणनम् ॥

अथोपजातिकया विशेषमाह—क्षय इति । यदि क्षयरूपाणां वर्गस्तर्हि क्षयो भवेत् असौ क्षयरूपवर्गश्चेत्करणीत्वनिमित्तं साध्यते । 'न मूलं क्षयस्यास्ति'—इत्यस्यापवादमाह—ऋणात्मिकाया इति । ऋणात्मिकायाः करण्या मूलं तर्हि क्षयो भवेच्चेन्मूलं रूपविधाननिमित्तं साध्यते इति ॥ १५ ॥

विशेष—

यदि ऋणरूप का वर्ग करणी के रूप में सिद्ध किया जाय तो वह ऋण होता है । और ऋणकरणी का मूल जो उसको रूप करना हो तो ऋण होता है । यह ' न मूलं क्षयस्यास्ति तस्याकृतित्वात्' इस सूत्र का अपवाद है ।

उपपत्ति–

यहाँ पर जो करणीगुणन के लिये रूप का वर्ग किया जाता है, वह यद्यपि धन है, तो भी उस का मूल ऋण होगा, क्योंकि 'स्वमूले धनर्णे' अर्थात् धन का मूल धन और ऋण होता है। करणी के योग से मूलों का योग-वर्ग साधा जाता है, वहाँ जो ऋणरूप वर्गकरणी को धन कल्पना कर लें तो, उस धन करणी का योग हो जायगा और उसका मूल मूलयोग होगा। परंतु वहाँ पर मूलान्तर होना उचित है, क्योंकि 'धनर्णयोरन्तरमेव योगः' अर्थात् धन और ऋण राशि का अन्तर ही योग होता है। इस कारण, करणी की ऋणसंज्ञा से मूल की ऋणता को बतलाया है। जैसा, रू ३̇ रू ७ का योग ४ वर्ग १६ होता है, परंतु यह करणी को धन मानने से नहीं सिद्ध होता। जैसा–पूर्व रूपों की करणियों का योग 'योगं करण्योर्महतीं—' इस प्रकार से क १०० होता है, पर यह योगवर्ग नहीं है। इस कारण, करणी ऋण कल्पना करनी चाहिये। यहाँ करणी यह उपलक्षण है, जहाँ कहीं करणी योग के समान वर्गयोग से योगवर्ग आदि साधे जायँ वहाँ ऋणरूप वर्ग को ऋण ही मानना उचित है।

(१) उदाहरण में क २५ क ३ गुण्य और रू ५̇ क ३ क १२ गुणक है। यहाँ गुणक की क ३ क १२ करणियों का योग करने से क २७ और रूप ५̇ का वर्ग क २५̇ हुआ।

गुण्य = क २५ क ३
गुणक = क २५̇ क २७

क ६२५̇ क ७५̇
क ६७५ क ८१

गुणनफल = रू १६ क ३००

यहाँ क ६२५̇ का मूल रू २५̇ और क ८१ का मूल रू ९ का योग रू १६̇ हुआ। अब क ६७५ का ७५̇ का योग 'योगं करण्योर्महतीं–' इस प्रकार से क ७५̇० यह महती करणी हुई

और करणियों के घात ५०६२५ का मूल २२५ आया, इसको दूना करने से ४५० हुआ । फिर महतीकरणी ७५० और लघुकरणी ४५० का अन्तर करने से क ३०० यह योग हुआ ।

करणी-गुणन समाप्त ।

पूर्वगुणनफलस्य स्वगुणच्छेदस्य भागहारार्थं न्यासः । भाज्यः क ९ क ४५० क ७५ क ५४ । भाजकः क २ क ३ क ८ । अत्र 'क २ क ८' एतयोः करण्योर्योगे कृते जातम् क १८ क ३ । 'भाज्याच्छेदः शुध्यति प्रच्युतः सन्' इत्यादिकरणेन लब्धो गुणयः रू ५ क ३ ।

भागहार—

(१) भाज्य क ९ क ४५० क ७५ क ५४ और भाजक क २ क ३ क ८ है । यहाँ भाजक के क २, क ८ इन करणियों का योग करने से क १८, क ३ भाजक हुआ ।

भाजक । भाज्य । लब्धि ।

क १८ क ३) क ९ क ४५० क ७५ क ५४ (रू ५ क ३
क ४५० क ७५
क ९ क ५४
क ९ क ५४

....

यहाँ 'भाज्याच्छेदः शुध्यति—' इस रीति से क २५ क ३ अर्थात् रू ५ क ३ लब्धि मिली ।

द्वितीयोदाहरणे–

न्यासः । भाज्यः क २५६ं क ३०० । भाजकः क २५ं क ३ क १२ करण्योर्योगे कृते जातम् क २५ं क २७ । [* अत्रादौ त्रिभिर्गुणयित्वा धनकरण्योः ऋणकरण्योश्च योगं विधाय पश्चात्पञ्चविंशत्या गुणयित्वा शोधिते लब्धम् रू ५ क ३] अत्रापि पूर्ववल्लब्धो गुणयः रू ५ क ३ ॥

(२) भाज्य क २५ं६ क ३०० । भाजक क २५ं क ३ क १२ है । भाजक की क ३ क १२ का योग करने से क २७ हुई तो क २५ं क २७ भाजक हुआ ।

भाजक ।	भाज्य ।	लब्धि ।
क २५ं क २७)	क २५६ं क ३००	(रू ५ क ३
	क ७५ क ८१ं	
	क ६७५ क ६२५ं	
	क ६७ं५ क ६२५	

यहाँ पर क २५ और क ३ के समान लब्धि अपेक्षित है, इसलिये पहले तीन से गुणित भाजक को भाज्य में घटा देने से क ७५ क ८१ं शेष रहीं । क्योंकि, यहाँ धन और ऋण भाजकों का अन्तर नहीं होता । फिर क २५६ं क ८१ इन करणियों के मूल-योग का वर्ग करने से क ६२५ं हुआ और क ३०० क ७५ का योग उक्त प्रकार से क ६७५ हुआ । इन का क्रम से न्यास 'क ६७५ क ६२५' यह भाज्य शेष रहा, इस में क २५ं क २७ का भाग देने से क २५ लब्धि मिली ॥

---

* कुत्रचित्पाठोऽयं नोपलभ्यते ।

अथान्यथोच्यते—

धनर्णताव्यत्ययमीप्सिताया-
　श्छेदे करण्या असकृद्विधाय ।
तादृक्छिदा भाज्यहरौ निहन्या-
　देकैव यावत्करणी हरे स्यात् ॥ १६ ॥
भाज्यास्तया भाज्यगताः करण्यो
　लब्धाः करण्यो यदि योगजाः स्युः ।
विश्लेषसूत्रेण पृथक्च कार्या-
　स्तथा यथा प्रष्टुरभीप्सिताः स्युः॥१७॥

तथा च विश्लेषसूत्रं वृत्तम्—

वर्गेण योगकरणी विहृता विशुध्ये-
　त्खण्डानि तत्कृतिपदस्य यथेप्सितानि ।
कृत्वा तदीयकृतयः खलु पूर्वलब्ध्या
क्षुण्णाः भवन्ति पृथगेवमिमाः करण्यः १८

अत्र द्वितीयोदाहरणे (भाज्यः क २५६ क ३०० । भाजकः क २५ क २७) कियद्गुणो भाजको भाज्याच्छुध्यतीति दुरवबोधमतः परमकरुणाशालिन आचार्याः शिष्यबोधार्थमुपायान्तरमुपजातिकाद्वयेन निरूपयन्ति—धनर्णतेति । छेदे ईप्सिताया एकस्याः करण्या धनर्णताविपर्यासं कृत्वा तादृशेन छेदेन यथास्थितौ भाज्यहरौ गुणयेत् । एवं कृते करणीनां यथोक्त्या योगे च कृते भाज्यभाजकौ स्तः । अथास्मिन्नपि भाजके यदि द्व्यादीनि

करणीखण्डानि स्युस्तदात्रापि एकस्याः करण्या धनर्णताविपर्यासं कृत्वा तादृशभाजकेन पूर्वगुणनसंपन्नौ भाज्यभाजकौ गुणयेत् । तत्रापि यथासंभवं करणीयोगे कृते तौ भाज्यभाजकौ स्तः।एवमसकृत् तावद्विधेयं यावद् भाजके एकैव करणी भवेत् । अथ संपन्नया भाजककरण्या भाज्यकरण्यो रूपवदेव भाज्याः, यल्लभ्यते ता लब्धिकरण्यो भवन्ति । अथ यदि लब्धाः करण्यो योगजाः स्युर्न पुनः प्रष्टुरभीप्सितास्तदा वक्ष्यमाणविश्लेषसूत्रेण तथा पृथक्कार्या यथाभीप्सिताः स्युः ॥१६–१७॥

अथ पृथक्करणसूत्रम् वसन्ततिलकया निरूपयति—वर्गेणेति । योगकरणी येन वर्गेण विहृता सती विशुध्येत्तत्कृतिपदस्य यथेप्सितानि खण्डानि कृत्वा तदीयकृतयः पूर्वलब्ध्या क्षुण्णाः । पृथक्करण्यो भवन्ति । सा चासौ कृतिश्चेति कर्मधारयो द्रष्टव्यः । एतदुक्तं भवति–योगकरणी येन वर्गेण विहृता सती निःशेषा भवेत्तस्य वर्गस्य मूलं ग्राह्यम्, तस्य खण्डानि प्रष्टुर्यावन्त्यभीष्टानि तावन्ति कृत्वा तेषां खण्डानां वर्गाः कर्तव्याः । ते वर्गाः पूर्वलब्ध्या क्षुण्णाः वर्गेण हृतायां योगकरण्यां या लब्धिः सा पूर्वलब्धिः । तया गुणितास्ते वर्गाः पृथक्करण्यो भवन्ति ॥ १८ ॥

दूसरे उदाहरण में कितने से गुणित (गुण) भाजक भाज्य में घट सकेगा, यह जानना कठिन है, इसलिये दूसरा प्रकार कहते हैं— छेद (भाजक) में किसी एक करणी के धन और ऋण चिह्न को बदल कर उस छेद से भाज्य और भाजक को गुण देना । यह क्रिया बार-बार तब तक करना जब तक छेद में एक ही करणी न हो जाय । फिर उस करणी का भाज्यगत करणियों में भाग देने से जो लब्धि मिले, वह इष्ट करणी होगी । यदि योगज करणी लब्ध आवें, तो उन को प्रश्नकर्त्ता की इच्छानुसार विश्लेष-सूत्र से अलग कर देना ।

विश्लेषसूत्र अर्थात् करणियों के अलगाने का प्रकार—

जिस वर्गसंख्या के भाग देने से योगकरणी निःशेष हो, उसका

मूल लेकर प्रश्नकर्त्ता को जितने खण्ड अपेक्षित हों, उतने उस मूल संख्या के खण्ड करना । फिर उन खण्डों के वर्ग को, योगकरणी में वर्गसंख्या का भाग देने से जो लब्धि मिली थी, उससे गुणने पर योगकरणी के खण्ड अलग-अलग हो जायँगे ।

उपपत्ति—

भाज्य और भाजक में किसी एक इष्ट अङ्क का अपवर्तन देने से अथवा उन को इष्ट से गुण देने से भजनफल में विकार नहीं होता, यह बात सुप्रसिद्ध है । यहाँ भाजक के तुल्य इष्टाङ्क से भाजक को गुण देने से भाजक के खण्डों का वर्ग होता है और पहले भाजक के खण्डों में, धन-ऋण का विपर्यास भी किया है । इस कारण वैसे भाजक से गुणने से भाजक के खण्डों में, धन और ऋण की समता हो जाती है, तो खण्डों के उड़ जाने से उन का अन्तर शून्य होता है, और भाजक में एक ही करणी खण्ड बचता है । उससे भाग देने में क्रिया का लाघव होता है । यहाँ जो भाजक में अनेक खण्ड हों, तो उनका एक बार नाश नहीं होता । इस कारण बार-बार क्रिया करने को कहा है । इस से 'धनर्णताव्यत्ययमीप्सितायाः—' यह प्रकार उपपन्न हुआ ।

विश्लेष-सूत्र की उपपत्ति—

दो वा अनेक करणियों में किसी का अपवर्त्तन देकर, उन के मूलों के योगवर्ग को अपवर्त्तन के अङ्क से गुण देने से वह योगकरणी होगी । क्योंकि प्रत्येक योगकरणी मूलयोगवर्ग और अपवर्तनाङ्क का घात होती है, इसलिये वह वर्गाङ्क के भाग देने से निःशेष होगी । लब्धि अपवर्तनाङ्क है, एवं जिस के वर्ग का भाग देने से करणी निःशेष होती है, वह मूलयोग वर्ग है और उस का मूल मूलों का योग है । योग के खण्ड अपवर्तित करणियों के मूल हैं । उनके वर्ग अपवर्तित करणी होते हैं, इसलिये उन को अपवर्तन के अङ्क से गुण देने से, यथास्थित करणी हो जाती हैं । इस से 'वर्गेण योगकरणी विहृता विशुध्येत्—' यह सूत्र उपपन्न हुआ ॥

न्यासः। भाज्यः क ९ क ४५० क ७५ क ५४।

भाजकः क १८ क ३ ।

अत्र भाजके त्रिमितकरण्याः ऋणत्वं प्रकल्प्य क १८ क ३̇ अनेन भाज्ये गुणिते योगे च कृते जातम् क ५६२५ क ६७५ । भाजके च क २२५ अनया हृते भाज्ये लब्धम् क २५ क ३ ।

जैसा (१) उदाहरण में भाज्य क ९ क ४५० क ७५ क ५४ और भाजक क १८ क ३ है । यहाँ क ३ को ऋण माना तो क १८ क ३̇ भाजक हुआ । अब इस भाजक से भाज्य को गुण दिया—

गुण्य=क ९ क ४५० क ७५ क ५४
गुणक=क १८ क ३̇

क १६२ क ८१०० क १३५० क ९७२
क २७̇ क १३̇५० क २२५̇ क १६̇२

गुणनफल=क ५६२५ क ६७५

यहाँ धन और ऋण करणियों का योग करने से क ८१०० क २२५̇ क ९७२ क २७̇ ये करणियाँ शेष रहीं । इन में पहली, दूसरी और तीसरी, चौथी करणी का योग करने से भाज्य में 'क ५६२५ क ६७५ हुईं ।' इसी भाँति भाजक की करणियों को भी गुण दिया—

गुण्य=क १८ क ३
गुणक=क १८ क ३̇

क ३२४ क ५४
क ५̇४ क ९̇

गुणनफल=क २२५

यहाँ भी करणियों का योग करने से क २२५ शेष रही, यह छेद है, इस का भाज्य में भाग देना है—

भाजक ।	भाज्य ।	लब्धि ।
क २२५)	क ५६२५ क ६७५ (	रू ५ क ३
	क ५६२५	
	क ६७५	
	क ६७५	
	० ०	

द्वितीयोदाहरणे न्यासः ।

भाज्यः क २५६ क ३००

भाजकः क २५ क २७

अत्र भाजके पञ्चविंशतिकरण्या धनत्वं प्रकल्प्य क २५ क २७ भाज्ये गुणिते धनर्णकरणीनामन्तरे च कृते जातम् क ३०० क १२। भाजके च क ४। अनया भाज्ये हृते लब्धम् क २५ क ३॥

इदानीं पूर्वोदाहरणे गुण्ये भाजके च कृते न्यासः ।

भाज्यः क ९ क ४५० क ७५ क ५४

भाजकः क २५ क ३

अत्रापि त्रिकरण्याः ऋणत्वं प्रकल्प्य भाज्ये गुणिते युते च जातम् क ८७१२ क १४५२। भाजके च क ४८४। अनया

हृते भाज्ये लब्धो गुणकः क १८ क ३। पूर्वं गुणके खण्डत्रयमासीदिति योगकरणीयम् क १८ विश्लेष्या। तत्र 'वर्गेण योगकरणी विहृता विशुध्येत्—' इति नवात्मकवर्गेण ९ विहृता सती शुध्यतीति लब्धम् २। नवानां ९ मूलम् ३। अस्य खण्डे १।२। अनयोः कृती १।४। पूर्वलब्ध्या गुणिते २।८ एवं जातो गुणकः क २ क ३ क ८।

इति करणीभजनम्।

(२) उदाहरण में भाज्य क २५६ क ३०० और भाजक क २५ क २७ है। भाजक क २५ को धन मान कर भाज्य को गुण दिया—

गुण्य=क २५६ क ३००
गुणक=क २५ क २७
क ६४०० क ७५००
क ६९१२ क ८१००

गुणनफल=क १०० क १२ यह हुआ।

यहाँ क ६४०० क ८१०० इन के मूल ८०, ९० का अन्तर १० हुआ। इस का वर्ग क १०० हुआ। क ७५०० क ६९१२ का मूल नहीं मिलता, इसलिये तीन का अपवर्तन देने से क २५०० क २३०४ के मूल क्रम से ५० और ४८ आये, इन का अन्तर २ हुआ, इस के वर्ग ४ को अपवर्तन के अङ्क से गुणने से क १२ हुई। इस प्रकार भाज्य में क १०० और क १२ हुई। इसी भाँति भाजक को भी गुण दिया—

गुण्य=क २५ क २७
गुणक=क २ं५ क २७

क६२ं५क६७५ं
क६७५ क७२९

गुणनफल=क४

करणियों का योग करने से क ४ छेद हुआ, इस का भाज्य में भाग दिया—

भाजक । भाज्य । लब्धि ।
क ४) क १०० क १२ (रू ५ क ३
क १००

क १२
क १२

(१) उदाहरण में गुण्य को भाजक मानने से क ९ क ४५० क ७५ क ५४ भाज्य और क २५ क ३ भाजक हुआ, यहाँ भी क ३ को ऋण मान कर, भाज्य को भाजक से गुण दिया—

गुण्य=क ९ क ४५० क ७५ क ५४
गुणक=क २५ क ३ं

क २२५ क ११२५० क १८७५ क १३५०
क २७ं क १३५ं० क २२५ं क १६२ं

गुणनफल=क ८७१२ क १४५२

यहाँ तुल्य धन और ऋण करणियों के नाश होने से क ११२५० क १८७५ क २७ं क १६२ं अवशिष्ट करणी रहीं। इनमें दूसरी, तीसरी और पहली, चौथी का योग करने से क १४५२ क ८७१२ भाज्य हुआ। इसी प्रकार भाजक की करणियों को गुण दिया—

गुण्य=क २५ क ३
गुणक=क २५ क ३ं

क ६२५क७५
क ७५ं क ९ं

गुणनफल=क ४८४

करणियों का योग करने से क ४८४ यह भाजक हुआ, इस का भाज्य में भाग दिया—

भाजक।	भाज्य।	लब्धि।
क ४८४)	क ८७१२ क १४५२ (	क १८ क ३
	क ८७१२	
	क १४५२	
	क १४५२	
	...	

यहाँ जो लब्धि आई है वह (१) उदाहरण में गुणकरूप थी और इस के तीन खण्ड थे, इसलिये १८ योगकरणी है। इस में नौ का भाग देने से २ लब्धि आई। नौ का मूल ३ हुआ। इस के दो खण्ड किये १। २ इनके वर्ग १। ४ हुए। अब इन को पूर्व-लब्धि २ से गुणने से २। ८ हुए, यही योगजकरणी १८ के खण्ड थे। यथाक्रम न्यास करने से क २ क ३ क ८ गुणक हुआ॥

करणी का भागहार समाप्त।

करणीवर्गादेरुदाहरणम्—

द्विकत्रिपञ्चप्रमिताः करण्य-
स्तासां कृतिं त्रिद्विकसंख्ययोश्च।
षट्पञ्चकत्रिद्विकसंमितानां
पृथक् पृथङ् मे कथयाशु विद्वन्॥१४॥
अष्टादशाष्टद्विकसंमितानां
कृतीकृतानां च सखे पदानि॥

न्यासः । प्रथमः क २ क ३ क ५ ।
द्वितीयः क ३ क २ ।
तृतीयः क ६ क ५ क ३ क २ ।
चतुर्थः क १८ क ८ क २ ।

'स्थाप्योन्त्यवर्गश्चतुर्गुणान्त्यनिघ्नाः—' इत्यनेन 'गुण्यः पृथग्गुणकखण्डसमः—' इत्यनेन वा जाताः क्रमेण वर्गाः

प्रथमः रू १० क २४ क ४० क ६० ।
द्वितीयः रू ५ क २४ ।
तृतीयः रू १६ क १२० क ७२ क ६० क ४८ क ४० क २४ ।

अत्रापि करणीनां यथासंभवं योगं कृत्वा वर्गवर्गमूले कार्ये । तद्यथा—क १८ क ८ क २ आसां योगः क ७२ । अस्या वर्गः क ५१८४ अस्या मूलम् रू ७२ ।

इति करणीवर्गः ।

करणी के वर्ग आदि का उदाहरण—

क २ क ३ क ५, क ३ क २, क ६ क ५ क ३ क २ और क१८क८क२ इन का अलग अलग वर्ग और वर्गमूल क्या होगा ?

यहाँ 'स्थाप्योऽन्त्यवर्गः—' इस प्रकार से अथवा, अन्य प्रकारों से वर्ग करना व्यक्तगणित में राशि को दूना करके आगे के अङ्कों

को गुणाते हैं। परंतु यहाँ करणी को चौगुना करके आगे के अङ्कों को गुणाना चाहिए। यही विशेष है।

(१) क २ क ३ क ५

क ४ क २४ क ४०
क ९ क ६०
क २५

रू १० क २४ क ४० क ६० यह वर्ग हुआ। यहाँ सर्वत्र जिन करणी राशियों का मूल मिलता है, उन के मूलों का योग करके लिखते हैं। जैसा, इस उदाहरण में क ४ क ९ क २५ के क्रम से २, ३, ५ मूल मिलते हैं। इनका योग १० हुआ इसको 'रू १०' ऐसा लिखते हैं।

(२) क ३ क २

क ९ क २४
क ४

रू ५ क २४ यह वर्ग हुआ।

(३) क ६ क ५ क २ क ३

क ३६ क १२० क ४८ क ७२
क २५ क ४० क ६०
क ४ क २४
क ९

रू १६ क १२० क ७२ क ६० क ४८ क ४० क २४ वर्ग हुआ। यहाँ पर भी उक्त प्रकार से करणियों का योग करके, वर्ग और वर्गमूल साधते हैं जैसा—'क १८ क ८ क २' इन करणियों

का वर्ग करना है, तो पहले योग क ७२ हुआ । अथ इसका वर्ग किया—

(४) क ७२

क ५१८४

रू ७२

क ५१८४ वर्ग और रू ७२ उस वर्ग का मूल हुआ ।

वर्ग समाप्त ।

करणीमूले सूत्रद्वयम्—

वर्गे करण्या यदि वा करण्यो-
स्तुल्यानि रूपाण्यथ वा बहूनाम् ।
विशोधयेद्रूपकृतेः पदेन
शेषस्य रूपाणि युतोनितानि ॥ १९ ॥
पृथक्तदर्धे करणीद्वयं स्या-
न्मूलेऽथ बह्वी करणी तयोर्या ।
रूपाणि तान्येवमतोऽपि भूयः
शेषाः करण्यो यदि सन्ति वर्गे ॥२०॥

अथ वर्गे दृष्टे कस्यायं वर्ग इति मूलज्ञानार्थमुपजातिकाद्वयेनाह—वर्ग इति । वर्गे करण्यास्तुल्यानि, करण्योर्वा तुल्यानि, बहूनां करणीनां वा तुल्यानि रूपाणि रूपकृतेर्विशोधयेत् । अत्र रूपग्रहणं योगवियोगयोः 'योगं करण्योर्महतीं प्रकल्प्य—' इत्यादिप्रकारस्य व्यावृत्त्यर्थम् । शेषस्य पदेन रूपाणि पृथग्युतोनितानि कृत्वा तदर्धे कार्ये, मूले तत्करणीद्वयं भवति । यदि पुनर्वर्गे शेषाः करण्यः

सन्ति तर्हि तयोर्मूलकरण्योर्मध्ये अल्पा मूलकरणी, या महती तानि रूपाणि प्रकल्प्य अतो रूपेभ्यो भूयोऽप्येवम् । करणीतुल्यानि रूपाणि रूपकृतेर्विशोधयेदित्यादिना पुनरपि मूलकरणीद्वयं स्यात् । पुनरपि यदि शेषाः करण्यो भवेयुस्तदैवमेव पुनः कुर्यात् । अत्र महती रूपाणीत्युपलक्षणम्, क्वचिन्महती मूलकरणी अल्पा तु रूपाणीति द्रष्टव्यम् । वक्ष्यति चाचार्यः 'चत्वारिंशदशीतिः–' इत्युदाहरणावसरे ॥ १९–२० ॥

करणी के मूल का प्रकार—

रूपवर्ग में उद्दिष्टवर्ग के एक वा, दो वा, अनेक करणीखण्डों को यथा संभव घटा और शेष का वर्गमूल लेकर उसको रूप में जोड़ और घटा देना फिर उन का आधा करने से मूल में दो करणी होंगी । जो उद्दिष्ट वर्ग में करणी अवशिष्ट रहें तो उन दो करणियों में से बड़ी करणी को रूप मान कर उक्त क्रिया करनी । यहाँ रूपवर्ग में करणीखण्डों को घटाना कहा है, वह छोटे करणीखण्डों से घटाना आरम्भ करना चाहिये । क्योंकि यदि ऐसा न किया जाय, तो बड़ी रूप और छोटी मूलकरणी यह नियम न रहेगा । कहीं छोटी करणी रूप और बड़ी मूलकरणी होती है ।

उपपत्ति—

यहाँ करणीवर्ग 'स्थाप्योऽन्त्यवर्गश्चतुर्गुणान्त्यनिघ्ना:–' इस प्रकार से करते हैं । इस में प्रथम स्थान में प्रथम करणीवर्ग और प्रथम, द्वितीय आदि करणियों का चतुर्गुण-घात होता है । फिर द्वितीय करणीवर्ग और द्वितीय तृतीय आदि करणियों का चतुर्गुण-घात होता है । ऐसे ही आगे भी जानना । यहाँ जितने करणीखण्ड होते हैं, उनके अवश्य वर्ग होते हैं, वर्गत्व होने से उन के मूल मिलते हैं और वे मूलकरणी के समान होते हैं । वर्गराशि में जो रूपों का समूह होता है, वह मूलकरणियों का योग है । परंतु वह योग रूप की रीति से है, करणी की रीति से नहीं है । यदि करणीरीति से होता तो 'वर्गेण योगकरणी विहृता विशुध्येत्– ' इस प्रकार से

अलग करना सुलभ था । परंतु प्रकृत में रूपरीति से करणियों का योग है इसलिये 'चतुर्गुणस्य घातस्य युतिवर्गस्य चान्तरम् । राश्यन्तरकृतेस्तुल्यं–' इस प्रकार से अलग करना चाहिये । यह प्रकार एकवर्णमध्यमाहरण में लिखा है । यहाँ रूप, करणीयोग और रूपवर्ग करणी योगवर्ग है, वर्गराशि में जितने करणीखण्ड हैं वे पहली, दूसरी आदि करणियों के चतुर्गुण घात हैं । उनका योग पहली करणी और शेष, करणी-योग का चतुर्गुण-घात है । पहली करणी और शेष करणियों का योग योगवर्ग है, इसलिये उन दोनों का अन्तर करने से पहली करणी और शेष करणियों के योग का अन्तरवर्ग सिद्ध होता है । इसलिये 'वर्गे करण्या यदि वा करण्योस्तुल्यानि रूपाण्यथ वा बहूनाम् । विशोधयेद्रूपकृतेः–' यह कहा है । इस प्रकार, अन्तर वर्ग का ज्ञान हुआ । इसका मूल पहली करणी और शेष करणियों के योग का अन्तर होता है । और रूप उन्हीं का योग है, तो योग और अन्तर ज्ञात होने से 'योगोऽन्तरेणोनयुतोऽर्धितः–' इस संक्रमणसूत्र से उन राशियों का जानना सुलभ है । इसलिये 'पदेन, शेषस्य रूपाणि युतोनितानि, पृथक्तदर्धे करणीद्वयं स्यात्–' यह कहा है । इस प्रकार, पहली करणी और शेष करणी-योग हुआ । मूल में दो करणी आईं, उन में से किस को पहली करणी मानें और किस को शेष करणियों का योग ? करणीयोग में महत्त्व होना और एक करणी में अल्पत्व होना उचित है । इस कारण पहली लघुकरणी और शेष करणियों का योग महती अर्थात् बड़ी करणी कल्पना की जाती है इससे 'मूलेऽथ बह्वी करणी तयोर्या–' इत्यादि सूत्र उपपन्न हुआ ।

प्रथमवर्गस्य मूलार्थं न्यासः ।

रू १० क २४ क ४० क ६० ।

रूपकृतेः १०० चतुर्विंशतिचत्वारिंशत्करण्योस्तुल्यानि रूपाण्यपास्य शेषम् ३६ अस्य

मूलम् ६ अनेनोनाधिकरूपाणामर्धे जाते २।८ अत्रापीयं २ मूलकरणी द्वितीयां रूपाण्येव प्रकल्प्य पुनः शेषकरणीभिः स एव विधिः कार्यः। तत्रेयं रूपकृतिः ६४ अस्याः षष्टि-रूपाण्यपास्य शेषम् ४ अस्य मूलम् २ अने-नोनाधिकरूपाणामर्धे ३।५ जाते मूलकरण्यौ क ३ क ५ मूलकरणीनां यथाक्रमं न्यासः क २ क ३ क ५

द्वितीयवर्गस्य न्यासः।

रू ५ क २४।

रूपकृतेः २५ करणीतुल्यानि रूपाणि २४ अपास्य शेषम् १ अस्य मूलेनोनाधिकरूपा-णामर्धे जाते मूलकरण्यौ क २ क ३।

तृतीयवर्गस्य न्यासः।

रू १६ क १२० क ७२ क ६० क ४८ क ४० क २४।

रूपकृतेः २५६ करणीत्रितयस्यास्य 'क ४८ क ४० क २४' तुल्यानि रूपाण्यपा-स्योक्तवज्जाते खण्डे २।१४। महती रूपा-णीत्यस्याः १४ कृतिः १९६ अस्याः करणी-

द्वयस्यास्य 'क ७२ क १२०' तुल्यानि रूपाण्यपास्योक्तवज्जाते खण्डे ६ । ८ । पुना रूपकृतेः ६४ षष्टिरूपाण्यपास्योक्तवत्खण्डे ३ । ५ एवं मूलकरणीनां यथाक्रमं न्यासः क ६ क ५ क ३ क २ ।

चतुर्थवर्गस्य न्यासः ।

रू ७२ क० ।

इयमेव लब्धा मूलकरणी ७२ । पूर्वं खण्डत्रयमासीदिति 'वर्गेण योगकरणी विहृता विशुध्येत्–' इति षट्त्रिंशता विहृता शुध्यतीति षट्त्रिंशतो मूलम् ६ । एतस्य खण्डानां १ । २ । ३ । कृतयः १ । ४ । पूर्वलब्ध्यानया २ क्षुण्णाः २ । ८ । १८ एवं पृथक्करण्यो जाताः क २ क ८ क १८ ।

अब पूर्व सिद्ध वर्गों का मूल साधन करते हैं—

(१) 'रू १० क २४ क ४० क ६०' यहाँ रूप १० का वर्ग १०० हुआ । इस में एक करणी के तुल्य रूप घटाने से मूल नहीं मिलता और तीन करणी के तुल्य रूप घट नहीं सकता, इस कारण दो, दो करणियों के तुल्य रूप 'क २४ क ४०' अथवा 'क २४ क ६०' अथवा 'क ४० क ६०' घटता है । अब यहाँ क २४ और क ४० को घटा कर मूल लाते हैं—रूप १० के वर्ग १०० में 'क २४ क ४०' के तुल्य रूप घटाने से शेष ३६

का मूल ६ हुआ इस को रूप में जोड़ने और घटाने से १६ और ४ का आधा ८ । २ हुआ, इस प्रकार मूल में दो करणी हुईं । अब वर्ग में एक करणी और बाकी रही; इस कारण बड़ी मूलकरणी ८ को रूप मानकर उस के वर्ग ६४ में शेष क ६० के तुल्य रूप घटाने से मूल २ मिला, इसको रूप ८ में जोड़ने-घटाने से १० और ६ का आधा ५ और ३ हुआ, इस भाँति मूलकरणी सिद्ध हुईं क २ क ३ क ५ । इसी प्रकार से 'क २४ क ६० ' अथवा 'क ४० क ६०' को पहले घटाने से पहलेवाले करणीखण्ड मिलते हैं—

(२) 'रू ५ क २४ ' उदाहरण में रूप ५ वर्ग २५ में क २४ के तुल्य रूप घटाने से १ शेष रहा, इसके मूल १ को रूप में जोड़ने-घटाने से ६ और ४ का आधा ३ और २ हुआ इस प्रकार क २ क ३ मूलकरणी होती हैं ।

(३) 'रू १६ क १२० क ७२ क ६० क ४८ क ४० क २४ ' इस उदाहरण में रूप १६ के वर्ग २५६ में क १२० क ७२ और क ४८ के समान रूप घटाने से १६ शेष रहा, इस का मूल ४ हुआ इस को रूप में जोड़ने और घटाने से २० । १२ का आधा १० । ६ हुआ । इन में छोटी को मूलकरणी और बड़ी को रूप कल्पना करने से रूप १० का वर्ग १०० हुआ, इस में क ६० और २४ के तुल्य रूप घटाने से शेष १६ का मूल ४ हुआ, इस को रूप १० में जोड़ने और घटाने से १४ और ६ का आधा ७ और ३ हुआ, फिर ३ को मूलकरणी और ७ को रूप कल्पना करने से रूप ७ के वर्ग ४६ में क ४० के समान रूप घटाने से मूल ३ मिला, इस को रूप ७ में जोड़ने-घटाने से १० और ४ का आधा ५ । २ हुआ । इस प्रकार मूलकरणी क ६ क ३ क ५ क २ सिद्ध हुईं ।

(४) 'रू ७२ क ० ' उदाहरण में रूप ७२ के वर्ग ५१८४ में करणी शून्य के तुल्य रूप घटा देने से ७२ मूल मिला इस को रूप ७२ में जोड़ने और घटाने से १४४ और ० हुए इन का आधा ७२ और ० हुआ। इस प्रकार, यहाँ मूलकरणी ७२ सिद्ध हुई। यह योगकरणी

है, इसके पहले तीन खण्ड थे इसलिये 'वर्गेण योगकरणी विहृता विशुध्येत्—' इस विश्लेष सूत्र से उसके खण्डों को अलग करना चाहिये तो क ७२ में ३६ का भाग देने से २ लब्धि मिली और भाजक ३६ का मूल ६ मिला, इसके ३ । २ । १ खण्ड किये और इनके वर्गों को पूर्व जो २ लब्धि मिली थी उससे गुण देने से क १८ क ८ क २ यह पूर्व करणीखण्ड हुए ।

अथ वर्गगतऋणकरण्या मूलानयनार्थं सूत्रं वृत्तम्—

ऋणात्मिका चेत्करणी कृतौ स्या-
द्धनात्मिकां तां परिकल्प्य साध्ये ।
मूले करण्यावनयोरभीष्टा
क्षयात्मिकैका सुधियावगम्या ॥ २१ ॥

अथ यत्र वर्गराशावृणकरणी भवति तत्र मूलग्रहणे विशेषमुपजातिकयाह—ऋणात्मिकेति । यदि वर्गे करणी ऋणात्मिका स्यात्तर्हि तां धनात्मिकां परिकल्प्य मूले करण्यौ साध्ये । अनयोर्मूलकरण्योर्मध्येऽभीष्टा एका करणी सुधिया क्षयात्मिका ज्ञेया। अत्र 'सुधिया' इति हेतुगर्भमुक्तम् । तेन वर्गे यद्येकैव क्षयकरिणी भवति तदैव एकस्या मूलकरण्याः क्षयत्वम्। यदि द्व्यादयो भवन्ति तदैकस्या द्वयोर्बहूनां वा मूलकरणीनां युक्त्या यथा संभवति तथा क्षयत्वं कल्प्यम् । यत्र वर्गे सर्वा अपि धनकरण्यस्तत्रापि सर्वासामपि मूलकरणीनां पक्षे क्षयत्वमवगन्तव्यम् ॥ २१ ॥

वर्गगत ऋणकरणी के मूल का प्रकार—

यदि वर्ग में कोई ऋणकरणी हो तो उसको धन मान कर 'वर्गे करण्या यदि वा करण्योः—' इस सूत्र की रीति से दो मूलकरणी सिद्ध करना और उन दो करणियों में से एक करणी को ऋण मान

लेना। जो उद्दिष्ट वर्ग में कई एक करणी ऋणगत हों तो, मूल-करणियों में से जिस करणी का ऋण होना संभव हो, उसको ऋण कल्पना करना और जो वर्ग में सब करणियाँ धन हों तो एक पक्ष में मूलकरणियों को ऋणात्मक भी जानना चाहिए।

उपपत्ति—

ऋण और धन करणियों का वर्ग एक ही होता है। परंतु ऋण-करणी के वर्ग में करणी ऋण और धन करणी के वर्ग में करणी धन होती है, इस दशा में वर्ग में करणी ऋणात्मक अथवा धनात्मक हो, पर मूल तो अङ्कों में समान ही उचित है। उक्त विधि से रूप के वर्ग में ऋणकरणी घटा देने से धन हो जाती है। इस कारण रूप और उस करणी का योग धन होता है और रूपवर्ग में धनकरणी घटा देने से ऋण हो जाती है, इसलिये उसका और रूप का अन्तर होता है। बाद में मूलाङ्क का साधन सुलभ है, इसलिये 'धनात्मिकां तां परिकल्प्य—' यह कहा है। परंतु इस भाँति घनात्मक वर्ग ही का मूल आता है इस कारण 'क्षयात्मिकैका' यह कहा है ॥२१॥

उदाहरणम्–

त्रिसप्तमित्योर्वद मे करण्यो-
र्विश्लेषवर्गं कृतितः पदं च ॥ १५ ॥
द्विकत्रिपञ्चप्रमिताः करण्यः
स्वस्वर्णगा व्यस्तधनर्णगा वा।
तासां कृतिं ब्रूहि कृतेः पदं च
चेत्षड्विधं वेत्सि सखे करण्याः॥१६॥

प्रथमोदाहरणे न्यासः।

क ३̇ क ७। वा क ३ क ७̇

अनयोर्वर्गः सम एव रू १० क ८४ अत्र वर्ग ऋणकरण्या धनत्वं प्रकल्प्य प्राग्वल्लब्ध-करण्योरेकाभीष्टा ऋणगता स्यादिति जातम् क ३ क ७। वा क ३ क ७

द्वितीयोदाहरणे न्यासः।

क २ क ३ क ५ वा क २ क ३ क ५

आसां वर्गः सम एव जातः रू १० क २४ क ४० क ६० । अत्र ऋणकरण्योस्तुल्यानि धनरूपाणि १०० रूपकृतेः १०० अपास्यमूलम् ० अनेनोनाधिकरूपाणामर्धे क५ क ५। अत्रैका ऋणम् क ५। अन्यानि रूपाणीति न्यासः रू५ क २४। पूर्ववज्जाते करण्यौ धनमेव क३ क२। यथाक्रमं न्यासः क २ क ३ क ५। अथवा अनयोः क २४ क ६० तुल्यानि धनरूपाणि ८४ रूपकृतेरपास्योक्तवज्जाते मूलकरण्यौ क ७ क ३। अनयोर्महती ऋणम् क ७ तान्येव रूपाणि प्रकल्प्य रू ७ क ४० अतः प्राग्वत्कर-ण्यौ क ५। क ३। अनयोरपि महती ऋण-मिति यथाक्रमं न्यासः क ३ क २ क ५।

अथ द्वितीयोदाहरणे प्राग्वत्प्रथमपक्षे मूलकरण्यौ क ५ क ५ । अनयोरेका ऋणम् क ५̇ । तान्येव रूपाणीति ऋणोत्पन्ने करणीखण्डे ऋण एवेति यथाक्रमं न्यासः क २̇ क ३̇ क ५ । द्वितीयपक्षेणापि यथोक्ता एव मूलकरण्यः क ३̇ क २̇ क ५ एवं बुद्धिमतानुक्तमपि ज्ञायत इति॥

उदाहरण—

करणी तीन, करणी सात के अन्तर का वर्ग और उस वर्ग का मूल क्या है ? करणी दो, करणी तीन, करणी पाँच ऋण अथवा करणी दो ऋण, करणी तीन ऋण, करणी पाँच धन का वर्ग और उस वर्ग का मूल क्या होगा ?

(१) क ३̇ क ७ । अथवा क ३ क ७̇ का वर्ग तुल्य ही हुआ रू १० क ८४̇ इस वर्ग से मूल साधन करते हैं—रूप १० के वर्ग १०० में क ८४̇ के तुल्य रूप घटाने से १८४ शेष का मूल नहीं मिलता, इस कारण क ८४̇ को धन मानकर रूप वर्ग में घटाने से १६ शेष बचा, इसके मूल को रूप में जोड़ने-घटाने से १४ और ६ का आधा ७ और ३ हुआ, इस प्रकार 'क ७ क ३' मूलकरणी सिद्ध हुई, इनमें से किसी एक करणी को ऋण कल्पना करने से क ३̇ क ७ । या, क ३ क ७̇ पूर्वोक्त मूलकरणी हुई ।

(२) क २ क ३ क ५̇, या क २̇ क ३̇ क ५̇ इनका वर्ग रू १० क २४ क ४०̇ क ६०̇ यह समान ही हुआ । अब वर्गमूल साधते हैं—रूप १० का वर्ग १०० में धन क ४०, क ६० के समान रूप घटाने से शेष ० का मूल ० हुआ, इसको रूप में जोड़ने-घटाने से १० । १० का आधा ५ । ५ हुआ, इन में से एक को अवश्य ऋण मानना चाहिये । अन्यथा उद्दिष्टवर्ग में ऋणकरणी न होगी । अब मूलकरणी को ऋण और दूसरी को धन मानकर क्रिया करते

हैं—क ५̇ यह मूलकरणी है, शेष क ५ को रूप कल्पना करने से, उसका वर्ग २५ हुआ, इस में क २४ के तुल्य रूष घटाने से शेष १ का मूल १ मिला, इसको रूप ५ में जोड़ने-घटाने से ६ । ४ का आधा ३ और २ हुआ, इस प्रकार 'क ३ क २' सिद्ध हुई । यहाँ दोनों करणी धन होनी चाहियें, क्योंकि यदि एक करणी ऋण मानी जाय तो वर्ग में क २४ धन न होगी, यदि दोनों करणियों को ऋण मान लें तो शेष क २४ ऋण न होगी, परन्तु वर्ग करने में चतुर्गुण—मूलकरणी २̇० से 'क ३̇ क २' मूलकरणियों को गुण देने में इन का ऋणत्व नष्ट हो जायगा । इस कारण उन दोनों करणियों को धन मान लेना योग्य है । इस रीति से 'क ५̇ क ३ क २' यह मूल सिद्ध हुआ ।

अब मूलकरणी को धन मानकर गणित दिखलाते हैं—यहाँ मूल-करणी क ५ है और दूसरी करणी ५̇ को रूप मानकर वर्ग २५ हुआ, इस में शेष करणी २४ के तुल्य रूप घटाने से पूर्वप्रकार के अनुसार क ३ क २ सिद्ध हुईं, यहाँ दोनों करणी ऋण होनी चाहिये क्योंकि एक को ऋण मानने से उक्त रीति के अनुसार क २४ धन न होगी, यदि दोनों करणियों को धन मान लें, तो उक्त युक्ति से क ४० और क ६० यह ऋण न होंगी, इस प्रकार क ५ क ३̇ क २̇ यह मूल हुआ । अथवा रूपवर्ग में क २४ क ६० के तुल्य रूप घटाने से शेष १६ का मूल ४ हुआ, इस को रूप १० में जोड़ने-घटाने से १४ । ६ का आधा ७ । ३ हुआ, इस में से क ७̇ को रूप कल्पना करने से वर्ग ४९ हुआ, इस में धन क ४० के तुल्य रूप घटाने से शेष का ३ मूल मिला, इसको रूप ७ में जोड़ने-घटाने से १० और ४ का आधा ५ । २ हुआ, इन में से ५ को ऋण मानने से 'क ३ क २ क ५̇' यह मूल सिद्ध हुआ । इसी प्रकार रूप वर्ग में क २४ और धन क ४० के समान रूप घटाने से शेष ३६ का मूल ६ हुआ, इस को रूप में जोड़ने-घटाने से १६ और ४ का आधा ८ । २ हुआ । इन में से क ८ को रूप मानकर उक्त क्रिया करने से 'क २̇ क ३̇ क ५' यह मूलकरणी सिद्ध हुई ।

पूर्वैर्नायमर्थो विस्तीर्योक्तो बालावबोधार्थं तु मयोच्यते-

एकादिसंकलितमित-
करणीखण्डानि वर्गराशौ स्युः ।
वर्गे करणीत्रितये
करणीद्वितयस्य तुल्यरूपाणि ॥ २२ ॥
करणीषट्के तिसृणां
दशसु चतसृणां तिथिषु च पञ्चानाम् ।
रूपकृतेः प्रोज्झ्य पदं
ग्राह्यं चेदन्यथा न सत्क्वापि ॥ २३ ॥
उत्पत्स्यमानयैवं
मूलकरण्याऽल्पया चतुर्गुणया ।
यासामपवर्तः स्या-
द्रूपकृतेस्ता विशोध्याः स्युः ॥ २४ ॥
अपवर्ते या लब्धा
मूलकरण्यो भवन्ति ताश्चापि ।
शेषविधिना न यदि ता
भवन्ति मूलं तदा तदसत् ॥ २५ ॥

करणीवर्गराशौ रूपैरवश्यं भवितव्यम् ।

एककरण्या वर्गे रूपाण्येव, द्वयोः सरूपैका करणी, तिसृणां तिस्रः, चतसृणां षट्, पञ्चानां दश, षण्णां पञ्चदश इत्यादि। अतो द्व्यादीनां करणीनां वर्गेष्वेकादिसंकलितमितानि करणीखण्डानि सरूपाणि यथाक्रमं स्युः। यद्युदाहरणे तावन्ति न भवन्ति तदा संयोज्य योगकरणीं विश्लेष्य वा तावन्ति कृत्वा मूलं ग्राह्यमित्यर्थः। 'वर्गेकरणीत्रितये करणीद्वितयस्य तुल्यरूपाणि—'इत्यादि स्पष्टार्थम्।

अथ 'वर्गे करण्या यदि वा करण्योः' इत्याद्युक्तेरनियमेन करणीशोधने सति मूलाशुद्धिः स्यादिति करणीवर्गे करणीसंख्यानियमपूर्वकं शोध्यकरणीनियमं गीतिद्वयेनार्याद्वयेन च निरूपयति एकादीति। अत्र द्वितीयगीतौ 'तिथिषु पञ्चानाम्' इति बहवः पठन्ति तत्र 'तिथिषु च पञ्चानाम्' इति पठनीयम्। अन्यथा छन्दोभङ्गः स्यात्। उत्पत्स्यमानयेति। अत्र 'अल्पया' इत्युपलक्षणम्। यत्र महती मूलकरणी अल्पा रूपाणि तत्र महत्या चतुर्गुणया यासामपवर्तः स्यात्ता एव विशोध्याः स्युः। आचार्यमते त्वल्पत्वं पारिभाषिकम्, यतोऽस्य सूत्रस्योदाहरणे 'यां मूलकरणीं रूपाणि प्रकल्प्यान्ये करणीखण्डे साध्येते सा महतीत्यर्थः, इति व्याकरिष्यति। पुनर्नियमान्तरमाह—अपवर्त इति। अल्पया क्वचिन्महत्या वा चतुर्गुणया अपवर्ते कृते याः करण्यो लब्धास्ता एव मूलकरण्यो भवन्तीति वस्तुस्थितिः। अथ यदि शेषविधिना 'मूलेऽथ बह्वी करणी तयोर्या—' इत्यादिना ता न भवन्ति तदा

तन्मूलमसदिति । अत्र 'अल्पया' इत्युपलक्षणमिति यद्व्याख्यातं तद्बृहत्खण्डशोधनपूर्वकं मूलग्रहणे, लघुखण्डशोधनपूर्वकं मूलग्रहणे त्वल्पयेत्येव ॥ २२–२५ ॥

करणीवर्ग में नियमित करणीखण्डों के शोधन का प्रकार—

एक से लेकर १, ३, ६, १०, १५, २१, २८, ३६, ४५ इत्यादि जितने संकलित हैं, उतने ही उद्दिष्ट वर्ग में करणीखण्ड होते हैं । *

* यह नियम व्यापक नहीं है, जैसा—'स्थाप्योऽन्त्यवर्गश्चतुर्गुणान्त्यनिघ्नाः—' इस रीति से जो वर्ग किया जाता है, उसमें संकलितमित ही करणीखण्ड होते हैं । परंतु कहीं यथासंभव करणियों का योग करने से, संकलितमित करणीखण्ड नहीं होते । उदाहरण—

(१) क २ क ३ क ५ क ६ क १०
क २ क ३ क ५ क ६ क १०
―――――――――――
क ४ क २४ क ४० क ४८ क ८०
क ९ क ६० क ७२ क १२०
क २५ क १२० क २००
क ३६ क २४०
क १००
―――――――――――

वर्ग=रू २६ क २४ क ४० क ४८ क ८० क ६० क ७२ क १२० क १२० क २०० क २४० । यहाँ पर संकलितमित करणीखण्ड हैं ।

उक्तवर्ग में क १२० क १२०, क ६० क २४०, और क ७२ क २०० इन का योग करने से रू २६ क २४ क ४० क ४८ क ८० क ४८० क ५४० क ५१२ यह हुआ । अब यहाँ संकलितमित करणीखण्ड नहीं हैं । इसलिये आचार्य ने कहा है कि—'अथ यद्युदाहरणे तावन्ति न भवन्ति तदा संयोज्य योगकरणीं विश्लिष्य वा तावन्ति कृत्वा मूलं ग्राह्यमित्यर्थः ।' यदि उदाहरण में संकलितमित करणीखण्ड न हों तो, योग करके अथवा योगजकरणी को अलग कर संकलितमित करणीखण्ड करने के बाद मूल लेना उचित है । परंतु जिस वर्ग में धनर्णसाम्य से कुछ करणी उड़ जाती हैं, वहाँ उन्हें संकलितमित करना कठिन है । उदाहरण—

(२) क १० क ६ क ५ क ३̇
क १० क ६ क ५ क ३̇
―――――――――――
क १०० क २४० क २०० क १२०̇
क ३६ क १२० क ७२̇
क २५ क ६०̇
क ९
―――――――――――

वर्ग=रू २५ क २४० क २०० क १२०̇ क १२० क ७२̇ क ६०̇

यदि उद्दिष्टवर्ग में तीन करणीखण्ड हों तो रूप के वर्ग में दो करणीखण्ड घटाकर जो छ करणीखण्ड हों तो, तीन करणीखण्ड घटाकर, जो दस करणीखण्ड हों तो, चार करणीखण्ड घटाकर जो पंद्रह करणीखण्ड हों तो, पाँच करणीखण्ड घटाकर मूल लेना। यदि इस नियम के विना मूल लिया जायगा तो वह अशुद्ध होगा। इस प्रकार जो छोटी मूलकरणी उत्पन्न होगी, उस को चतुर्गुण करना और उस का जिन करणीखण्डों में अपवर्तन लगे, वे रूपवर्ग में घटाने चाहिए। इस से यह अर्थ निकलता है कि—उक्त नियमानुसार करणीखण्डों को रूप वर्ग में घटाने से जो मूलकरणी उत्पन्न होगी, उस से घटाये हुए करणीखण्ड अवश्य निःशेष होंगे, यदि निःशेष न हों तो मूल अशुद्ध होगा। और उन घटाये हुए करणीखण्डों में चतुर्गुण मूलकरणी का अपवर्तन देने से जो मूलकरणी होंगी, वे यदि शेषविधि से न आवें तो वह मूल अशुद्ध होगा।

उपपत्ति—

एक करणी हो तो उसका वर्ग मूल लेने से रूप ही होगा। दो करणी हों तो 'स्थाप्योऽन्त्यवर्गश्चतुर्गुणान्त्यनिघ्नाः—' इस प्रकार से उन का चौगुना घातकरणी होगी और उन दो करणियों का योग रूप

अब यथासंभव करणियों का योग करने से रू २४ क ६० क ३२ यह वर्ग हुआ। यहाँ संकलितमित करणीखण्ड करना अशक्य है।

प्रायः कई वर्गों में संकलितमित करणीखण्ड रहते हैं, परंतु उक्त नियम के अनुसार वर्गमूल नहीं मिलता। जैसा—

(३) क ३ क ५ क ६ क १०
क ३ क ५ क ६ क १०
—————————
क ९ क ६० क ७२ क १२०
क २५ क १२० क २००
क ३६ क २४०
क १००
—————————
वर्ग=रू २४ क ६० क ७२ क १२० क १२० क २०० क २४०

यथासंभव करणियों का योग करने से 'रू २४ क ४८० क ५१२ क ५४०' यह उद्दिष्टराशि का वर्ग हुआ। यहाँ पर संकलितमित करणीखण्ड तो हैं, परंतु उक्त नियमानुसार मूल नहीं मिलता। अब यह नहीं कह सकते कि जिस रूपयुक्त करणी का वर्गमूल न मिले, वह वर्ग ही नहीं है इत्यादि।

होगा। तीन करणी हों तो उक्त विधि से पहली से दूसरी और तीसरी को गुणा देने से दो खण्ड और दूसरी से तीसरी को गुणने से एक खण्ड, इस प्रकार तीनखण्ड होंगे और करणियों का योग रूप होगा। इस भाँति एकोन पदसंकलित के समान करणीखण्ड होते हैं। जैसा—दो करणीखण्ड के वर्ग में एक करणीखण्ड होता है, और तीन करणीखण्ड के वर्ग में तीन करणीखण्ड होते हैं, चार करणीखण्ड के वर्ग में छ करणीखण्ड होते हैं, इसी भाँति आगे भी जानना। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि जो वर्गस्थान में तीन करणी-खण्ड और रूप हों तो तीन मूलकरणीखण्ड होंगे। यहाँ रूपवर्ग करणियों के योग का वर्ग है। पहली करणी पहला खण्ड और दूसरी, तीसरी करणी का योग दूसरा खण्ड है। इन खण्डों के योग का वर्ग रूपवर्ग के समान है। इसलिये दोनों करणियों के योग के तुल्य रूप घटाने से अन्तरवर्ग शेष रहता है। जैसा—क २ क ३ क ५ मूलकरणी हैं इनका वर्ग रू १० क २४ क ४० क ६० हुआ। यहाँ पहला खण्ड २ और शेष मूलकरणी के योग के समान दूसरा खण्ड ८ कल्पना करने से इन दोनों खण्डों का चौगुना घात ६४ यह वर्गस्थानीय क २४ और क ४० का योग है। क्योंकि वर्ग करने में, पहली करणी से दूसरी और तीसरी करणी को गुणा दें, फिर उसको चौगुनी करके योग करें, अथवा दूसरी और तीसरी करणी के योग को पहली से गुणा दें और उसे चौगुनी करें, फल समान ही होगा। अब २। ८ करणीखण्डों का योग रूप १० होता है, इसका वर्ग १०० हुआ, इसमें चतुर्गुण खण्डों का घात ६४ घटा देने से शेष ३६ का मूल ६ हुआ, यह उन खण्डों का अन्तर है। इसलिये 'योगोऽन्तरेणोनयुतोऽर्धितस्तौ राशी–' इस संक्रमण विधि से ८ और २ खण्ड हुए। यहाँ छोटा खण्ड २ पहली करणी है और बड़ा खण्ड ८ शेष करणी का योग है। इससे फिर क्रिया की है, इसलिये 'वर्गे करणीत्रितये करणीद्वितयस्य तुल्यरूपाणि' यह उपपन्न हुआ।

यहाँ चतुर्गुण प्रथम करणी और शेषकरणी का घात घटाते

हैं, इसलिये शोधित करणीखण्डों में चतुर्गुण प्रथम करणी का अपवर्तन अवश्य लगेगा, यदि अपवर्तन न लगे तो उदाहरण अशुद्ध होगा। जैसा—प्रकृत में छोटी करणी २ है चतुर्गुण ८ हुई, इसका वर्गस्थानीय 'क २४ क ४०' इन करणियों में अपवर्तन देने से ३ । ५ खण्ड मिले। और यही खण्ड शेषविधि से भी आते हैं, जैसा—८ और २ प्रथम सिद्ध करणीखण्ड हैं। इनमें बृहत्खण्ड ८ को रूप मानकर वर्ग ६४ में शेषकरणी ६० घटाने से ४ शेष रहा, इसको मूल २ को रूप ८ में जोड़ने-घटाने से १० । ६ दो खण्ड सिद्ध हुए, इनका आधा ५ और ३ ये मूलकरणी के खण्ड हुए। इस प्रकार क २ क ३ क ५ मूलकरणी हुई। यहाँ शेषविधि और अपवर्तन देने से क ५ क ३ खण्ड आते हैं। इस कारण यह उदाहरण शुद्ध नहीं है। इसके विपरीत जो उदाहरण होंगे वे अशुद्ध हैं २२-२५

उदाहरणम्—

वर्गे यत्र करण्यो
दन्तैः सिद्धैर्गजैर्मिता विद्वन् ।
रूपैर्दशभिरुपेताः
किं मूलं ब्रूहि तस्य स्यात् ॥ १७ ॥

न्यासः । रू १० क ३२ क २४ क ८ । अत्र वर्गे करणीत्रितये करणीद्वितयस्यैव तुल्यानि रूपाणि प्रथमं रूपकृतेरपास्य मूलं ग्राह्यम्, पुनरेकस्याः, एवं क्रियमाणेऽत्र पदं नास्तीत्यतोऽस्य करणीगतमूलाभावः । अथानियमेन सर्वकरणीतुल्यानि रूपाण्यपास्य मूलमानी-

यते तदिदं 'क २ क ८' समागच्छति। इदमसत्। यतोऽस्य वर्गोऽयम् रू १८। अथवा दन्तगजमितयोर्योगं कृत्वा रू १० क ७२ क २४ आनीयते तदिदमप्यसत् रू २ क ६॥

अथ 'वर्गे करणीत्रितये–' इत्यादि नियमं विना मूलग्रहणे मूलासत्त्वमित्यत्रोदाहरणमार्ययाह–वर्गे इति। हे विद्वन्! यत्र वर्गे करण्यः दन्तैः द्वात्रिंशता, सिद्धैः चतुर्विंशत्या, गजैः अष्टाभिः, मिताः संमिताः सन्ति। किं भूता दशभी रूपैः उपेताः संयुक्ताः। तस्य वर्गस्य मूलं किं स्यादिति ब्रूहि॥

अब 'वर्गे करणीत्रितये–' इस नियम के विना जो मूल ग्रहण करें तो, मूल नहीं मिलेगा। इस के लिये उदाहरण–

जिस वर्ग में रूप दस से सहित करणी बत्तीस, करणी चौबीस और करणी आठ हैं उसका मूल क्या होगा ?

यहाँ वर्ग में करणीखण्ड तीन हैं, इसलिये पहले रूपवर्ग में दो करणीखण्ड के समान रूप घटाकर मूल लेना चाहिये। बाद एक करणीखण्ड के समान रूप घटाकर। परंतु इस नियम से मूल नहीं मिलता। जैसा–रूप १० के वर्ग १०० में क २४ क ८ के तुल्य रूप घटाने से शेष ६८ का मूल नहीं मिलता। अब अनियम से रूप वर्ग १०० में क ३२ क २४ क ८ के तुल्य रूप ६४ घटाने से ३६ शेष का मूल ६ हुआ, इसको रूप में जोड़ने-घटाने से १६।४ का आधा ८ और २ हुआ, यह दो मूलकरणी हुईं। परंतु क ८ क २ यह मूल शुद्ध नहीं है, क्योंकि इसका वर्ग रू १८ होता है, अथवा उक्त प्रकार से क ३२ और क ८ का योग करने से वर्ग रू १० क ७२ क २४ हुआ अब रूपवर्ग १०० में क ७२ और क २४ के तुल्य रूप ९६ घटाने से शेष ४ मूल २ आया, इसको रूप में जोड़ने-घटाने से १२ और ८ का आधा ६ और ४ हुआ। यहाँ छोटी करणी चार का मूल दो मिलता है, इसलिये रू २ क ६ मूल

हुआ । परंतु यह मूल ठीक नहीं है, क्योंकि इसका वर्ग रू १० क ९६ होता है ॥

उदाहरणम्—

वर्गे यत्र करण्य-
स्तिथिविश्वहुताशनैश्चतुर्गुणितैः ।
तुल्या दशरूपाढ्याः
किं मूलं ब्रूहि तस्य स्यात् ॥ १८ ॥

न्यासः । रू १० क ६० क ५२ क १२ । अत्र किल वर्गे करणीत्रयमस्तीति तत्करणीद्वय-द्विपञ्चाशद्द्वादशमितस्य 'क ५२ क १२' तुल्य रूपाण्यपास्य ये मूलकरण्यावुत्पद्येते 'क ८ क २' तयोरल्पयानया चतुर्गुणया ८ द्विपञ्चाशद् द्वादशमितयोरपवर्तो न स्यात् अतस्ते न शोध्ये । यत उक्तम्—'उत्पत्स्यमानयैवम्—' इत्यादि । अत्र 'अल्पया' इत्युपलक्षणम् । तेन क्वचिन्महत्यापि । तदा (यां) मूलकरणीं रूपाणि प्रकल्प्यान्ये करणीखण्डे साध्ये सा महती प्रकल्प्येत्यर्थः ॥

अथ 'वर्गे करणीत्रितये—' इत्यादिनियमेनापि मूलग्रहणेऽग्रिमनियमं विना मूलं दुष्टमित्यत्रोदाहरणमार्ययाह—वर्गे इति । स्पष्टार्थेयम् ॥

अब 'वर्गे करणीत्रितये–' इस नियम के अनुसार मूल ग्रहण करने पर भी अगले नियम विना मूल अशुद्ध होगा, यह दिखलाने के लिये

उदाहरण—

जिस वर्ग में रूप दस से सहित करणी साठ, करणी बावन और करणी बारह हैं, उसका मूल क्या होगा ?

यहाँ करणीखण्ड तीन हैं, इसलिये रूप वर्ग में क ५२ और क १२ के समान रूप घटाने से ३६ शेष का मूल ६ हुआ, इसको रूप १० में जोड़ने-घटाने से १६ और ४ का आधा ८। २ हुआ, इनमें २ मूलकरणी और ८ रूप कल्पना करने से, रूप के वर्ग ६४ में शेष करणी ६० के तुल्य रूप घटाने से ४ शेष का मूल २ हुआ, इसको रूप ८ में जोड़ने-घटाने से १० और ६ का आधा ५ और ३ हुआ, इस प्रकार क २ क ३ क ५ मूलकरणी हुई। परंतु यह मूल ठीक नहीं है, क्योंकि इसका वर्ग रू १० क २४ क ४० क ६० है। इसीलिये 'अल्पया चतुर्गुणया, यासामपवर्तः स्याद्रूपकृतेस्ता विशोध्याः स्युः' यह विशेष कहा है। यहाँ छोटी करणी २ है, यह चतुर्गुण करने से ८ हुई, इसका शोधित क ५२ क १२ में अपवर्तन नहीं लगता, इस कारण मूल अशुद्ध है। यहाँ जो छोटी करणी को चौगुनी करके शोधित करणीखण्डों में अपवर्तन देना कहा है वह उपलक्षण है। इसलिये कहीं चौगुनी बड़ी करणी का भी शोधित करणीखण्डों में अपवर्तन देते हैं। जिस मूलकरणी को रूप मानकर अन्य दो करणीखण्ड साधे जाते हैं, वह महती अर्थात् बड़ी करणी है॥

उदाहरणम्–

अष्टौ षट्पञ्चाशत्
षष्टिः करणीत्रयं कृतौ यत्र।
रूपैर्दशभिरुपेतं
किं मूलं ब्रूहि तस्य स्यात्॥ १९॥

न्यासः । रू १० क ८ क ५६ क ६० ।
अत्राद्यखण्डद्वये 'क ८ क ५६' शोधिते उत्पन्नयाऽल्पया चतुर्गुणया ८ तयोः खण्डयोरपवर्तनलब्धे खण्डे १।७परं शेषविधिना मूलकरण्यौ नोत्पद्येते अतः खण्डे न शोध्ये । अन्यथा शोधने कृते मूलं नायातीत्यतस्तदसत्॥

अथात्र 'उत्पत्स्यमानयैवं मूलकरण्याल्पया चतुर्गुणया । यासामपवर्तः स्याद्रूपकृतेस्ता विशोध्याः स्युः, इति नियमे सत्यपि मूलग्रहणेऽग्रिमनियमाभावे मूलमसदित्यत्रोदाहरणमार्ययाह—अष्टाविति । यत्र कृतौ वर्गे दशभी रूपैरुपेतं सहितम् 'अष्टौ षट्पञ्चाशत्, षष्टिः, इदं करणीत्रयं वर्तते यत्र वर्गे पदं किं यदिति ब्रूहि ॥

अब 'उत्पत्स्यमानयैवं—' इस नियम से मूल लाते हैं, वह मूल अगले नियम के विना अशुद्ध होता है, यह दिखलाने के लिये उदाहरण—

जिस वर्ग में रूप दश से सहित करणी आठ, करणी छप्पन और करणी साठ ह, वहाँ क्या मूल होगा ?

यहाँ उक्त नियम के अनुसार दो करणीखण्ड घटाना चाहिये । इसलिये रूपवर्ग १०० में क ५६ और क ८ के समान रूप घटाने से शेष ३६ का मूल ६ आया, इसको रूप में जोड़ने-घटाने से १६ । ४ का आधा ८ । २ हुआ, यह करणीखण्ड हुए । इनमें से बड़े करणीखण्ड को रूप मानकर वर्ग करने से ६४ में क ६० के तुल्य रूप घटा देने से ४ शेष रहा, इसका मूल २ हुआ, इसको रूप ८ में जोड़ने-घटाने से १० । ६ का आधा ५ । ३ मूलकरणी हुई । इस भाँति क २ क ३ क ५ मूल हुआ, परंतु यह मूल अशुद्ध

है। क्योंकि चौगुनी छोटी करणी का शोधित क ८ क ५६ में अपवर्तन देने से १ और ७ यह खण्ड उत्पन्न हुए और शेषविधि से क ५ क ३ आती हैं। इसलिये रूपवर्ग में क ८ क ५६ इन खण्डों को नहीं घटाना चाहिये॥

उदाहरणम्–

चतुर्गुणाः सूर्यतिथीषुरुद्र-
नागर्तवो यत्र कृतौ करण्यः।
सविश्वरूपा वद तत्पदं ते
यद्यस्ति बीजे पटुताभिमानः॥ २०॥

न्यासः। रू १३ क ४८ क ६० क २० क ४४ क ३२ क २४। अत्र करणीषट्के तिसृणां करणीनां तुल्यानि रूपाणि प्रथमं रूपकृतेरपास्य मूलं ग्राह्यं,पश्चाद्द्वयोः,तत एकस्याः, एवं कृतेऽत्र मूलाभावः। अन्यथा तु प्रथमाद्यकरण्यास्तुल्यानि रूपाण्यपास्य, पश्चाद्द्वितीयतृतीययोः, ततः शेषाणां रूपकृतेर्विशोध्यानीतं मूलम् क १ क २ क ५ क ५ तदिदमप्यसत् यतोऽस्य वर्गोऽयम् रू २३ क ८ क ८० क १६० येरस्य मूलानयनस्य नियमो न कृतस्तेषामिदं दूषणम्।एवंविधवर्गे करणी-

नामासन्नमूलकरणेन मूलान्यानीय रूपेषु प्रक्षिप्य मूलं वाच्यम् ।

अथ वर्गे षट्प्रभृतिषु करणीखण्डेष्वप्येवमेवेति व्याप्तिं प्रदर्शयितुमुपजातिकयोदाहरणमाह—चतुर्गुणा इति हे गणक, ते तव यदि बीजे पटुताभिमानः पाटवाहंकारोऽस्ति तर्हि यत्र कृतौ सूर्य १२ तिथी १५ षु ५ रुद्र ११ नाग ८ र्तवः ६ चतुर्गुणाः करण्यः सन्ति । किंभूताः । सविश्वरूपाः त्रयोदशसंख्याकैः रूपैः सहिताः । तत्पदं वर्गमूलं वद कथय ॥

उदाहरण—

जिस वर्ग में रूप तेरह से सहित करणी अड़तालीस, करणी साठ, करणी बीस, करणी चौवालीस, करणी बत्तीस और करणी चौबीस हैं उसका वर्गमूल क्या होगा ?

यहाँ करणीखण्ड छ हैं, इसलिये पहले रूपवर्ग में तीन करणी-खण्ड के समान रूप घटाकर मूल लेना चाहिये, फिर दो करणी के तुल्य, फिर एक करणी के तुल्य, इस प्रकार क्रिया करने से मूल नहीं आता तो अनियम से रूपवर्ग १६९ में पहली करणी ४८ के तुल्य रूप घटाने से १२१ शेष रहा, इसका मूल ११ आया, इसको रूप १३ में जोड़ने-घटाने से २४।२ का आधा १२ और १ हुआ, इनमें से बड़े खण्ड को रूप मानकर वर्ग १४४ हुआ, इसमें क ६० क २० के तुल्य रूप घटाने से ६४ का मूल ८ हुआ, इसको रूप १२ में जोड़ने-घटाने से २०।४ का आधा १० और २ हुआ, इनमें से बड़े खण्ड १० को रूप मानकर, वर्ग १०० में क ४४ क ३२ और क २४ के तुल्य रूप घटाने से शेष ० बचा, इसके मूल को रूप में जोड़ने-घटाने से १०। १० का आधा ५। ५ हुआ । इस भाँति 'क १ क २ क ५ क ५' यह मूल आया, परंतु यह ठीक नहीं है । क्योंकि इसका वर्ग 'रू १३ क ८ क २० क २० क ४० क ४० क १००' यह है । इसमें यथासंभव करणी-

खण्डों का योग करने से, रू २६ क ८ क ८० क १६० हुआ।

जिन आचार्यों ने करणी मूल के आनयन में नियम नहीं किया उनका यह दूषण है। ऐसे स्थल में करणीखण्डों का आसन्न मूल लेकर, उसको रूप में जोड़कर मूल समझना चाहिए।

अथ 'महती रूपाणि' इत्युपलक्षणम्, यतः क्वचिदल्पापि। तत्रोदाहरणम्–

चत्वारिंशदशीति–
द्विशतीतुल्याः करण्यश्चेत्।
सप्तदशरूपयुक्ता-
स्तत्र कृतौ किं पदं ब्रूहि॥ २१॥

न्यासः। रू १७ क ४० क ८० क २००। शोधिते जाते खण्डे क १० क ७। पुनर्लघ्वीं करणीं रूपाणि कृत्वा लब्धे करण्यौ क ५ २। एवं मूलकरणीनां न्यासः। क १० क ५ क २।

इति करणीषड्विधम्।

*इति (षट्) त्रिंशत्परिकर्माणि॥

---

* अयं पाठष्टीकापुस्तके नोपलभ्यते, तथाच '––षड्विधचतुष्टयमुक्त्वा–' इति बीजनवाङ्कुरन्यस्तकुट्टकोपोद्घातलेखाच्चासंगतः प्रतीयते। किंच अनेकवर्णषड्विधगणनया कथंचित्त्रिंशत्परिकर्माणि संभवन्ति, परं टीकाविसंवादान्न सुष्ठु॥

क्वचिदल्पापि रूपाणीत्यत्रोदाहरणमुद्दीत्याह—चत्वारिंशदिति। 'अशीतिः' इति रेफान्तः पाठो न युक्तः । स्पष्टार्थः ॥

इति द्विवेदोपाख्याचार्यश्रीसरयूप्रसादसुत—दुर्गाप्रसादोन्नीते लीलावतीहृदयग्राहिणि बीजविलासिनि करणीषड्विधं समाप्तम् ।

उदाहरण—

जिस वर्ग में, रूप सत्तरह से सहित करणी चालीस, करणी अस्सी और करणी दोसौ हैं वहाँ क्या वर्गमूल होगा ?

यहाँ रूपवर्ग २८९ में क ८० क २०० के तुल्य रूप घटाकर उक्त विधि से १० । ७ करणीखण्ड उत्पन्न हुए। इन में छोटे करणी-खण्ड को रूप मानकर, उक्त प्रकार से ५ । २ करणीखण्ड हुए, इस भाँति क १० क ५ क २ मूल हुआ । यह मूल शुद्ध है, क्योंकि इसका वर्ग रू १७ क ४० क ८० क २००, होता है । यहाँ पहली मूलकरणी १० और ७ हैं, इन में बड़ी करणी चतुर्गुण ४० का घटाये हुए 'क ८० क २००' इन करणीखण्डों में अपवर्तन देने से २ । ५ करणीखण्ड लब्ध हुए । और शेष विधि से भी यही खण्ड आते हैं, इसलिये यह मूल शुद्ध है । और जो (२४) वें सूत्र के भाष्य में कहा है कि चौगुनी छोटी करणी का जिन वर्गस्थानीय करणीखण्डों में अपवर्तन लगे वे रूपवर्ग में घटाने के योग्य हैं यह उपलक्षण है । इसीलिये यहाँ पर चौगुनी बड़ी करणी का शोधित करणीखण्डों में अपवर्तन दिया है ॥

करणीषड्विध समाप्त ।

दुर्गाप्रसादरचिते भाषाभाष्ये मिताक्षरे ।
वासनाभङ्गिसुभगं करणीषड्विधं गतम् ॥

अथ कुट्टकः ।

भाज्योहारः क्षेपकश्चापवर्त्यः
केनाप्यादौ संभवे कुट्टकार्थम् ।
येन च्छिन्नौ भाज्यहारौ न तेन
क्षेपश्चैतद्दुष्टमुद्दिष्टमेव ॥ २६ ॥

एवं सामान्यतोऽव्यक्तक्रियोपयुक्तं षड्विधचतुष्टयमुक्त्वा सांप्रतमनेकवर्णसमीकरणप्रक्रियोपयुक्तं कुट्टकमाह—कुट्टको नाम गुणकः। हिंसावाचकशब्दैर्गुणनाभ्युपगमात्। योगरूढ्याः * गुणकविशेषश्चायम् । कश्चिद्राशिर्येन गुणित उद्दिष्टक्षेपयुतोन उद्दिष्टहरेण भक्तः सन्निःशेषो भवेत्स गुणकः कुट्टक इति पूर्वेषां व्यपदेशात् । तत्र कुट्टकज्ञानार्थं प्रथममितिकर्तव्यतामुद्देशखिलत्वं च शालिन्या निरूपयति—भाज्यो हार इति। कश्चिद्राशिर्येन गुणित उद्दिष्टक्षेपेण युतोन उद्दिष्टहरेण भक्तः सन्निशेषः स्यात् तस्य गुणकविशेषस्य 'कुट्टकः' इति संज्ञा, इति प्रागेवाभिहितम् । अत्रागता लब्धिर्लब्धिसंज्ञैव । हरो हरसंज्ञ एव । क्षेपोऽपि क्षेपसंज्ञ एव । अन्वर्थ संज्ञाश्चैताः । यो राशिर्गुण्यते तस्य 'भाज्यः' इति संज्ञा । भजनयोगात् । अस्य कुट्टकस्य ज्ञानार्थमादौ स भाज्यो हारः क्षेपकश्च केनापि तुल्येनाङ्केनापवर्त्यः । भाज्यहारक्षेपा एकेनैवाङ्केनापवर्त्या इत्यर्थः । कस्मिन्सति अपवर्तनसंभवे सति । अपवर्तनं नाम निःशेषभजनम् । तच्चैकातिरिक्तेनाभिन्नेन ज्ञेयम् । अन्यथा 'संभवे' इत्यस्यानुपपत्तेः । एकेन भिन्नेन वा केनचिदङ्केन सर्वत्रापवर्तनसंभवात् । 'तौ भाज्यहारौ दृढसंज्ञकौ स्तः' इत्यस्य व्याख्यानावसरे "दृढाः" इत्यन्वर्थसंज्ञा ।

---

* यत्र त्ववयवशक्तिविषये समुदायशक्तिरप्यस्ति तद्योगरूढम् ।

पुनर्नापवर्तन्ते न क्षीयन्त इत्यर्थः" इति बुद्धिविलासिन्यां श्रीगणेशदैवज्ञैरप्युक्त एवायमर्थः । भाज्यहारक्षेपाणमपवर्तनसंभवे सत्यवश्यमपवर्त्या एव । अन्यथा कुट्टको न संभवतीति सिद्धम् । उद्देशस्य खिलत्वज्ञापनार्थमाह—येनेति । येनाङ्केन भाज्यहारौ छिन्नावपवर्तितौ तेनेवाङ्केन क्षेपश्चेन्न छिन्नः अपवर्तितो न स्यात्तर्हि एतदुद्दिष्टं पृच्छकेन पृष्टं दुष्टमेव । अयं भाज्यो येन केनापि गुणितस्तेन क्षेपेण युतोनस्तेन हरेण भक्तः सन् कदाचिदपि निःशेषो न भवेदित्यर्थः ॥ २५ ॥

कुट्टक ।

अब अनेकवर्ण समीकरण को उपयोगि कुट्टक का निरूपण करते हैं—जिस अङ्क से उद्दिष्टराशि गुणित, इष्टक्षेपसहित किंवा रहित और इष्टभाजक से भाजित निःशेष हो, उस गुणक की 'कुट्टक' यह संज्ञा की है । यहाँ पर जो राशि गुणी जाती है उसको भाज्य, जो जोड़ी अथवा घटाई जाती है उसको क्षेप, जिसका भाग दिया जाता है उसको हार और जो लब्धि आती है उसको लब्धि कहते हैं ।

कुट्टक के ज्ञान के लिये पहले भाज्य, हार और क्षेप में किसी एक ही समान अङ्क का अपवर्तन देना (अपवर्तन वह कहलाता है कि जिसका पूरा-पूरा भाग लग जावे) और वह अपवर्तन की संख्या एक अथवा भिन्न न हो, क्योंकि एक वा, भिन्न-अङ्क का सर्वत्र अपवर्तन लग सकता है । इस भाँति अपवर्तन देने से भाज्य और हार अपवर्तित हों, परंतु यदि क्षेप में अपवर्तन न लगे तो, वह उदाहरण अशुद्ध होगा ।

उपपत्ति—

(१) जैसे—लब्धि अपवर्तित भाज्य भाज्यकों पर से आती है, वैसे ही किसी एक अङ्क से गुणित अथवा, अपवर्तित भाज्य-भाजकों पर से आती है, यह बात प्रसिद्ध है। प्रकृत में किसी गुण से गुणा, धन वा ऋण क्षेप से जुड़ा कल्पित-भाज्य, भाज्य होता है और भाजक

यथास्थित रहता है। इस प्रकार भाज्य के दो खण्ड होते हैं—गुण से गुणित पहला खण्ड, क्षेप दूसरा खण्ड, इन दोनों खण्डों का योग भाज्य है। भाज्य और भाजक में अपवर्तन देने से लब्धि में विकार नहीं होता, इसलिये जिस अङ्क से भाजक अपवर्तित हुआ है, उसी से खण्डद्वययोगरूप भाज्य भी अपवर्त्य (अपवर्तनयोग्य) है। वहाँ खण्डों का योग अपवर्तित अथवा, अपवर्तित खण्डों का योग तुल्य होते हैं। जैसा— २७/१५ इन भाज्य भाजकों में तीन का अपवर्तन देने से ९/५ ये अपवर्तित भाज्य-भाजक हुए, अथवा ९।१८ ये भाज्य के खण्ड; तीन के अपवर्तन देने से ३।६ हुए, इन खण्डों का योग वही अपवर्तित भाज्य ९ हुआ। इसी भाँति भाज्य के दो से अधिक खण्ड करके उन में अपवर्तन दे और उन अपवर्तित खण्डों का योग करे तो भी वही अपवर्तित भाज्य होगा। इसलिये, भाजक के अपवर्तित होने से गुण से गुणित कल्पित भाज्य और क्षेप भी अपवर्त्य होता है। यद्यपि गुण के न जानने से गुण-गुणित भाज्य भी अज्ञात है तो उसमें कैसे अपवर्तन हो सकेगा, तथापि कल्पित भाज्य में अपवर्तन देकर पीछे उसको गुण से गुण दें तो कल्पित भाज्यरूपी भाज्यखण्ड ही अपवर्तित होगा। क्योंकि गुणित में अपवर्तन देने से अथवा, अपवर्तित को गुणने से कुछ विशेष नहीं होता। कल्पित-भाज्य जिस गुण से गुणित भाज्यखण्ड होता है, उसी से गुणित, अपवर्तित भाज्य भी अपवर्तित भाज्यखण्ड होगा और अपवर्तित क्षेप दूसरा खण्ड। इस भाँति भाज्य हार और क्षेप अपवर्तित हों अथवा, अनपवर्तित हों, तो भी गुण-लब्धि में विशेष नहीं होता। इस कारण, लाघवार्थ भाज्य, हार और क्षेप अपवर्तित किये जाते हैं। इससे 'भाज्यो हारः—' यह श्लोकार्ध उपपन्न हुआ।

(२) गुणगुणित भाज्य के समान एक खण्ड, क्षेप के समान दूसरा खण्ड, उन खण्डों का योग हर से भाजित और हर से भागा हुआ खण्डयोग, तुल्य होते हैं। जैसा - गुणगुणित भाज्य=५×२२१= ११०५। क्षेप=६५। हर १९५ से भाजित ११०५/१९५, ६५/१९५ इन का योग ११७०/१९५ यह भाज्य ११०५ क्षेप ६५ के योग ११७० हर

१९५ से भाजित $\frac{११७०}{१९५}$ के समान है । इसी प्रकार केवल भाज्य और भाजक पर से जैसे—लब्धि आती है वैसे ही उनमें अपवर्तन देने से आती है । इसलिये $\frac{११०५}{१९५}$, $\frac{६५}{१९५}$ इन खण्डों में १३ का अपवर्तन देने से $\frac{८५}{१५}$, $\frac{५}{१५}$ इन का योग $\frac{९०}{१५}$ हुआ । अथवा, इन खण्डों के योग $\frac{११०५}{१९५} + \frac{६५}{१९५} = \frac{११७०}{१९५}$ में १३ का अपवर्तन देने से योग हुआ $\frac{९०}{१५}$ । गुण से गुणित इष्टाङ्क से अपवर्तित, अथवा इष्टाङ्क से अपवर्तित और गुण से गुणित भाज्य में, अन्तर नहीं पड़ता तो यदि पहले लिखे खण्डों के योग में $\frac{११७०}{१९५} = \frac{९०}{१५}$ अपवर्तन देते हैं तो $\frac{११०५}{१९५}$, $\frac{६५}{१९५}$ इन खण्डों में भी अपवर्तन देना उचित है । नहीं तो फल की समता कैसे होगी । इसलिये भाज्य और हार के समान क्षेपक में भी अपवर्तन देना अत्यावश्यक है । इससे 'येन च्छिन्नौ भाज्यहारौ न तेन क्षेपः—' यह श्लोक का उत्तरार्ध उपपन्न हुआ ।।

परस्परं भाजितयोर्ययोर्यः
शेषस्तयोः स्यादपवर्तनं सः ।
तेनापवर्तेन विभाजितौ यौ
तौ भाज्यहारौ दृढसंज्ञकौ स्तः ।। २७।।
मिथो भजेत्तौ दृढभाज्यहारौ
यावद्विभाज्ये भवतीह रूपम् ।
फलान्यधोधस्तदधो निवेश्यः
क्षेपस्तथान्त्ये खमुपान्तिमेन ।। २८ ।।
स्वोर्ध्वे हतेऽन्त्येन युते तदन्त्यं
त्यजेन्मुहुः स्यादिति राशियुग्मम् ।

ऊर्ध्वो विभाज्येन दृढेन तष्टः
फलं गुणः स्यादधरो हरेण ॥ २९ ॥

अथापवर्तनाङ्कं कुट्टकस्येतिकर्तव्यतां चोपजातित्रयेणाह–परस्परमित्यादि । ययो राश्योः परस्परमन्योन्यं भाजितयोः सतोर्यः शेषाङ्कः स तयोरपवर्तनं स्यात् । तेन तौ निःशेषं भाज्येते एव । एतदुक्तं भवति–हरेण भाज्ये भक्ते यच्छेषं तेनापि स हरो भाजनीयः, तच्छेषेणापि भाज्यशेषं, तेनापि हरशेषमिति । पुनः पुनः परस्परभजने क्रियमाणे यद्यन्ते रूपं शेषं स्यात्तदा तौ नापवर्तेते एव, रूपस्यैव शेषत्वात्तेनापवर्ते भाज्यहारक्षेपाणामविकार एव । यदा तु शून्यं शेषं स्यात्तदा हरीभूतं यत्प्राक् शेषमधः स्थापितं तदेव भाज्यहारयोरपवर्तनं स्यात् शेषो ह्यपवर्तनाङ्कः । तस्मादन्तिमशेषोङ्क एवापवर्तनाङ्कः । एवं ज्ञातेनापवर्तनाङ्केन यौ भाज्यहारौ विभाजितौ तौ दृढसंज्ञकौ स्तः । तेनैव क्षेपोऽप्यपवर्त्यः । 'भाज्यो हारः क्षेपकश्चापवर्त्यः' इत्युक्तत्वात् । सोऽपि दृढसंज्ञः स्यात् । अथ तौ दृढभाज्यहारौ उक्तवन्मिथः परस्परं तावद्भजेद्यावद्विभाज्ये भाज्यस्थाने रूपं भवेत् । इहैतेषु परस्परभजनेष्वागतानि फलान्यधोऽधोनिवेश्यानि । फलं च फले च फलानि च फलानि । द्वन्द्वैकशेषः । तेषां फलानां वल्लीवदधोधः स्थापितानामधोभागे क्षेपो निवेश्यस्तथा तेषामप्यधोऽन्ते खं निवेश्यम्, एवं वल्ली जायते । तत उपान्तिमेनाङ्केन स्वोर्ध्वे स्वोर्ध्वस्थितेऽङ्के हते अन्त्येनाङ्केन युते च सति तदन्त्यं त्यजेत् इति मुहुः । उपान्तिमेन स्वोर्ध्वे हतेऽन्त्येन युते तदन्त्यं त्यजेत्, इति पुनः पुनः कृते राशियुग्मं स्यात् । तत्रोर्ध्वराशिर्दृढेन विभाज्येन तष्टः सन् फलं भवेत् । फलं नाम लब्धिः । अधरोऽधस्तनो राशिर्दृढेन हरेण तष्टः सन् गुणः स्यात् । तक्षू त्वक्षू तनूकरणे, इति धातोः कर्मणि क्तः । तष्टस्तनूकृतोऽव-

शेषित इति यावत्। अत्र 'तष्टः' इत्यनेन भक्तावशेषितो राशिर्ग्राह्यो नतु लब्धिरित्यर्थः। तेन गुणेन दृढभाज्ये गुणिते दृढक्षेपयुतोने दृढहरेण भक्ते शेषं न स्यादिति। उद्दिष्टेष्वपि भाज्यहारक्षेपेषु ते एव गुणलब्धी स्त इत्यर्थसिद्धमविशेषात् ॥

अपवर्तनाङ्क और दृढ भाज्य-हार-क्षेप का प्रकार—

आपस में उद्दिष्ट दो राशियों के भाग देने से जो शेष बचे वह उन का अपवर्तनाङ्क होगा अर्थात् उस से दोनों राशि निःशेष भाजित हो जायँगे, तात्पर्य यह है कि भाज्य में हर का भाग देने से जो शेष बचे, उसका हर में भाग देना और उस हर शेष का भाज्य शेष में भाग देना, इस भाँति बार-बार क्रिया करने से, अन्त में जो रूप शेष रहे उससे वे भाज्य, हार, और क्षेप अविकृत ही रहेंगे अर्थात् छोटे न होंगे। यदि शून्य शेष बचे तो, भाजकरूप भाज्य के नीचे स्थापित पहला शेष ही उन का अपवर्तनाङ्क होगा। इस प्रकार ज्ञात होता है कि अपवर्तनाङ्क से अपवर्तित भाज्य, हार और क्षेप दृढ़ संज्ञक होते हैं। और उन दृढसंज्ञक भाज्यहारों का परस्पर तब तक भाग देते जाना जब तक कि भाज्य के स्थान में रूप न हो जाय। इस प्रकार जो लब्धि मिलें, उन्हें एक के नीचे एक इस क्रम से लिखना और उन लब्धियों के नीचे क्षेप को लिखकर शून्य लिखना इस प्रकार एक ऊर्ध्वाधर अङ्कों की पङ्क्ति उत्पन्न होगी, उस की 'वल्ली' संज्ञा है। उपान्तिम अर्थात् अन्त के समीपवाले अङ्क से उस के ऊपर-वाले अङ्क को गुणा देना और उसमें अन्तवाले अङ्क को जोड़ देना बाद, उसको बिगाड़ देना, ऐसे ही बार बार क्रिया करना जब तक कि दो राशि न हो जाय। फिर उनमें से ऊपरवाली राशि दृढ भाज्य से तष्टित फल (अर्थात् लब्धि) होगा और नीचे की राशि दृढहार से तष्टित गुण होगा ॥

उपपत्ति—

एक ऐसा बड़ा अपवर्तनाङ्क खोजना चाहिये कि जिस से अपवर्तित भाज्य-हार फिर अपवर्तित न हों। ऐसे अपवर्तनाङ्क से अपवर्तित

भाज्य हार दृढ संज्ञक होते हैं। जैसा—$\left|\begin{matrix}२२१\\१६५\end{matrix}\right|$ इन भाज्य-हारों में १६५ यह छोटा है, इस से बड़ा अपवर्तनाङ्क नहीं हो सकता। १६५ हार का भाज्य २२१ में भाग देने से नि:शेष नहीं होता। इस कारण भाज्य के दो खण्ड किए। एक हर लब्धि के घात के समान १×१६५, दूसरा शेष के समान २६। ये दोनों खण्ड जिस से नि:शेष भाजित होंगे, उसी से भाज्य भी नि:शेष होगा। अब १६५। २६ इन खण्डों में लघुखण्ड का अपवर्तन संभव है, पर नि:शेष नहीं होता। यहाँ भी हर २६ लब्धि ७ के घात के समान एक खण्ड २६ × ७ = १८२, शेष के समान दूसरा खण्ड १३। इन में लघुखण्ड का अपवर्तन संभव ह और १३ का भाग देने से १८२। १३ दोनों खण्ड नि:शेष होंगे। क्याकि पहला खण्ड १८२, पहली लब्धि ७ और हर २६ के घात के समान ह आर हर २६ दूसरे खण्ड १३ के भाग देने से नि:शेष होता ह, तो पहला खण्ड १८२ दूसरे खण्ड १३ से अवश्य नि:शेष होगा और उनका योग भी १६५ उसी हर के भाग देने से नि:शेष होगा। अब यदि दूसरे शेष १३ से पहला शेष २६ नि:शेष होगा तो १६५। २६ इन खण्डों का योग भी २२१ उसी १३ से नि:शेष होगा। इससे 'परस्परं भाजितयोर्ययोर्यः—' यह श्लोक उपपन्न हुआ।

अथवा। भाज्य=८१ हार=१५। यहाँ पहली लब्धि ५ और पहला शेष ६, इस का हार १५ में भाग देने से दूसरी लब्धि २ दूसरा शेष ३, इस का पहले शेष ६ में भाग देने से, तीसरी लब्धि २ तीसरा शेष ० रहा। हर-लब्धि का घात भाज्यराशि के समान होता है, इस कारण दूसरा शेष ३ और तीसरी लब्धि २ से पहला शेष ६ ज्ञात हुआ इसी भाँति पहला शेष ६ और दूसरी लब्धि २ के घात १२ से घटाया गया हार दूसरा शेष होता है इसलिये दूसरे शेष से जुड़ा पहला शेष और दूसरी लब्धि का घात हार के समान है, जैसा—

पशे × द्विल × द्विशे = हार। ६×२+३=१५।

यहाँ पहले शेष से गुणित दूसरी लब्धि है और पहला शेष, दूसरे शेष एवं तीसरी लब्धि के घात के समान है, इसलिये ऐसा रूप बना—

द्विल × द्विशे × तैल + द्विशे = हार ।

हार को पहली लब्धि से गुणाकर उस में पहले शेष के समान तीसरी लब्धि और दूसरे शेष के घात को जोड़ देने से—

पल × द्विल × तल × द्विशे + पल × द्विशे + तल × द्विशे = भाज्य । इस भाज्य में तीन खण्ड हैं और हार में दो खण्ड हैं, दोनों दूसरे शेष (द्विशे) से भाजित निःशेष होते हैं, इस कारण भाज्य ८१ हार १५ दूसरे शेष ३ से भाजित दृढ भाज्य = २७ । हार = ५ ।

भाज्य, हार और क्षेप यह कुट्टक विधि के सहयोगी हैं अर्थात् किस गुणक से गुणित, क्षेप से सहित वा रहित और हार से भाजित भाज्य निःशेष होगा । इस प्रश्न में जो लब्धि होगी वही लब्धि और गुणक गुण होगा । अब उन के ज्ञान के लिये यत्न करते हैं—भाज्य में हार का भाग देने से जो लब्धि मिले उस से गुणित हार एक खण्ड, शेष के समान दूसरा खण्ड । जैसा—भाज्य १७३ में हार ७१ का भाग देने से २ लब्धि मिली और ३१ शेष रहा, उक्त रीति से १४२ । ३१ ये दो खण्ड हुए । इन का योग भाज्य के तुल्य है । पहला खण्ड १४२, हार ७१ लब्धि २ के घात १४२ के समान है, इस कारण हार का भाग देने से निःशेष होगा और क्षेप दूसरे खण्ड ३१ से भाजित यदि निःशेष हो तो, जो लब्धि है, वही गुण होगा । जैसा—ऋणक्षेप ६२ दूसरे खण्ड ३१ का भाग देने से निःशेष होता है और २ लब्धि आती है, तो यही गुण होगा । क्षेप दूसरे खण्ड का भाग देने से निःशेष नहीं होता, इस कारण गुण को जानने के लिये दूसरा उपाय करते हैं—भाज्य के दो खण्डों में, यदि दूसरा खण्ड रूप के समान हो तो, वह क्षेप के समान गुण से गुणित क्षेप के समान होगा । वहां यदि ऋणक्षेप हो तो, उस के घटाने से दूसरे खण्ड का नाश होगा, जैसा—भाज्य = ९ हार = ४ । यहां भाज्य के दो खण्ड ८ । १ दूसरा खण्ड १ क्षेप ६२ से गुणने से ६२ हुआ, इस में क्षेप ६२ घटा देने से शून्य ० हुआ, और पहला खण्ड ८ क्षेप ६२ से

गुणित ४९६ हुआ इस में हार ४ का भाग देने से १२४ लब्धि आई। अथवा, पहले खण्ड ८ में हार ४ का भाग देने से २ लब्धि आई, इस को क्षेपतुल्य गुण ६२ से गुणाने से पहली लब्धि हुई। यहां भाज्य में हार का भाग देने से, यदि रूप शेष न रहे तो, गुण का ज्ञान न होगा। इसलिये भाज्य हारों के आपस में भाग देने से जहां रूप शेष हो, उसी स्थान में, क्षेप के तुल्य गुण होगा। परंतु ऋणक्षेप में, जैसा—भाज्य=१७३ हार=७१ क्षेप=३, यहां दृढ भाज्य हारों के परस्पर भाग देने से, लब्धि और भिन्न भिन्न भाज्य-हार होते हैं—

(१) भाज्य १७३ हार ७१	(२) भाज्य ७१ हार ३१	(३) भाज्य ३१ हार ९	(४) भाज्य ९ हार ४	२ २ ३ २

यहां अन्त भाज्य के दो खण्ड ८। १ और उक्त रीति से ऋण-क्षेप में क्षेप ३ के समान गुण हुआ। अन्त्य लब्धि २ क्षेप ३ से गुणाने से ६ हुई, इस में द्वितीय खण्डोत्पन्न शून्य के समान लब्धि जोड़ने से ६ लब्धि हुई। क्योंकि भाज्य का दूसरा खण्ड १ क्षेप ३ से गुणित ३ हुआ इस में ऋणक्षेप ३ घटा देने से शून्य ० शेष रहा। इस में हार ४ का भाग देने से शून्य ० लब्धि आती है। इस से 'मिथो भजेत्तौ दृढभाज्यहारौ, यावद्विभाज्ये भवतीह रूपम्। फलान्यधोधस्तदधो निवेश्यः क्षेपस्तथान्त्ये खं—' यह वल्ली

२ २ ३ २ ३ ०

उत्पन्न होती है। क्षेप के समान उपान्तिम राशि ३ से उस के ऊपरवाले २ को गुणाने से ६ हुआ, इस में अन्त्य ० जोड़ने से ६ लब्धि हुई। और गुण, क्षेप ३ के समान है आलाप—भाज्य ९ गुण ३ से गुणित २७ हुआ, इस में क्षेप ३ घटाने से शेष २४ में हार ४ का भाग देने से, वही निःशेष लब्धि ६ हुई। इसी क्षेप ३ पर से तीसरे भाज्य में गुण का विचार—यहां पर भी लब्धि के समान एक खण्ड और शेष के समान दूसरा खण्ड, जैसा—२७। ४ इन में पहला खण्ड किसी से गुणित और हार ९ से भाजित निःशेष होगा। दूसरे खण्ड ४ में गुण का निर्णय—भाज्य ४ हार ९ चौथे भाज्य हार के उलटे हैं। अब चौथे भाज्य

६ को उस के गुण ३ से गुणाने से २७ हुआ, इस में क्षेप ३ घटाकर हार ४ का भाग देने से ६ लब्धि मिली और विलोमविधि के अनुसार, लब्धि ६ से हार ४ को गुणाने से २४ हुआ, इसमें क्षेप ३ जोड़ने से २७ में भाज्य ६ का भाग देने से वही गुण ३ मिला।

इस प्रकार, तीसरे भाज्य का दूसरा खण्ड ४ लब्धि ६ से गुणित क्षेप ३ से युक्त हार ६ से भाजित निःशेष होता है और लब्धि ३ आती है। तीसरे भाज्य का पहला खण्ड २७ हार ६ से भाजित निःशेष होता है और लब्धि ३ आती है। इस को पहली लब्धि ६ से गुणित कर १८ में, दूसरे खण्ड से उत्पन्न ३ लब्धि के जोड़ने से, संपूर्ण लब्धि २१ हुई और गुण ६ हुआ, ये धनक्षेप में सिद्ध हुए। इस से 'उपान्तिमेन, स्वोर्ध्वे हतेऽन्त्येन युते तदन्त्यं त्यजेत्—' उपपन्न हुआ। अर्थात् उपान्तिम ६ के ऊपर ३ को गुणाने से १८ हुआ इस में अन्त्य ३ जोड़ने से २१ हुआ और अन्त्य को मिटा देने से यह क्रिया सिद्ध हुई। आलाप—तीसरे भाज्य ३१ को गुण ६ से गुणाने से १८६ हुआ इस में क्षेप ३ जोड़ने से १८९ में हार ९ का भाग देने से वही २१ लब्धि हुई। दूसरे भाज्य ७१ के भी दो खण्ड ६२। ९ यहां दूसरे खण्ड में गुण का विचार—पहले सिद्ध २१ लब्धि को हार ९ से गुणित १८९ में क्षेप ३ घटा कर गुण ६ का भाग देने से तीसरा भाज्य ३१ मिला, और विलोम विधि से, भाज्य को हार, हार को भाज्य और क्षेप की धनर्णता का व्यत्यय मान कर, लब्धि का गुणत्व और गुण का लब्धित्व सिद्ध होता है। इस कारण, दूसरे भाज्य का दूसरा खण्ड ९ पूर्व लब्धि २१ से गुणित १८९ हुआ, यह क्षेप ३ घटाकर हार ३१ का भाग देने से निःशेष हुआ और लब्धि ६ मिली। पहले खण्ड ६२ में हार ३१ का भाग देने से २ लब्धि को पूर्व लब्धि २१ से गुणाने से ४२ हुआ इस में पहले सिद्ध दूसरे खण्ड की लब्धि ६ जोड़ने से समस्त लब्धि ४८ हुई और पूर्व लब्धि २१ गुण हुआ। इस से दूसरे भाज्य ७१ को गुणाने से १४९१ हुआ, इस में क्षेप ३ घटाकर हार ३१ का भाग देने से वही ४८ लब्धि मिली। पहले भाज्य के

दो खण्ड १४२ । ३१ इन में पहला खण्ड किसी एक अङ्क से गुणा और हार से भाजित निःशेष होगा । दूसरे खण्ड में गुणा का विचार– विलोमविधि से गुणा ४८ लब्धि २१ आती है । अब भाज्य का दूसरा खण्ड ३१ गुणा ४८ से गुणित १४८८ हुआ, इस में क्षेप तीन जोड़ कर हार ७१ का भाग देने से वही द्वितीय खण्डोत्पन्न लब्धि २१ हुई । पहले खण्ड १४२ में हार ७१ का भाग देने से जो २ लब्धि आती है, उस को गुणा ४८ से गुणा कर दूसरे खण्ड से उत्पन्न २१ लब्धि जोड़ देने से समस्त लब्धि हुई ११७ और गुणा ४८ पहले ही सिद्ध हो चुका था ।

क्रिया का सारांश ।

(१) १४२ + ३१ । ३	व.	(२) ६२ + ९ । ३̇	व.
७१	२	३१	२
ल ११७ = ९६ + २१	२	ल ४८ = ४२ + ६	३
गु ४८	३	गु २१	२
	२		३
	३		०
	०		
(३) २७ + ४ । ३	व.	(४) ८ + १ । ३̇	व.
९	३	४	२
ल २१ = १८ + ३	२	ल ६	३
गु ६	३	गु ३	०
	०		

इस भांति बार बार क्रिया करने से, पहले भाज्य हार संबन्धी लब्धि इस प्रकार गुणा होते हैं–प्रथम ऋणक्षेप में, चौथे भाज्य हार से उत्पन्न लब्धि-गुणा, फिर धनक्षेप में तीसरे भाज्यहार से उत्पन्न लब्धि-गुणा, फिर ऋणक्षेप में दूसरे भाज्य हार से उत्पन्न लब्धि-गुणा, फिर धनक्षेप में पहले भाज्यहार से उत्पन्न लब्धि-गुणा होते हैं । इस से स्पष्ट है कि भाज्य हारों के परस्पर भाग देने से जो लब्धि विषम हों तो, लब्धि गुणा ऋणक्षेप में और सम हों तो

धनक्षेप में होते हैं । भाज्य को हार तुल्य गुण से गुणाकर हार का भाग देने से भाज्य तुल्य लब्धि आती है, तो हार तुल्य गुण की वृद्धि होने से भाज्य तुल्य लब्धि बढ़ेगी आर दो आदि संख्या से गुणित हार तुल्य गुण की वृद्धि होने से, दो आदि संख्या से गुणित भाज्य-तुल्य लब्धि बढ़ेगी । इससे 'इष्टाहतस्वस्वहरेण युक्ते ते वा भवेतां बहुधा गुणाप्ती' यह वक्ष्यमाण सूत्र उपपन्न होता है । और इसी रीति से हारके समान गुणक का ह्रास होने से भाज्य के समान लब्धि में ह्रास होता है इससे 'गुणलब्ध्योः समं ग्राह्यं धीमता तक्षणे फलम्' यह और 'ऊर्ध्वो विभाज्येन दृढेन तष्टः फलं गुणः स्यादधरो हरेण' यह कहा ह । भाज्य को गुणोनहार से गुण दें और उसमें क्षेप घटा दें तो तीन खण्ड होते ह—भा.हा १ भा॰ गु १ क्षे १ पहले खण्ड में, हार का भाग देने से भाज्य लब्ध होता है और दूसरे, तीसरे खण्डों के योग में हार का भाग देन से ऋणलब्धि आती है । इस कारण क्षेप की धनर्णता के विपर्यास से गुण से घोटे हार के समान गुण में, लब्धि से घटे भाज्य के समान लब्धि योग्य है । इसलिये धनक्षेप के लब्धि-गुण अपने हार से तष्टित ऋणक्षेप के होते हैं और ऋणक्षेप के लब्धि-गुण अपने हार से तष्टित धनक्षेप के होते हैं । इस से 'एवं तदैवात्र यदा समास्ताः स्युर्लब्धयश्चेद्विषमास्तदानीम् । यथागतौ लब्धि गुणौ विशोध्यौ स्वतक्षणाच्छेषमितौ तु तौ स्तः ॥' यह और 'योगजे तक्षणाच्छुद्धे गुणाप्ती स्तो वियोगजे' यह भी उपपन्न हुआ ।

एवं तदैवात्र यदा समास्ताः
स्युर्लब्धयश्चेद्विषमास्तदानीम् ।
यथागतौ लब्धिगुणौ विशोध्यौ
स्वतक्षणाच्छेषमितौ तु तौ स्तः ॥३०॥

अथागतफलेषु विषमेषु सत्सु विशेषमुपजातिकयाह—एवमिति । एवं तदैव स्यात् यदा अत्र परस्परभजने ता आगता लब्धयः समाः स्युः, द्वे चतस्रः षट् अष्टावित्यादयः । यदि तु ता लब्धयो

विषमाः स्युः, एका तिस्रः पञ्च सप्तेत्यादयः तदानीं कथितप्रकारेण यथा आगतौ लब्धिगुणौ तौ स्वतक्षणाच्छोध्यौ शेषतुल्यौ तौ लब्धिगुणौ स्तः। तक्ष्यते तनूक्रियतेऽनेनेति तक्षणः। 'तक्ष्णोति' इति तक्षण इति वा। स्वश्चासौ तक्षणश्च स्वतक्षणः तस्मात्। गुणो दृढहाराच्छोध्यो लब्धिर्दृढभाज्याच्छोध्येति तात्पर्यम्॥

यहाँ उक्त प्रकार से सिद्ध हुई लब्धियाँ यदि सम संख्या में अर्थात् दो, चार, छ, आठ आदि हों तब कोई दूसरी क्रिया नहीं करनी पड़ती और यदि विषम अर्थात् एक, तीन, पाँच, सात आदि हों तो लब्धि-गुण को अपने-अपने तक्षण अर्थात् दृढ भाज्य-हार से घटाने पर वास्तव लब्धि-गुण होते हैं॥

भवति कुट्टविधेर्युतिभाज्ययोः
समपवर्तितयोरपि वा गुणः।
भवति यो युतिभाजकयोः पुनः
स च भवेदपवर्तनसंगुणः॥ ३१॥

अथ प्रकारान्तरेण गुणकमाह—भवतीति। युतिः क्षेपः। युतिभाज्ययोः समपवर्तितयोः सतोरपि 'मिथो भजेत्तौ दृढभाज्यहारौ-' इति यथोक्तात्कुट्टकविधेर्वा गुणः स्यात्। अपिः समुच्चये। वा प्रकारान्तरे। क्षेपभाज्ययोरपवर्तनसंभवेऽप्यपवर्तनमकृत्वापि गुणः सिध्यति। यद्वा तयोरपवर्तितयोः सतोरपि यथोक्तकुट्टकविधिना स एव गुणः स्यादित्यर्थः। तेन गुणेन भाज्यं संगुण्य क्षेपेण संयोज्य हारेण विभज्य लब्धिरत्रावगन्तव्या। भवति य इति। पुनर्विशेषे वाक्यालंकारे वा। युतिभाजकयोस्त्वपवर्तनसंभवे सत्यपवर्तितयोः सतोर्यथोक्तकुट्टकविधिना यो गुणो भवेत् स च भवेत्, परमपवर्तनसंगुणः सन्। चकारादनपवर्तितयोरपि गुणसिद्धिर्भवति। यद्वा अपिवाशब्दसामर्थ्यादध्याहारेण योजना। सा यथा—

युतिभाज्ययोः समपवर्तितयोर्या लब्धिर्भवति, अपि वा युतिभाजकयोस्त्वपवर्तितयोर्यो गुणो भवति, सा लब्धिः स च गुणोऽपवर्तनसंगुणः सन् भवेत् । लिङ्गविपरिणामेन लब्धिरपवर्तनसंगुणा सती भवेदिति योज्यम् । युतिभाज्ययोः समपवर्तितयोर्लब्धिरपवर्तनाङ्केन गुण्या, गुणस्तु यथागत एव । युतिभाजकयोस्त्वपवर्तितयोर्गुणोऽपवर्तनाङ्केन गुण्यः लब्धिर्यथागता वेत्यर्थः । अत्र 'यद्वा' इत्यादिना व्याख्यातोऽर्थो युक्ततरोस्ति परं न तथायं शब्दलभ्यः । आचार्याणामपि नायमर्थोऽभिप्रेतः किंतु प्रथम एव । यतस्ते 'शतं हतं येन युतं नवत्या–' इत्याद्युदाहरणे वक्ष्यन्ति 'अत्र लब्धिर्न ग्राह्या गुणघ्नभाज्ये क्षेपयुते हरभक्ते लब्धिश्च' इति । द्रुतविलम्बितवृत्तमेतत् ।

प्रकारान्तर से गुण लाने की विधि—

अपवर्तित भाज्य, क्षेपों पर से 'मिथो भजेत्तौ दृढभाज्यहारौ–' इस कुट्टक विधि के अनुसार भी गुण सिद्ध होता है और लब्धि अपवर्तनाङ्क से गुणी हुई वास्तव होती है । अथवा अपवर्तन के संभव होने पर भी, अपवर्तन न देकर भाज्य क्षेपों पर से गुण आता है । अथवा, भाज्य क्षेपों में अपवर्तन देकर, उक्त विधि से गुण आता है । परंतु लब्धि, गुण से गुणित और क्षेप युत भाज्य में, हार का भाग देने से मिलेगी । अपवर्तन के संभव होने पर, हार और क्षेप में अपवर्तन देकर, उक्त विधि से गुण सिद्ध करना । वह अपवर्ताङ्क से गुणित वास्तव होगा । और लब्धि जैसी आती है वही वास्तव होगी ॥

उपपत्ति—

गुण से गुणित भाज्य क्षेप युत और हार लब्धि का घात, ये दो पक्ष तुल्य होते हैं–गु × भा + क्षे = हा × ल इनको किसी इष्ट से गुणें तो भी तुल्य हैं इ·×गु·×भा+इ×क्षे=इ×हा×ल । यहां यदि इष्ट गुणित भाज्य को भाज्य, इष्ट गुणित क्षेप को क्षेप, और केवल हार को हार मानें तो, लब्धि को इष्ट-गुणित होना उचित है । क्योंकि दूसरे पक्ष में, हार का भाग देने से, इष्ट-गुणित लब्धि, फल होता

है। अथवा, इष्ट गुणित गुण को गुण, केवल भाज्य को भाज्य, इष्ट गुणित क्षेप को क्षेप, और इष्ट गुणित हार को हार कल्पना करें तो लब्धि आवेगी। क्योंकि दूसरे पक्ष 'इ·×हा·×ल' में इष्ट गुणित हार 'इ·× हा' का भाग देने से लब्धि ही फल मिलता है। यहां इष्ट गुणित गुण को गुण कल्पना करने से '—स च भवेदपवर्तनसंगुणः' यह उपपन्न हुआ।

अपवर्तनाङ्क इष्ट कल्पना करके उदाहरण दिखलाते हैं—भाज्य २२१। हार १९५। क्षेप ६५। उक्त प्रकार से लब्धि ६ गुण ५। अथवा, भाज्य-क्षेप में तेरह का अपवर्तन देने से भाज्य १७ हार १९५ क्षेप ५ हुआ। ७ लब्धि और ८० गुण आया। अब भाज्य १७ गुण ८० से गुणित १३६० क्षेप ५ युत १३६५ में हार १९५ का भाग देने से ७ लब्धि आई। यह अपवर्तनाङ्क १३ से गुणित प्रकृत भाज्य २२१ में ९१ लब्धि हुई। अब भाज्य २२१ गुण ८० से गुणित १७६८० हुआ, इसमें क्षेप ६५ जोड़ने से १७७४५ हुआ। हार १९५ का भाग देने से ९१ लब्धि आई। लब्धि-गुण ९१। ८० अपने अपने दृढ़ भाज्य हार १७। १५ से तष्टित पहले के तुल्य लब्धि-गुण सिद्ध हुए ६। ५। यहां कुट्टकीय भाज्य १७ अपवर्ताङ्क १३ से गुणा भाज्य है; २२१ भाज्य है। इसलिये लब्धि को भी अपवर्ताङ्क से गुण देते हैं। अथवा, हार-क्षेप ही में तेरह का अपवर्तन देने से भाज्य २२१ हार १५ क्षेप ५ हुआ। यहां भी लब्धि ७४ गुण ५ आया। अब भाज्य २२१ गुण ५ से गुणित ११०५ और क्षेप ५ जोड़ने से ११२० हुआ, इस में हर १५ का भाग देने से ७४ लब्धि आई। और गुण ५ अप-वर्तनाङ्क १३ से गुणित वास्तव हुआ ६५। इस भाँति लब्धि-गुण ७४।६५ हुए, इन को अपने अपने तक्षण १७।१५ से शोधित करने से, वही लब्धि-गुण हुए ६।५ यहां कुट्टकीय हार १५ अपवर्ताङ्क १३ से गुणित वास्तव हार १९५ हुआ। अथवा, भाज्य-क्षेप में तेरह का अपवर्तन देने से, भाज्य १७ हार १९५ क्षेप ५ हुआ, हार क्षेप में पांच अपवर्तन देने से भाज्य १७ हार ३९ क्षेप १। उक्त विधि से ७।

१६ लब्धि-गुण। भाज्य १७ गुण १६ से गुणित २७२ हुआ इस में क्षेप १ जोड़ने से २७३ हार ३६ का भाग देने से ७ लब्धि मिली लब्धि ७ गुण १६ क्रम से १३ । ५ अपवर्ताङ्क से गुणित ६१।८० हुए इनको अपने अपने तक्षण १७ । १५ से तष्टित करने से, प्रकृत भाज्य, हार संबन्धी लब्धि गुण मिले ६ । ५ अब भा १७ हा १५ क्षे ५ दृढ भाज्य, हार और क्षेप हैं, यहां हार-क्षेप में पाँच का अपवर्तन देने से भाज्य १७ हार ३ और क्षेप १ हुआ । उक्त रीति से ६ । १ लब्धि गुण मिले । भाज्य १७ गुण १ से गुणित १७ में क्षेप १ जोड़ने से १८ हार ३ का भाग देने से ६ लब्धि हुई । यहां गुण १ अपवर्ताङ्क ५ से गुणित ५ हुआ । इस भाँति ६ । ५ ये दृढ भाज्यहारोपपन्न लब्धि-गुण सिद्ध हुए॥

योगजे तक्षणाच्छुद्धे गुणाप्ती स्तो वियोगजे।
'धनभाज्योद्भवे तद्वद्भवेतामृणभाज्यजे॥'

अथ ऋणक्षेपे ऋणभाज्ये वा सति विशेषमनुष्टुभाह—योगजे इति । योगजे धनक्षेपजे ये गुणाप्ती ते स्वतक्षणाच्छुद्धे वियोगजे भवतः। गुणो दृढहराच्छुद्धः सन् लब्धिर्दृढभाज्याच्छुद्धा सती ऋणक्षेपे भवतीत्यर्थः । एवं धनभाज्योद्भवे गुणाप्ती तद्वत्स्वतक्षणाच्छुद्धे ऋणभाज्यजे भवतः । अत्रोत्तरार्धे—

'ऋणभाज्योद्भवे तद्वद्भवेतामृणभाज्यके'

इत्यपि पाठः क्वचिल्लभ्यते । तस्यायमर्थः—योगजे गुणाप्ती स्वतक्षणाच्छुद्धे वियोगजे भवतः । तद्वदृणभाज्योद्भवे भवतः । तद्वदृणभाजकेऽपि गुणाप्ती भवतः क्षेपभाज्यहाराणामन्यतमे ऋणे सति पूर्वसिद्धे गुणाप्ती स्वतक्षणाच्छोध्ये इत्यर्थः । एवं द्वौ चेदृणगतौ तदा पुनरपि स्वतक्षणाच्छोध्ये इत्यर्थः। एवं त्रयाणामप्यृणत्वे त्रिवारं स्वतक्षणाच्छोध्ये इत्यर्थः। अयमप पाठः, नहि भाजकस्य धनत्वे ऋणत्वे वास्ति कश्चिदङ्कतो विशेषो येनोपायान्तर-

मारभ्येत किंतु धनर्णता व्यत्यासमात्रं लब्धेः। भाज्यस्य तु धनत्वे ऋणत्वे च क्षेपयोगे च क्रियमाणेऽस्त्यङ्कतोऽपि विशेष इति तस्यर्णत्वे उपायान्तरमारम्भणीयमेव। आचार्यस्याप्यनभिमत एवायं पाठः, यतः 'अष्टादशगुणाः केन दशाढ्या वा दशोनिताः। शुद्धं भागं प्रयच्छन्ति क्षयगैकादशोद्धृताः' इत्युदाहृत्य भाज्यः १८। हारः ११ क्षेपः १० अत्र भाजकस्य धनत्वे कृते गुणलब्धी ८। १४। ऋणेऽपि भाजके एते एव, किंतु लब्धिः ऋणगता कल्प्या भाजकस्य ऋणरूपत्वात् ८। १४ इति वक्ष्यति। अस्मिन्पाठेऽर्थाशुद्धिरप्युदाहरणविवरणावसरे प्रतिपादयिष्यते। वस्तुतस्तूत्तरार्द्धमनपेक्षितमेव। पूर्वार्धेनैव गतार्थत्वात्। तथाहि—योगजे गुणाप्ती वियोगजे भवत इति तदर्थः। तत्र भाज्यक्षेपयोर्धनत्वे ऋणत्वे वा ये गुणाप्ती ते योगजे। यत उभयोर्धनऋणत्वे वा 'योगे युतिः स्यात्क्षययोः स्वयोर्वा—' इति नास्ति कश्चिदङ्कतो विशेषः। यदा पुनर्भाज्यक्षेपयोरन्यतरस्य ऋणत्वं तदा 'धनर्णयोरन्तरमेव योगः' इत्युक्तत्वादन्तरे क्रियमाणे भवत्यङ्कतोऽपि विशेष इति तदर्थमुपायान्तरमारम्भणीयम्। तदर्थमुक्तम् 'स्वतक्षणाच्छुद्धे वियोगजे भवत इति'। अस्मात्पूर्वार्धार्थादतिरिक्तः को वार्थ उत्तरार्धेन प्रतिपाद्यते येन तदपेक्षितं स्यात्। अयमर्थः 'यद्गुणाक्षयगषष्टिरन्विता—' इत्युदाहरणे "धनभाज्योद्भवे तद्वद्भवेतामृणभाज्यजे, इति मन्दावबोधार्थं मयोक्तम्। अन्यथा 'योगजे तक्षणाच्छुद्धे—' इत्यादिनैव तत्सिद्धेः" इति वदताचार्येणैव प्रतिपादयिष्यते। तस्मात्सिद्धान्तान्तर्गतबीजमूलसूत्रे पूर्वार्धमात्रं द्वितीयमर्धं तु तद्विवरणरूपेऽस्मिन्बीजगणिते बालावबोधार्थमुक्तमतस्तत्पृथग्गणनां नार्हति। अतः कुट्टकसूत्रेष्वनुष्टुभां चतुष्टयमेव न सार्धं तत्, अनुष्टुप्त्रयमेका च गाथेति कल्पनस्यान्याय्यत्वादित्यलं विस्तरेण॥

ऋणक्षेप, ऋणभाज्य में विशेष–

धनक्षेप संबन्धी लब्धि-गुण अपने अपने तक्षण में घटाने से ऋणक्षेप के होते हैं अर्थात् दृढहार में शोधित गुण गुण, दृढभाज्य में शोधित लब्धि, लब्धि होती है। इसी भाँति धनक्षेप सम्बन्धी लब्धि-गुण अपने अपने तक्षणों में शोधित, ऋणभाज्य के होते हैं॥

गुणलब्ध्योःसमं ग्राह्यं धीमता तक्षणेफलम् ३२

अथ क्षेपे हारमात्राद्भाज्यमात्राद्वा हारभाज्याभ्यां वा न्यूने कचिद्विशेषमुत्तरार्धेनाह–गुणलब्ध्योरिति। 'ऊर्ध्वो विभाज्येन दृढेन तष्टः फलं गुणः स्यादधरो हरेण' इत्यत्र गुणलब्धिसंबन्धिनि तक्षणे क्रियमाणे सत्युभयत्र तक्षणस्य फलं तुल्यमेव ग्राह्यम्। केन धीमता बुद्धिमता। हेतुगर्भमिदम्। तथाहि–उभयत्र तक्षणे क्रियमाणे यत्राल्पं तक्षणफलं लभ्यते तत्तुल्यमेवान्यत्रापि ग्राह्यं न त्वधिकं प्राप्तमपि। अत्र पुस्तकेषु 'गुणलब्ध्योः समं ग्राह्यं–' इत्यादि-श्लोकार्धस्य 'योगजे तक्षणाच्छुद्धे–' इत्यतः प्राक् पाठो दृश्यते स तु लेखकदोषज इति प्रतिभाति पुस्तकपाठक्रमस्वीकारे तु 'गुण-लब्ध्योः समं ग्राह्यं' इत्यत्र प्रकारान्तरार्थं प्रवृत्तस्य 'हरतष्टे धन-क्षेपे–' इत्येतस्य सूत्रस्य व्यवधानं स्यात्। उदाहरणक्रमाविरोधश्च स्यात्। लीलावतीपुस्तकेषु पुनरस्मल्लिखितक्रम एवास्ति, युक्तश्चाय-मिति प्रतिभाति॥

दूसरा विशेष–

'ऊर्ध्वो विभाज्येन दृढेन तष्टः फलं गुणः स्यादधरो हरेण–' इस प्रकार के अनुसार अपने अपने तक्षण से जो लब्धि गुण तष्टित किये जाते हैं, वहां पर समान फल लेना चाहिये अर्थात् दोनों स्थानों में जहां अल्प तक्षण फल मिले उसी के तुल्य दूसरे स्थान में भी लेना किंतु न्यूनाधिक लब्धि-फल को नहीं लेना चाहिए।

उपपत्ति–

भाज्य गुण से गुणित एक खण्ड, क्षेप दूसरा खण्ड, इन दोनों में

से एक के ऋण होने से धन, ऋण का अन्तर होता है, और ऋण भाज्य क्षेप में योग होता है, यह सब बातें सुगम हैं ॥

हरतष्टे धनक्षेपे गुणलब्धी तु पूर्ववत् ॥
क्षेपतक्षणलाभाढ्या लब्धिः शुद्धौ तु वर्जिता ३३

अथात्र गुणलब्ध्योस्तक्षणे फलयोरतुल्यता यथा न भवति तथा प्रकारान्तरमनुष्टुभाह--हरतष्ट इति । यत्र क्षेपो हारादधिकस्तत्र हारेण क्षेपस्तदयः तष्टक्षेपमेव प्रकल्प्य पूर्ववद्गुणलब्धी साध्ये । तत्र यत्र गुणो यथागत एव, लब्धिस्तु क्षेपतक्षणलाभाढ्या कार्या । क्षेपस्य तक्षणमवशेषणं तत्र यो लाभः फलं तेन आढ्या युक्ता एवं धनक्षेपे, शुद्धौ ऋणक्षेपे तु हरतष्टे कृते सति पूर्ववत् 'योगजे तक्षणाच्छुद्धे गुणाप्ती स्तो वियोगजे' इत्युक्तप्रकारेण ये गुणाप्ती स्तस्तत्र लब्धिः क्षेपतक्षणलाभेन वर्जिता कार्या यदा तु भाज्यादन्यूने हारान्न्यूने क्षेपे गुणलब्ध्योस्तक्षणे क्वचित्फलवैलक्षण्यं स्यात्तत्रैतस्य सूत्रस्यापप्रवृत्तेः 'गुणलब्ध्योः समं ग्राह्यं–' इत्यादिनैव तक्षणफलं ग्राह्यमिति । यथा भाज्यः ३।हारः ४।क्षेपः ३। अत्रोक्तवज्जातं राशिद्वयम् | ल ३ / गु ३ | अत्र गुणतक्षणे किंचिन्न लभ्यते लब्धितक्षणे त्वेकः प्राप्यते स न ग्राह्यः । एवं क्षेपस्य हरेण तक्षणेऽपि भाज्यादन्यूनतया यदि क्वचित्फलवैषम्यं स्यात्तत्रापि 'गुणलब्ध्योः समं ग्राह्यं–' इत्यादिनैव तक्षणफलं ग्राह्यमिति। यथा भाज्यः ३ । हारः ४ । क्षेपः ७ । एवंविधस्थले फलयोर्यथा वैषम्यं न भवति तथा प्रकारान्तरं न दृश्यते ॥

दूसरा विशेष–

जिस स्थान में क्षेप हार से अधिक हो, वहां हार से तष्टित किये गये क्षेप को क्षेप कल्पना कर के उक्त रीति से गुण-लब्धि सिद्ध करना । वहां गुण जो आया है वही होगा और लब्धि, क्षेप के

तष्टित करने में जो फल आया है उस से जुड़ी हुई वास्तव होगी, यह धनक्षेप में जानना चाहिए। ऋणक्षेप में, क्षेप को हर से तष्टित करने के बाद 'योगजे तक्षणाच्छुद्धे गुणाप्ती स्तो वियोगजे' इस रीति के अनुसार गुण-लब्धि सिद्ध करना वहां गुण तो यही वास्तव होगा पर लब्धि, क्षेप के तष्टित करने से जो फल आया है, उस को घटाने से वास्तव होगी। जहां कहीं क्षेप, भाज्य से न्यून न हो और हार से न्यून हो, वहां गुण-लब्धि के तष्टित करने में, कहीं फल का वैषम्य (कमीवेशी) होगा, तो इस विधि की प्रवृत्ति न होने से 'गुणलब्ध्योः समं ग्राह्यं धीमता तक्षणे फलम्' इस सूत्र के अनुसार फल लेना चाहिये॥

अथवा भागहारेण तष्टयोः क्षेपभाज्ययोः॥
गुणः प्राग्वत्ततो लब्धिर्भाज्याद्धतयुतोद्धृतात्॥

अथ भाज्येऽपि हरादधिकेऽनुष्टुभा विशेषमाह—अथवेति। यत्र भाज्यक्षेपौ हरादधिकौ तत्र पूर्ववद्वा क्षेपमात्रतक्षणेन वा गुणाप्ती साध्ये। अथवा भाज्यक्षेपौ द्वावपि हरेण तष्टौ तष्टयोः क्षेपभाज्ययोः प्राग्वदेव गुणाप्ती साध्ये तत्र गुण एव ग्राह्यो न लब्धिः। कथं तर्हि लब्धिरवगन्तव्येति तदाह—भाज्याद्धतयुतोद्धृतादिति। हतश्चासौ युतश्च हतयुतः, हतयुतश्चासावुद्धृतश्चेति हतयुतोद्धृतस्तस्मात्। गुणेन गुणितात्क्षेपेण युताद्भाजकेन भक्तादुद्दिष्टाद्भाज्याद्या लब्धिर्भवति सा ज्ञेयेत्यर्थः। अस्त्यत्र लब्धिज्ञाने प्रकारान्तरमपि। तथाहि—भाज्यतक्षणलाभो गुणेन गुणनीयः पश्चात्क्षेपतक्षणलाभेन संस्कार्यः, संस्कृतेन तेन गणितागता लब्धिः संस्कार्या सा लब्धिर्भवतीति गौरवादाचार्यैरिदं नोक्तम्॥

दूसरा विशेष—

जहां पर भाज्य-क्षेप, हार से अधिक हों वहां पूर्व प्रकार से अथवा, क्षेपमात्र को तष्टित कर, गुण-लब्धि सिद्ध करना। अथवा भाज्य-क्षेपों को हार से तष्टित कर के उन तष्टित भाज्य-क्षेप पर से उक्त रीति से गुण-लब्धि सिद्ध करने से गुण वास्तव होगा। परंतु लब्धि

वास्तव न होगी, वह गुण से गुणित क्षेप युक्त भाज्य में, हार का भाग देने से वास्तव होगी ॥

क्षेपाभावोऽथ वा यत्र क्षेपः शुध्येद्धरोद्धृतः ॥
ज्ञेयः शून्यं गुणस्तत्र क्षेपो हारहृतः फलम् ३५

अथ क्षेपाभाव एकादिगुणहरसमे वा क्षेपेऽनुष्टुभा विशेषमाह–क्षेपाभाव इति । यत्रोदाहरणे क्षेपस्य अभावो राहित्यं स्यात् अथवा क्षेपो हरेण उद्धृतो भक्तः शुध्येत् निःशेषतां गच्छेत् तत्र शून्यं गुणः हारहृतः क्षेपः फलं लब्धिरित्यर्थः ॥

दूसरा विशेष—

जिस उदाहरण में क्षेप न हो अथवा हार के भाग देने से वह निःशेष होता हो, वहां गुण शून्य होगा और क्षेप में हार का भाग देने से जो फल मिलेगा वही लब्धि होगी ॥

***इष्टाहतस्वस्वहरेण युक्ते**
ते वा भवेतां बहुधा गुणाप्ती ।

अथ गुणलब्ध्योरनेकत्वमुपजातिकापूर्वार्धेनाह–इष्टेति । स्वस्य स्वस्य हरः स्वस्वहरः, इष्टेन आहतः, इष्टाहतः, इष्टाहतश्चासौ स्वस्वहरश्च इष्टाहतस्वस्वहरः, तेन इष्टाहतस्वस्वहरेण युक्ते गुणाप्ती गुणलब्धी बहुधा भवेताम् । इष्टेन गुणितं हरं गुणे प्रक्षिपेत्, तेनैवेष्टेन गुणितं भाज्यं लब्धौ च प्रक्षिपेत् । एवमेते गुणाप्ती इष्टकल्पनवशादनेकधा भवत इत्यर्थः ॥

एक गुण लब्धि से दूसरे गुण लब्धि लाने का प्रकार—

उक्त प्रकार से सिद्ध जो लब्धि गुण हों उनको इष्ट से गुणित अपने अपने हरों से युक्त करने से दूसरे लब्धि-गुण होंगे अर्थात् इष्ट

---

* अस्यैव पद्यस्योत्तरमर्धम् 'क्षेपं विशुद्धिं परिकल्परूपं पृथक् पृथक् ये गुणकारलब्धी' इति ।

गुणित हर को गुण में, और उसी इष्ट से गुणित भाज्य को लब्धि में जोड़ने से एक ही गुण लब्धि पर से इष्ट वश अनेक गुण लब्धि सिद्ध होंगे ।

उपपत्ति—

भाज्य गुण से गुणित एवं क्षेपयुक्त और हार लब्धि का घात आपस में समान होते हैं—

$$गु \times भा + क्षे = हा \times ल$$

इन में इष्ट गुणित हार इ × हा जोड़ देने से भी समान ही रहे—

$$गु \times भा + क्षे + इ \times हा = हा \times ल + इ \times हा$$

दूसरे पक्ष में हार का भाग देने से इष्टाङ्क और लब्धि की योगरूप लब्धि आती है । इससे 'क्षेपतक्षणलाभाढ्या लब्धिः—' यह उपपन्न हुआ । क्योंकि क्षेप तक्षित करने से जो फल (लब्धि) आता है उसी को इष्ट अङ्क कल्पना किया है ।

इसी भाँति पहले पक्ष में, दूसरे खण्ड को हर से तक्षित धन क्षेप के तुल्य कल्पना किया और तीसरा खण्ड इष्ट और हार का घात है, वह क्षेप को तक्षित करने से जो फल मिला है, उस से गुणित हार है । इसलिये, उन दोनों के योग को क्षे + इ × हा मुख्य क्षेप कल्पना किया । अब यहाँ पहला खण्ड गुण गुणित भाज्य का स्वरूप है गु. × भा इसमें मुख्य क्षेप जोड़ कर, हार का भाग देने से मुख्य लब्धि मिलनी चाहिये । क्योंकि, दूसरे पक्ष में हार का भाग देने से इष्ट और लब्धि की योगरूप इ + ल + मुख्य लब्धि आती है । इस से धनक्षेप में जो कहा है, वह उपपन्न हुआ ।

इस प्रकार ऋणक्षेप में पहले पक्ष को इष्ट और हार के घात से हीन करने से भी समान ही हैं—

$$गु. \times भा. - क्षे - इ. \times हा = हा. \times ल - इ. \times हा$$

यहाँ पर पहले के तुल्य क्रिया करने से इष्टोन लब्धि रूप लब्धि आती है । इसलिये 'शुद्धौ तु वर्जिता—' यह उपपन्न हुआ ।

अथवा, क्षेप के दो खण्ड किये—एक आदि से गुणित हार के समान एक खण्ड और शेष के समान दूसरा खण्ड । यहाँ शेष

समान क्षेप से जो गुण सिद्ध किया है उससे गुणित और शेष मित क्षेप से युक्त भाज्य में, हार का भाग देने से शेष नहीं रहेगा। किंतु क्षेप का पहला खण्ड, एक आदि गुणित हार के समान होने से, इस क्षेप खण्ड में हार का भाग देने से क्षेप के तत्क्षण फल के समान लब्धि आती है। उसको पहली लब्धि में जोड़ देने से भी वही बात सिद्ध हुई।

इसी प्रकार भाज्य-क्षेप भी, हार से तष्टित किये जाते हैं और वहाँ भी उक्त रीति से उपपत्ति जाननी चाहिये। जैसे क्षेप के दो खण्ड किये हैं वैसे ही भाज्य के भी दो खण्ड करना। भाज्य को तष्टित करने से जो लब्धि आवे उसको गुण से गुणित और क्षेपतक्षण फल से संस्कृत (युक्त-हीन) करके फिर उसका गणितागत लब्धि में संस्कार (ऋण-धन) करने से वह मुख्य लब्धि होगी। परंतु यह बात आचार्य ने गौरव भय से नहीं कही किंतु लाघव से 'भाज्याद्धतयुतोद्धृतात्' यही कहा है।

जिस स्थान में क्षेप नहीं होता वहाँ गुण शून्य होता है। उस शून्य गुण से भाज्य को गुणने से गुणन फल शून्य और उसमें हार का भाग देने से लब्धि भी शून्य ही आती है, यह बात अति सुगम है। इस भाँति हार का भाग देने से, यदि क्षेप में निःशेषता हो तो भी गुण शून्य ही होगा और उस से भाज्य को गुणने से गुणन फल शून्य होता है और वहाँ क्षेप के जोड़ने से हार का भाग देने से 'क्षेपो हारहृतः फलम्' यही संपन्न होता है। इस सूत्र से और 'मिथो भजेत्तौ दृढभाज्यहारौ-' इस सूत्र से गुण लब्धि के ज्ञान में बीज के 'नवाङ्कुर' टीकाकार कृष्णदैवज्ञ ने लाघव दिखलाया है—जैसा—भाज्य= १०० । हार=६३ । क्षेप=३७ । उक्त प्रकार से वल्ली हुई। १

१
१
२
१
३७
०

इस से लब्धि-गुण हुए ६६।६२। अथवा, भाज्य १०० में हार ६३ का भाग देने से १ लब्धि और ३७ शेष रहा, इस का फिर भाज्यरूप हार ६३ में भाग देना है पर यहाँ हार ३७ से क्षेप ३७ निःशेष हुआ और लब्धि १ मिली। पहले की लब्धि ही लब्धि है और दूसरी लब्धि क्षेप १ है। उस के नीचे शून्य इस प्रकार वल्ली हुई। १

१

०

लब्धि-गुण १।१ वल्ली विषम है, इस लिये अपने-अपने तक्षण में घटाने से हुए ९९।६२।

भाज्य=१००। हार=६३। क्षेप=२६ उक्त विधि से वल्ली हुई। १

१

१

२

२

१

२६

०

इस से लब्धि-गुण हुए २।१ अथवा, भाज्य १०० में हार ६३ का भाग देने से पहली लब्धि १ आई, शेष ३७ रहा, इस का हार ६३ में भाग देने से दूसरी लब्धि १ आई, शेष २६ रहा, इस का क्षेप २६ में भाग देने से निःशेष फल १ आया, इससे वल्ली हुई। १

१

१

०

उक्त प्रकार से लब्धि गुण हुए २ । १ ।

भाज्य=१०० । हार=६२ । क्षेप=३३ । उक्त विधि से वल्ली हुई । १
१
१
२
२
१
३३
०

लब्धि-गुण हुए ९१ । ५७ । अथवा भाज्य १०० में हार ६२ का भाग देने से पहली लब्धि १ मिली, शेष ३८ का हार ६२ में भाग देने से दूसरी लब्धि १ आई, फिर शेष २६ का पहले शेष ३८ में भाग देने से तीसरी लब्धि १ आई, शेष ११ रहा । इसका क्षेप ३३ में भाग देने से लब्धि ३ आई इससे वल्ली हुई १
१
१
३
०

लब्धि-गुण हुए ९ । ६ वल्ली के विषम होने से अपने अपने तक्षण में शुद्ध करने से ९१ । ५७ यही पहले लब्धि-गुण आये थे ॥

उदाहरणम्—

एकविंशतियुतं शतद्वयं
यद्गुणं गणकपञ्चषष्टियुक् ।
पञ्चवर्जितशतद्वयोद्धृतं
शुद्धिमेति गुणकं वदाशु तम् ॥ २२ ॥

अथोक्तसूत्राणां क्रमेणोदाहरणानि शिष्यबोधार्थं निरूपयति—

तेषु यत्र त्रयाणामप्यपवर्तनं संभवति लब्धयश्च समास्तादृशमुदाहरणं रथोद्धतयाह—एकेति । स्पष्टम् ।

उदाहरणम्—

ऐसा कौन गुणक है जिस से दोसौ-इक्कीस को गुण दें और पैंसठ जोड़ कर एक सौ-पंचान्नबे का भाग दें तो वह निःशेष होता है ।

न्यासः। भाज्यः २२१। हारः १९५ क्षेपः ६५

अत्र परस्परं भाजितयोर्भाज्यभाजकयोः शेषम् १३। अनेन भाज्यहारक्षेपा अपवर्तिता जाता दृढाः

भा. १७। क्षे. ५।
हा. १५।

अनयोर्दृढभाज्यहारयोः परस्परं भक्तयोर्लब्धमधोधस्तदधः क्षेपस्तदधः शून्यं निवेश्यमिति न्यस्ते जाता वल्ली

१
७
५
०

'–उपान्तिमेन स्वोर्ध्वे हते–' इत्यादिकरणेन जातं राशिद्वयम् ४०/३५ एतौ दृढभाज्यहाराभ्या १७/१५ माभ्यां तष्टौ शेषमितौ लब्धिगुणौ ६/५।

अनयोः स्वतक्षणमिष्टगुणं क्षेप इत्यथवा लब्धिगुणौ $\begin{matrix} २३ \\ ० \end{matrix}$ वा $\begin{matrix} ४० \\ ५४ \end{matrix}$ इत्यादि ॥

न्यास । भाज्य=२२१ । हार=१६५ । क्षेप=६५ यहाँ अपवर्तनाङ्क जानने के लिये भाज्य २२१ में हार १६५ का भाग देने से २६ शेष रहा, इसका हार १६५ में भाग देने से १३ शेष रहा, इसका पहले शेष १३ में भाग देने से शेष कुछ नहीं बचता, इस लिये परस्पर भाग देने से १३ अन्त्य शेष रहा और यही उन का अपवर्तनाङ्क है। इस से अपवर्तित भाज्य, हार, क्षेप, दृढ़ हुए—

भा=१७ । क्षे=५ ।
हा=१५ ।

अब इन दृढ भाज्य हारों के आपस में भाग देने से जो लब्धि मिलीं उनको एक के नीचे एक, इस क्रम से स्थापन करने से और उनके नीचे क्षेप, क्षेप के नीचे शून्य रखने से वल्ली निष्पन्न हुई—१
७
५
०

यहाँ उपान्तिम ५ से उस के ऊपर ७ को गुणा ३५ हुआ इसमें अन्त्य ० को जोड़ कर मिटाने से $\begin{matrix} १ \\ ३५ \\ ५ \end{matrix}$ ऐसा स्वरूप हुआ। फिर उपान्तिम ३५ से ऊपर १ को गुणने से ३५ । इस में अन्त्य ५ को जोड़ने से दो राशि हुईं $\begin{matrix} ४० \\ ३५ \end{matrix}$ । इन को दृढ भाज्य-हार $\begin{matrix} १७ \\ १५ \end{matrix}$ से तष्टित किया तो शेष रहा $\begin{matrix} ६ \\ ५ \end{matrix}$ ये क्रम से लब्धि गुण हुए। यहां 'इष्टाहतस्वस्वहरेण युक्ते—' इस सूत्र के अनुसार १ इष्ट से अपने अपने हर १७ । १५ को गुणा १७ । १५ हुए, इनको लब्धि-गुण में जोड़ने से $\begin{matrix} २३ \\ २० \end{matrix}$ दूसरे लब्धि-गुण हुए। इसी भाँति २ इष्ट मानने से $\begin{matrix} ४० \\ ३५ \end{matrix}$ । ३ इष्ट $\begin{matrix} ५७ \\ ५० \end{matrix}$ । इस प्रकार इष्ट कल्पना से अनेक लब्धि-गुण आवेंगे।

आलाप—गुणा ५ से भाज्य २२१ को गुणा ११०५ हुआ, क्षेप ६५ जोड़ा ११७० हुआ । हार १९५ का भाग देने से निःशेष होता है, यही प्रश्न था । इस प्रकार प्रत्येक गुणा से आलाप मिलाकर प्रतीति करनी चाहिये ॥

उदाहरणम्—

शतं हतं येन युतं नवत्या
विवर्जितं वा विहृतं त्रिषष्ट्या ।
निरग्रकं स्याद्वद मे गुणं तं
स्पष्टं पटीयान् यदि कुट्टकेऽसि ॥ २३ ॥

अथ त्रयाणामपवर्ते 'भवति कुट्टविधेः—' इति सूत्रस्य स्वतन्त्रमुदाहरणं 'योगजे तक्षणाच्छुद्धे—' इत्यस्य च क्रमेणोदाहरणद्वयमुपजातिकयाह—शतमिति । येन गुणेन हतं नवत्या युतं त्रिषष्ट्या विहृतं शतं निरग्रकं स्यात्तं गुणं वद । अथ वियोग उदाहरणम्—विवर्जितं वेति । शतं येन हतं नवत्या विवर्जितं त्रिषष्ट्या विहृतं निरग्रकं स्यात्तं गुणं च वद । यदि त्वं कुट्टके पटीयान् पटुतरोऽसि ॥

उदाहरण—

वह कौन गुण है, जिस से गुणा नब्बे से जुड़ा और तिरसठ से भाजित सौ निःशेष होता है ।

अथवा, ऐसा कौन सा गुण है कि जिस से गुणित, नब्बे से हीन और तिरसठ से भाजित सौ निःशेष होता है ।

न्यासः। भाज्यः १००। हारः ६३। क्षेपः ९०

अत्र वल्ली १
१
१
२
२
१
९०
०

'-उपान्तिमेन-' इत्यादिना जातं राशिद्वयम् (२४३० / १५३०) पूर्ववल्लब्धिगुणौ (३० / १८)।

अथवा भाज्यक्षेपौ दशभिरपवर्तितौ भा. १०। क्षे. ९। हा. ६३।

एभ्योऽपि पूर्ववद्वल्ली ०
६
३
९
०

'-उपान्तिमेन-' इत्यादिना राशिद्वयम् (२७ / १७१)

पूर्ववज्जातौ लब्धिगुणौ $\begin{matrix}७०\\४५\end{matrix}$

अत्र लब्धयो विषमा इति स्वतक्षणाभ्या-
$\begin{matrix}१०\\६३\end{matrix}$ माभ्यां शोधितौ जातौ लब्धिगुणौ $\begin{matrix}३\\१८\end{matrix}$ ।

अत्र लब्धिर्न ग्राह्या गुणघ्नभाज्ये क्षेपयुते हारभक्ते लब्धिश्च ३० । अथवा, भाज्यक्षेपा-पवर्तनेन १० पूर्वानीता लब्धिः ३ गुणिता जाता सैव लब्धिः ३० । अथवा, हारक्षेपौ नवाभिरपवर्तितौ

भा. १०० । क्षे. १० ।
हा. ७ ।

पूर्ववद्वल्ली $\begin{matrix}१४\\३\\१०\\०\end{matrix}$ । जातं राशिद्वयम् $\begin{matrix}४३०\\३०\end{matrix}$

तक्षणे जातम् $\begin{matrix}३०\\२\end{matrix}$ हारक्षेपापवर्तनेन ९ गुणं संगुणय जातौ लब्धिगुणौ तावेव $\begin{matrix}३०\\१८\end{matrix}$

अथवा भाज्यक्षेपौ हारक्षेपौ चापवर्त्य न्यासः।

भा. १० । क्षे. १ ।
हा. ७ । अत्र जाता वल्ली $\begin{matrix}१\\२\\१\\०\end{matrix}$

पूर्ववज्जातं राशिद्वयम् $\begin{matrix}३\\२\end{matrix}$ तक्षणाज्जातं तदेव $\begin{matrix}३\\२\end{matrix}$ भाज्यक्षेपहारक्षेपापवर्तनेन क्रमेण लब्धिगुणौ गुणितौ जातौ तावेव $\begin{matrix}३०\\१८\end{matrix}$ गुणलब्ध्योः स्वहारौ क्षेपावित्यथवा लब्धिगुणौ $\begin{matrix}१३०\\८१\end{matrix}$ वा $\begin{matrix}२३०\\१४४\end{matrix}$ इत्यादि।

योगजे गुणाप्ती $\begin{matrix}१८\\३०\end{matrix}$ स्वतक्षणाभ्यामाभ्यां $\begin{matrix}६३\\१००\end{matrix}$ शुद्धे जाते नवतिशुद्धौ गुणाप्ती $\begin{matrix}४५\\७०\end{matrix}$ वा। $\begin{matrix}१०८\\१७०\end{matrix}$ वा। $\begin{matrix}१७१\\२७०\end{matrix}$ इत्यादि।

न्यास। भाज्य=१०० । हार=६३ । क्षेप=९० । यहाँ हार-भाज्यों के परस्पर भाग देने से १ शेष रहा, इसलिये यही अपवर्तनाङ्क हुआ, उससे अपवर्तन न देकर, उक्त प्रकार से वल्ली निष्पन्न हुई

$$\begin{matrix}१\\१\\१\\२\\२\\१\\९०\\०\end{matrix}$$

'—उपान्तिमेन, स्वोर्द्धे हतेऽन्त्येन युते तदन्त्यं त्यजेन्मुहुः स्यादिति राशियुग्मम्' इस के अनुसार दो राशि हुई $\begin{matrix}२४३०\\१५३०\end{matrix}$.

अपने-अपने हार से तष्टित लब्धि-गुण हुए $\begin{matrix}३०\\१८\end{matrix}$ अथवा, भाज्य

क्षेप में १० से अपवर्तित भाज्य=१० । हार=६३ । क्षेप=६ । उक्त रीति से वल्ली हुई ०

६

३

५

०

पूर्व प्रकार से दो राशि हुईं $\begin{smallmatrix} & २ & ७ \\ १ & ७ & १ \end{smallmatrix}$ तष्टित $\begin{smallmatrix} & ७ \\ ४ & ५ \end{smallmatrix}$ यहाँ लब्धि विषम थी, इसलिये अपने-अपने तक्षण $\begin{smallmatrix} १ & ० \\ ६ & ३ \end{smallmatrix}$ में तष्टित लब्धि-गुण हुए $\begin{smallmatrix} ३ & \\ १ & ८ \end{smallmatrix}$ यहाँ लब्धि, भाज्य गुण से गुणित, क्षेपयुत और हार से भाजित वास्तव लब्धि ३० हुई । अथवा, पहली लब्धि ३ को अपवर्ताङ्क १० से गुण देने से, वास्तव लब्धि ३० हुई । इस भाँति वही लब्धि-गुण हुए $\begin{smallmatrix} ३ & ० \\ १ & ८ \end{smallmatrix}$ ।

अथवा, हार क्षेप में नौ से अपवर्तित भाज्य=१०० । हार=७ । क्षेप=१० । उक्त रीति से वल्ली १४ उक्त क्रिया के अनुसार $\begin{smallmatrix} ४ & ३ & ० \\ & ३ & ० \end{smallmatrix}$ दो राशि

३

१०

०

तष्टित करने से हुए $\begin{smallmatrix} ३ & ० \\ २ & \end{smallmatrix}$ यहाँ गुण २ अपवर्तनाङ्क ९ से गुणित से वास्तव गुण १८ हुआ । पूर्व के लब्धि-गुण हुए $\begin{smallmatrix} ३ & ० \\ १ & ८ \end{smallmatrix}$

अथवा, भाज्य क्षेप में दस का अपवर्तन देकर, फिर हार क्षेप में नौ का अपवर्तन देने से भाज्य=१० । हार=७ । क्षेप=१ । वल्ली हुई १

२

१

०

और उक्त रीति से दो राशि हुए $\begin{smallmatrix} ३ \\ २ \end{smallmatrix}$ । अब यहाँ गुण २ को हार क्षेप के अपवर्तनाङ्क ९ से गुणित वास्तव गुण १८ हुआ और लब्धि ३ को भाज्य क्षेप के अपवर्तनाङ्क १० से गुणने से वास्तव लब्धि हुई ३० । इस भाँति वही लब्धि-गुण आये $\begin{smallmatrix} ३ & ० \\ १ & ८ \end{smallmatrix}$ और १ इष्ट कल्पना करने से $\begin{smallmatrix} १ & ३ & ० \\ & ८ & १ \end{smallmatrix}$ लब्धि-गुण हुए । २ इष्ट $\begin{smallmatrix} २ & ३ & ० \\ १ & ४ & ४ \end{smallmatrix}$ लब्धि-गुण हुए ।

अब धनक्षेपसम्बन्धी $\begin{smallmatrix} ३ & ० \\ १ & ८ \end{smallmatrix}$ ये लब्धि-गुण अपने-अपने तक्षण $\begin{smallmatrix} १०० \\ ६३ \end{smallmatrix}$ में शुद्ध किये गये तो ऋणक्षेपसंबन्धी हुए $\begin{smallmatrix} ७० \\ ४५ \end{smallmatrix}$ इसी भाँति और भी हुए $\begin{smallmatrix} १७० \\ १०८ \end{smallmatrix}$ अथवा $\begin{smallmatrix} २७० \\ १७१ \end{smallmatrix}$ ।

उदाहरणम्—

* यद्गुणा क्षयगषष्टिरन्विता
वर्जिता च यदि वा त्रिभिस्ततः ।
स्यात्त्रयोदशहृता निरग्रका
तं गुणं गणक मे पृथग्वद ॥२ ।

अथ 'धनभाज्योद्भवे तद्वत्-' इत्यस्योदाहरणद्वयं र थोद्धत याह—क्षेपस्य धनत्वेन एकम्, ऋणत्वेन द्वितीयम्, एवमुदाहरण-द्वयं द्रष्टव्यं शेषं स्पष्टम् ॥

उदाहरण—

वह कौनसा गुण है जिससे ऋण साठ को गुणते हैं और उसमें तीन जोड़ या घटा देते हैं, बाद तेरह का भाग देते हैं तो निःशेष होता है ॥

न्यासः । भाज्यः ६ । क्षेपः ३ ।
हारः १३ ।

प्राग्वज्जाते धनभाज्ये धनक्षेपे गुणाप्ती $\begin{smallmatrix} ११ \\ ५१ \end{smallmatrix}$ एते स्वस्वतक्षणाभ्यामाभ्यां $\begin{smallmatrix} १३ \\ ६० \end{smallmatrix}$ शुद्धे जाते

---

* अत्र ज्ञानराजदैवज्ञः—

अश्कानां त्रिशजी च येन गुणिता दिग्वर्गयुक्ता भवे-
द्भाज्या रुद्रमितैर्हरैर्वद गुणं प्रत्येकमस्वागमम् ।
एकाशीतिशतत्रयं कतिगुणं भाज्यं द्विशत्या भजे-
त्पञ्चाशत्सहितं सुधीन्द्र भवता दृष्टोऽसि चेत्कुट्टकः ॥

ऋणभाज्ये धनक्षेपे $\begin{matrix}२\\६\end{matrix}$ अत्र भाज्यभाजकयो-र्विजातीययोः 'भागहारेऽपि चैवं निरुक्तम्' इत्युक्तत्वाल्लब्धेः ऋणत्वं ज्ञेयम् । $\begin{matrix}२\\६\end{matrix}$ पुनरेते स्वस्वतक्षणाभ्यामाभ्यां $\begin{matrix}१३\\६०\end{matrix}$ शुद्धे जाते ऋण-भाज्ये ऋणक्षेपे गुणाप्ती $\begin{matrix}११\\५१\end{matrix}$

* 'ऋणभाज्यऋणक्षेपे धनभाज्यविधिर्भवेत् ॥
तद्वत्क्षेपे धनगते व्यस्तं स्यादृणभाज्यके ॥
धनभाज्योद्भवे तद्वद्भवेतामृणभाज्यजे ॥

इति मन्दावबोधार्थं मयोक्तम् । अन्यथा 'योगजे तक्षणाच्छुद्धे' इत्यादिनैव तत्सिद्धेः । ऋणधनयोर्योगो वियोग एव । अत एव भाज्य-भाजकक्षेपाणां धनत्वमेव प्रकल्प्य गुणाप्ती साध्ये । ते योगजे भवतः । ते स्वतक्षणाभ्यां शुद्धे वियोगजे कार्ये । भाज्ये भाजके वा ऋणगते परस्परं भजनाल्लब्धयः ऋण-गताः स्थाप्या इति किं प्रयासेन । तथा कृते

---

* 'ऋणभाज्ये' इत्यारभ्य 'भाज्यके' इत्यन्तः पाठः कस्मिंश्चिन्मूलपुस्तके टीका-पुस्तके च नोपलभ्यते 'धनभाज्योद्भवे—' इत्यर्धं तु मूलपुस्तकद्वये टीकापुस्तकद्वये चाप्यवलोक्यते । तथा च "इति मन्दावबोधार्थं मयोक्तम् । अन्यथा 'योगजे तक्षणा-च्छुद्धे—' इत्यादिनैव तत्सिद्धेः" इति मूलग्रन्थलेखाच्चास्य गाथारूपस्य श्लोकपादषट्-कस्य मूलसूत्रेऽपाङ्क्तेयता प्रतीयत इति विभावयन्तु तत्त्वविदः ।

सति भाज्यभाजकयोरेकस्मिन्नृणगते गुणाप्ती ‘द्वौ राशी क्षिपेत्तत्र–’ इत्यादिना परोक्तसूत्रेण लब्धौ व्यभिचारः स्यात् ॥

न्यास। भाज्य = ६०। हार = १३। क्षेप = ३। उक्त प्रकार से वल्ली ४ हुई
१
१
१
१
३
०

बाद दो राशि हुए $\begin{matrix}६९\\१५\end{matrix}$ अपने-अपने तक्षणों $\begin{matrix}६०\\१३\end{matrix}$ से तष्टित करने से $\begin{matrix}६\\२\end{matrix}$ यहाँ लब्धि विषम हैं, इस कारण अपने-अपने तक्षणों $\begin{matrix}६०\\१३\end{matrix}$ में शुद्ध लब्धि-गुण हुए $\begin{matrix}५४\\११\end{matrix}$ ये धनभाज्य धनक्षेप संबन्धी हैं, अब इन्हें फिर अपने-अपने तक्षणों $\begin{matrix}६०\\१३\end{matrix}$ में शुद्ध करने से, ऋण-भाज्य, धनक्षेप संबन्धी लब्धि-गुण हुए $\begin{matrix}६\\२\end{matrix}$ यहाँ भाज्य भाजकों के विजातीय होने से ‘भागहारेऽपि चैवं निरुक्तम्’ इस सूत्र के अनुसार लब्धि ६̇ को ऋण जानना। फिर उन को $\begin{matrix}६०\\१३\end{matrix}$ इन तक्षणों में शुद्ध करने से ऋणभाज्य ऋणक्षेप में लब्धि-गुण हुए $\begin{matrix}५४\\११\end{matrix}$ यहाँ पर भी, हार-भाज्य के भिन्न जातीय होने से, लब्धि ५४̇ को ऋण जानना चाहिए।

अब यहाँ इस बात पर ध्यान देना है कि— प्रथम भाज्य, भाजक और क्षेप को धन कल्पना करके लब्धि गुण सिद्ध करना, यदि उद्दिष्ट भाज्य, क्षेप धन अथवा ऋण हों तो, सिद्ध किये हुये लब्धि गुणों पर से ही उद्दिष्ट की सिद्धि होगी। यदि भाज्य, क्षेपों में कोई

१–सूत्रमिदं टीकापुस्तके नोपलभ्यते, किंच कुत्रचिन्मूलपुस्तके पूर्वोक्तसूत्रस्य स्थाने “इष्टहतेऽधोराशौ–’ इत्यादिना पूर्वसूत्रेण” इत्याकारः पाठो दृश्यते। तत्रैतयोः कतरः पाठो न्याय्यानिति वक्तुं न शक्यते, सकलसूत्रादर्शनाद्दृढतरप्रमाणानुपलम्भाच्च।

एक धन और दूसरा ऋण हो तो, यथागत लब्धि गुणों को अपने-अपने तक्षण में शुद्ध करने से उद्दिष्ट की सिद्धि होगी, और हार के धन होने से कुट्टक में कुछ विशेष न होगा। उक्त रीति से गुण लब्धि धन ही होंगी और भाज्य भाजकों में, यदि कोई ऋण हो तो लब्धि-मात्र को ऋण जानना चाहिये, क्योंकि 'भागहारेऽपि चैवं निरुक्तम्' ऐसा कहा है। इस भाँति एक बार शोधन करने से उद्दिष्ट की सिद्धि होगी। और भाज्य ऋण हो तो अपने-अपने तक्षण से एक बार शोधन और क्षेप ऋणगत हो तो दो बार, इस बात को आचार्य ने कहा है "धनभाज्योद्भवे तद्वद्भवेतामृणभाज्यजे' इति मन्दावबोधार्थं मयोक्तम्। अन्यथा 'योगजे तक्षणाच्छुद्धे—' इत्यादिनैव तत्सिद्धेः। यतो धनर्णयोगो वियोग एव। अत एव भाज्यभाजकक्षेपाणां धनत्व-मेव प्रकल्प्य गुणाप्ती साध्ये। ते योगजे भवतः। ते स्वतक्षणाभ्यां शुद्धे वियोगजे कार्ये" इत्यादि।

अर्थात्—यहाँ धन भाज्य संबन्धी लब्धि-गुण, ऋण भाज्य में होते हैं, यह मैंने मन्दजनों के बोध के लिये कहा है। अन्यथा 'योगजे तक्षणाच्छुद्धे—' इसी सूत्र से सिद्धि होती है। क्योंकि, धन और ऋण राशि का योग ही अन्तर होता है, इसीलिये भाज्य-भाजक क्षेपों को धन कल्पना करके उक्त रीति से गुण-लब्धि सिद्ध करना वे धनक्षेप में होंगी और उन्हें अपने-अपने दृढ भाज्यहारों में शुद्ध करने से ऋणक्षेप में होंगी।

इस प्रकार ऋणभाज्य में निष्प्रयास कुट्टक की सिद्धि होने पर भी पूर्व आचार्यों ने वृथा परिश्रम किया है, यह कहते हैं—'भाज्ये भाजके वा ऋणगते परस्परभजनाल्लब्धयः ऋणगताः स्थाप्याः किं प्रयासेन' अर्थात् भाज्य अथवा भाजक के ऋणगत होने से उनके आपस में भाग देने से जो लब्धि आती हैं उन्हें ऋणगत स्थापन करना अर्थात् उन सब लब्धियों के शिर पर बिन्दु देकर एक आड़ी लकीर की भाँति लिखना, ऐसा परिश्रम करने का क्या प्रयोजन है? क्योंकि उक्त बात की सिद्धि बड़ी सुगमता से होती है। और प्रयास-

मात्र ही नहीं है, किंतु लब्धि में व्यभिचार भी आता है। जैसा—
प्रकृत उदाहरण में भाज्य=६० । क्षेप=३ ।
हार=१३ ।

उक्त विधि से वल्ली हुई
४
१
१
१
१
३
०

बाद दो राशि ६९/१५ तष्टित करने से हुए ९/२

लब्धि के विषम होने से अपने-अपने तक्षणों में शुद्ध करने से, ऋण भाज्य धनक्षेप में लब्धि-गुण हुए ५१/११

यहाँ लब्धि व्यभिचरित होती है, क्योंकि ११ से भाज्य ६० गुणित ६६० हुआ इसमें क्षेप ३ जोड़ने से ६५७ हुआ हार १३ का भाग देने से ५० लब्धि आई और शेष ७ रहा। यदि कहें यहाँ शेष रहने से गुण भी व्यभिचरित होगा, लब्धि में ही व्यभिचार क्यों कहा ? सत्य है, लब्धि यहाँ उपलक्षण है, इसलिये गुण का भी व्यभिचार सिद्ध हुआ। लब्धि में व्यभिचार का निश्चय होने से ९/२ ये जो लब्धि गुण आये थे, उन को ज्यों का त्यों रक्खा, अब इस में आलाप मिलता है जैसा—भाज्य ६० को गुण २ से गुणित १२० हुआ क्षेप ३ जोड़ने से ११७ हुआ इस में हार १३ का भाग देने से ऋण लब्धि ९ आई। यहाँ आलाप तो कथंचित् मिल गया परंतु 'एवं तदैवात्र यदा समास्ताः स्युर्लब्धयश्चेद्विषमास्तदानीम्। यथा गतौ लब्धिगुणौ विशोध्यौ स्वतक्षणाच्छेषमितौ तु तौ स्तः' इस सिद्धान्त से विरोध आता है, क्योंकि लब्धि विषम आई हैं। और ऐसा मानने से भाज्य, भाजक, क्षेप, इनके धन होने में और

लब्धियों के विषम होने में व्यभिचार ज्यों का त्यों बना रहता है। इसी उदाहरण में उक्त रीति से लब्धि-गुण सिद्ध हुए $\frac{६}{२}$ अब यहाँ आलाप भाज्य ६० धन गुण २ से गुणित १२० हुआ, इस में क्षेप ३ जोड़ा १२३ हुआ हार १३ का भाग देने से निःशेष नहीं होता। यदि यह कहें कि धनात्मक विषम लब्धि में अपने-अपने तक्षणों में शोधन आवश्यक है, ऋणात्मक में नहीं, तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि उक्त दोष का परिहार नहीं होता, जैसा—इसी उदाहरण में हार मात्र को ऋण कल्पना करने से लब्धि गुण हुए $\frac{६}{२}$ अब भाज्य ६० गुण २ गुणित १२० हुआ इस में क्षेप ३ जोड़ा १२३ हुआ इस में हार १३ का भाग देने से निःशेष नहीं होता।

और सम लब्धि में भी व्यभिचार होता है जैसा—वक्ष्यमाण उदाहरण के भाज्य=१८ हार=११ और क्षेप=१० हैं। उक्त रीति से वल्ली हुई १ दो राशि $\frac{५०}{३०}$ तक्षित करने से $\frac{१४}{८}$ हुए।

१
१
१
१०
०

यहाँ भाज्य १८ गुण ८ से गुणित १४४ हुआ क्षेप १० जोड़ा १३४ हुआ इसमें हार ११ का भाग देने से १२ लब्धि आई और २ शेष रहा, यह सब अनुक्त भी बुद्धिमान् जानते हैं। यहाँ हार के ऋण होने से सम लब्धि में और भाज्य के ऋण होने से विषम लब्धि में, प्राचीन रीति से लब्धि-गुण व्यभिचरित होते हैं।

उदाहरणम्—

अष्टादश हताः केन दशाढ्या वा दशोनिताः।
शुद्धं भागं प्रयच्छन्ति क्षयगैकादशोद्धृताः २५

न्यासः। भाज्यः १८। क्षेपः १०।
हारः ११।

अत्र भाजकस्य धनत्वं प्रकल्प्य साधितौ लब्धिगुणौ $\frac{१४}{८}$ एतावेव ऋणभाजके। किंतु लब्धेः पूर्ववदृणत्वं ज्ञेयम्। तथाकृते जातौ लब्धिगुणौ $\frac{१४}{८}$। ऋणक्षेपे तु 'योगजे तक्षणाच्छुद्धे—' इत्यादिना लब्धिगुणौ $\frac{४}{३}$ भाजकस्य धनत्वे ऋणत्वे वा लब्धिगुणावेतावेव, परंतु भाजके भाज्ये वा ऋणगते लब्धेः ऋणत्वं सर्वत्र ज्ञेयम्॥

उदाहरण—

वह कौन-सा गुण है जिस से अठारह को गुणाकर; दस जोड़ वा घटा देते हैं और ऋण ग्यारह का भाग देते हैं तो निःशेष होता है।

न्यास। भाज्य=१८। हार=११̇। क्षेप=१०। उक्त प्रकार से वल्ली उत्पन्न हुई १ बाद दो राशि $\begin{matrix}५ & ०\\३ & ०\end{matrix}$ तष्टित $\frac{१४}{८}$ भाज्य हार और १ क्षेप इन तीनों के धन होने से $\frac{१४}{८}$ ये लब्धि-गुण हुए, और १ हारमात्र के ऋण होने से भी वही लब्धि-गुण हुए, किंतु लब्धिमात्र १ का ऋणत्व होगा क्योंकि 'भागहारोऽपि चैवं निरुक्तम्' यह कहा है। १० इस भांति ऋण हार में लब्धि-गुण हुए $\frac{१४}{८}$। अब ऋणक्षेप में ० योगजे तक्षणाच्छुद्धे—' इस प्रकार से लब्धि गुण $\frac{४}{३}$ यहाँ हार धन हो वा ऋण; पर लब्धि-गुण वही होंगे और हार के ऋण होने से लब्धि ऋण होगी। यहाँ सर्वत्र ऋणत्व के निमित्त अपने-अपने तक्षणों में शोधन कहा है सो तभी जानना जब भाज्य क्षेपों में कोई एक ऋण हो और लब्धि भी ऋण तभी होती है जब भाज्य-भाजकों में कोई ऋण हो।

कई लोग 'ऋणभाज्योद्भवे तद्वद्भवेतामृणभाजके' ऐसा पाठ कल्पना करके भाजक के ऋण होने पर भी शोधन करते हैं। यह ठीक नहीं

प्रतीत होता, जैसा इस उदाहरण में तीनों के धन होने से, लब्धि-गुण हुए १४/८ और हार मात्र के ऋण होने से अपने-अपने तक्षणों में शोधन किया तो लब्धि हुए ४/३ आलाप——भाज्य १८ गुण ३ से गुणित ५४ हुआ। इस में क्षेप १० जोड़ा ६४ हुआ। अब ऋणहार ग्यारह का भाग देने से ५ लब्धि आई और शेष ६ रहा इसलिये यह असत् हुआ।

उदाहरणम्—

येन संगुणिताः पञ्च त्रयोविंशतिसंयुताः।
वर्जिता वा त्रिभिर्भक्ता निरग्राः स्युः स को गुणः

२६ न्यासः। भा. ५। क्षे २३। अत्र वल्ली १
हा. ३। १
२३
०

पूर्ववज्जातं राशिद्वयम् ४६/२३ अत्र तक्षणेऽधोराशौ सप्त लभ्यन्ते ऊर्ध्वराशौ तु नव लभ्यन्ते ते नव न ग्राह्याः। 'गुणलब्ध्योः समं ग्राह्यं धीमता तक्षणे फलम्' इत्यतः सप्तैव ग्राह्या इति जातौ लब्धिगुणौ ११/२ वियोगजे एतौ स्वस्वतक्षणाभ्यां शोधितौ जातौ ऋणक्षेपे ६/१ इष्टाहतस्वस्वहरेण युक्ताविति द्विगुणितौ स्वस्व-

हारौ क्षेप्यौ यथा धनलब्धिः स्यादिति कृते जातौ लब्धिगुणौ $\frac{४}{७}$ एवं सर्वत्र ज्ञेयम् ।

'हरतष्टे धनक्षेपे' इति न्यासः। भा. ५। क्षे. २
हा. ३।

पूर्ववज्जातौ लब्धिगुणौ योगजौ $\frac{४}{२}$ एतौ स्वतक्षणाभ्यां शुद्धौ $\frac{१}{१}$ जातौ वियोगजौ। क्षेपतक्षणलाभाढ्या लब्धिः' इति क्षेपतक्षणलाभेन, योगजलब्धिर्युता १ जाता योगजा 'लब्धिः शुद्धौ तु वर्जिता' इति तक्षणलाभेन, लब्धिरियं १ वर्जिता ६ धनलब्ध्यर्थं द्विगुणे हरे क्षिप्ते जातौ तावेव लब्धिगुणौ $\frac{४}{७}$ 'अथवा भागहारेण तष्टयोः—' इति न्यासः भा. २। क्षे. २।
हा. ३।

अत्रापि जातं राशिद्वयम् $\frac{२}{२}$ तक्षणाज्जातं $\frac{२}{२}$ अत्रापि जातः पूर्व एव गुणः २ लब्धिस्तु 'भाज्याद्धतयुतोद्धतात्' इति गुण २ गुणितो भाज्यः १० क्षेप २३ युतो ३३ हर ३ भक्तो लब्धिः सैव ११ ॥

अब 'गुणलब्ध्योः समं ग्राह्यम्—' 'हरतष्टे धनक्षेपे—' 'अथवा भागहारेण तष्टयोः—' इन सूत्रों की व्याप्ति दिखलाने के लिये उदाहरण—

वह कौन-सा गुण है, जिससे पाँच को गुण देते हैं और उस गुणनफल में तेईस जोड़ वा घटा देते हैं फिर तीन का भाग देते हैं तो निःशेष होता है ॥

न्यास । भाज्य=५ । हार=३ । क्षेप=२३ । उक्त रीति से वल्ली १
१
२३
०

दो राशि $\begin{matrix}४ & ६\\ २ & ३\end{matrix}$ यहाँ तक्षण करने में नीचले राशि से सात ७ मिलते हैं और ऊपर के राशि से नौ ६, परंतु नौ ६ नहीं लेना चाहिये किन्तु 'गुणलब्ध्योः समं ग्राह्यं धीमता तक्षणे फलम्' इस सूत्र के अनुसार सात ७ ही लेना उचित है । इस भाँति $\begin{matrix}११\\ २\end{matrix}$ लब्धि गुण हुए, ये योगज हैं । इस कारण अपने-अपने तक्षणों में शुद्ध करने से वियोगज हुए $\begin{matrix}६\\ १\end{matrix}$ यहाँ यदि लब्धि धन की इच्छा हुई तो 'इष्टाहृतस्वस्वहरेण—' इस सूत्र के अनुसार दो इष्ट मानने से लब्धि गुण हुए $\begin{matrix}४\\ ७\end{matrix}$ इस प्रकार यदि इष्ट हो तो धन लब्धि सिद्ध कर लेनी चाहिए ।

अथवा 'हरतष्टे धनक्षेपे—' इस सूत्र के अनुसार न्यास—

भाज्य=५ । क्षेप=२ । उक्त विधि से वल्ली १
हार=३ । १
२
०

दो राशि $\begin{matrix}४\\ २\end{matrix}$ योगज लब्धि-गुण हैं । अपने-अपने तक्षणों में शोधन करने से वियोगज हुए $\begin{matrix}१\\ १\end{matrix}$ यहाँ 'क्षेपतक्षणलाभाढ्या लब्धिः—'इस सूत्र के अनुसार क्षेप तक्षण फल ७ को योगज-लब्धि ४ में जोड़ने से ११ हुए और 'शुद्धौ तु वर्जिता' के अनुसार वियोगज लब्धि १ में क्षेप तक्षण फल ७ को घटा देने से ६ हुए, इस प्रकार वही लब्धि-गुण हुए $\begin{matrix}११\\ २\end{matrix}$ । $\begin{matrix}६\\ १\end{matrix}$

'अथवा भागहारेण तष्टयोः—' इस सूत्र के अनुसार न्यास—
भाज्य=२ । क्षेप=२ । उक्त प्रकार से वल्ली ०
हार=३
१
२
०

दो राशि $\frac{४}{२}$, यहां गुण तो पहला ही हुआ, परंतु लब्धि भाज्या-द्धतयुतोद्धतात्-' इस सूत्र के अनुसार गुण २ से भाज्य ५ को गुणने से १० क्षेप २३ जोड़ने से ३३ हुआ इस में हार ३ का भाग देने से वही लब्धि आई ११ ॥

उदाहरणम्—

येन पञ्च गुणिताः खसंयुताः
पञ्चषष्टिसहिताश्च तेऽथ वा ।
स्युस्त्रयोदशहृता निरग्रका-
स्तं गुणं गणक कीर्त्तयाशु मे ॥ २६ ॥

न्यासः । भाज्यः ५ । हारः १३ । क्षेपः ० ।
क्षेपाभावे गुणाप्ती $\frac{०}{०}$ एवं पञ्चषष्टिक्षेपे $\frac{०}{५}$ वा $\frac{१३}{१०}$ इत्यादि ।

'क्षेपाभावोऽथ वा यत्र क्षेपः शुध्येद्धरोद्धतः' इन दोनों बातों के दिखलाने के लिये उदाहरण—

ऐसा कौन गुण है जिससे पाँच को गुणकर, उस में शून्य अथवा पैंसठ जोड़ देते हैं और तेरह का भाग देते हैं तो निःशेष होता है ॥

दोनों उदाहरणों के न्यास भाज्य=५ । क्षेप=० । वा, भाज्य=५ । क्षेप=६५
हार=१३ । हार=१३ ।

यहाँ पहले उदाहरण में क्षेप का अभाव है और दूसरे में क्षेप ६५ हार १३ का भाग देने से शुद्ध होता है । इसलिये दोनों स्थानों

में शून्य ही गुण हुआ और क्षेप में हार का भाग देने से ०, ५ फल हुआ । इस प्रकार लब्धि-गुण सिद्ध हुए $\frac{०}{०}$ । $\frac{५}{०}$ और 'इष्टाहतस्व-स्वहरेण—' इस सूत्र के अनुसार १ इष्ट मानने से लब्धि-गुण हुए $\frac{५}{१३}$ । $\frac{१०}{१३}$ । इस प्रकार कल्पना वश अनन्त लब्धि-गुण होंगे ॥

अथ स्थिरकुट्टके सूत्रं वृत्तम्—

क्षेपं विशुद्धिं परिकल्प्य रूपं
पृथक्पृथग्ये गुणकारलब्धी ॥ ३६ ॥
अभीप्सितक्षेपविशुद्धिनिघ्ने
स्वहारतष्टे भवतस्तयोस्ते ।

अथ ग्रहगणिते विशेषोपयुक्तं स्थिरकुट्टकमुपजातिकोत्तरपूर्वार्धाभ्यामाह—क्षेपमिति । क्षेपं धनक्षेपं विशुद्धिमृणक्षेपं रूपं परिकल्प्य तयोर्धनर्णक्षेपयोः पृथक् ये गुणकारलब्धी स्यातां ते अभीप्सितक्षेपविशुद्धिगुणिते स्वहारतष्टे च तयोः क्षेपविशुद्ध्योर्गुणाप्ती भवतः । एतदुक्तं भवति—'मिथो भजेत्तौ दृढभाज्यहारौ—' इत्यादिना फलान्यधोधो निवेश्य तदधः क्षेपस्थाने रूपं निवेश्य अन्ते खं च निवेश्य '—उपान्तिमेन, स्वोर्ध्वे हते—' इत्यादिना धनक्षेपे ऋणक्षेपे गुणलब्धी पृथक्-पृथक् साध्ये । अथाभीप्सितक्षेपो यदि धनमस्ति तर्हि धनक्षेपजे गुणाप्ती अभीप्सितक्षेपेण गुणनीये, यदि त्वभीप्सितक्षेपः क्षयोऽस्ति तर्हि ऋणक्षेपजे गुणाप्ती अभीप्सितेन ऋणक्षेपेण गुणनीये । पश्चात्स्वस्वहारेण पूर्ववत्तष्टे उद्दिष्टगुणाप्ती स्तः ॥

स्थिर-कुट्टक का प्रकार —

धनक्षेप या ऋणक्षेप को एक ही मानकर उससे जो गुण-लब्धि सिद्ध होती हैं, उनको अभिमत धन अथवा ऋणक्षेप से गुणने और अपने-अपने हार से तष्टित करने से वे धन-ऋणक्षेप में

गुण-लब्धि होंगी, तात्पर्य यह है कि 'मिथो भजेत्तौ दृढभाज्यहारौ—' इस सूत्र के अनुसार जो फल सिद्ध हों, उनको एक के नीचे एक, इस रीति से स्थापन करना और क्षेप के स्थान में १ लिख कर उसके नीचे शून्य रखना फिर "उपान्तिमेन, स्वोर्ध्वे हतेऽन्त्येन युते तदन्त्यं त्यजेन्मुहुः स्यादिति राशियुग्मम्' इस क्रिया के अनुसार दो राशि सिद्ध करना और उन से गुण-लब्धि लाना वे धनक्षेप अथवा ऋणक्षेप में होंगी। बाद उनको अपने धन किंवा ऋण इष्टक्षेप से गुणकर अपने-अपने हर से तष्टित करने से उद्दिष्ट गुण-लब्धि होंगी॥

उपपत्ति—

यदि रूपक्षेप में उद्दिष्ट गुण-लब्धि आती है, तो इष्ट क्षेप में क्या, इस प्रकार अनुपात से 'क्षेपं विशुद्धिं—' यह सूत्र उपपन्न होता है॥

प्रथमोदाहरणे दृढभाज्यहारयो रूपक्षेपस्य च न्यासः। भा. १७। क्षे. १। हा. १५।

अत्रोक्तवद् गुणाप्ती ७/८ एते अभीष्टक्षेपपञ्च-गुणे स्वहारतष्टे जाते ५/६ ते एव। अथ रूप-शुद्धौ गुणाप्ती ८/९ एते पञ्चकगुणे स्वहारतष्टे जाते १०/११ ते एव एवं सर्वत्र।

अब विश्वास के लिये प्रथम उदाहरण के दृढ़ भाज्य हार और रूपक्षेप से गणित दिखलाते हैं—

भाज्य=१७। क्षेप=१।

हार=१५।

उक्त विधि से गुण-लब्धि हुई ७/८ इनको अभिमत क्षेप ५ से गुण देने से ३५। ४० गुण-लब्धि हुई, अपने-अपने हार से तष्टित करने से वही पहलेवाली गुण-लब्धि हुई ५/६ और रूप शुद्धि में गुण-

लब्धि हुईं $\frac{८}{९}$ इनको पांच से गुणा कर, अपने अपने हार से तष्टित करने से, पञ्च शुद्धि में गुण-लब्धि हुईं $\frac{१}{१}$ $\frac{०}{१}$ इस भांति सर्वत्र जानना चाहिए ।

अस्य गणितस्य ग्रहगणिते महानुपयोगः। तदर्थं किंचिदुच्यते—

कल्प्याथ शुद्धिर्विकलावशेषं
षष्टिश्च भाज्यः कुदिनानि हारः॥ ३७॥
तज्जं फलं स्युर्विकला गुणस्तु
लिप्ताग्रमस्माच्च कला लवाग्रम् ।
एवं तदूर्ध्वं च तथाधिमासा-
वमाग्रकाभ्यां दिवसा रवीन्द्वोः ॥ ३८ ॥

ग्रहस्य विकलावशेषाद्ग्रहाहर्गणयोरानयनम् । तद्यथा—तत्र षष्टिर्भाज्यः। कुदिनानि हारः। विकलावशेषं शुद्धिरिति प्रकल्प्य साध्ये गुणाप्ती । तत्र लब्धिर्विकलाः स्युः । गुणस्तु कलावशेषम् ।

एवं कलावशेषाल्लब्धिः कला गुणो भागशेषम् ।

तद्भागशेषं शुद्धिः। कुदिनानि हारः। त्रिंशद्भाज्यः। तत्र लब्धिर्भागाः। गुणो राशिशेषम्।

द्वादश भाज्यः। कुदिनानि हारः। राशिशेषं शुद्धिः। तत्र फलं राशयः। गुणो भगणशेषम्।

भगणा भाज्यः। कुदिनानि हारः। भगणशेषं शुद्धिः। फलं गतभगणाः। गुणोऽहर्गणः स्यादिति॥

अस्योदाहरणानि प्रश्नाध्याये।

एवं कल्पाधिमासा भाज्यः। रविदिनानि हारः। अधिमासशेषं शुद्धिः। लब्धिर्गताधिमासाः। गुणो गतरविदिवसाः।

एवं कल्पावमानि भाज्यः। चान्द्रदिवसा हारः। अवमशेषं शुद्धिः। फलं गतावमानि। गुणो गतचान्द्रदिवसा इति॥

अथ 'कल्पादिशुद्धिः–' इत्यादि सार्धोपजातिकाचार्यैर्व्याख्यातत्वान्न पुनर्व्याख्यायते किंत्वत्र युक्तिमात्रं प्रदर्श्यते तच्च श्रीवापुदेवपादैः कल्पितम्, केवलाद्विकलाशेषाद्ग्रहेऽवगन्तव्ये यस्य ग्रहस्य तद्विकलावशेषं स्यात् तस्य राश्यंशादयः केचन नियता एव भवेयुर्न यथेष्टकल्प्या इति तावत् सुप्रसिद्धम्। तत्र 'कल्प्यावशुद्धिर्विकलावशेषम्–' इत्यादिना कुट्टककरणे यदि भाज्यहारक्षेपाणामपवर्तनं न संभवेत् तदा तत्र यथागतौ लब्धिगुणावेकविधावेव भवितुं शक्नुतः। 'इष्टाहतस्वस्वहरेण–' इत्यादिनान्ययोर्लब्धिगुणयोर्ग्रहणे लब्धिर्विकलाः षष्टितोऽधिकाः स्युर्गुणः कलाशेषं च कुदिनेभ्योऽधिकं स्यादिति तत्र यौ लब्धिगुणौ

पूर्वस्वस्वहराल्पावागच्छतस्तावेव वास्तवावित्यत्र न कश्चित् संदेहावसरः। यदा पुनर्भाज्यहारक्षेपाणामपवर्तनं संभवेत् तदा तु लब्धिगुणयोः क्रमेण षष्टितः कुदिनतश्चाल्पयोरप्यनेकविधत्वं स्यात्। एवमनेकासु लब्धिषु या लब्धिर्ज्ञातव्यग्रहस्य नियतानां विकलानां मानं स्यात् सैव लब्धिर्विकलात्वेन ग्रहीतुं युज्यते तद्गुण एव च कलाशेषत्वे न। तदितरयोर्लब्धिगुणयोर्ग्रहणे तु तन्मानयोरवास्तवादग्रे क्रिया न निर्वहेत् खिलत्वं चापद्येत।

यथा—यदा किल भौमस्य विकलाशेषम् २१००५३४१२००० एतावत् स्यात् तदास्मात् 'कल्प्याथ शुद्धिः—' इत्यादिना मध्यमे भौमेऽवगन्तव्ये षष्टिर्भाज्यः ६० विकलाशेषमृणक्षेपः २१००५३४१२००० कल्पकुदिनानि हारः १५७७९१६४५०००० अत्र भाज्यहारक्षेपाणां षष्टिरपवर्तनमस्ति तेनापवर्ते कृते जाता दृढभाज्यहारक्षेपाः। दृ. भा. १। दृ. क्षे. ३५००८९०२००
दृ. हृ. २६२९८६०७५००

अत्र कुट्टकविधिना लब्धिगुणौ ०। ३५००८९०२०० वा १। २९७९९४९७७०० इत्यादिकौ षष्टिविधौ स्याताम्। तत्राद्या लब्धिश्चेद्विकलामानं तद्गुणश्च कलाशेषं कल्प्यते तदा पुनः षष्टिर्भाज्यः ६० कलाशेषमृणक्षेपः ३५००८९०२०० कुदिनानि हारः। अत्रापि भाज्यहारक्षेपेषु षष्ट्यापवर्तितेषु सिद्धा दृढभाज्यहारक्षेपाः दृ.भा. १ दृ. क्षे. ५८३४८१७०
दृ. हृ. २६२९८६०७५००
अत्र कुट्टकविधिना लब्धिगुणौ ०।५८३४८१७० वा १।२६३५६९५५६७० इत्यादिरंशशेषम्।

पुनस्त्रिंशद्भाज्यः ३०। अंशशेषमृणक्षेपः ५८३४८१७० कुदिनानि हारः। अत्रापि भाज्यहारक्षेपेषु त्रिंशतापवर्तितेषु सिद्धा

दृढभाज्यहारक्षेपाः। दृ. भा. १ दृ. क्षे. १६४४६३६ } अतः
दृ. ह. ५२५६७२१५०००

कुट्टकविधिना लब्धिगुणौ ०।१६४४६३६वा १।५२५६६१५६६३६ इत्यादि । अत्र लब्धिः ०। १ इत्यादिरंशाः । गुणाश्च १६४४६३६। ५२५६६१५६६३६ इत्यादी राशिशेषम् ।

पुनरत्र द्वादश भाज्यः १२ राशिशेषमृणक्षेपः १६४४६३६ कुदिनानि हारः १५७७६१६४५०००० अत्र भाज्यहारौ द्वादशभिरपवर्त्यो न तथा क्षेपः। एवमत्र खिलत्वापत्तिः ।

एवमेव लब्धिगुणयोर्यत्रानेकविधत्वं संभवेत् तत्र मुहुर्मुहुः खिलत्वापत्तौ यया यया लब्ध्या विकलाद्यहर्गणान्तं सर्वं निर्बाधं सिध्येत् तत्तल्लब्ध्यन्वेषणे तु गणितेऽतीव गौरवं स्यादिति तत्र 'कल्प्याश्च शुद्धिः—' इत्यादिप्रकारेण विकलाशेषाद्ग्रहाहर्गणयोरवगमो दुर्गम एव । अतस्तत्रान्यथा यतितव्यम् ।

तदित्थम्—कल्पकुदिनानि भाज्यं विकलाशेपं क्षेपं चक्रविकलाश्च हरं प्रकल्प्य कुट्टकविधिना सक्षेपौ लब्धिगुणौ साध्यौ तत्र लब्धिर्भगणशेषं गुणश्च विकलात्मको ग्रहो भवेत् । ततो ग्रहभगणान् भाज्यं, सक्षेपं भगणशेषं च शुद्धिं कल्पकुदिनानि हरं च प्रकल्प्य साधितो गुणोऽहर्गणः स्यादित्येवं ग्रहाहर्गणयोरवगमः सुगम एव सुधियाम् ।

यथात्र कल्पकुदिनानि १५७७६१६४५०००० भाज्यः । विकलाशेषम् २१००५३४१२००० क्षेपः। चक्रविकलाः १२६६०००हरः। एते हरस्याष्टमांशेन १६२००० अपवर्तिता

जाता दृढाः { दृ. भा. ९७४०२२५ दृ. क्षे. १२६६६२६
दृ. ह. ८ }

अतः सिद्धौ लब्धिगुणौ ७४६७२४७।६। ततो यावत्तावदिष्टं

प्रकल्प्य 'इष्टाहतस्वस्वहरेण—' इत्यादिना सिद्धौ सक्षेपौ लब्धिगुणौ

{ या ९७४०२२५ रू ७४६७२४७ } अत्र लब्धिस्तावद्
{ या ८ रू ६ }

भगणशेषं गुणश्च विकलात्मको ग्रहः। एवं भौमभगणाः २२९६८२८५२२ भाज्यः।भगणशेषं सक्षेपं या ९७४०२२५ रू७४६७२४७शुद्धिः।कल्पकुदिनानि १५७७९१६४५०००० हारः। अत्र लब्धिर्गतभगणाः। गुणोऽहर्गणः स्यात् परमत्र कुट्टकविधिना लब्धिगुणानयने भाज्यहरौ द्वयेनापवर्तेते ततः शुद्धयापि तेनापवर्त्तया भाव्यमिति ९७४०२२५ इमं यावत्तावदङ्कं भाज्यं

१

७४६७२४७ इमानि रूपाणि क्षेपं, द्वयं च हरं प्रकल्प्य कुट्टकविधिना साधितौ लब्धिगुणौ ८६०३७३६ ततः 'इष्टाहतस्वस्वहरेण—' इत्यादिनेष्टं कालकं प्रकल्प्य साधितो गुणः सक्षेपः का२रू१ इदं यावत्तावन्मानम्। अनेनोत्थापिता शुद्धिर्जातं द्वयेनापवर्त्यं भगणशेषम् का १९४८०४५० रू १७२०७४७२ एवं पूर्वसाधिते या ८ रू ६ अस्मिन्गुणे चोत्थापिते सिद्धो विकलात्मको ग्रहः।का १६ रू१४।तथा च भौमभगणाः २२९६८२८५२२ भाज्यः। कुदिनानि १५७७९१६४५०००० हारः। का १९४८०४५० रू १७२०७४७२ इदं भगणशेषं शुद्धिः एते द्वाभ्यामपवर्तिता जाता दृढाः।

{ दृ. भा. ११४८४१४२६१ दृ. शु. का ९७४०२२५ }
{ रू ८६०३७३६ दृ. ह ७८८९५८२२५००० }

अत्र पूर्वं तावद्रूपशुद्धौ साधितौ लब्धिगुणौ ६२८८८३६ ततः
४३२०४१७३४१

'क्षेपे तु रूपे यदि वा विशुद्धौ—' इत्यादिना, का ९७४०२२५ रू ८६०३७३६ अस्यां शुद्धौ सिद्धौ लब्धिगुणौ

का ५५७७७४८८२ रू १०९५१९८५४२

का ३८३१९०१९१७२५ रू ७५२३९९१३५९७६

अत्र कालकमानमिष्टं प्रकल्प्य तेनोत्थापितावेतौ लब्धिगुणौ स्वस्वदृढभाज्यहाराभ्यां तष्टौ क्रमेण गतभगणाहर्गणमाने भवतः। पुनरेते इष्टाहतस्वीयदृढभाज्यहाराभ्यां युक्ते चानेकधा स्याताम्। तथा तेनैव कल्पितेन कालकमानेनोत्थापितमिदं का १६ रू १४ विकलात्मको ग्रहो भवेत्।

यथा कालके शून्येनोत्थापिते जातोऽहर्गणः७५२३९९१३५९७६ ग्रहश्च ०।०।०।१४। कालके रूपेणोत्थापिते जातोऽहर्गणः ११३५५८९३२७७०१ ग्रहश्च ०।०।०।३० एवं कालके ४२८७९ अनेनोत्थापिते जातम् १६४३१५६४६३०११२२५१ अस्मिन् ७८८९५८२२५००० अनेन दृढहरेण तष्टे जातोऽहर्गणः ७२०६३६२६२२५१ अयमिष्टाहतेन दृढहरेण युक्तोऽनेकधा स्यात्।

एवं ४२८७९ अनेनैव कालकमानेनोत्थापितमिदं का १६ रू १४ जातो विकलात्मको ग्रहः ६८६०७८ अतो राश्यादिः ६।१०।३४।३८। एवमिष्टवशादनेकधा॥

ग्रह के विकला शेष से ग्रह और अहर्गण का साधन——यहां साठ भाज्य, कुदिन हार, और विकला शेष ऋण क्षेप है, तो विकला लब्धि और कला शेष गुण होगा।

फिर साठ भाज्य, कुदिन हार, और कला शेष ऋण क्षेप है, तो कला लब्धि और भाग शेष गुण होगा।

फिर तीस भाज्य, कुदिन हार, और भाग शेष ऋण क्षेप है, तो भाग लब्धि और राशि शेष गुण होगा।

फिर बारह भाज्य, कुदिन हार, और राशि शेष ऋण क्षेप है, तो राशि लब्धि और भगण शेष गुण होगा।

फिर कल्प के ग्रह भगण भाज्य, कुदिन हार, और भगण शेष ऋणाक्षेप है, तो गत भगण लब्धि और अहर्गण गुण होगा ।

इस भाँति कल्प के अधिमास भाज्य, रविदिन हार और अधिमास शेष ऋणाक्षेप है, तो गताधिमास लब्धि और गत रविदिन गुण होगा ।

फिर कल्प के अवमदिन भाज्य, चान्द्रदिन हार, और अवमशेष ऋणाक्षेप है, तो गतावम लब्धि और गतचान्द्र दिन गुण होगा ।

अब छात्रों के बोध के लिये कल्प कुदिन १९ कल्प ग्रह भगण ९ और अहर्गण १३ कल्पना करके, उक्त विषय को स्पष्ट करते हैं—कल्प के कुदिन में कल्प के ग्रह भगण मिलते हैं, तो इष्ट कुदिन (अहर्गण) में क्या, इस अनुपात से 'द्युचरचक्रहतो दिनसंचयः कहहृतो भगणादिफलं ग्रहः'—इस प्रकार के अनुसार ग्रह सिद्ध किये जाते हैं । प्रकृत में अहर्गण १३ को भगण ९ से गुणने से ११७ में कुदिन १९ का भाग देने से ग्रह भगण ६ लब्ध मिले, भगण शेष ३ रहा, इसको १२ से गुणने से ३६ में कुदिन १९ का भाग देने से राशि १ लब्ध मिली, राशि शेष १७ रहा, इसको ३० से गुणने से ५१० में कुदिन १९ का भाग देने से अंश २६ लब्ध मिले, अंश शेष १६ रहा, इसको ६० से गुणने से ९६० में कुदिन १९ का भाग देने से कला ५० लब्ध मिली, कला शेष १० रहा, इसको ६० से गुणने से ६०० में कुदिन १९ का भाग देने से विकला ३१ लब्धि मिली, विकला शेष ११ रहा, अगले अवयवों के लाने का आवश्यक नहीं है । इस कारण विकला शेष ११ को छोड़ दिया । इस भाँति भगणादिक ग्रह सिद्ध हुआ ६।१।२६।५०।३१ अब इस पर से विलोमकर्म के अनुसार ग्रह और अहर्गण का आनयन करते हैं—तहां 'कल्प्याथ शुद्धिः—' इस प्रकार से भाज्य, हार और क्षेप हुए—

भा=६० । क्षे=११ ।
हा=१९ ।

उक्त विधि से वल्ली हुई ३
६
११
०

बाद दो राशि २०६/६६ को तष्टित करने से लब्धि-गुण हुए २६/८ 'योगजे तक्षणाच्छुद्धे—' इस सूत्र से ऋण क्षेप में लब्धि-गुण हुए ३१/१० यहां लब्धि ३१ विकला हैं और गुण १० कला-शेष है। अब इस कला शेष १० को ऋणक्षेप मान कर, कला के लाने के लिये कुट्टक करते हैं——भा=६० । क्षे=१० ।
हा=१९ ।

उक्त रीति से वल्ली हुई ३ बाद दो राशि हुए १६० तष्टित करने से
६ ६०
१०
०

योगज लब्धि-गुण हुए १०/३ इनको अपने अपने तक्षण में शुद्ध करने से ऋणक्षेप में लब्धि-गुण हुए ५०/१६ । यहां लब्धि ५० कला हैं और गुण १६ अंश शेष हैं। अब अंश शेष १६ को ऋणक्षेप कल्पना कर के अंश के जानने के लिये कुट्टक करते हैं——भा=३ । क्षे=१६ ।
हा=१९ ।

उक्त प्रकार से वल्ली हुई १ और दो राशि हुए १७६
१ ११२
१
२
१
१६
०

तष्टित करने से २६/१७ अब वल्ली के विषम होने से और ऋणक्षेप के होने से, दो बार शोधन करने से लब्धि गुण ज्यों के त्यों रहे २६/१७

लब्धि २६ अंश हैं और गुण १७ राशि शेष हैं। अब राशि शेष १७ को ऋणक्षेप मान कर राशि जानने के लिये कुट्टक करते हैं—भा=१२ क्षे=१७ । हा=१९ ।

उक्त विधि से वल्ली सिद्ध हुई ० बाद दो राशि हुए—

१
१
१
२
१७
०

$\begin{matrix}८५\\१३६\end{matrix}$ तष्टित करने से लब्धि-गुण हुए $\begin{matrix}१\\३\end{matrix}$ । वल्ली के विषम और ऋणक्षेप होने से दो बार शोधन करने से, लब्धि-गुण ज्यों के त्यों रहे $\begin{matrix}१\\३\end{matrix}$ । यहां लब्धि १ राशि है और गुण ३ भगण शेष हैं। अब भगण शेष ३ को ऋणक्षेप कल्पना करके कुट्टक करते हैं——

भा=९ । क्षे=३ ।
हा=१९ ।

उक्त विधि से वल्ली $\begin{matrix}०\\२\\३\\०\end{matrix}$ और लब्धि-गुण हुए $\begin{matrix}३\\६\end{matrix}$ शुद्ध करने से $\begin{matrix}६\\१३\end{matrix}$ हुए। यहां लब्धि ६ गत भगण हैं और गुण १३ अहर्गण है। यही इष्ट भी था।

उपपत्ति——

साठ को कला शेष से गुण कर, कुदिन का भाग देने से लब्ध विकला आती है और शेष विकलाशेष रहता है। इसलिये किस गुण से गुणित विकलाशेष से हीन और कुदिन से भाजित साठ निः शेष होगी, इस कारण गुण जानने के लिये कुट्टक किया है। उस से गुण कला शेष और लब्धि विकला सिद्ध हुई है। इसी प्रकार साठ को अंश शेष से गुण कर, कुदिन का भाग देने से लब्ध कला आती हैं और शेष कला शेष रहता है। इस लिये अंश शेषमित गुण से गुणित कला शेष से हीन और कुदिन से भाजित साठ निःशेष होगा।

वहां लब्धि कला और गुण भाग शेष कुट्टक के द्वारा सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार राशि शेष से गुणित भाग शेष से हीन और कुदिन से भाजित भाज्य-तीस निःशेष होगा, वहां लब्धि भाग और गुण राशि-शेष होता है। ऐसे ही भगणशेष से गुणित राशिशेष से हीन और कुदिन से भाजित भाज्य-बारह निःशेष होगा, वहां लब्धि राशि और गुण भगणशेष होता है। और अहर्गण से गुणित भगणशेष से हीन और कुदिन से भाजित ग्रह-भगण निःशेष होगा, वहां लब्धि गत भगण और गुण अहर्गण होता है। इस प्रकार उक्त स्थलों में सर्वत्र कुट्टक का विषय होता है।

अब कल्प के सौर दिन में कल्प के अधिमास मिलते हैं, तो इष्ट सौर दिन में क्या ? इस अनुपात से कल्प के अधिमास, इष्ट सौर से गुणे जाते हैं और कल्प के सौर दिन से भाजित होते हैं। वहां लब्ध इष्ट-अधिमास आते हैं और शेष अधिमास शेष बचता है। इसलिये किस गुण से गुणित अधिमास शेष से रहित और कल्प के सौर दिन से भाजित कल्पाधिमास निःशेष होंगे ? यह कुट्टक का विषय उपस्थित हुआ। यहां जो गुण आवेगा वही इष्ट सौर दिन होंगे और जो लब्धि होगी वही गताधिमास। इसी भांति कल्पचान्द्र दिन में कल्प के अवम मिलते हैं, तो इष्टचान्द्र दिन में क्या ? इस अनुपात से कल्प के अवम दिन इष्टचान्द्र दिन से गुणे जाते हैं और कल्प के चान्द्र दिन से भाजित होते हैं। वहां लब्ध गत अवम आते हैं और शेष अवमशेष रहता है इसलिये किस गुण से गुणित अवमशेष से रहित और कल्प के चान्द्र दिन से भाजित कल्पावम निःशेष होंगे। इस प्रकार कुट्टक की रीति से लब्धिगत अवम और गुण इष्ट चान्द्र दिन सिद्ध होते हैं। और 'कल्प्याथ शुद्धिः—' यह विधि उपपन्न होती है॥

अथ संश्लिष्टकुट्टके करणसूत्रं वृत्तम्।

एको हरश्चेद्गुणकौ विभिन्नौ

तदा गुणैक्यं परिकल्प्य भाज्यम् ।
अग्रैक्यमग्रं कृत उक्तवद्यः
संश्लिष्टसंज्ञः स्फुटकुट्टकोऽसौ * ॥३९॥

एवमेकस्मिन् गुणके सति राशिज्ञानमभिधाय द्व्यादिषु गुणकेषु सत्सु राशिज्ञानमुपजात्याह—एक इति । चेदेको हरः स्यात्, गुणकौ तु विभिन्नौ स्याताम् 'गुणकौ' इत्युपलक्षणम्, तेन त्र्यादयो वा गुणकाः स्युः। एकस्यैव राशेः पृथक् पृथक् द्वौ गुणकौ त्रयश्चतुरादयो वा गुणकाः स्युः । सर्वत्र हरस्त्वेक एव स्यात् । तदा तेषां द्व्यादीनां गुणकानामैक्यं भाज्यं परिकल्प्य उद्दिष्टं यदग्रैक्यं तदग्रमृणक्षेपं प्रकल्प्य अर्थाद्धरमेव हरं प्रकल्प्य उक्तवद्यः कृतः स्फुटः कुट्टकः असौ संश्लिष्टसंज्ञः स्यात् । 'संश्लिष्टस्फुटकुट्टकः' इत्यन्वर्थसंज्ञा । तथाहि—कुट्टको गुणकविशेषः संश्लिष्टानामेकीभूतानां परस्परं संवलितानामिति यावत् अग्राणां शेषाणां संबन्धी स्फुटोऽव्यभिचरितः कुट्टकः संश्लिष्टकुट्टकः । स एव राशिः स्यादित्यर्थात्सिद्धम् । अत्र लब्धिर्न ग्राह्या । अत्र हि यथोद्दिष्टैर्गुणकैः पृथग्गुणिते राशौ हरतष्टे सति या आगता लब्धयस्तदग्राणां चैक्ये हरतष्टे सति या लब्धिः सा न ग्राह्या, अत्र हि यथोद्दिष्टैः कुट्टकैः पृथग्गुणिते राशौ हरतष्टे या आगता लब्धयस्तासामैक्यं तदत्र कुट्टके लब्धिरूपमुत्पद्यते प्रयोजनाभावात्तन्न ग्राह्यम् ॥

---

* अत्र श्रीबापुदेवपादाः—

अन्योन्याग्राहतयोर्गुणयोः संश्लिष्टकुट्टके यत्र ।
वियुतिर्हरेण भक्ता न निरग्रास्याखिलं तदुद्दिष्टम् ॥

'कः पञ्चनिघ्नः—' इस उदाहरण में ५ गुण से दस के अग्र (शेष) १४ को गुणने से ७० हुए और १० गुण से पांच के अग्र ७ को गुणने से ७० हुए, इनका अन्तर ० हुआ। यह हर ६३ का भाग देने से शुद्ध होता है, इसलिये यह उदाहरण शुद्ध है ॥

संश्लिष्ट-कुट्टक का प्रकार––

यदि हर एक हो और गुण अनेक हों, तो उन गुणकों के योग को भाज्य और शेषों के योग को ऋणक्षेप कल्पना करके उक्त विधि से जो कुट्टक किया जाता है वह संश्लिष्ट-कुट्टक कहलाता है ॥

उपपत्ति––

गुण से गुणित और युक्त कोई राशि, गुणयोग से गुणित उसी राशि के तुल्य होता है। और वहां अलग-अलग हर से भाजित लब्धियों का योग अथवा हर से भाजित योग, ये भी समान होते हैं। जैसा–राशि १० को २, ३ और ४ गुणकों से अलग-अलग गुण देने से २०। ३०। ४०। इन में हर १९ का भाग देने से १। १। २ लब्धि मिली और १। ११। २ शेष रहे।

अथवा, पूर्व राशि १० को २। ३। ४ गुणकों के योग ९ से गुण देने से ९० हुए। इसमें हर १९ का भाग देने से ४ लब्धि मिली और शेष १४ रहा।

यहां १। १। २ इन लब्धियों के योग ४ के समान ४ लब्ध आये हैं और १। ११। २ इन शेषों के योग १४ के समान शेष १४ रहा है। इसलिये उद्दिष्ट राशि १० गुणक योग ९ से

यो राशिरीश्वरैः (११) सप्तचन्द्रै (१७) र्निघ्नोऽग्निदग् (२३) हृतः।
पञ्चशेषस्त्रिशेषः स्यात्क्रमाद्राशिं वदाशु तम् ॥

इस उदाहरण में ११ गुण से सत्तरह के अग्र ३ को गुणने से ३३ हुए और १७ गुण से ग्यारह के अग्र ५ को गुणने से ८५ हुए इन का अन्तर ५२ हुआ यह हर २३ का भाग देने से शुद्ध नहीं होता है. इसलिये यह उदाहरण अशुद्ध है। जैसा—

भाज्य=२८ क्षेप=८ वल्ली
हार=२३

१
४
१
१
८
०

वल्ली से गुण २० लब्धि २४। इत्यादि।

गुणित ६० और शेष योग १४ से घटा ७६ हर १६ से भाजित निःशेष होता है । इस प्रकार कुट्टकविधि से गुण ही राशि सिद्ध होती है । इस से 'एको हरश्चेद् गुणकौ विभिन्नौ—' यह सूत्र उपपन्न हुआ ।

उदाहरणम्—

* कः पञ्चनिघ्नो विहृतस्त्रिषष्ट्या
सप्तावशेषोऽथ स एव राशिः ।
दशाहतः स्याद्विहृतस्त्रिषष्ट्या
चतुर्दशाग्रो वद राशिमेनम् ॥ २७ ॥

अत्र गुणैक्यं भाज्यः । अग्रैक्यं शुद्धिः ।

न्यासः । भाज्यः १५ । हारः ६३ । क्षेपः २१ ।

पूर्ववज्जातो गुणः १४ अयमेव राशिः ।

इति कुट्टकः ।

इति द्विवेदोपाख्याचार्यश्रीसरयूप्रसादसुत-दुर्गाप्रसादोन्नीते लीलावतीहृदयग्राहिणि बीजविलासिनि कुट्टकः समाप्तः ॥

उदाहरण—

वह कौन राशि है, जिस को पांच से गुण कर, तिरसठ का भाग देते हैं तो सात शेष रहता है और उसी राशि को दस से गुण कर तिरसठ का भाग देते हैं, तो चौदह शेष रहता है ।

यहां ५ । १० इन गुणकों के योग १५ को भाज्य और ७।१४

---

* अत्र ज्ञानराजदैवज्ञाः—

सप्ताहतः सूर्यहृतः शराग्रः पञ्चाहतः सूर्यहृतो हयाग्रः ।
तमेव राशिं वद कुट्टकेऽस्मिं संश्लिष्टसंज्ञे वितता मतिस्ते ॥

इन शेषों के योग को २१ ऋणक्षेप मान कर, कुट्टक के लिये न्यास करते हैं। भाज्य=१५। क्षेप=२̇१। हार=६३।

इन में तीन का अपवर्तन देने से, दृढ़ भाज्य, हार और क्षेप हुए।

दृ॰ भा॰ ५। दृ॰ क्षे॰ ७̇।	वल्ली हुई	०
दृ॰ हा. २१।		४
		७
		०

उक्त रीति से लब्धि-गुण हुए $\begin{matrix}\text{७}\\\text{२८}\end{matrix}$। अपने-अपने हारों से तष्टित करने से $\begin{matrix}\text{२}\\\text{७}\end{matrix}$ हुए। अब ऋणक्षेप होने के कारण अपने-अपने हारों में घटाने से ऋणक्षेप में लब्धि-गुण हुए $\begin{matrix}\text{३}\\\text{१४}\end{matrix}$। आलाप—गुण राशि १४ को ५ से गुणने से ७० हुए। इसमें हर ६३ का भाग देने से १ लब्धि मिली और ७ शेष रहा। फिर राशि १४ को १० से गुणने से १४० इस में हर ६३ का भाग देने से २ लब्धि आई और शेष १४ बचा। यहां १।२ इन दोनों लब्धियों के योग ३ के तुल्य कुट्टक के द्वारा भी लब्धि सिद्ध हुई ३।

संश्लिष्टकुट्टक के और उदाहरण सिद्धान्तशिरोमणि के प्रश्नाध्याय में कहे हैं। जैसा—'ये याताधिकमासहीनदिवसा—' इत्यादि। और 'चक्राग्राणि गृहाग्रकाणि च लवाग्राणि—' इत्यादि।

कुट्टक समाप्त।

दुर्गाप्रसादरचिते भाषाभाष्ये मिताक्षरे।
वासनाभाङ्गिसुभगः कुट्टकः कुट्टितोऽभवत्॥ ५॥

अथ वर्गप्रकृतिः ।

तत्र रूपक्षेपपदार्थं तावत्करणसूत्राणि–

इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः प्रकृत्या
क्षुण्णो युक्तो वर्जितो वा स येन ।
मूलं दद्यात्क्षेपकं तं धनर्णं
मूलं तच्च ज्येष्ठमूलं वदन्ति ॥४०॥

एवमनेकवर्णप्रक्रियोपयुक्तं कुट्टकमभिधाय सांप्रतमनेकवर्ण-मध्यमाहरणोपयुक्तां वर्गप्रकृतिं निरूपयति–तत्र प्रथमं तत्स्वरूपं शालिन्याह–इष्टमिति । अनेकवर्णमध्यमाहरणे पक्षयोः समीकरणानन्तरम् एकपक्षस्य मूले गृहीते सति द्वितीयपक्षे यदि सरूपोऽव्यक्तवर्गः स्यात् यथा–काव १२ रू १ । तत्र पूर्वपक्षतुल्यतया द्वितीयपक्षेणापि मूलदेन भाव्यम् । अस्ति चात्र कालकवर्गो रविगुणो रूपसहितश्च । अतो यस्य वर्गो रविगुणो रूपसहितः सन् वर्गो भवेत्तदेव कालकमानमित्यर्थात्सिध्यति । यच्चात्र पदं तत्पूर्वपक्षपद-समम् उभयपक्षयोः समत्वात् । वर्गः प्रकृतिर्यत्रेति वर्गप्रकृतिः । प्रथममिष्टं ह्रस्वपदं प्रकल्प्य तस्य वर्गः प्रकृत्या गुणितो येनाङ्केन सहितो रहितो वा मूलं दद्यात्तमङ्कं धनमृणं वा क्षेपकं वदन्त्याचार्याः । तन्मूलं ज्येष्ठमूलमिति वदन्त्याचार्याः । प्रथमतो यदिष्टं पदं प्रकल्पितं तच्च ह्रस्वमिति वदन्त्याचार्याः । अन्वर्थाश्चैताः संज्ञाः । यत्र तु क्षेपवियोगात्कुत्रचिज्ज्येष्ठपदं ह्रस्वपदादल्पं भवति तत्रापि भावनया ह्रस्वपदादधिकमेव भवति ॥

वर्गप्रकृति–

अब वर्गप्रकृति के आरम्भ में उस के स्वरूप का निरूपण करते हैं– पहले किसी राशि को इष्ट मान कर उस का वर्ग करना, वह (वर्ग) प्रकृति से गुणित और जिस अङ्क से युक्त अथवा ऊन (घटा) मूलप्रद

हो, उस अङ्क को क्रम से धन और ऋण क्षेप कहते हैं, और उस मूल को ज्येष्ठमूल कहते हैं, पहले जिस राशि को इष्ट कल्पना किया है उस को ह्रस्व, लघु और कनिष्ठ भी कहते हैं ।

ह्रस्वज्येष्ठक्षेपकान्न्यस्य तेषां
तानन्यान्वाऽधो निवेश्य क्रमेण ।
साध्यान्येभ्यो भावनाभिर्बहूनि
मूलान्येषां भावना प्रोच्यतेऽतः ॥४१॥
वज्राभ्यासौ ज्येष्ठलघ्वोस्तदैक्यं
ह्रस्वं लघ्वोराहतिश्च प्रकृत्या ।
क्षुण्णा ज्येष्ठाभ्यासयुग् ज्येष्ठमूलं
तत्राभ्यासः क्षेपयोः क्षेपकः स्यात् ॥४२॥
ह्रस्वं वज्राभ्यासयोरन्तरं वा
लघ्वोर्घातो यः प्रकृत्या विनिघ्नः ।
घातो यश्च ज्येष्ठयोस्तद्वियोगो
ज्येष्ठं क्षेपोऽत्रापि च क्षेपघातः ॥४३॥

एवमेकेषु ह्रस्वज्येष्ठक्षेपेषु ज्ञातेष्वनेकत्वार्थमुपायं शालिनीत्रयेणाह—ह्रस्व इत्यादिना। पूर्वनिष्पन्नान् ह्रस्वज्येष्ठक्षेपकान् एकस्यां पङ्क्तौ विन्यस्य तेषां (ह्रस्वज्येष्ठक्षेपकाणां) अधः अधोभागे तान् (पूर्वनिष्पन्नान्) अन्यान् वा ह्रस्वज्येष्ठक्षेपकान् क्रमेण विलिख्य एतेभ्यः पङ्क्तिद्वयस्थापितेभ्यो ह्रस्वज्येष्ठक्षेपकेभ्यो यतो भावनाभिः बहून्यनन्तानि मूलानि साध्यानि अतस्तेषां भावना प्रोच्यते विविच्य कथ्यते—तस्यामेव प्रकृताविति ज्ञेयम् । तत्र भावना

द्विविधा । समासभावना, अन्तरभावना चेति । तत्र पदयोर्महत्त्वेऽपेक्षिते समासभावनामाह—वज्राभ्यासावित्यादिना । ज्येष्ठलघ्वोर्यौ वज्राभ्यासौ तयोरैक्यं ह्रस्वं स्यात् । वज्राभ्यासो नाम तिर्यग्गुणनम् । यथा किल वज्रस्य तिर्यक् प्रहारो भवति तथैवात्र गुणनकरणादस्य गुणनविशेषस्य वज्राभ्यास इति संज्ञा, वज्रवदभ्यासो वज्राभ्यास इति समासः । तस्मादूर्ध्वकनिष्ठेनाधःस्थं ज्येष्ठं गुणनीयमधःस्थकनिष्ठेनोर्ध्वस्थं ज्येष्ठं गुणनीयं तयोरैक्यं ह्रस्वं स्यात् । लघ्वोराहतिः प्रकृत्या गुणिता ज्येष्ठयोर्वधेन युक्ता ज्येष्ठमूलं स्यात् । क्षेपयोरभ्यासः क्षेपकः स्यादिति । अथ पदयोर्लघुत्वेऽभीप्सितेऽन्तरभावनामाह—ह्रस्वं वज्राभ्यासयोरन्तरं वेति । वज्राभ्यासयोरन्तरं वा ह्रस्वं स्यात् । ऐक्यापेक्षया विकल्पः । अत्र यः प्रकृत्या गुणितो लघ्वोर्घातः, यश्च केवलयोर्ज्येष्ठयोर्घातस्तद्वियोगो ज्येष्ठं स्यात् । अत्रापि क्षेपघातः क्षेपः पूर्ववदेव स्यात् ॥

विविध ह्रस्व, ज्येष्ठ लाने का प्रकार—

पहले सिद्ध किये ह्रस्व, ज्येष्ठ और क्षेपों को एक पंक्ति में लिखकर उनके नीचे क्रम से उन्हीं पूर्वोत्पन्न ह्रस्व, ज्येष्ठ और क्षेपों को, अथवा दूसरे ह्रस्व, ज्येष्ठ, क्षेपों को लिखना । इस प्रकार, दो पंक्ति में स्थापित ह्रस्व, ज्येष्ठ और क्षेप से भावना के द्वारा अनेक ह्रस्व,ज्येष्ठ और क्षेप सिद्ध होते हैं । इसलिये भावना का निरूपण करते हैं—भावना दो प्रकार की होती है, एक समासभावना—दूसरी अन्तरभावना । अब पहले पदों का महत्त्व जानने के लिये समासभावना कहते हैं—ज्येष्ठ और लघु का जो वज्राभ्यास अर्थात् तिर्यग्गुणन हो उसका योग 'ह्रस्व' होता है । तात्पर्य यह है कि ऊपर की पङ्क्तिवाले कनिष्ठ से नीचली पङ्क्ति के ज्येष्ठ को गुणाकर, और नीचली पङ्क्ति के कनिष्ठ से ऊपर की पङ्क्ति के ज्येष्ठ को गुणा कर उन दोनों गुणनफलों का योग करना, वह कनिष्ठ होगा । कनिष्ठों के घात को प्रकृति से गुणाकर और उसमें ज्येष्ठों के घात को जोड़ देने से वह ज्येष्ठमूल होगा । और क्षेपकों का घात क्षेप होगा ।

अब पदों का लघुत्व जानने के लिये अन्तरभावना कहते हैं—

ज्येष्ठ और कनिष्ठ के वज्राभ्यास का अन्तर कनिष्ठ होता है। कनिष्ठों के घात को प्रकृति से गुणाकर, एक स्थान में रखना और केवल ज्येष्ठों का घात करना। बाद, उन दोनों घातों का अन्तर करने से वह ज्येष्ठमूल होगा। और समासभावना के तुल्य क्षेपों का घात यहाँ भी क्षेप ही होगा॥

इष्टवर्गहृतः क्षेपः क्षेपः स्यादिष्टभाजिते।
मूले ते स्तोऽथवा क्षेपः क्षुण्णः क्षुण्णे तदा पदे ४४॥

एवं भावनाभ्यामिष्टक्षेपजपदसिद्धौ तेभ्य एव क्षेपान्तरजपदानयनमथ च यत्र कुत्रापि क्षेपे पदसिद्धौ स चेदिष्टवर्गेण गुणितो भक्तो वा उद्दिष्टक्षेपो भवेत्तदा तेभ्य एवोद्दिष्टक्षेपजपदानयनमनुष्टु-भाह–इष्टवर्गहृत इति। यत्र क्षेपे कनिष्ठज्येष्ठपदे सिद्धे सत्क्षेप इष्टस्य वर्गेण भक्तः सन् यदि क्षेपो भवेत् तदा ते पदे इष्टभक्ते सती पदे स्तः। यदि त्विष्टवर्गेण गुणितः सन् क्षेपो भवेत् तदा ते पदे इष्टगुणिते पदे स्तः। यस्य इष्टस्य वर्गेण क्षेपो गुणितस्तेन पदे गुणनीये इत्यर्थः॥

विशेष—

जिस क्षेप में कनिष्ठ और ज्येष्ठ पद सिद्ध हुए हैं, वह क्षेप यदि इष्ट वर्ग के भाग देने से अभिमत क्षेप हो, तो कनिष्ठ-ज्येष्ठ पद इष्ट के भाग देने से अभिमत कनिष्ठ-ज्येष्ठ पद होंगे, और यदि क्षेप, इष्ट वर्ग से गुणित क्षेप हो, तो कनिष्ठ-ज्येष्ठ पद, इष्ट से गुणा देने से कनिष्ठ-ज्येष्ठ पद होंगे।

इष्टवर्गप्रकृत्योर्यद्विवरं तेन वा भजेत्।
द्विघ्नमिष्टं कनिष्ठं तत्पदं स्यादेकसंयुतौ ४५॥

---

१ अत्र श्रीबापुदेवपादोक्तानि सूत्राणि—

द्विघ्नसंकलितेन स्यात्समाना प्रकृतिर्यदा।

ततो ज्येष्ठमिहानन्त्यं भावनातस्तथेष्टतः ।

अथ यत्र कुत्राप्युद्दिष्टक्षेपे रूपक्षेपजपदाभ्यां भावनया पदानेकत्वं भवतीति रूपक्षेपजपदसाधनं प्रकारान्तरेण सार्धानुष्टुभाह—इष्टवर्गप्रकृत्योरिति । इष्टवर्गप्रकृत्योर्यद्विवरं तेन द्विघ्नमिष्टं भजेत् तदा एकसंयुतौ रूपक्षेपे कनिष्ठं स्यात् ततः कनिष्ठाज्ज्येष्ठं स्यात् ।

तदा ह्रस्वपदं रूपद्वयं स्यादेकसंयुतौ ॥ १ ॥
सैकया व्येकया वापि कृत्या तुल्यो यदा गुणः ।
तस्याः कृतेः पदं द्विघ्नं ह्रस्वं स्याद् भूयुतौ तदा ॥ २ ॥
द्व्यूनया द्व्याढ्यया वापि कृत्या स्यात्प्रकृतिर्यदा ।
समा तदैकयोगे स्याद् ह्रस्वं तस्याः कृतेः पदम् ॥ ३ ॥
क्षेपस्य वर्गरूपस्य मूलेनाढ्याथवोनिता ।
प्रकृतिश्चेत्कृतिस्तस्याः पदं द्विघ्नं भवेल्लघु ॥ ४ ॥
इष्टाहता ह्रस्वकृतिः पृथिव्या
युतोनिता ज्येष्ठपदं द्विधा स्यात् ।
विधूनिता ज्येष्ठकृतिः कनिष्ठ-
वर्गेण भक्ता प्रकृतिर्भवेच्च ॥ ५ ॥
यदा कनिष्ठस्य कृतिः समा भवे-
त्तदा कृतेः खण्डमभीष्टसंगुणम् ।
भुवोनयुग् ज्येष्ठपदं भवेद्द्विधा
ततो गुणो वेष्टवशादनेकधा ॥ ६ ॥

(१) प्र=२० । क्षे=१ ।
क २ ज्ये ९

(२) प्र =२४ वा, प्र=५० । क्षे=१ ।
क १० ज्ये ४९ । क १४ ज्ये ९९

(३) प्र=३९८ वा, प्र=९८ । क्षे=१
क २० ज्ये ३९९ । क १० ज्ये ९९

(४) प्र=२० वा, प्र=२१ । क्षे=२५
क १० ज्ये ४५ । क ८ ज्ये ३७

(५-६) प्र=२० वा, प्र=१२ । क्षे=१ इष्ट=२
क २ ज्ये ९ वा, ज्ये ७

'इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः प्रकृत्या क्षुण्णः–'इत्यादिना इह कनिष्ठ-ज्येष्ठयोर्भावनावशात्तथेष्टवशादानन्त्यमस्ति ॥

(१) विशेष—

इष्टवर्ग और प्रकृति का अन्तर करके उस अन्तर का दूने इष्ट में भाग देने से रूपक्षेप में कनिष्ठ होता है। बाद उस कनिष्ठ से 'इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः प्रकृत्या क्षुण्णः–' इस सूत्र के अनुसार ज्येष्ठ सिद्ध करना। इस भाँति कनिष्ठ और ज्येष्ठ की भावना से तथा इष्ट वश से अनेक कनिष्ठ-ज्येष्ठ होंगे।

'इष्टं ह्रस्वं–' इस सूत्र की उपपत्ति अत्यन्त सुलभ है। अब भावनोपपत्ति कहते हैं—

स्पष्ट प्रतीत होने के लिये आद्य और द्वितीय पदों के पहले अक्षर लिखकर कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेपों की दो पङ्क्ति लिखते हैं—

आक १ । आज्ये १ । आक्षे १
द्विक १ । द्विज्ये १ । द्विक्षे १ } यहां अन्योन्य ज्येष्ठ को इष्ट

कल्पना करके '–क्षेपः क्षुण्णः क्षुण्णो तदा पदे' इस सूत्र के अनुसार क्रिया करने से कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप हुए—

द्विज्ये· आक १ । द्विज्ये· आज्ये १ । द्विज्येव· आक्षे १
आज्ये. द्विक १ । द्विज्ये· आज्ये १ । आज्येव. द्विक्षे १ } यहां

पहली पङ्क्ति में द्वितीय ज्येष्ठवर्ग से गुणित आद्यक्षेप है, उसका प्रकारान्तर से साधन करते हैं—द्वितीय कनिष्ठवर्ग को प्रकृति से गुणकर, द्वितीय क्षेप जोड़ देने से द्वितीय ज्येष्ठ का वर्ग हुआ—

द्विकव· प्र १ । द्विक्षे १

इससे आद्यक्षेप को गुण देने से उक्त क्षेप खण्डद्वयात्मक हुआ—

द्विकव. प्र· आक्षे १ । द्विक्षे· आक्षे १

यहां पहले खण्ड में जो आद्य क्षेप है, उसका प्रकारान्तर से साधन करते हैं, द्वितीय ज्येष्ठवर्ग के दो खण्ड हैं—प्रकृति से गुणित द्वितीय कनिष्ठवर्ग एक-खण्ड, द्वितीय-क्षेप दूसरा। ज्येष्ठवर्ग में प्रकृतिगुणित कनिष्ठवर्ग को घटा देने से क्षेप शेष रहता है। इसलिये

प्रकृति से गुणित आद्यकनिष्ठवर्ग को आद्यज्येष्ठ वर्ग में घटा देने से आद्यक्षेप हुआ—

आकव· प्र १̇ । आज्येव १

इस को प्रकृतिगुणित द्वितीय कनिष्ठवर्ग से गुण देने से उक्त क्षेप का पहला खण्ड हुआ ।

द्विकव· प्र. आकव. प्र १̇ । द्विकव· प्र· आज्येव १

प्रकृति दो बार गुणक है, इसलिये प्रकृतिवर्ग गुणक हुआ—

द्विकव· आकव. प्रव १̇

खण्डों को लिखने से उक्त क्षेप खण्डत्रयात्मक सिद्ध हुआ, द्विकव. आकव. प्रव १̇ । द्विकव. प्र. आज्येव १ । द्विक्षे. आक्षे १ । इस प्रकार उक्त दोनों पङ्क्ति में कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप हुए—

द्विज्ये. आक १ । द्विज्ये. आज्ये १ । द्विकव· आकव· प्रव १̇ द्विकव· प्र· आज्येव १ द्विक्षे. आक्षे १

आज्ये· द्विक १ । द्विज्ये. आज्ये १ । द्विकव. आकव. प्रव १̇ आकव· प्र· द्विज्येव १ द्विक्षे· आक्षे १

यहां ज्येष्ठ-कनिष्ठ का एक अभ्यास (गुणन) पहली पङ्क्ति में कनिष्ठ है, और दूसरा अभ्यास दूसरी पङ्क्ति में कनिष्ठ है, ज्येष्ठाभ्यासरूप ज्येष्ठ दोनों पङ्क्ति में एक ही है । अब, हर एक वज्राभ्यास को कनिष्ठ कल्पना करने से क्षेप बड़ा होगा, इस कारण उपायान्तर करते हैं--जैसा—वज्राभ्यासों के योग को कनिष्ठ मान लिया—

कनिष्ठ=द्विज्ये· आक १ आज्ये. द्विक १ इसका वर्ग हुआ— द्विज्येव. आकव १ द्विज्ये. आक. आज्ये. द्विक २ आज्येव· द्विकव १ प्रकृति से गुण देने से हुआ—

द्विज्येव· आकव· प्र १ द्विज्ये· आक· आज्ये. द्विक. प्र २ आज्येव· द्विकव. प्र १

अब यह प्रकृतिगुणित कनिष्ठवर्ग, जिस क्षेप से जुड़ा मूलप्रद होगा उसका विचार करते हैं—कनिष्ठ वर्ग प्रकृति से गुणा और क्षेप से जुड़ा ज्येष्ठवर्ग होता है तो दोनों पङ्क्ति में ज्येष्ठ वर्ग सिद्ध हुए—

द्विज्येव. आकव. प्र १ द्विकव. आकव. प्रव १ं द्विकव. प्र. आज्येव १ द्विद्दो. आद्दो १

आज्येव. द्विकव. प्र १ द्विकव. आकव. प्रव १ं आकव. प्र. द्विज्येव १ द्विद्दो. आद्दो १

यहाँ दोनों पङ्क्ति में ज्येष्ठाभ्यासरूप ज्येष्ठ के समान होने से ज्येष्ठ वर्ग भी समान ही हैं। और यह भी ज्येष्ठवर्ग 'द्विज्येव. आज्येव १' समान है। अब प्रकृति से गुणे हुए वज्राभ्यासयोगरूप कल्पित कनिष्ठ के वर्ग में से दोनों ज्येष्ठ वर्गों को अलग अलग घटाते हैं तो तुल्य शेष रहता है। जैसा—

'द्विज्येव. आकव. प्र १ द्विज्ये. आक. आज्ये. द्विक. प्र २ आज्येव. द्विकव. प्र १' इस प्रकृति-गुणित कनिष्ठवर्ग में—

'द्विज्येव. आकव. प्र १ द्विकव. आकव. प्रव १ं द्विकव. प्र. आज्येव १ द्विद्दो. आद्दो १' इस प्रथम पङ्क्तिस्थ ज्येष्ठ वर्ग को घटा देने से शेष रहा।

पहला शेष=द्विज्ये. आक. आज्ये. द्विक. प्र २ आकव. द्विकव. प्रव १ आद्दो द्विद्दो १ं।

इसी प्रकार 'द्विज्येव. आकव. प्र १ द्विज्ये. आक. आज्ये. द्विक. प्र २ आज्येव. द्विकव. प्र १' इस प्रकृति से गुणित कनिष्ठ के वर्ग में,

'आज्येव. द्विकव. प्र १ द्विकव. आकव. प्रव १ं आकव. प्र. द्विज्येव १ द्विद्दो. आद्दो १' इस द्वितीय पङ्क्तिस्थ ज्येष्ठवर्ग को घटा देने से शेष रहा—

दूसरा शेष=द्विज्ये. आक. आज्ये. द्विक. प्र २ आकव. द्विकव. प्रव १ आद्दो. द्विद्दो १ं। पहले और दूसरे शेष समान हैं।

अब इस शेष को, यदि ज्येष्ठवर्ग में जोड़ देते हैं तो प्रकृतिगुणित कल्पित कनिष्ठवर्ग होता है। और यह भी ज्येष्ठवर्ग 'द्विज्येव. आज्येव १' शोधित ज्येष्ठ वर्ग के समान है, इसलिये इसमें जोड़ देने से प्रकृति-गुणित कल्पित कनिष्ठ वर्ग हुआ—

द्विज्येव. आज्येव १ द्विज्ये. आक. आज्ये. द्विक. प्र २ आकव. द्विकव. प्रव १ आद्दो द्विद्दो १ं

इस में 'आक्षे· द्विक्षे १' इस क्षेपघात को जोड़ने से ज्येष्ठ-वर्ग हुआ—

द्विज्येव. आज्येव १ द्विज्ये. आक. आज्ये. द्विक. प्र २ आकव. द्विकव. प्रव १ इसका मूल ज्येष्ठ हुआ—

द्विज्ये· आज्ये १ आक. द्विक. प्र १

इस से 'लघ्वोराहतिश्च प्रकृत्या क्षुण्णा ज्येष्ठाभ्यासयुग्ज्येष्ठमूलम्—' इत्यादि सूत्र उपपन्न हुआ। इसी भाँति वज्राभ्यास के अन्तर को कनिष्ठ कल्पना करके अन्तरभावना की उपपत्ति जानना। यह **नवाङ्कुरकारोक्त** उपपत्ति का दिग्दर्शन है।

(२) विश्वरूपोक्त उपपत्ति।

आक १ आज्ये १ आक्षे १ } परस्पर ज्येष्ठ को इष्ट कल्पना
द्विक १ द्विज्ये १ द्विक्षे १ } करके उक्त रीति के अनुसार

कनिष्ठ-ज्येष्ठ और क्षेप सिद्ध हुए—

आक. द्विज्ये १ आज्ये. द्विज्ये १ आक्षे. द्विज्येव १

आज्ये. द्विक १ आज्ये. द्विज्ये १ द्विक्षे. आज्येव १

कनिष्ठों का योग कनिष्ठ कल्पना करने से हुआ—

आक. द्विज्ये १ आज्ये. द्विक १

इससे 'वज्राभ्यासौ ज्येष्ठलघ्वोस्तदैक्यं ह्रस्वं—' इतना सूत्र उपपन्न हुआ। उक्त कनिष्ठ वर्ग प्रकृति से गुणित हुआ—

आकव. द्विज्येव. प्र १ आक· द्विक· आज्ये. द्विज्ये· प्र २ आज्येव. द्विकव· प्र १

पहले खण्ड में द्वितीयज्येष्ठवर्ग, प्रकृति से गुणा और द्वितीयक्षेप से जुड़ा द्वितीयकनिष्ठ वर्ग के तुल्य है—

द्विकव· प्र १ द्विक्षे १

ज्येष्ठवर्ग का प्रकृतिगुणित आद्यकनिष्ठवर्ग गुणक है, इसलिये गुणने से हुआ—

आकव· द्विकव. प्रव १ आकव· द्विक्षे. प्र १

तीसरे खण्ड में द्वितीयकनिष्ठ वर्ग, द्वितीय क्षेप से ऊन और प्रकृति से भाजित द्वितीयज्येष्ठवर्ग के तुल्य है—

द्विज्येव. द्विक्षे १̇
प्र १
} और यही प्रकृतिगुणित आद्यज्येष्ठवर्ग से गुणित है। इसलिये प्रकृति के समान गुणक और हर के उड़ा देने से, तीसरे खण्ड का स्वरूप हुआ—

आज्येव. द्विज्येव १ आज्येव. द्विक्षे १̇

दूसरे खण्ड में आद्यज्येष्ठवर्ग, प्रकृति से गुणित और आद्यक्षेप से युक्त आद्यकनिष्ठवर्ग के समान है—

आकव· प्र· आक्षे १

यह ऋणगत द्वितीयक्षेप द्विक्षे १̇ से गुण देने से हुआ—

आकव· प्र. द्विक्षे १̇ आक्षे· द्विक्षे १̇

इस भाँति वज्राभ्यासयोगरूप कनिष्ठ का वर्ग प्रकृति से गुणित छ खण्डवाला सिद्ध हुआ—

आकव. द्विकव. प्रव १ आकव· द्विक्षे· प्र १ आक. द्विक. आज्ये. द्विज्ये. प्र २ आकव. प्र· द्विक्षे १̇ आज्येव· द्विज्येव १ आक्षे· द्विक्षे १̇

यहां दूसरे, चौथे खण्ड को धन और ऋण होने के कारण उड़ा देने से तथा आद्यक्षेप और द्वितीयक्षेप के घातरूपी क्षेप को जोड़ देने से ज्येष्ठवर्ग हुआ—

आकव. द्विकव. प्रव १ आक· द्विक. आज्ये. द्विज्ये. प्र २ आज्येव· द्विज्येव १

इसका मूल ज्येष्ठ है—

आक· द्विक· प्र १ आज्ये· द्विज्ये १

इससे उक्त सूत्र की उपपत्ति स्पष्ट है। इसी प्रकार वज्राभ्यासों के

आक. द्विज्ये १̇ द्विज्ये. आक १

इस अन्तर के तुल्य, कनिष्ठ कल्पना करके, उक्त रीति के अनुसार अन्तर-भावना की उपपत्ति जानना।

(३) कमलाकरोक्त उपपत्ति ।

ज्येष्ठ के वर्ग में प्रकृति गुणित कनिष्ठ वर्ग को घटा देने से शेष क्षेप रहता है तो, इस प्रकार क्षेपों की दो पङ्क्ति हुईं ।

प्र. आकव १ आज्येव १ } इन का घात क्षेप हुआ
प्र. द्विकव १ द्विज्येव १ }

प्रव· आकव· द्विकव १ प्र. आज्येव· द्विकव १ प्र· द्विज्येव· आकव १ आज्येव. द्विज्येव १

अब इस में जिस के जोड़ने से मूल मिले वही प्रकृति गुणित कनिष्ठ वर्ग है । इसलिये प्रकृति से भाजित उस का मूल क्षेपद्वयघात के समान क्षेप में कनिष्ठ होगा और उस के जोड़ने से जो मूल मिले वही ज्येष्ठ होगा । उक्त क्षेप में—

·प्र. आज्येव· द्विकव १ । प्र· द्विज्येव· आकव १

इन दोनों खण्डों को जोड़ देने से, समान धनर्ण खण्डों के उड़ जाने से शेष रहा—

प्रव. आकव. द्विकव १ आज्येव. द्विज्येव १

इस में इसी का दूना मूलघात 'आक. द्विक· आज्ये. द्विज्ये. प्र २' जोड़ देने से ज्येष्ठ वर्ग हुआ—

प्रव. आकव. द्विकव १ आक. द्विक· आज्ये. द्विज्ये. प्र २ आज्येव. द्विज्येव १ इस का मूल ज्येष्ठ हुआ—

प्र. आक. द्विक १ आज्ये· द्विज्ये १

और प्रकृति गुणित कनिष्ठ वर्ग यह है—

प्र· आज्येव· द्विकव १ प्र· द्विज्येव. आकव १ आक· द्विक· आज्ये· द्विज्ये. प्र २

इस में प्रकृति का भाग देने से कनिष्ठवर्ग हुआ—

आज्येव. द्विकव १ आक· द्विक. आज्ये· द्विज्ये २ द्विज्येव. आकव १

इस का मूल कनिष्ठ हुआ——

आज्ये· द्विक १ द्विज्ये. आक १

इस से समासभावना का सूत्र उपपन्न हुआ ।

यहां पहले सिद्ध किये हुए 'प्रव. आकव· द्विकव १ आज्येव.

द्विज्येव १' इन खण्डों में 'आक. द्विक. आज्ये. द्विज्ये. प्र २' इस ऋणगत खण्ड को जोड़ देने से ज्येष्ठ वर्ग सिद्ध हुआ——

प्रव. आकव. द्विकव १ आक. द्विक. आज्ये. द्विज्ये. प्र २ आज्येव. द्विज्येव १

इस का मूल ज्येष्ठ हुआ——

प्र. आक. द्विक १ आज्ये. द्विज्ये १

और प्रकृति गुणित कनिष्ठ वर्ग यह है——

प्र. आज्येव. द्विकव १ प्र. द्विज्येव. आकव १ आक. द्विक. आज्ये. द्विज्ये. प्र २

इस में प्रकृति का भाग देने से कनिष्ठ वर्ग हुआ——

आज्येव. द्विकव १ आक. द्विक. आज्ये. द्विज्ये २ द्विज्येव. आकव १ इसका मूल कनिष्ठ हुआ——

आज्ये. द्विक १ द्विज्ये. आव १

इस प्रकार अन्तरभावना का सूत्र उपपन्न हुआ।

(४) पदानयन की उपपत्ति——

प्रकृति से गुणित और क्षेप से युक्त कनिष्ठ वर्ग, ज्येष्ठ वर्ग होता है। इस नियम के अनुसार दो पक्ष हुए——

कव. प्र १ क्षे १ = ज्येव १

कोई वर्गराशि वर्गराशि से गुणित अथवा भाजित अपने वर्गत्व को नहीं त्याग करता, इस नियम के अनुसार दोनों पक्ष इष्टवर्ग का भाग देने से हुए——

$$\frac{\text{कव. प्र १ क्षे १}}{\text{इव १}} = \frac{\text{ज्येव १}}{\text{इव १}}$$

यहां दूसरे पक्ष का मूल इष्ट से भाजित अन्य ज्येष्ठ को कल्पना किया $\frac{\text{ज्ये १}}{\text{इ १}}$ और पहले पक्ष में हर से भाजित दूसरे खण्ड को अन्यक्षेप कल्पना किया $\frac{\text{क्षे १}}{\text{इव १}}$ इससे 'इष्टवर्गहृतः क्षेपः क्षेपः स्यात्' यह उपपन्न हुआ। फिर इष्ट से भाजित कनिष्ठ को अन्य कनिष्ठ

कल्पना किया $\frac{\text{क } 1}{\text{इ } 1}$ तो उसका वर्गप्रकृति से गुणित पहला खण्ड होता है $\frac{\text{कव· प्र } 1}{\text{इव } 1}$, इस से '—इष्टभाजिते' 'मूले ते स्तः' यह उपपन्न हुआ।

इसी भाँति, वे दोनों पक्ष इष्टवर्ग से गुणित भी समान हैं—

कव. प्र· इव १ क्षे. इव १ = ज्येव. इव १

अब यहां पर भी दूसरे पक्ष का मूल इष्टगुणित ज्येष्ठ कल्पना किया 'इ. ज्ये १' और पहले पक्ष के प्रथम खण्ड में इष्टगुणित कनिष्ठ को अन्य कनिष्ठ कल्पना किया 'इ. क १' इसका वर्गप्रकृति से गुणित प्रथम खण्ड है 'इव· कव. प्र १' और इसी पक्ष के द्वितीय खण्ड में इष्टवर्ग से गुणित क्षेप है 'क्षे. इव १' यही अन्य क्षेप हुआ। इससे 'अथवा क्षेपः क्षुण्णः क्षुण्णे तदा पदे' यह उपपन्न हुआ।

(५) द्विगुण इष्ट को कनिष्ठ कल्पना किया 'इ २' और इसके वर्ग को प्रकृति से गुण दिया 'इव· प्र ४' अब इस में क्या जोड़ देने से मूल मिलेगा ? इस का विचार—'चतुर्गुणस्य घातस्य युतिवर्गस्य चान्तरम्। राश्यन्तरकृतेस्तुल्यम्—' इस वक्ष्यमाण सूत्र के अनुसार उद्दिष्ट दो राशि के अन्तरवर्ग से जुड़ा हुआ उनका चौगुना घात युतिवर्ग है, और उसका मूल अवश्य मिलेगा। यहां कनिष्ठवर्ग और प्रकृति का चौगुना घात है और इष्ट कनिष्ठ है, इसलिये इष्टवर्ग और प्रकृति का चौगुना घात हुआ। अब इसमें इष्टवर्ग और प्रकृति का अन्तर वर्ग 'इव १ प्र १' जोड़ देने से अवश्य मूल मिलेगा, तो दूने इष्ट को कनिष्ठ कल्पना किया है, इसलिये इष्टवर्ग और प्रकृति के अन्तरवर्ग के समान क्षेप में, ज्येष्ठपद सिद्ध होगा। पर हमको रूपक्षेप में चाहिये इसलिये 'इष्टवर्गहृतः क्षेपः क्षेपः स्यादिष्ट-भाजिते, मूले ते स्तः—' इस उक्त सूत्र के अनुसार इष्टवर्ग और प्रकृति के अन्तर के समान इष्ट कल्पना किया, तो उसके वर्ग का क्षेप में भाग देने से अवश्य रूप होगा। कनिष्ठ में तो इष्टवर्ग और

प्रकृति के अन्तर का भाग देना चाहिये और कनिष्ठ द्विगुण-इष्ट है, इस से 'इष्टवर्गप्रकृत्योर्यद्विवरं तेन वा भजेत्, द्विघ्नमिष्टं कनिष्ठं तत्पदं स्यादेकसंयुतौ' यह सूत्र उपपन्न हुआ।

अथवा—

कनिष्ठ का मान यावत्तावत् कल्पना किया या १, इससे 'इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः प्रकृत्या—' इस सूत्र के अनुसार रूपक्षेप में ज्येष्ठ वर्ग सिद्ध हुआ याव. प्र १ रू १। और रूपयुक्त इष्टगुणित कनिष्ठ को ज्येष्ठ कल्पना किया या. इ १ रू १। अब इस ज्येष्ठवर्ग 'याव. इव १ या. इ २ रू १' के साथ पूर्व साधित ज्येष्ठवर्ग 'याव. प्र १ रू १' का समीकरण के लिये न्यास—

याव. प्र १ रू १
याव. इव १ या. इ २ रू १

समशोधन करने से—

याव. प्र १ याव. इव १̇
या. इ २

यावत्तावत् का अपवर्तन देने से—

या. प्र १ या. इव १̇
इ २

इन दोनों पक्षों में इष्टवर्गोन प्रकृति 'इव १̇ प्र १' का भाग देने से पहले पक्ष में लब्ध यावत्तावत् आया, या १ और दूसरे पक्ष में हर से भाजित दूना इष्ट लब्ध हुआ $\frac{\text{इ २}}{\text{इव } \dot{१} \text{ प्र १}}$ यही यावत्तावत् का मान है। इससे भी उक्त सूत्र की वासना स्पष्ट होती है॥

उदाहरणम्—

को वर्गोऽष्टहतः सैकः कृतिः स्याद्गणकोच्यताम्।
एकादशगुणः को वा वर्गः सैकः कृतिः सखे२८

प्रथमोदाहरणे न्यासः ।

प्र ८ । क्षे * । अत्रैकमिष्टं ह्रस्वं प्रकल्प्य जाते मूले सक्षेपे क १ ज्ये ३ क्षे १ एषां भावनार्थं न्यासः ।

प्र ८ । क १ ज्ये ३ क्षे १
क १ ज्ये ३ क्षे १

अत्र सूत्रम् 'वज्राभ्यासौ ज्येष्ठलघ्वोः—' इत्यादिना प्रथमकनिष्ठद्वितीयज्येष्ठमूलाभ्यासः ३ । द्वितीयज्येष्ठप्रथमकनिष्ठमूलाभ्यासः ३ । अनयोरैक्यं ६ कनिष्ठपदं स्यात् । कनिष्ठयोराहतिः १ प्रकृतिगुणा ८ ज्येष्ठयोरभ्यासेनानेन ९ युता १७ ज्येष्ठपदं स्यात् । क्षेपयोराहतिः क्षेपकः स्यात् १ ।

प्राङ्मूलक्षेपाणामेभिः सह भावनार्थं न्यासः ।

प्र ८ । क १ ज्ये ३ क्षे १
क ६ ज्ये १७ क्षे १

भावनया लब्धे मूले क ३५ ज्ये ९९ क्षे १ । एवं पदानामानन्त्यम् ।

---

* अत्र ज्ञानराजदैवज्ञाः—
कोऽयं वर्गः स्वर्गदीपैर्विनिघ्नो रूपेणाढ्यो जायते वर्ग एव ।
को वा वर्गो भर्गनिघ्नः सरूपो वर्गः स्यात्तौ वर्गवादिन् वदाशु ॥

द्वितीयोदाहरणे रूपमिष्टं कनिष्ठं प्रकल्प्य तद्वर्गात् प्रकृतिगुणात् ११ रूपद्वयमपास्य मूलं ज्येष्ठम् ३। अत्र भावनार्थं न्यासः।

प्र ११। क १ ज्ये ३ क्षे २̇
क १ ज्ये ३ क्षे २̇

प्राग्वल्लब्धे चतुःक्षेपकमूले क ६ ज्ये २० क्षे ४। 'इष्टवर्गहृतः क्षेपः—' इत्यादिना जाते रूपक्षेपमूले क ३ ज्ये १० क्षे १ अतस्तुल्य-भावनया वा कनिष्ठज्येष्ठमूले जाते क ६० ज्ये १९९ क्षे १। एवमनन्तमूलानि।

अथवा रूपं कनिष्ठं प्रकल्प्य जाते पञ्च-क्षेपपदे क १ ज्ये ४ क्षे ५ अतस्तुल्यभावनया मूले क ८ ज्ये २७ क्षे २५। 'इष्टवर्गहृतः—' इत्यादिना पञ्चकमिष्टं प्रकल्प्य जाते रूप-क्षेपपदे।

क $\frac{८}{५}$ ज्ये $\frac{२७}{५}$ क्षे १

अनयोः पूर्वमूलाभ्यां सह भावनार्थं न्यासः।

प्र ११। क $\frac{८}{५}$ ज्ये $\frac{२७}{५}$ क्षे १
क ३ ज्ये १० क्षे १

भावनया लब्धे मूले क $\frac{१६१}{५}$ ज्ये $\frac{४५४}{५}$ क्षे १।

अथवा 'ह्रस्वं वज्राभ्यासयोरन्तरं–' इत्यादिना कृतया भावनया जाते मूले क $\frac{१}{५}$ ज्ये $\frac{६}{५}$ क्षे १

एवमनेकधा । 'इष्टवर्गप्रकृत्योर्यद्विवरं तेन वा भवेत्–' इत्यादिना पक्षान्तरेण पदे रूपक्षेपे प्रतिपाद्येते। तत्र प्रथमोदाहरणे रूपत्रयमिष्टं प्रकल्पितम् ३। अस्य वर्गः ९ । प्रकृतिः ८ अनयोरन्तरं १ अनेन द्विघ्नमिष्टं भक्तं ६ जातं रूपक्षेपे कनिष्ठं पदम् अतः पूर्ववज्ज्येष्ठम् १७।

एवं द्वितीयोदाहरणेऽपि रूपत्रयमिष्टं प्रकल्प्य जाते कनिष्ठज्येष्ठे ३।१०

एवमिष्टवशात्समासान्तरभावनाभ्यां च पदानामानन्त्यम् ।

इति वर्गप्रकृतिः ।

---

(१) उदाहरण–

वह कौन सा वर्ग है, जिस को आठ से गुणाकर, एक जोड़ देते हैं तो वर्ग होता है ।

न्यास । प्र ८ क्षे १

यहां कनिष्ठ १ कल्पना किया, इस के वर्ग १ को प्रकृति ८ से गुणने से ८ हुआ, इस में १ जोड़ देने से ९ का मूल ज्येष्ठ ३ हुआ । अब तुल्य भावना के लिये न्यास—

प्र ८ । क १ ज्ये ३ क्षे १ }
क १ ज्ये ३ क्षे १ } यहां 'वज्राभ्यासौ ज्येष्ठ-

लघ्वोः —' इस सूत्र के अनुसार पहले कनिष्ठ १ और दूसरे ज्येष्ठ ३ का घात ३ हुआ, दूसरे कनिष्ठ १ और पहले ज्येष्ठ ३ का घात ३ हुआ, दोनों घातों का योग ६ कनिष्ठपद हुआ। दोनों कनिष्ठों १ । १ का घात १ हुआ, इस को प्रकृति ८ से गुणित ८ में, दोनों ज्येष्ठों ३।३ के घात ९ को जोड़ने से १७ ज्येष्ठपद हुआ। दोनों क्षेपों १।१ का घात १ क्षेप हुआ। अब पहले सिद्ध कनिष्ठ १ ज्येष्ठ ३ और क्षेप १ को कनिष्ठ ६ ज्येष्ठ १७ और क्षेप १ के साथ भावना के लिये न्यास। क १ ज्ये ३ क्षे १ }
क ६ ज्ये १७ क्षे १ } यहां पहले कनिष्ठ १ और

दूसरे ज्येष्ठ १७ का घात १७ हुआ, इसी प्रकार दूसरे कनिष्ठ ६ और पहले ज्येष्ठ ३ का घात १८ हुआ। इन दोनों घातों का योग ३५ कनिष्ठपद हुआ। कनिष्ठों १ । ६ का घात ६ प्रकृति ८ गुणित ४८ हुआ, इस में ज्येष्ठों ३ । १७ के घात ५१ को जोड़ने से ९९ ज्येष्ठपद हुआ। और क्षेपों १ । १ का घात १ क्षेप हुआ। इस प्रकार, भावनावश अनेक कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप होंगे।

(२) उदाहरण—

वह कौनसा वर्ग है, जिस को ग्यारह से गुणा देते हैं और उस में एक जोड़ देते हैं, तो वर्ग होता है।

न्यास। प्र ११ । क्षे १ ।

यहां कनिष्ठ १ कल्पना करके उसका वर्ग १ हुआ। यह प्रकृति ११ से गुणित ११ हुआ, इस में २ घटा देने से ९ शेष का मूल ज्येष्ठ ३ हुआ। अब तुल्य भावना के लिये न्यास। प्र ११ क १ ज्ये ३ क्षे २̇ }
क १ ज्ये ३ क्षे २̇ }

यहां ज्येष्ठ और कनिष्ठों के वज्राभ्यास ३ । ३ का योग ६ कनिष्ठ हुआ। और कनिष्ठों १ । १ का घात १ प्रकृति ११ से गुणित और ज्येष्ठाभ्यास ९ युक्त २० ज्येष्ठपद हुआ। क्षेपों २̇ । २̇ का घात ४ क्षेप हुआ। इन कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेपों का क्रम से न्यास।

क ६ ज्ये २० क्षे ४ । यहां इष्ट २ मान कर उस का वर्ग किया ४ हुआ, इस का क्षेप ४ में भाग देने से १ क्षेप हुआ । और इष्ट २ का पदों में भाग देने से, कनिष्ठ ज्येष्ठ हुए । उन का यथाक्रम न्यास । क ३ ज्ये १० क्षे १ ।

अब समास-भावना के लिये न्यास—

क ३ ज्ये १० क्षे १
क ३ ज्ये १० क्षे १ } यहां वज्राभ्यासों ३० । ३० का

योग ६० कनिष्ठ हुआ । और कनिष्ठों ३।३ का घात ९ प्रकृति ११ से गुणित ९९ में ज्येष्ठाभ्यास १०० को जोड़ने से १९९ ज्येष्ठ हुआ । क्षेपों १ । १ का घात १ क्षेप हुआ । इनका यथाक्रम न्यास । क ६० ज्ये १९९ क्षे १ । इस प्रकार भावना से अनेक मूल सिद्ध होंगे ।

अथवा । इष्ट १ कनिष्ठ कल्पना करके, उसके वर्ग १ को प्रकृति ११ से गुणा कर, क्षेप ५ जोड़ने से १६ का मूल ४ हुआ, यह ज्येष्ठ है । इन का क्रम से न्यास । क १ ज्ये ४ क्षे ५ समास-भावना के लिये न्यास—

क १ ज्ये ४ क्षे ५
क १ ज्ये ४ क्षे ५ } वज्राभ्यासों ४ । ४ का योग ८ कनिष्ठ

हुआ । कनिष्ठों १ । १ के घात १ को प्रकृति ११ से गुणा कर, ज्येष्ठाभ्यास १६ जोड़ देने से २७ ज्येष्ठ हुआ । क्षेपों ५ । ५ का घात २५ क्षेप हुआ । अब 'इष्टवर्गहृतः क्षेपः—' इस सूत्र के अनुसार ५ इष्ट कल्पना करने से, रूपक्षेप में कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप हुए—

क $\frac{८}{५}$ ज्ये $\frac{२७}{५}$ क्षे १

इन का पूर्वमूल के साथ भावना के लिये न्यास—

प्र ११ । क $\frac{८}{५}$ ज्ये $\frac{२७}{५}$ क्षे १

क ३ ज्ये १० क्षे १

यहां समास-भावना से नीचे लिखे मूल निष्पन्न हुए—

क $\frac{१६१}{५}$ ज्ये $\frac{५३४}{५}$ क्षे १

'अथवा ह्रस्वं वज्राभ्यासयोरन्तरं वा—' इस सूत्र के अनुसार वज्राभ्यासों $\frac{८०}{५}$ । $\frac{८१}{५}$ का अन्तर $\frac{१}{५}$ कनिष्ठ हुआ, और कनिष्ठों $\frac{८}{५}$ । ३ का घात $\frac{२४}{५}$ प्रकृति ११ से गुणित $\frac{२६४}{५}$ हुआ एवं वज्राभ्यास $\frac{२७०}{५}$ हुआ, दोनों का अन्तर ज्येष्ठ हुआ $\frac{६}{५}$ । क्षेपों १ । १ का घात १ क्षेप हुआ । इनका यथाक्रम न्यास—

क $\frac{१}{५}$ ज्ये $\frac{६}{५}$ क्षे १ ।

अब 'इष्टवर्गप्रकृत्योर्यद्विवरं तेन वा भजेत्—' इस प्रकार के अनुसार रूपक्षेप में पद सिद्ध करते हैं—(१) उदाहरण में इष्ट ३ कल्पना किया, इसका वर्ग ९ हुआ, अब ९ का और प्रकृति ८ का अन्तर १ हुआ, इस का दूने इष्ट ६ में भाग देने से ६ लब्धि मिली, यही रूपक्षेप में कनिष्ठ हुआ । इस के वर्ग ३६ को प्रकृति ८ से गुण कर, १ जोड़ने से २८९ का मूल १७ ज्येष्ठ हुआ । और क्षेप १ है ।

इन का यथाक्रम न्यास, क ६ ज्ये १७ क्षे १ ।

(२) उदाहरण में इष्ट ३ मानकर, उस का वर्ग किया ९ हुआ, फिर इसका और प्रकृति ११ का अन्तर २ हुआ, इस अन्तर का द्विगुण इष्ट ६ में भाग देने से, कनिष्ठ ३ लब्ध मिला । उसके वर्ग ९ को प्रकृति ११ से गुण कर, उस में १ मिलाने से १०० का मूल १० ज्येष्ठ हुआ । और क्षेप १ है । इन का यथाक्रम न्यास । क ३ ज्ये १० क्षे १ ।

इस प्रकार, इष्ट कल्पना करने से, तथा समास-भावना और अन्तर भावना के वश से, अनन्त पद सिद्ध होंगे ।

वर्गप्रकृति समाप्त ।

अथ चक्रवाले करणसूत्रं वृत्तचतुष्टयम्—
ह्रस्वज्येष्ठपदक्षेपान्भाज्यप्रक्षेपभाजकान् ४६
कृत्वा कल्प्यो गुणस्तत्र तथा प्रकृतितश्च्युते।
गुणवर्गे प्रकृत्योनेऽथवाल्पं शेषकं यथा ४७॥
तत्तु क्षेपहृतं क्षेपो व्यस्तः प्रकृतितश्च्युते।
गुणलब्धिः पदं ह्रस्वं ततो ज्येष्ठमतोऽसकृत् ४८
त्यक्त्वा पूर्वपदक्षेपांश्चक्रवालमिदं जगुः।
चतुर्द्व्येकयुतावेवमभिन्ने भवतः पदे ॥ ४९ ॥
चतुर्द्विक्षेपमूलाभ्यां रूपक्षेपार्थभावना * ॥

अथ कनिष्ठज्येष्ठयोरभिन्नतार्थं चक्रवालाख्यां वर्गप्रकृतिमनुष्टुभां चतुष्टयेनाह—ह्रस्वेति। प्रथमतः 'इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः।' इत्यादिना ह्रस्वज्येष्ठक्षेपान् कृत्वा कुट्टकेन तथा गुणः साध्यः यथा गुणस्य वर्गे प्रकृतितश्च्युते प्रकृत्या ऊने वा शेषकमल्पकं स्यात्। तत्तु शेषं पूर्वक्षेपहृतं सत् क्षेपः स्यात्। गुणवर्गे प्रकृतितश्च्युते सति अयं क्षेपो व्यस्तः स्यात्। धनं चेदृणमृणं चेद्धनं भवेदित्यर्थः। यस्य गुणस्य वर्गेण प्रकृत्या सहान्तरं कृतं तस्य गुणस्य या लब्धिस्तत्कनिष्ठपदं स्यात्। ततः कनिष्ठाज्ज्येष्ठं

---

* अत्र विशेषः—
निरग्रमूलं प्रकृतेर्हि लब्धिस्तावच्च शेषं च हरस्तदग्रम्।
मूलाप्तशेषं हि निरग्रमासं हरेण नूनं फलमेतदस्तः॥
छिच्छेषहीनो नवशेषकं स्यात्तद्वर्गहीना प्रकृतिर्हराप्ता।
नवो हरः स्यादसकृद्विधेयमित्थं यदा रूपमितो हरः स्यात्॥
तदा लब्धितः क्षेपके रूपतुल्ये गुणासी प्रसाध्ये विदा कुट्टकेन।
गुणः स्यात्कनिष्ठं तथा ज्येष्ठमासिर्भवेत्क्षेपके रूपतुल्ये तदैव॥

पूर्ववत्स्यात् । अथ प्रथमकनिष्ठज्येष्ठक्षेपांश्च त्यक्त्वा संप्रति साधितेभ्यः कनिष्ठज्येष्ठक्षेपेभ्यः पुनः कुट्टकेन गुणाप्ती आनीय उक्तवत्कनिष्ठज्येष्ठक्षेपाः साध्याः । एवमसकृत् । आचार्या एतद्गणितं चक्रवालमिति जगुः । एवं चक्रवालेन चतुर्द्व्येकयुतौ चतुःक्षेपे द्विक्षेपे एकक्षेपे च अभिन्ने पदे भवतः । इदमुपलक्षणम् । यत्र कुत्रापि क्षेपे अभिन्ने पदे भवतः । युतौ, इत्युपलक्षणम् । तेन शुद्धावपीति ज्ञेयम् । अथ रूपक्षेपपदानयने प्रकारान्तरमस्तीत्याह-चतुरिति । चतुःक्षेपमूलाभ्यां द्विक्षेपमूलाभ्यां च रूपक्षेपार्थं भावना

यदा लब्धयः स्युः समाश्चेन्न चैवं तदा रूपशुद्धौ गुणो लब्धिरत्र ।
अनेन प्रकारेण मूले अभिन्ने भवेतामिति प्रोक्तवान्वापुदेवः ॥
अत्रेष्टहारावधिलब्धितश्चेत्संसाधिते रूपयुतौ गुणाप्ती ।
तैस्तस्तदाभीष्टहराङ्कतुल्यक्षेपे लघुज्येष्ठपदे तदैव ॥
यदा समास्ताः खलु लब्धयः स्युर्यदा तु ताः स्युर्विषमास्तदानीम् ।
अभीष्टहाराङ्कसमानशुद्धौ ज्ञेये सुदभ्रधिया पदे ते ॥
अत्रेष्टच्छिद् द्वितुल्यश्चेत्तदा तत्सिद्धमूलतः ।
रूपक्षेपपदार्थं वा विधेया तुल्यभावना ॥

'का सप्तषष्टिगुणिता कृतिरेकयुक्ता–' इस आचार्योक्त उदाहरण में प्रकृति=६७ । क्षेप=१ । सूत्रानुसार प्रकृति का निरग्रमूल ८ लब्धि, और लब्धि ८ शेष, तथा अग्र ३ हर, कल्पना किया । मूल ८ और लब्धि ८ के योग १६ में, हर ३ का भाग देने से ५ निरग्र लब्धि मिली, यह नवीन लब्धि हुई । इससे हर ३ को गुणने से १५ हुए, इन में शेष ८ घटा देने से ७ नवीन शेष हुआ । इस के वर्ग ४९ को प्रकृति ६७ में घटा देने से १८ रहे, इन में हर ३ का भाग देने से ६ नवीन हर सिद्ध हुआ । इस प्रकार जबतक रूप तुल्य हर न सिद्ध हो तबतक क्रिया करने से तीन पंक्ति हुई–

लब्धि=८, ५, २, १, १, ७, १, १, २, ५
शेष=८, ७, ५, २, ७, ७, २, ५, ७, ८
हर=३, ६, ७, ९, २, ९, ७, ६, ३, १

और लब्धियों से रूपक्षेप में वल्ली हुई–

वल्ली=८, ५, २, १, १, ७, १, १, २, ५, १, ०

'कार्या' इति शेषः । चतुःक्षेपे 'इष्टवर्गहृतः—' इत्यादिना । द्विक्षेपे तु तुल्यभावनया चतुःक्षेपपदे प्रसाध्य पश्चात् 'इष्टवर्गहृतः—' इत्यादिना रूपक्षेपजे पदे वा भवतः ॥

अब कनिष्ठ और ज्येष्ठ के अभिन्न मान के लिये, चक्रवाल नामक वर्गप्रकृति का विशेष कहते हैं—

यहां पहले 'इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः—' इस सूत्र के अनुसार कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप सिद्ध करना बाद उन को भाज्य, क्षेप और भाजक कल्पना कर के कुट्टकविधि से गुण सिद्ध करना, पर वह (गुण) ऐसा हो कि जिसके वर्ग को प्रकृति में घटा देने से अथवा प्रकृति ही को उस में घटा देने से शेष थोड़ा रहे । उस शेष में पहले क्षेप

इस वल्ली पर से, कुट्टक द्वारा गुण ५६६७ लब्धि ४८८४२ हुई, लब्धियों के सम होने के कारण, यही रूपक्षेप में कनिष्ठ-ज्येष्ठ पद हुए। और यही कनिष्ठ-ज्येष्ठ 'ह्रस्वज्येष्ठपदक्षेपान्–' इत्यादि प्रकार से सिद्ध किये गये हैं ।

लब्धि के चार अङ्क लेने से, रूपक्षेप में वल्ली—

८
५
२
१
१
०

इस से कुट्टक द्वारा गुण १६ लब्धि १३१ । यही इष्ट हराङ्क ६ धनक्षेप में कनिष्ठ और ज्येष्ठ हुए । लब्धि के तीन अङ्क लेने से रूपक्षेप में वल्ली —

८
५
२
१
०

इस से कुट्टक द्वारा गुण ११ लब्धि ६० । यही इष्ट हराङ्क ७ ऋणक्षेप में कनिष्ठ और ज्येष्ठ हुए । इत्यादि ॥

का भाग देने से क्षेप होगा। पर इतना विशेष है कि जिस अवस्था में गुणवर्ग प्रकृति में घटेगा तो यह क्षेप व्यस्त होगा अर्थात् धन हो तो ऋण और ऋण हो तो धन जाना जायगा। और जिस गुण का प्रकृति से अन्तर किया है उस गुण की लब्धि कनिष्ठ होगा, बाद उक्त रीति से कनिष्ठ पर से ज्येष्ठ सिद्ध करना। अनन्तर, पहले साधित कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप को बिगाड़ कर, इन नये कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप से, कुट्टक के द्वारा गुण-लब्धि लाना और उन से कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप सिद्ध करना। इस भांति, असकृत् अर्थात् बार-बार क्रिया करना। यों चार, दो और एक धनक्षेप में, अभिन्न कनिष्ठ-ज्येष्ठ होंगे। यहां उद्दिष्ट ४ आदि संख्या और धनक्षेप उपलक्षण है, इस कारण इष्ट संख्या के धनक्षेप अथवा ऋणक्षेप में अभिन्न पद होंगे। और ४।२ क्षेपों से रूपक्षेप होने के लिये भावना करनी चाहिये वह इस प्रकार—जिस स्थान में ४ क्षेप हो, वहां 'इष्टवर्गहृतः—' इस सूत्र के अनुसार रूपक्षेप सिद्ध करना और जहां पर २ क्षेप हो, वहां तुल्य भावना से ४ क्षेप सिद्ध करना बाद 'इष्टवर्गहृतः—' इस सूत्र से रूपक्षेप में होगा।

उपपत्ति—

१ कनिष्ठ और प्रकृत्यून इष्टवर्ग क्षेप कल्पना किया—

कनिष्ठ= १ , क्षेप= प्र १̇ इव १

कनिष्ठ १ के वर्ग १ को प्रकृति १ से गुण कर उस में क्षेप प्र १̇ इव जोड़ने से इव १ हुआ, इसका मूल इ १ ज्येष्ठ है, अब इसका ज्ञात कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेपों के साथ भावना के लिये न्यास—

प्र १ । क १ ज्ये १ क्षे १
रू १ इ १ प्र १̇ इव १ } यहां वज्राभ्यासों

क. इ १ । ज्ये १ का योग क. इ १ ज्ये १ कनिष्ठ हुआ। कनिष्ठों क १ रू १ के घात को प्रकृति से गुण कर, उस में ज्येष्ठाभ्यास ज्ये. इ १ को जोड़ देने से ज्येष्ठ हुआ प्र. क १ इ. ज्ये १ और क्षेपों का घात क्षेप हुआ प्र. क्षे १̇ क्षे. इव १ अब क्षेप के तुल्य इष्ट

कल्पना करके 'इष्टवर्गहृतः क्षेपः—' इस सूत्र के अनुसार कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप हुए—

कनिष्ठ $= \frac{\text{इ. क १ ज्ये १}}{\text{क्षे १}}$ ।

ज्येष्ठ $= \frac{\text{प्र. क १ इ. ज्ये १}}{\text{क्षे १}}$ ।

क्षेप $= \frac{\text{प्र. क्षे १ क्षे. इव १}}{\text{क्षेव १}} = \frac{\text{प्र १ इव १}}{\text{क्षे १}}$ ।

यहाँ कनिष्ठ के अभिन्नत्व के लिये कुट्टक के द्वारा गुण का ज्ञान किया है। वह गुण इष्टसंज्ञक कनिष्ठ से गुणित ज्येष्ठ से सहित और क्षेप से भाजित लब्ध होता है और वही कनिष्ठ है। इस से 'इष्टवर्ग, प्रकृति से ऊन और क्षेप से भाजित क्षेप होता है' यह बात सिद्ध हुई। यदि प्रकृति में, इष्टवर्ग शुद्ध हो तो ऋणशेष में क्षेप का भाग देने से ऋणागत क्षेप होगा। इसलिये 'व्यस्तः प्रकृतितश्च्युते' यह भी उपपन्न हुआ।

अथवा—

यदि कनिष्ठ इष्ट से गुणा जाय, तो क्षेप इष्टवर्ग से गुणा जायगा। इस भाँति कनिष्ठ और क्षेप हुए, इ. क १। इव. क्षे १

अब क्षेपतुल्य इष्ट कल्पना करने से कनिष्ठ और क्षेप सिद्ध हुए—

$\frac{\text{इ. क १}}{\text{क्षे १}}$ । $\frac{\text{इव. क्षे १}}{\text{क्षेव १}} = \frac{\text{इव १}}{\text{क्षे १}}$ ।

इष्टगुणित और क्षेपभक्त कनिष्ठ, यदि कनिष्ठ कल्पना किया जाय तो क्षेप से भाजित इष्टवर्ग क्षेप होगा। पर ऐसा इष्ट मानना चाहिये कि जिससे गुणित और क्षेप से भाजित हुआ कनिष्ठ शुद्ध हो। तो कनिष्ठ को भाज्य, क्षेप को हार कल्पना कर के कुट्टकद्वारा क्षेपाभाव में गुण लब्धि सिद्ध करनी चाहिये, लब्धि कनिष्ठ और गुण इष्ट होगा। इसलिये गुण का वर्ग पूर्व क्षेप से भाजित क्षेप होता है और ज्येष्ठ भी गुण से गुणित क्षेप से भक्त ज्येष्ठ होता है। पर यों क्षेप बड़ा होता

है इस कारण आचार्य ने यत्नान्तर किया है—कनिष्ठ को भाज्य ‘ज्येष्ठ को क्षेप और क्षेप को हार मान कर गुण लब्धि सिद्ध की है, और पहले गुण से गुणित कनिष्ठ, क्षेप से भाजित कनिष्ठ होता रहा। अब गुण से गुणित कनिष्ठ, ज्येष्ठ से जुड़ा कनिष्ठ होता है, इसलिये क्षेपभक्त ज्येष्ठ कनिष्ठ में अधिक हुआ। प्रकृति से गुणित कनिष्ठ के वर्ग में क्या अधिक हुआ इसका विचार करते हैं—

$$\text{पूर्व सिद्ध कनिष्ठ} = \frac{\text{इ. क १}}{\text{क्षे १}} ।$$

$$\text{उसका वर्ग} = \frac{\text{इव. कव १}}{\text{क्षेव १}} ।$$

$$\text{प्रकृति से गुणित} = \frac{\text{इव. कव. प्र १}}{\text{क्षेव १}} ।$$

$$\text{ज्येष्ठ सिद्ध करने के लिये क्षेप} = \frac{\text{इव १}}{\text{क्षे १}} ।$$

$$\text{ज्येष्ठ से युक्त क्षेप से भाजित कनिष्ठ} = \frac{\text{इ. क १ ज्ये १}}{\text{क्षे १}} ।$$

$$\text{उसका वर्ग} = \frac{\text{इव. कव १ इ. क. ज्ये २ ज्येव १}}{\text{क्षेव १}} ।$$

$$\text{प्रकृति से गुणित} = \frac{\text{इव. कव. प्र १ इ. क. ज्ये. प्र २ ज्येव प्र १}}{\text{क्षेव १}} ।$$

अन्तिम खण्ड को प्रकारान्तर से सिद्ध करते हैं—

प्रकृति से गुणित, क्षेप से युक्त कनिष्ठवर्ग, ज्येष्ठवर्ग के समान है

कव. प्र १ क्षे १

यह प्रकृति से गुणित हुआ—

कव. प्रव १ क्षे. प्र १ इस भांति अभिमत स्वरूप हुआ—

$$\frac{\text{इव. कव. प्र १ इ. क ज्ये. प्र २ कव. प्रव १ क्षे. प्र १}}{\text{क्षेव १}}$$

इससे स्पष्ट है कि—

$$\frac{\text{इ. क. ज्ये. प्र २ कव. प्रव १ क्षे. प्र १}}{\text{क्षेव १}} \text{।}$$

इतना प्रकृति से गुणित कनिष्ठ के वर्ग में अधिक है, और ज्येष्ठ-वर्ग के लिये पूर्व युक्ति के अनुसार क्षेप से भाजित गुणवर्ग क्षेप्य है, अधिक के दो खण्ड किये—

$$\text{पहला खण्ड} = \frac{\text{इ. क. ज्ये. प्र २ कव. प्रव १}}{\text{क्षेव १}} \text{।}$$

$$\text{दूसरा खण्ड} = \frac{\text{क्षे. प्र १}}{\text{क्षेव १}} = \frac{\text{प्र १}}{\text{क्षे १}} \text{।}$$

अपवर्तित दूसरा खण्ड क्षिप्त है; पर क्षेप से भाजित गुणवर्ग क्षेप्य है, और क्षेप से भाजित गुणवर्ग और प्रकृति का अन्तर भी क्षेप्य है। ऐसी स्थिति में, क्षेप से भाजित गुण वर्ग ही क्षिप्त होता है, इसलिये कहा है कि 'तथा प्रकृतितश्च्युते' गुणवर्गे प्रकृत्योनेऽथवाल्पं शेषकं यथा, तत्तु क्षेपहृतं क्षेपः, इति।

यदि प्रकृति से गुणवर्ग अधिक हो, तो उस अवस्था में क्षेप से भाजित गुणवर्ग और प्रकृति का अन्तर योज्य है, क्योंकि क्षिप्त न्यून है। यदि गुणवर्ग न्यून हो तो, क्षेप से भाजित गुणवर्ग और प्रकृति का अन्तर शोध्य है, क्योंकि क्षिप्त अधिक है। इसलिये कहा है कि 'व्यस्तः प्रकृतितश्च्युते'।

जो 'गुणवर्गे प्रकृत्योनेऽथ वाल्पं शेषकं' यह कहा है, वह क्षेप की लघुता के लिये है। अब यों भी ज्येष्ठवर्ग में इतना अधिक है—

$$\frac{\text{इ. क. ज्ये. प्र २ कव. प्रव १}}{\text{क्षेव १}} \text{।}$$

$$\text{ज्येष्ठ} = \frac{\text{इ. ज्ये १}}{\text{क्षे १}} \text{।} \qquad \text{ज्येष्ठवर्ग} = \frac{\text{इव. ज्येव १}}{\text{क्षेव १}} \text{।}$$

$$\text{इसमें अधिक जोड़ने से हुआ} = \frac{\text{इव. ज्येव १ इ. क. ज्ये. प्र २ कव. प्रव १}}{\text{क्षेव १}} \text{।}$$

इस प्रकार अधिक होने पर भी 'कृतिभ्य आदाय पदानि—' इस सूत्र के अनुसार मूल आता है, इसलिये यह भी ज्येष्ठ वर्ग है। यहां इतना विशेष है कि—यदि इष्ट गुणित, क्षेप भक्त कनिष्ठ, कनिष्ठ कल्पना किया जाय तो, क्षेप से भाजित इष्टवर्ग क्षेप होगा और इष्ट से गुणा क्षेप से भाजित ज्येष्ठ, ज्येष्ठ होगा। यदि इष्ट से गुणित, ज्येष्ठ से युक्त और क्षेप से भाजित कनिष्ठ, कनिष्ठ कल्पना किया जाय तो, क्षेप से भाजित गुणवर्ग और प्रकृति का अन्तर क्षेप होगा और इष्ट से गुणित, प्रकृति से गुणित कनिष्ठ से सहित क्षेप से भक्त ज्येष्ठ, ज्येष्ठ होगा। यहां पर, यद्यपि इष्टवश से पद सिद्धि होती है, इसलिये कुट्टक की अपेक्षा नहीं है, तो भी अभिन्नता के लिये कुट्टक किया है। इस से 'ह्रस्वज्येष्ठपदक्षेपान्—' इत्यादि उपपन्न हुआ। यहां पूर्वरीति के अनुसार, कनिष्ठ पर से ज्येष्ठ का साधन कहा है। अथवा, गुणक से गुणित, प्रकृति से गुणित कनिष्ठ से सहित और क्षेप से भाजित ज्येष्ठ, ज्येष्ठ होता है। यह बीजनवाङ्कुरकार का परामर्श है।

अब उक्त वासना के कुछ अंश को प्रकारान्तर से निरूपण करते हैं—

$$\text{पूर्वसिद्ध} = \frac{\text{प्र. इव. कव १ प्र. इ. क. ज्ये २ कव. प्रव १ प्र. क्षे १}}{\text{क्षेव १}}।$$

यह जिससे जुड़ा मूलप्रद हो, वह क्षेप है और मूल ज्येष्ठ है, अब मूल मिलने के लिये यदि $\frac{\text{प्र. इव. कव १}}{\text{क्षेव १}}$ इस पहले खण्ड के तुल्य ऋणखण्ड को जोड़ दें तो, पहला खण्ड उड़ जाता है और $\frac{\text{प्र. क्षे १}}{\text{क्षेव}}$ इस चौथे खण्ड के तुल्य ऋणखण्ड को जोड़ दें तो, चौथा खण्ड उड़ जाता है और तीसरे खण्ड का मूल आता है।

$\frac{\text{क. प्र १}}{\text{क्षे १}}$ इस मूल का $\frac{\text{प्र. इ. क. ज्ये २}}{\text{क्षेव १}}$ इस दूसरे खण्ड में भाग

देने से लब्धि मिली $\frac{\text{क्षे. प्र. इ. क. ज्ये २}}{\text{क. प्र. क्षेव १}} = \frac{\text{इ. ज्ये २}}{\text{क्षे १}}$ ।

लब्धि के आधे के वर्ग को $\frac{\text{इव. ज्येव १}}{\text{क्षेव १}}$ ।

जोड़ देने से मूल आता है $\frac{\text{इ. ज्ये १}}{\text{क्षे १}}$ ।

इस मूल और पहले मूल के दूने घात को, दूसरे खण्ड में घटा देने से, वह खण्ड भी उड़ जाता है । इस भांति क्षेप ज्ञात हुआ—

$$\frac{\text{प्र. इव. कव १̇ प्र. क्षे. १̇ इव. ज्येव १}}{\text{क्षेव १}} ।$$

इसको प्रकृति से गुणित कनिष्ठवर्ग में जोड़ देने से ज्येष्ठ का वर्ग हुआ—

$$\frac{\text{प्र.इव.कव १ प्र.इ.क.ज्ये २ प्रव.कव १ प्र.क्षे १}}{\text{क्षेव १}} + \frac{\text{प्र.इव.कव १̇ प्र.क्षे १̇ इव.ज्येव १}}{\text{क्षेव १}}$$

$$= \frac{\text{प्रव. कव १ प्र. इ. क. ज्ये २ इव. ज्येव १}}{\text{क्षेव १}} ।$$

इस का मूल ज्येष्ठ है—

$$\frac{\text{प्र. क. १ इ. ज्ये १}}{\text{क्षे १}} ।$$

इस से 'इष्ट गुणित ज्येष्ठ से युक्त और क्षेप से भक्त प्रकृति से गुणित कनिष्ठ, ज्येष्ठ होता है' यह बात सिद्ध होती है ।

और, क्षेप के $\frac{\text{प्र. इव. कव १̇ प्र. क्षे १̇ इव. ज्येव १}}{\text{क्षेव १}}$ ।

पहले तथा तीसरे खण्ड में इष्टवर्ग का भाग देने से—

$$\frac{\text{प्र. कव १̇ ज्येव १}}{\text{क्षेव १}} ।$$

यह क्षेप हुआ। क्योंकि ज्येष्ठवर्ग में प्रकृति से गुणित कनिष्ठवर्ग को घटा देने से शेष रहता है।

$$\frac{\text{प्रव. कव १ प्र. इ. क. ज्ये २ इव. ज्येव १}}{\text{क्षेव १}}$$

$$-\frac{\text{प्र. इव. कव १ प्र. इ. क. ज्ये २ प्रव. कव १ प्र. क्षे १}}{\text{क्षेव १}}\ ।$$

$$=\frac{\text{प्र. इव. कव }\dot{\text{१}}\text{ इव. ज्येव १ प्र. क्षे }\dot{\text{१}}}{\text{क्षेव १}}\ ।$$

क्षेप को इष्टवर्ग से गुण देना चाहिये, क्योंकि पहले इस से भाजित हुआ था। इस भांति क्षेप का स्वरूप निष्पन्न हुआ—

$$\frac{\text{प्र. क्षे }\dot{\text{१}}\text{ इव. क्षे १}}{\text{क्षेव}}=\frac{\text{प्र. }\dot{\text{१}}\text{ इव १}}{\text{क्षे}}\ ।$$

उदाहरणम्–

का सप्तषष्टिगुणिता कृतिरेकयुक्ता
का चैकषष्टिनिहता च सखे सरूपा।
स्यान्मूलदा यदि कृतिप्रकृतिर्नितान्तं
त्वच्चेतसि प्रवद तात तता लतावत्॥२९॥

अथात्रोदाहरणं सिंहोद्धतयाह–केति। हे तात! तातेति सरसोक्तिस्तु कमपि नितान्तानुकम्पास्पदं प्रकृतिसुकुमारं कुमारं व्यञ्जयति। त्वच्चेतसि तव हृदये यदि कृतिप्रकृतिर्वर्गप्रकृतिः लतावत् लता वल्ली, तद्वदिव। नितान्तमत्यर्थं तता विस्तृतास्ति। एकत्र व्युत्पत्तिरूपेणापरत्र पत्रादिरूपेणेति तात्पर्यम्। यथा कुत्रचिदारामे सेचनादिक्रियाकौशलवशेन लता नितान्तं वितता भवति तथा तव हृदि यदि दृढाभ्यासवशेन वर्गप्रकृतिर्जागरूका वर्तते इति भावः। अत्र लतेत्युपमानमाहिम्ना वर्गप्रकृतेरुच्चाव-

चवासनापरिस्कारपुरस्सरं प्रकारभिदाप्यवसीयते । अत्रानुप्रास-उपमा च शब्दार्थालंकारौ । तर्हि का कृतिः सप्तषष्टिगुणिता एकयुक्ता मूलदा स्यादिति भवद विविच्य कथय । का च कृतिः एकषष्टिनिहता एकयुक्ता सती मूलदा स्यादिति हे सखे वदेति ।

उदाहरण—

(१) वह कौनसा वर्ग है, जिस को सतसठ से गुणा कर, एक जोड़ देते हैं तो वर्ग होता है ।

(२) वह कौन वर्ग है, जिसे एकसठ से गुणा कर, एक जोड़ देते हैं तो वर्ग होता है ।

प्रथमोदाहरणे रूपं कनिष्ठं त्रयमृणाक्षेपं च प्रकल्प्य न्यासः । प्र. ६७ । क्षे. १ ।

क १ ज्ये ८ क्षे ३̄ । ह्रस्वं भाज्यं, ज्येष्ठं प्रक्षेपं, क्षेपं भाजकं च प्रकल्प्य कुट्टकार्थं न्यासः ।

भा. १ । क्षे. ८ ।

हा. ३̄ ।

अत्र 'हरतष्ट–' इति कृते जाता वल्ली ०
२
०

लब्धिगुणौ $\frac{0}{2}$ ऊर्ध्वौ विभाज्येन अधरो हरेणेति तष्टिकरणे स्वस्वतष्टौ लब्धिवैषम्या-त्स्वतक्षणाभ्यां $\frac{1}{3}$ शुद्धौ $\frac{1}{1}$ 'क्षेपतक्षणलाभाढ्या लब्धिः–' इति लब्धिगुणौ $\frac{3}{1}$ हरस्य ऋणत्वा-

लब्धेः ऋणत्वे कृते जातौ लब्धिगुणौ ३̇/१ गुणस्य वर्गे १ प्रकृतेः शोधिते शेषम् ६६ अल्पकं न जातमतो रूपद्वयमृणमिष्टं प्रकल्प्य 'इष्टाहतस्वस्वहरेण—' इत्यादिना जातौ लब्धिगुणौ ५̇/७ अत्र गुणवर्गे ४९ प्रकृतेर्विशोधिते शेषं १८ क्षेपेण ३̇ हृतं लब्धम् ६̇ अयं क्षेपो गुणवर्गे प्रकृतेर्विशोधिते व्यस्तः स्यादिति धनं ६ लब्धिः कनिष्ठपदं ५̇ अस्य ऋणत्वे धनत्वे च उत्तरे कर्मणि न विशेषोऽस्तीति जातं धनम् ५ अस्य वर्गे प्रकृतिगुणे षड्युते जातं मूलं ज्येष्ठं ४१ पुनरेषां कुट्टकार्थं न्यासः ।

भा० ५ । क्षे० ४१ ।		वल्ली ०
हा० ६ ।		१
		४१
		०

अतो लब्धिगुणौ ११/५ गुणवर्गे २५ प्रकृतेश्च्युते शेषं ४२ क्षेपेण ६ हृते 'व्यस्तः प्रकृतितश्च्युते' इति जातः क्षेपः ७̇ लब्धिः

कनिष्ठम् ११ अतो ज्येष्ठं ६० पुनरेषां कुट्टकार्थं न्यासः ।

भा० ११ । क्षे० ६० ।
हा० ७ं ।

अत्र 'हरतष्टे धनक्षेपे—' इति कृते जातो गुणः ५ लब्धयो विषमा इति तक्षणशुद्धो जातो गुणः २ । अस्य क्षेपः ७ं ऋणरूपेण १ं गुणितं क्षेपं ७ गुणे प्रक्षिप्य जातो गुणः ६ अस्य वर्गे प्रकृत्योने शेषं १४ क्षेपेण ७ं हृत्वा जातः क्षेपः २ं लब्धिः कनिष्ठम् २७ अतो ज्येष्ठम् २२१ आभ्यां तुल्यभावनार्थं न्यासः ।

क २७ ज्ये २२१ क्षे २ं
क २७ ज्ये २२१ क्षे २ं

उक्तवन्मूले क ११६३४ । ज्ये ६७६८४ । क्षे ४ । चतुःक्षेपपदे २ अनेन भक्ते जाते रूपक्षेपमूले क ५९६७ । ज्ये ४८८४२ । क्षे १ ।

द्वितीयोदाहरणे न्यासः ।

भा. १ । क्षे. ८ ।
हा. ३ ।

'हरतष्टे धनक्षेपे—' इति लब्धिगुणौ $\frac{३}{१}$ 'इष्टाहत—' इति द्वाभ्यामुत्थाप्य जातौ लब्धि-गुणौ $\frac{५}{७}$ गुणवर्गे ४९ प्रकृतेः शोधिते १२ व्यस्त इति ऋणं १२̇ इदं क्षेप ६ हतं जातः क्षेपः ४̇ अतः प्राग्वज्जाते चतुःक्षेपमूले क ५ । ज्ये ३९ । क्षे ४̇ । 'इष्टवर्गहृतः क्षेपः क्षेपः स्यात्—' इत्युपपन्नरूपशुद्धिमूलयोर्भावनार्थं न्यासः ।

क $\frac{५}{२}$ ज्ये $\frac{३९}{२}$ क्षे १̇

क $\frac{५}{२}$ ज्ये $\frac{३९}{२}$ क्षे १̇

अनयोर्जाते रूपक्षेपमूले क $\frac{१९५}{२}$ ज्ये $\frac{१५२३}{२}$ क्षे १ अनयोः पुना रूपशुद्धिपदाभ्यां भावनार्थं न्यासः

क $\frac{५}{२}$ ज्ये $\frac{३९}{२}$ क्षे १̇

क $\frac{१९५}{२}$ ज्ये $\frac{१५२३}{२}$ क्षे १

अतो जाते रूपशुद्धौ मूले

क ३८०५ ज्ये २९७१८ क्षे १̇

अनयोस्तुल्यभावनया जाते रूपक्षेपमूले

क २२६१५३९८० ज्ये १७६६३१९०४९ क्षे १

(१) उदाहरण में १ कनिष्ठ और ३̇ ऋणक्षेप कल्पना करके न्यास। प्र ६७ । क १ ज्ये ८ क्षे ३̇

अब कनिष्ठ को भाज्य, क्षेप को भाजक और ज्येष्ठ को क्षेप मानकर कुट्टक के लिये न्यास।

भा. १ । क्षे. ८ ।
हा. ३̇ ।

'हरतष्टे धनक्षेपे—' इस सूत्र के अनुसार न्यास।

भा· १ । क्षे· २ । वल्ली ०
हा· ३̇ । २
०

उक्त रीति से लब्धि-गुण हुए ०/२ लब्धि के वैषम्य से अपने-अपने तक्षणों से शुद्ध हुए १/१ 'क्षेपतक्षणलाभाढ्या लब्धिः—' इस सूत्र के अनुसार लब्धि-गुण हुए ३̇/१ हर के ऋण होने से लब्धि ऋण हुई, क्योंकि भाज्य १ को गुण १ से गुणा कर १ क्षेप ८ जोड़कर ९ ऋणहार ३̇ का भाग देने से, लब्धि ३̇ का ऋणत्व सिद्ध होता है। यहां गुण १ वर्ग १ को प्रकृति ६७ में घटा देने से शेष ६६ अल्प नहीं बचता, इस कारण रूप दो २̇ ऋण इष्ट मानकर 'इष्टाहतस्वस्वहरेण—' इस रीति से लब्धि-गुण हुए ५̇/७ गुण ७ के वर्ग ४९ को प्रकृति ६७ में घटा देने से शेष १८ रहा, इसमें पहले क्षेप ३̇ का भाग देने से लब्धि ६̇ ऋण मिली, यह क्षेप गुणवर्ग को प्रकृति में घटा देने से व्यस्त अर्थात् धनक्षेप ६ हुआ। और लब्धि कनिष्ठपद ५̇ हुई, इसके ऋण अथवा धन होने से 'इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः—' इत्यादि अगली क्रिया में कुछ विशेष नहीं होता। इसलिये कनिष्ठ ५ धन हुआ, अब उस ५ के वर्ग २५ को प्रकृति ६७ से गुणाकर १६७५ क्षेप ६ जोड़ने से १६८१ ज्येष्ठ मूल ४१ आया।

अथवा 'पूर्वं ज्येष्ठं गुणाभ्यस्तं प्रकृतिघ्नकनिष्ठयुक्।
क्षेपोद्धृतं चक्रवाले ज्येष्ठं वा प्रकृतं भवेत्॥'

इस उक्त वासनासिद्ध सूत्र के अनुसार पहले ज्येष्ठ ८ को गुण ७ से गुणा कर ५६ प्रकृति ६७ से गुणित कनिष्ठ ६७ × १ = ६७ को

जोड़ कर १२३ और क्षेप ३ं का भाग देने से ४१ं ज्येष्ठपद सिद्ध हुआ। इसको भी कनिष्ठ के भांति धन मानने से वही ज्येष्ठ हुआ ४१। इस प्रकार सर्वत्र जानना। इन का फिर कुट्टक के लिये न्यास——

भा० ५। क्षे० ४१।
हा० ६।

'हरतष्टे धनक्षेपे——' इस के अनुसार न्यास——

भा. ५। क्षे. ५।   वल्ली ०
हा. ६।   १
५
०

उक्त रीति से लब्धि-गुण हुए ५/५ तत्तुल्य लाभ ६ से युक्त लब्धि वास्तव लब्धि होती है तो, लब्धि गुणित ११/५ गुण ५ वर्ग २५ को प्रकृति ६७ में घटा देने से शेष ४२ रहा, इस में क्षेप ६ का भाग देने से ७ लब्धि आई, और 'व्यस्तः प्रकृतितश्च्युते' के अनुसार क्षेप ७ं ऋण हुआ। लब्धि ११ कनिष्ठ है, इस ११ के वर्ग २२१ को प्रकृति ६७ से गुण कर ८१०७ और क्षेप ७ं से घटा कर ८१०० मूल ज्येष्ठ ९० आया। अथवा 'पूर्वं ज्येष्ठं गुणाभ्यस्तं——' सूत्र के अनुसार ज्येष्ठ ४१ को गुण ५ से गुण कर २०५ प्रकृति ६७ से गुणित कनिष्ठ ६७×५=३३५ को जोड़कर ५४० उसमें क्षेप ६ का भाग देने से ज्येष्ठ ९० हुआ। इस भांति कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप हुए——

क ११ ज्ये ९० क्षे ७ं

इन का कुट्टक के लिये न्यास——

भा. ११। क्षे. ९०।
हा. ७ं।

'हरतष्टे धनक्षेपे——' इस सूत्र के अनुसार वल्ली १
१
१
६
०

दो राशि $\begin{matrix}१ & ८\\ १ & २\end{matrix}$ तक्षणों से तक्षित करने से हुए $\begin{matrix}७\\ ५\end{matrix}$ लब्धि विषम रही, इस कारण ११ । ७ इन अपने-अपने तक्षणों में शुद्ध करने से लब्धिगुण हुए $\begin{matrix}४\\ २\end{matrix}$ क्षेपतक्षणलाभ १२ से युक्त लब्धि, वास्तव लब्धि-गुण हुए $\begin{matrix}१६̇\\ २\end{matrix}$ हर के ऋण होने से लब्धि भी ऋण हुई, इस प्रकार सक्षेप लब्धि-गुण हुए——क्षे ११ ल १६̇

क्षे ७ गु २

गुण २ के वर्ग ४ को प्रकृति ६७ में घटा देने से शेष ६३ अल्प नहीं रहता, इस कारण ऋणरूप १̇ इष्ट मान कर हार ७̇ को गुणने से धन ७ हुआ । इस ७ को गुण २ में जोड़ देने से गुण ९ हुआ । इसी भांति इष्ट १̇ से भाज्य ११ को गुण कर लब्धि १६̇ में जोड़ देने से लब्धि २७̇ हुई, यह कनिष्ठपद है । इसको पूर्व रीति से धन कल्पना कर लिया । अब कनिष्ठ २७ का वर्ग ७२९ प्रकृति ६७ से गुणित ४८८४३ हुआ, इसमें क्षेप २ घटा देने से ४८८४१ शेष रहा, इसका मूल २२१ ज्येष्ठ हुआ और गुण ९ के वर्ग ८१ में प्रकृति ६७ को घटा देने से १४ शेष बचा, इसमें ऋणक्षेप ७̇ का भाग देने से ऋणक्षेप २̇ लब्ध आया ।

इस प्रकार कनिष्ठ, ज्येष्ठ; और क्षेप हुए——

क २७ ज्ये २२१ क्षे २̇

इन का तुल्य भावना के लिये न्यास——

क २७ ज्ये २२१ क्षे २̇
क २७ ज्ये २२१ क्षे २̇

यहां कनिष्ठ ज्येष्ठों के वज्राभ्यासों ५९६७ । ५९६७ का योग ११९३४ कनिष्ठ हुआ । कनिष्ठों का घात ७२९ प्रकृति ६७ से गुणित ४८८४३ में ज्येष्ठाभ्यास ४८८४१ को जोड़ने से ९७६८४ ज्येष्ठ हुआ । और क्षेपों २̇ । २̇ का घात ४ क्षेप हुआ । इन का यथाक्रम न्यास——

क ११९३४ ज्ये ९७६८४ क्षे ४

इष्ट २ कल्पना करके 'इष्टवर्गहृतः क्षेपः——' इस सूत्र के अनुसार

रूपक्षेप में कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप सिद्ध हुए—

क ५९६७ ज्ये ४८८४२ क्षे १

(२) उदाहरण में इष्ट १ कनिष्ठ और ३ क्षेप मानकर न्यास।

प्र ६१। क १ ज्ये ८ क्षे ३

इनका कुट्टक के लिये न्यास।

भा. १ । क्षे. ८

हा. ३ ।

'हरतष्टे धनक्षेपे—' इसके अनुसार न्यास।

भा. १ क्षे. २ । वल्ली ०

हा. ३ । २

०

उक्त रीति से दो राशि ०/२ लब्धि के वैषम्य से, अपने-अपने तक्षणों में शुद्ध १/१ और क्षेपतक्षण लब्ध २ से जुड़ी लब्धि वास्तव हुई ३ इस प्रकार लब्धि-गुण सिद्ध हुए ३/१ 'इष्टाहतस्वस्वहरेण—' के अनुसार २ इष्ट कल्पना करने से, लब्धि-गुण हुए ५/७ यहां गुण ७ के वर्ग ४९ को प्रकृति ६१ में घटा देने से शेष १२ बचा, क्षेप ३ का भाग देने से क्षेप ४ आया, यह 'व्यस्तः प्रकृतितश्च्युते' इसके अनुसार ऋण हुआ ४̇। और गुण ७ की लब्धि ५ कनिष्ठ है, इसका वर्ग २५ प्रकृति ६१ गुणित १५२५ में क्षेप ४ घटा देने से १५२१ शेष रहा, इसका मूल ३९ ज्येष्ठ हुआ। इनका यथाक्रम न्यास।

क ५ ज्ये ३९ क्षे ४̇

अब 'इष्टवर्गहृतः—' के अनुसार इष्ट २ कल्पना करने से, रूपशुद्धि में कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप हुए—

क ५/२ ज्ये ३९/२ क्षे १̇

इनका भावना के लिये न्यास।

क ५/२ ज्ये ३९/२ क्षे १̇

क ५/२ ज्ये ३९/२ क्षे १̇

अब 'वज्राभ्यासौ ज्येष्ठलघ्वोः—' के अनुसार रूपक्षेप में कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप हुए—

क $\frac{१९५}{२}$ ज्ये $\frac{१५२३}{२}$ क्षे १

इन का रूपशुद्धि पदों के साथ भावना के लिये न्यास ।

क $\frac{१९५}{२}$ ज्ये $\frac{१५२३}{२}$ क्षे १

क $\frac{५}{२}$ ज्ये $\frac{३९}{२}$ क्षे १̇

वज्राभ्यासों ७६०५ । ७६१५ का योग १५२२० हुआ । इस में हरों २ । २ के घात ४ का भाग देने से कनिष्ठ हुआ ३८०५ । कनिष्ठों का घात ९७५ प्रकृति ६१ से गुणित ५९४७५ में ज्येष्ठाभ्यास ५९३९७ को जोड़ने से ११८८७२ हुआ, इस में हरों के घात ४ का भाग देने से ज्येष्ठ आया २९७१८ । क्षेपों १̇ । १ का घात क्षेप हुआ १̇ । इन का यथाक्रम न्यास ।

क ३८०५ ज्ये २९७१८ क्षे १̇

तुल्य भावना के लिये न्यास ।

क ३८०५ ज्ये २९७१८ क्षे १̇

क ३८०५ ज्ये २९७१८ क्षे १̇

यहां वज्राभ्यासों ११३०७६९९० । ११३०७६९९० का योग २२६१५३९८० कनिष्ठ हुआ । कनिष्ठों का घात १४४७८०२५ प्रकृति ६१ से गुणित ८८३१५९५२५ हुआ, इस में वज्राभ्यास ८८३१५९५२५ को जोड़ देने से ज्येष्ठपद १७६६३११९०४९ हुआ । और क्षेपों १̇।१̇ का घात क्षेप १ हुआ । इन का यथाक्रम न्यास ।

क २२६१५३९८ ज्ये १७६६३११९०४९ क्षे १

इस प्रकार भावनावश से अनेक कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप सिद्ध होते हैं ।

अथ रूपशुद्धौ खिलत्वज्ञानप्रकारान्तरितपदानयनयोः करणसूत्रं वृत्तद्वयम्—

रूपशुद्धौ खिलोद्दिष्टं वर्गयोगो गुणो न चेत् ५०

अखिले कृतिमूलाभ्यां द्विधा रूपं विभाजितम्।
द्विधा ह्रस्वपदं ज्येष्ठं ततो रूपविशोधने ॥५१॥
पूर्ववद्वा प्रसाध्येते पदे रूपविशोधने ।

अथ रूपशुद्धौ खिलत्वेऽखिलत्वे चावधारिते तत्र प्रकारान्तरेण पदानयनं श्लोकाभ्यामाह–रूपशुद्धाविति । यदि प्रकृतिर्वर्गयोगरूपा न भवेत्तर्हि रूपशुद्धावुद्दिष्टं खिलं ज्ञेयम् । कस्यापि वर्गस्तया प्रकृत्या गुणितो रूपोनः सन् मूलदो नैव भवेदित्यर्थः । अथाखिलत्वे पदानयनमाह–अखिले इति । अखिले सति ययोर्वर्गयोर्योगः प्रकृतिरस्ति तयोर्मूलाभ्यां द्विधा रूपं विभाजितं सद्रूपशुद्धौ द्विधा ह्रस्वपदं भवति । ततस्ताभ्यां कनिष्ठाभ्यां'–तस्य वर्गः प्रकृत्या क्षुण्णः–' इत्यादिना ज्येष्ठपदमपि द्विधा भवति । अथवा, अखिलत्वे सति पूर्ववत् 'इष्टं ह्रस्वं–' इत्यादिना ऋणे चतुरादिक्षेपे पदे प्रसाध्य 'इष्टवर्गहृतः क्षेपः–' इत्यादिना रूपशुद्धौ पदे प्रसाध्ये ॥

रूपशुद्धि में सत्-असत् उदाहरण का ज्ञान और प्रकारान्तर से पदानयन का प्रकार—

रूपशुद्धि अर्थात् १ ऋणक्षेप में यदि गुण (प्रकृति) वर्गों का योग न हो तो उस उद्दिष्ट को खिल अर्थात् दुष्ट जानना, तात्पर्य यह है कि किसी का वर्ग उस प्रकृति से गुणा और रूपोन मूलप्रद न होगा । इस भांति यदि उद्दिष्ट दुष्ट न हो तो, जिन वर्गों का योग प्रकृति है, उनके मूलों का अलग-अलग रूप में, भाग देने से दो प्रकार के कनिष्ठ रूप-शुद्धि में होंगे । और उन कनिष्ठों पर से '—तस्य वर्गः प्रकृत्या क्षुण्णः—' इस सूत्र के अनुसार ज्येष्ठ भी दो प्रकार के होंगे । अथवा 'इष्टं ह्रस्वं—' इस रीति के अनुसार, चार आदि क्षेप में पदानयन करके बाद 'इष्टवर्गहृतः क्षेपः क्षेपः स्यात्' इस सूत्र से रूपशुद्धि में पदों का आनयन करना चाहिए ।

उपपत्ति—

जो ऋणाक्षेप वर्गरूप हो तो उसके मूल को इष्ट कल्पना करके 'इष्टवर्गहृतः क्षेपः—' इस रीति से ऋणाक्षेप १ संभव होता है। परन्तु ऋणाक्षेप वर्गरूप तभी होगा यदि प्रकृति से गुणा कनिष्ठवर्ग वर्गयोग-रूपी हो। इसलिये एक वर्ग का शोधन करने से, दूसरा वर्ग अवशिष्ट रहेगा और वही क्षेप है। जैसा—२ । ३ के वर्ग ४ । ९ के योग १३ में, इष्ट राशि के वर्ग ४ को घटा देने से, दूसरे राशि ३ का वर्ग ९ शेष रहा।

यहां पर यदि प्रकृति वर्गयोग रूप हो तो कनिष्ठ वर्ग प्रकृति से गुणित भी वर्गयोग रूप अनुमान किया जाय क्योंकि वर्गरूप खण्डों से कनिष्ठ को अलग-अलग गुणा देने से दोनों खण्ड भी वर्गरूप रहते हैं और उनका योग वर्गयोग होता है और वही संपूर्ण प्रकृति से गुणित कनिष्ठ का वर्ग होता है। जैसा—४ । ९ वर्गराशि का योग १३ प्रकृति है। अब कल्पित कनिष्ठ ५ के वर्ग २५ को उन वर्गात्मक खण्डों ४ । ९ से अलग-अलग गुणा देने से १००।२२५ भी वर्ग हुए, इन का योग ३२५ दश और पंद्रह का वर्गयोग है, और यह संपूर्ण प्रकृति १३ से गुणित कनिष्ठवर्ग १३×२५=३२५ के समान है। वह १०।१५ के वर्गयोग ३२५ के तुल्य है, इस लिये ३२५ में १० का वर्ग १०० घटा देने से १५ का वर्ग २२५ शेष रहता है और १५ का वर्ग २२५ घटा देने से १० का वर्ग १०० शेष बचता है। इस लिये ऋणाक्षेप १००̇ और ज्येष्ठ १५। अथवा, ऋणाक्षेप २२५̇ और ज्येष्ठ १० हुआ। अब—

क ५ ज्ये १५ क्षे १००̇

इन से इष्ट १० मान कर रूपशुद्धि में पद हुए—

क ५/१० ज्ये १५/१० क्षे १̇

इस से 'रूपशुद्धौ खिलोद्दिष्टं वर्गयोगो गुणो न चेत्' यह उपपन्न हुआ। जिनका वर्गयोग प्रकृति है, उनके मूलों २ । ३ का अलग-अलग रूप में भाग देने से कनिष्ठ १/२ अथवा १/३। अब कनिष्ठ का वर्ग करने

से अंश के स्थान में रूप और हर के स्थान में मूल का वर्ग क $\frac{१}{४}$ हुआ। इसको प्रकृति १३ से गुण देने से अंश के स्थान में प्रकृति की तुल्यता हुई क $\frac{१३}{४}$। अब उस में ऋणक्षेप १ घटाना है तो, समच्छेद से हर की समता हुई $\frac{४}{४}$। बाद ४ को भाज्य १३ में घटाने से दूसरे मूल ३ का वर्ग ९ शेष रहेगा, क्योंकि भाज्य (अंश) दोनों मूलों २। ३ के वर्गयोग १३ के समान है। इसी भांति कनिष्ठ $\frac{१}{३}$ का वर्ग $\frac{१}{९}$ यह प्रकृति १३ से गुणित $\frac{१३}{९}$ हुआ, अब यहां भी हर ९ से ऋणक्षेप १ को गुणने से हर की समता हुई, उस $\frac{९}{९}$ को प्रकृति (अंश) १३ में घटा देने से पहले मूल २ का वर्ग ४ शेष रहा। इस से 'अखिले कृतिमूलाभ्यां द्विधा रूपं विभाजितम्। द्विधा ह्रस्वपदं' यह भी उपपन्न हुआ॥

उदाहरणम्—

त्रयोदशगुणो वर्गो निरेकः कः कृतिर्भवेत्।
को वाष्टगुणितो वर्गो निरेको मूलदो वद ३०

अत्र प्रकृतिर्द्विकत्रिकयोर्वर्गयोर्योगः १३। अतो द्विकेन रूपं हृतं रूपशुद्धौ कनिष्ठं पदं स्यात् $\frac{१}{२}$। अस्य वर्गात्प्रकृतिगुणादेकोनान्मूलं ज्येष्ठं पदम् $\frac{३}{२}$। अथवा त्रिकेण रूपं हृतं कनिष्ठं स्यात् $\frac{१}{३}$। अतो ज्येष्ठम् $\frac{२}{३}$। अथवा कनिष्ठम् १ अस्य वर्गात्प्रकृतिगुणाच्चतुरूनान्मूलं ज्येष्ठम् ३ क्रमेण न्यासः। क १ ज्ये ३ क्षे $\dot{४}$

'इष्टवर्गहृतः क्षेपः—' इत्यादिना जाते रूपशुद्धौ पदे क $\frac{१}{२}$ ज्ये $\frac{३}{२}$ क्षे $\dot{१}$। अथवा प्रकृतेर्नव

त्यक्त्वैवमेव जाते क $\frac{१}{२}$ ज्ये $\frac{१}{२}$ क्षे १। चक्रवाले नाभिन्ने वा।

एषां ह्रस्वज्येष्ठपदक्षेपाणां भिन्नानां 'ह्रस्वज्येष्ठपदक्षेपान्–' इत्यादिना भाज्यप्रक्षेपभाजकान्प्रकल्प्य पूर्वपदयोर्न्यासः।

भा. $\frac{१}{२}$। क्षे. $\frac{३}{२}$।
हा. १।

अत्र भाज्यभाजकक्षेपानर्धेनापवर्त्य जाताः
भा. १। क्षे. ३।
हा. २।

'हरतष्टे–' इति कुट्टकेन गुणलब्धी $\frac{१}{२}$ अत्रेष्टघ्नरूपं प्रकल्प्य जातोऽन्यो गुणः ३। 'गुणवर्गे–'इत्यादिना क्षेपः ४ लब्धिः ३ अतो ज्येष्ठम् ११। क्रमेण न्यासः। क ३ ज्ये ११ क्षे ४।

अतोऽपि पुनः 'भाज्यप्रक्षेपभाजकान्–' इत्यादिना चक्रवालेन लब्धो गुणः ३। 'गुणवर्गे–' इत्यादिना रूपशुद्धावभिन्ने पदे क ५ ज्ये १८ क्षे १।

इह सर्वत्र पदानां रूपक्षेपदाभ्यां भावनया-नन्त्यम् ॥

एवं द्वितीयोदाहरणे प्रकृतिः ८। प्राग्वज्जाते ह्रस्वज्येष्ठपदे क १/२ ज्ये १ क्षे १̇

उदाहरण—

(१) वह कौन ऐसा वर्ग है, जिस को तेरह से गुणा कर, एक घटा देते हैं तो वह वर्ग होता है ?

(२) वह कौन सा वर्ग है, जिस को आठ से गुणा कर, एक घटा देते हैं तो वर्ग होता है ?

पहले उदाहरण में प्रकृति १३ है, यह २ और ३ के वर्गों ४।९ का योग है, इस लिये २ का १ में भाग देने से कनिष्ठपद १/२ हुआ। इसका वर्ग १/४ प्रकृति १३ से गुणित १३/४ में १ घटाने से ९/४ शेष का मूल ३/२ ज्येष्ठपद हुआ। अथवा, ३ का १ में भाग देने से कनिष्ठ पद १/३ हुआ। इसके वर्ग १/९ को प्रकृति १३ से गुणा १३/९ हुआ, इस में १ घटा देने से ४/९ शेष रहा, इस का मूल २/३ ज्येष्ठपद हुआ। अथवा, इष्ट १ को कनिष्ठ कल्पना किया, इसके वर्ग १ को प्रकृति १३ से गुणा कर, ४ घटा दिया तो ९ शेष रहा, इस का मूल ३ ज्येष्ठ पद हुआ। इन का क्रम से न्यास।

क १ ज्ये ३ क्षे ४̇

'इष्टवर्गहृतः—' के अनुसार, इष्ट २ मानने से रूपशुद्धि में पद हुए—

क १/२, ज्ये ३/२, क्षे १̇।

अथवा, कनिष्ठ १ वर्ग १ को प्रकृति १३ से गुणा कर ९ घटा दिया तो ४ शेष रहा, इस का मूल २ ज्येष्ठपद हुआ। इन का यथा-क्रम न्यास।

क १, ज्ये २, क्षे ९̇।

पूर्वरीति से ३ इष्ट मानने से रूपशुद्धि में पद हुए—

क $\frac{१}{३}$ ज्ये $\frac{२}{३}$ क्षे $\dot{१}$

अब इन का 'ह्रस्वज्येष्ठपदक्षेपान्—' इस रीति के अनुसार कुट्टक के लिये न्यास ।

भा. $\frac{१}{२}$ । क्षे. $\frac{३}{२}$ ।
हा. $\dot{१}$ ।

यहां भाज्य, भाजक और क्षेप में आधे $\frac{१}{२}$ का अपवर्तन देकर न्यास।

भा. १ । क्षे. ३ ।
हा. $\dot{२}$ ।

'हरतष्टे धनक्षेपे—' इस रीति से वल्ली हुई

०
१
०

बाद १ दो राशि लब्धि के वैषम्य से अपने-अपने तक्षणों में शुद्ध $\frac{१}{१}$ हुए, फिर क्षेपतक्षणलाभ १ को लब्धि में जोड़ देने से लब्धि-गुण हुए $\frac{\dot{२}}{१}$ । अब गुण १ के वर्ग १ को प्रकृति १३ में घटा देने से शेष १२ अल्प नहीं रहता, इस कारण ऋण $\dot{१}$ इष्ट मानकर 'इष्टाहतस्वस्वहरेण युक्ते—' के अनुसार तक्षणों १ । $\dot{२}$ को ऋण $\dot{१}$ से गुण दिया तो $\dot{१}$ । २ हुए, इनको लब्धि-गुणों $\dot{२}$ । १ में जोड़ देने से $\dot{३}$ । ३ लब्धि-गुण हुए । गुण ३ के वर्ग ९ को प्रकृति १३ में घटा देने से शेष ४ रहा, इस में ऋणक्षेप $\dot{१}$ का भाग देने से $\dot{४}$ क्षेप आया और 'व्यस्तः प्रकृतितश्च्युते—' के अनुसार वह क्षेप धन हुआ ४ । लब्धि ३ कनिष्ठ के वर्ग ९ को प्रकृति १३ से गुणित ११७ में क्षेप ४ जोड़ने से १२१ हुआ, इस का मूल ११ ज्येष्ठ है । इनका क्रम से न्यास ।

क ३ ज्ये ११ क्षे ४ ।

अब कुट्टक के लिये न्यास—

भा. ३ । क्षे. ११ ।
हा. ४ ।

'हरतष्टे धनक्षेपे—' के अनुसार न्यास—

भा. ३ । क्षे. ३ । वल्ली ०
हा. ४ । १
३
०

उक्त विधि से ३/३ दो राशि हुए, क्षेपतक्षणलाभ २ को लब्धि ३ में जोड़ देने से लब्धि-गुण हुए ५/३ । गुण ३ के वर्ग ६ को प्रकृति १३ में घटाने से ४ शेष रहा, इस में पूर्वक्षेप ४ का भाग देने से १ क्षेप आया, वह 'व्यस्तः प्रकृतितश्च्युते—' के अनुसार ऋण हुआ १̇ । और लब्धि ५ कनिष्ठ के वर्ग २५ को प्रकृति १३ से गुणित ३२५ में क्षेप १̇ घटा देने से ३२४ शेष का मूल १८ ज्येष्ठ हुआ । इनका यथाक्रम न्यास—

क ५ ज्ये १८ क्षे १̇

यहां सर्वत्र पदों का रूपक्षेप पदों के साथ भावना देने से आनन्त्य होगा ।

(२) उदाहरण में प्रकृति ८ है । यह २ । २ के वर्गों ४ । ४ का योग है । इस लिये १ में २ का भाग देने से कनिष्ठपद १/२ हुआ । इसके वर्ग १/४ को प्रकृति ८ से गुणा दिया ८/४ हुआ इस में १ घटा देने से ४/४ = १ शेष रहा । इसका मूल १ ज्येष्ठ हुआ । इन का क्रम से न्यास—

क १/२ ज्ये १ क्षे १̇ ।

उदाहरणम्—

कोवर्गः षड्गुणस्त्र्याढ्यो द्वादशाढ्योथवा कृतिः
युतो वा पञ्चसप्तत्या त्रिशत्या वा कृतिर्भवेत् ॥

अत्र रूपं ह्रस्वं कृत्वा न्यासः ।

प्र ६ । क १ ज्ये ३ क्षे ३

अत्र 'क्षेपः क्षुण्णः क्षुण्णे तदा पदे' इति द्विगुणिते जाते द्वादशक्षेपे २ । ६ । पञ्चगुणे

पञ्चसप्ततिमिते क्षेपे ५ । १५ । दशगुणे जाते त्रिशतीक्षेपे १० । ३० ।

उदाहरण—

वह कौन वर्ग है, जिस को छः से गुण कर, उस में तीन वा, बारह वा, पचहत्तर वा, तीन सौ जोड़ देते हैं तो, वर्ग हो जाता ह ?

यहां इष्ट १ कनिष्ठ कल्पना किया, उसके वर्ग १ को प्रकृति ६ से गुण कर ३ जोड़ दिया तो ९ हुआ, इस का मूल ३ ज्येष्ठ हुआ, अब इन का क्रम से न्यास—

प्र ६ । क १ ज्ये ३ क्षे ३ ।

यहां 'अथवा क्षेपः क्षुण्णः क्षुण्णे तदा पदे' इस सूत्र के अनुसार २ इष्ट कल्पना करने से, बारह क्षेप में पद हुए—

प्र ६ । क २ ज्ये ६ क्षे १२

५ इष्ट कल्पना करने से, पचहत्तर क्षेप में पद हुए—

प्र ६ । क ५ ज्ये १५ क्षे ७५

और १० इष्ट कल्पना करने से, तीन सौ क्षेप में पद हुए—

प्र ६ । क १० ज्ये ३० क्षे ३००

अथेच्छयानीतपदयो रूपक्षेपदानयनदर्शने करणसूत्रं सार्धवृत्तम् ।

स्वबुद्ध्यैव पदे ज्ञेये बहुक्षेपविशोधने ॥ ५२ ॥
तयोर्भावनयानन्त्यं रूपक्षेपपदोत्थया ।
वर्गच्छिन्ने गुणे ह्रस्वं तत्पदेन विभाजयेत् ॥

अथ येन केनाप्युपायेनोद्दिष्टक्षेपे पदे प्रसाध्य पश्चाद्रूपक्षेपभावनया तयोरानन्त्यं भवतीति सार्धेनानुष्टुभाह—स्वेति। क्षेपाश्च विशोधनानि च क्षेपविशोधनानि, बहूनि च तानि क्षेपविशोधनानि च बहुक्षेपविशोधनानि, तेषां समाहारो बहुक्षेपविशोधनं

तस्मिन् बहुक्षेपविशोधने। यत्र कुत्रापि क्षेपे धने ऋणे वा पूर्वं स्वबुद्ध्यैव पदे ज्ञेये इत्यर्थः। पश्चाद्रूपक्षेपपदोत्थया भावनया तयोरानन्त्यं सुलभम्। यतः 'तत्राभ्यासः क्षेपयोः क्षेपकः स्यात्' इति रूपक्षेपेण गुणितो यः कश्चन धनमृणं वा क्षेपो यथास्थित एव स्यादिति। 'स्वबुद्ध्यैव पदे ज्ञेये' इत्युक्तं तत्र प्रकारान्तरं दर्शयति—वर्गेति। गुणे वर्गच्छिन्ने सति ह्रस्वं तत्पदेन विभाजयेत्। अयमभिप्रायः—प्रकृतिं केनचिद्वर्गेणापवर्त्य, अपवर्तितया प्रकृत्या कनिष्ठज्येष्ठपदे साध्ये। तत्र येन वर्गेण प्रकृतेरपवर्तः कृतस्तस्य पदेन कनिष्ठं भाज्यं, ज्येष्ठं तु यथास्थितमेव उद्दिष्टप्रकृतावेते पदे भवत इत्यर्थः॥

अब किसी एक विधि से उद्दिष्ट क्षेप में पद ला कर, रूपक्षेप भावना के द्वारा, उन पदों का आनन्त्य कहते हैं—जिस स्थान में अधिक (बड़ा) धन अथवा ऋणक्षेप हो वहां पहले अपनी माति के अनुसार पदों को सिद्ध करना, फिर कनिष्ठ, ज्येष्ठ और रूपक्षेप से उत्पन्न भावना से उन कनिष्ठ, ज्येष्ठ पदों का आनन्त्य होगा। तात्पर्य यह है कि 'तत्राभ्यासः क्षेपयोः क्षेपकः स्यात्' इस सूत्र के अनुसार रूपक्षेप से गुणित कोई धन अथवा ऋणक्षेप ज्यों का त्यों रहेगा।

अब पहले जो कह आये हैं कि अपनी मति के अनुसार पदों को सिद्ध करना, वहां पर प्रकारान्तर दिखलाते हैं—उद्दिष्ट प्रकृति में किसी वर्गराशि का अपवर्तन देकर अपवर्तनाङ्क के मूल का कनिष्ठ में भाग देने से वह कनिष्ठ होगा और ज्येष्ठ यथास्थित रहेगा।

उपपत्ति—

प्रकृति में किसी वर्ग राशि का अपवर्तन देने से ज्येष्ठ का वर्ग भी उसी वर्गराशि से अपवर्तित होता है। इस लिये ज्येष्ठ वर्गराशि के मूल से अपवर्तित होगा, परन्तु कनिष्ठ अपवर्तित न होगा। क्योंकि उस (कनिष्ठ) में प्रकृति प्रयुक्त कोई विशेष नहीं है कि जिससे प्रकृति गुणित अथवा भाजित की जाय, तो कनिष्ठ भी गुणित या भाजित

हो इस लिये उस (वर्गराशि) के मूल का कनिष्ठ में भाग देना कहा है और ज्येष्ठ तो प्रथम ही भाजित हो चुका है । इसी भांति यह भी जानना चाहिये कि प्रकृति को किसी वर्गराशि से गुण देना और उस गुणित प्रकृति से कनिष्ठ, ज्येष्ठ सिद्ध कर के उस के मूल से कनिष्ठ को गुण देना चाहिये । इससे 'वर्गच्छिन्ने गुणे ह्रस्वं तत्पदेन विभाजयेत्' यह उपपन्न हुआ ।

उदाहरणम्—

द्वात्रिंशद्गुणितो वर्गः कः सैको मूलदो वद ।

न्यासः । प्र ३२ । अतः प्राग्वज्जाते कनिष्ठ-ज्येष्ठे $\frac{१}{२}$ । ३ अथवा 'वर्गच्छिन्ने गुणे ह्रस्वं तत्पदेन विभाजयेत्' इति प्रकृतिः ३२ चतुश्छिन्ना लब्धम् ८ अस्यां प्रकृतौ कनिष्ठज्येष्ठे १ । ३ येन वर्गेण प्रकृतिश्छिन्ना तस्य पदेन २ कनिष्ठे भक्ते जाते त एव क $\frac{१}{२}$ ज्ये ३ क्षे १ ।

उदाहरण—

वह कौन सा वर्गराशि है, जिस को बत्तीस से गुण देते हैं और उस में एक घटा देते हैं तो मूलप्रद होता है ।

यहां $\frac{१}{२}$ इष्ट मानकर 'इष्टं ह्रस्वं—' इस रीति से कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप हुए—

क $\frac{१}{२}$ ज्ये ३ क्षे १

अथवा 'वर्गच्छिन्ने—' इस सूत्र के अनुसार, प्रकृति ३२ में ४ का अपवर्तन देने से ८ लब्ध आया, अब प्रकृति ८ में उक्त रीति से कनिष्ठ ज्येष्ठ और क्षेप हुए—

क १ ज्ये ३ क्षेप १

. फिर ४ के मूल २ का कनिष्ठ १ में भाग देने से बत्तीस प्रकृति में पद हुए—

क $\frac{१}{२}$ ज्ये ३ क्षे १

इसी भांति प्रकृति ३२ में १६ का अपवर्तन देने से २ मिला और प्रकृति २ में कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप हुए—

क २ ज्ये ३ क्षे १

फिर १६ के मूल ४ का कनिष्ठ २ में भाग देने से, वही कनिष्ठ और ज्येष्ठ आये क $\frac{१}{२}$ ज्ये ३ क्षे १ ।

अथ वर्गरूपायां प्रकृतौ भावनाव्यतिरेकेणानेकपदानयने करणसूत्रं वृत्तम्–

इष्टभक्तो द्विधा क्षेप इष्टोनाढ्यो दलीकृतः ।
गुणमूलहृतश्चाद्यो ह्रस्वज्येष्ठे क्रमात्पदे ५४

अथ प्रकृतौ वर्गरूपायां पदानयने उपायान्तरमनुष्टुभाह—इष्टभक्त इति । उद्दिष्टक्षेप इष्टेन भक्तः सन् द्विधा स्थाप्यः, स एकत्र इष्टेनोनः, अपरत्र इष्टेन सहितः, उभयत्रापि दलीकृतोऽर्धितः । गुणमूलहृतः । प्रकृतिमूलहृत इत्यर्थः । क्रमाद्ध्रस्वज्येष्ठपदे स्तः ॥

वर्गरूप-प्रकृति में पद लाने का प्रकार—

उद्दिष्ट क्षेप में इष्ट का भाग देकर, उसको दो स्थानों में रखना । एक स्थान में उसमें इष्ट घटा देना दूसरे स्थान में जोड़ देना फिर उनका आधा करना और पहले स्थान में प्रकृति के मूल का भाग देना, इस प्रकार क्रम से कनिष्ठ, ज्येष्ठ पद होंगे ।

उपपत्ति—

वर्गरूप-प्रकृति से गुणा हुआ कनिष्ठ का वर्ग वर्ग ही रहता है । उसका और ज्येष्ठवर्ग का अन्तर क्षेप होता है और वह वर्गान्तर के समान है । इसलिए—

'वर्गान्तरं राशिवियोगभक्तं
योगस्ततः प्रोक्तवदेव राशी'

इस पाटीस्थ सूत्र के अनुसार, अन्तर तुल्य इष्ट कल्पना करके, उस का क्षेप में भाग देने से योग आवेगा फिर संक्रमण सूत्र से राशि आवेंगे । एक राशि, प्रकृति के मूल से गुणित कनिष्ठ के तुल्य और दूसरा ज्येष्ठ के तुल्य होगा । प्रकृति मूल से गुणित कनिष्ठ, प्रकृति-मूल के भाग देने से कनिष्ठ होता है । इस से 'इष्टभक्तो द्विधा—' यह सूत्र उपपन्न हुआ ॥

उदाहरणम्—

का कृतिर्नवभिः क्षुण्णा द्विपञ्चाशद्युता कृतिः ।
को वा चतुर्गुणो वर्गस्त्रयस्त्रिंशद्युता कृतिः ३२

अत्र प्रथमोदाहरणे क्षेपः ५२ । द्विकेनेष्टेन हृतो द्विष्ठ इष्टोनाढ्यो दलीकृतो जातः १२।१४ अनयोराद्यः प्रकृतिमूलेन भक्तो जाते ह्रस्व-ज्येष्ठे ४ । १४ । अथवा क्षेपं ५२ चतुर्भिर्वि-भज्य एवं जाते ह्रस्वज्येष्ठे $\frac{3}{2}$ $\frac{17}{2}$ ।

द्वितीयोदाहरणे क्षेपं ३३ एकेनेष्टेन विभ-ज्यैवं जाते ह्रस्वज्येष्ठे ८।१७ त्रिभिर्जाते २।७

उदाहरण—

(१) वह कौन वर्ग है, जिस को नौ से गुणा कर, बावन जोड़ देते हैं तो, वर्ग हो जाता है ?

(२) ऐसा कौन वर्ग है, जिस को चार से गुणा कर, तेंतीस जोड़ देते हैं तो, वर्ग हो जाता है ?

(१) उदाहरण में क्षेप ५२ है, अब इष्ट २ कल्पना करके इस का क्षेप ५२ में भाग देने से २६ लब्धि मिली, इस को दो स्थानों में रक्खा २६।२६ और इष्ट २ से ऊन-युत कर के आधा किया तो

१२ । १४ इन में पहले स्थान १२ में प्रकृति मूल ३ का भाग देने से कनिष्ठ ४ सिद्ध हुआ और ज्येष्ठ १४ ज्ञात ही रहा। यथाक्रम न्यास। क ४ ज्ये १४ क्षे ५२। अथवा, क्षेप ५२ में ४ का भाग देकर पूर्व रीति से कनिष्ठ, ज्येष्ठ हुए क $\frac{३}{२}$ ज्ये $\frac{१७}{२}$।

(२) उदाहरण में क्षेप ३३ है, अब इष्ट १ का क्षेप ३३ में भाग देने से ३३ लब्धि आई, इस को दो स्थानों में रक्खा ३३।३३ और इष्ट १ से ऊन-युत कर के आधा किया तो १६। १७ इन में से आद्य १६ में प्रकृतिमूल १ का भाग देने से कनिष्ठ ८ आया और ज्येष्ठ १७ पहले ही ज्ञात था। इन का यथाक्रम न्यास। क ८ ज्ये १७ क्षे ३३। अथवा, क्षेप ३३ में ३ का भाग देकर पूर्व रीति के अनुसार कनिष्ठ, ज्येष्ठ मूल सिद्ध हुए २। ७।

अथवा प्रकृतिसमक्षेप उदाहरणम्—

त्रयोदशगुणो वर्गस्त्रयोदशविवर्जितः।
त्रयोदशयुतो वा स्याद्वर्ग एव निगद्यताम् ३३

प्रथमोदाहरणे प्रकृतिः १३। जाते कनिष्ठ-ज्येष्ठे १।०।०

अत्र 'इष्टवर्गप्रकृत्योर्यद्विवरं—' इत्यादिना रूपक्षेपमूले $\frac{३}{२}$ $\frac{११}{२}$ आभ्यां भावनया त्रयोदशर्णक्षेपमूले $\frac{११}{२}$ $\frac{३६}{२}$, वा एषामृणक्षेपपदानां रूपशुद्धिपदाभ्या $\frac{१}{२}$ $\frac{३}{२}$ माभ्यां विश्लिष्यमाणभावनया त्रयोदशक्षेपमूले $\frac{३}{२}$ $\frac{१३}{२}$ वा १८। ६५।

प्रकृतिसमक्षेप में उदाहरण—

वह कौन सा वर्ग है, जिस को तेरह से गुणाकर उस में तेरह घटा वा जोड़ देते हैं तो, वर्ग ही रहता है?

यहां प्रकृति १३ है, कनिष्ठ १ वर्ग १ को प्रकृति १३ से गुणा कर, उस में १३ घटा दिया तो ० शून्य शेष बचा इस का मूल ० ज्येष्ठ पद हुआ। यथाक्रम न्यास क १ ज्ये० क्षे १३̇।

इस भांति, जिस स्थान में प्रकृति के समान ऋणक्षेप हो वहां १ इष्ट कल्पना कर के ज्येष्ठपद सिद्ध करना चाहिये, यह युक्ति निकलती है। क्योंकि एक कनिष्ठ कल्पना करने से, जब उसके वर्ग को प्रकृति से गुणा देंगे तब वह (गुणनफलरूप-प्रकृतिगुणित-कनिष्ठ का वर्ग) प्रकृति के तुल्य ही रहेगा और वहाँ क्षेप को भी प्रकृति के तुल्य होने से जब उसको प्रकृति में घटावेंगे तो शून्य शेष बचेगा और उस का मूल ज्येष्ठ शून्य आवेगा, जैसा—

'क १ ज्ये० क्षे १३̇'

यहां ज्येष्ठपद ० आया है, अब इन कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेपों का समासभावना के लिये न्यास—

प्र १३। क १ ज्ये० क्षे १३̇
क १ ज्ये० क्षे १३̇

'वज्राभ्यासौ ज्येष्ठलघ्वोः—'इस के अनुसार, वज्राभ्यासों का योग ० यह कनिष्ठ है। कनिष्ठों १। १ के घात १ को प्रकृति १३ से गुणा देने से गुणनफल १३ में ज्येष्ठाभ्यास ० जोड़ देने से १३ ज्येष्ठमूल सिद्ध हुआ। और क्षेपों १३̇। १३̇ का घात १६९ क्षेप हुआ। इन का क्रम से न्यास—

क० ज्ये १३ क्षे १६९

'इष्टवर्गहृतः—' इस सूत्र के अनुसार १३ इष्ट कल्पना करने से पद सिद्ध हुए—

क० ज्ये १ क्षे १

इन पदों का पहले साधे हुए 'क १ ज्ये० क्षे १३̇' इन पदों के साथ भावना के लिये न्यास—

क० ज्ये १ क्षे १
क १ ज्ये० क्षे १३̇

यहां समास-भावना अथवा, अन्तर-भावना से पहले के पद आते हैं।

क १ ज्ये० क्षे १३̇

और उन का उन्हीं के समास-भावना से उत्पन्न 'क० ज्ये १३ क्षे १६६' इन पदों के साथ भावना के लिये न्यास—

क १ ज्ये० क्षे १३̇

क० ज्ये १३ क्षे १६६

यहां समास या अन्तर भावना से नीचे लिखे पद उत्पन्न होते हैं—

क १३ ज्ये० क्षे २१९७

'इष्टवर्गहृत:—' इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती इस लिये ग्रन्थकार ने 'इष्टवर्गप्रकृत्यो:—' इस सूत्र के अनुसार इष्ट ३ कल्पना किया, उस के वर्ग ९ और प्रकृति १३ का अन्तर ४ हुआ। इस का दूने इष्ट ६ में भाग देने से कनिष्ठ $\frac{६}{४}$ में २ का अपवर्तन देने से $\frac{३}{२}$ कनिष्ठ हुआ। कनिष्ठ $\frac{३}{२}$ के वर्ग $\frac{९}{४}$ प्रकृति १३ से गुणित $\frac{११७}{४}$ में १ जोड़ देने से $\frac{१२१}{४}$ हुआ इस का मूल ज्येष्ठ है $\frac{११}{२}$। इन का क्रम से न्यास—

क $\frac{३}{२}$ ज्ये $\frac{११}{२}$ क्षे १

इन का पहले सिद्ध मूल के साथ भावना के लिये न्यास—

क १ ज्ये० क्षे १३̇

क $\frac{३}{२}$ ज्ये $\frac{११}{२}$ क्षे १

अब भावना से १३̇ क्षेप में मूल सिद्ध हुए—

क $\frac{११}{२}$ ज्ये $\frac{३९}{२}$ क्षे १३̇

इन पदों का रूप शुद्धि पदों का $\frac{१}{२}$ ज्ये $\frac{३}{२}$ क्षे १̇ के साथ अन्तर भावना के लिये न्यास—

क $\frac{११}{२}$ ज्ये $\frac{३९}{२}$ क्षे १३̇

क $\frac{१}{२}$ ज्ये $\frac{३}{२}$ क्षे १̇

'ह्रस्वं वज्राभ्यासयोः—' इस सूत्र के अनुसार वज्राभ्यासों $\frac{३३}{४}$, $\frac{३६}{४}$ के अन्तर $\frac{६}{४}$ में २ का अपवर्तन देने से $\frac{३}{२}$ कनिष्ठ हुआ । कनिष्ठों के घात $\frac{११}{४}$ को प्रकृति १३ से गुणा देने से $\frac{१४३}{४}$ हुआ । अब इसके और ज्येष्ठाभ्यास $\frac{११७}{४}$ के अन्तर $\frac{२६}{४}$ में २ का अपवर्तन देने से $\frac{१३}{२}$ ज्येष्ठ पद हुआ । और क्षेपों १३̇ । १̇ का घात धन १३ क्षेप हुआ । इन का क्रम से न्यास—

क $\frac{३}{२}$ ज्ये $\frac{१३}{२}$ क्षे १३

अथवा, वज्राभ्यासों $\frac{३३}{४}+\frac{३६}{४}$ के योग $\frac{७२}{४}$ में हर ४ का भाग देने से कनिष्ठ १८ आया । प्रकृति १३ से गुणित कनिष्ठों के घात $\frac{१४३}{४}$ में ज्येष्ठाभ्यास $\frac{११७}{४}$ जोड़ देने से $\frac{२६०}{४}$ हुआ । इस में हर का भाग देने से ज्येष्ठमूल ६५ आया । इन का यथाक्रम न्यास—

क १८ ज्ये ६५ क्षे १३ ।

उदाहरणम्—

ऋणगैः पञ्चभिः क्षुण्णः को वर्गः सैकविंशतिः ।
वर्गः स्याद्वद चेद्वेत्सि क्षयगप्रकृतौ विधिम् ३४

न्यासः । प्र ५̇ । अत्र जाते मूले १ । ४ वा, २ । १ रूपक्षेपभावनयानन्त्यम् ॥

उदाहरण—

ऐसा कौन वर्ग है, जिस को ऋण पांच से गुणा कर, उस में इक्कीस जोड़ देते हैं तो, वह वर्ग हो जाता है ।

न्यास, प्रकृति ५̇ । इष्ट १ को कनिष्ठ माना और इस के वर्ग को ऋण ५̇ से गुणा दिया तो ५̇ में क्षेप २१ जोड़ देने से १६ का मूल ४ ज्येष्ठ हुआ ।

इन का यथाक्रम न्यास—

क १ ज्ये ४ क्षे २१

इसी भांति २ इष्ट कल्पना करने से कनिष्ठ, ज्येष्ठ और क्षेप हुए—
क २ ज्ये १ क्षे २१

यहां पर भी 'तयोर्भावनयानन्त्यं रूपक्षेपपदोत्थया' इस के अनुसार पदों का आनन्त्य होगा।

उक्तं बीजोपयोगीदं संक्षिप्तं गणितं किल।
अतो बीजं प्रवक्ष्यामि गणकानन्दकारकम्॥५५॥

इति श्रीभास्करीये बीजगणिते
चक्रवालं समाप्तम्॥

इह ग्रन्थप्रारम्भे 'वच्मि बीजक्रियां च' इति प्रतिज्ञातं तदुपयोगितया सप्रपञ्चं प्रपञ्चितस्य धनर्णषड्विधादेशचक्रवालान्तस्य गणितजालस्य बीजत्वनिरासार्थमनुष्टुभाह——उक्तमिति। हे गणक, गणयतीति गणकस्तत्संबुद्धौ गणक इति, गण संख्याने ण्वुल्। एतेनान्वर्थनामताप्रतिपादनपुरस्सरमाग्रिमगणितप्रपञ्चेऽनुद्वेगता सूचिता। बीजस्य उपयोगि सहकारिभूतं नतु साक्षात्तदेव, संक्षिप्तं न तु विस्तृतम्। एतेन बीजोपयोगिगणितस्यानन्तता सूचिता। इदं निरूपितं गणितमुक्तं कथितं किल। अत आनन्दकारकमाह्लादजनकम्। एतेनाग्रिमभागे प्ररोचना दर्शिता। बीजं प्रवक्ष्यामि॥

हे गणक! इस प्रकार बीजगणित के उपयोगी और संक्षिप्त, धनर्णषड्विध से लेकर चक्रवाल पर्यन्त गणित को मैंने कहा है। अब परम आनन्ददायक बीजगणित को आगे कहता हूँ।

चक्रवाल नामक वर्गप्रकृति का विषय समाप्त॥

इति द्विवेदोपाख्याचार्यश्रीसरयूप्रसादसुत–दुर्गाप्रसादोन्नीते लीलावतीहृदयग्राहिणि बीजविलासिनि चक्रवालं समाप्तम्।
दुर्गाप्रसादरचिते भाषाभाष्ये मिताक्षरे।
वासनासरसः पूर्णो वर्गप्रकृतिविस्तरः॥

यावत्तावत्कल्प्यमव्यक्तराशे-
मनिं तस्मिन्कुर्वतोद्दिष्टमेव ।
तुल्यौ पक्षौ साधनीयौ प्रयत्ना-
त्त्यक्त्वा क्षिप्त्वा वापि संगुण्य भक्त्वा ॥५६॥
एकाव्यक्तं शोधयेदन्यपक्षा-
द्रूपाण्यन्यस्येतरस्माच्च पक्षात् ।
शेषाव्यक्तेनोद्धरेद्रूपशेषं
व्यक्तं मानं जायतेऽव्यक्तराशेः ॥ ५७ ॥
अव्यक्तानां द्व्यादिकानामपीह
यावत्तावद्द्व्यादिनिघ्नं हृतं वा
युक्तोनं वा कल्पयेदात्मबुद्ध्या
मानं क्वापि व्यक्तमेवं विदित्वा ॥ ५८ ॥

प्रथममेक वर्णसमीकरणं बीजम् । द्वितीय-मनेकवर्णसमीकरणं बीजम् । यत्र वर्णस्य द्वयो-र्बहूनां वा वर्गादिगतानां समीकरणं तन्मध्य-माहरणम् । यत्र भावितस्य समीकरणं तद्भा-वितम्, इति बीजचतुष्टयं वदन्त्याचार्याः । तत्र प्रथमं तावदुच्यते—प्रच्छकेन पृष्टे सत्यु-दाहरणे योऽव्यक्तराशिस्तस्य मानं यावत्ताव-

देकं द्व्यादि वा प्रकल्प्य तस्मिन्नव्यक्तराशौ उद्देशकालापवत्सर्वं गुणनभजनत्रैराशिकपञ्च-राशिकश्रेणीक्षेत्रादिकं गणकेन कार्यम्। तथा कुर्वता द्वौ पक्षौ प्रयत्नेन समौ कार्यौ। यद्यालापे पक्षौ समौ न स्तस्तदैकतरे न्यूने पक्षे किंचि-त्प्रक्षिप्य ततस्त्यक्त्वा वा केनचित्संगुण्य भक्त्वा वा समौ कार्यौ। ततस्तयोरेकस्य पक्षस्याव्यक्तमन्यपक्षस्याव्यक्ताच्छोध्यम्, अ-व्यक्तवर्गादिकमपि। अन्यपक्षरूपाणीतरपक्ष-रूपेभ्यः शोध्यानि। यदि करण्यः सन्ति तदोक्त-प्रकारेण शोध्याः। ततोऽव्यक्तराशिशेषेण रूप-शेषे भक्तेय ल्लभ्यते तदेकस्याव्यक्तस्यमानं व्यक्तं जायते। तेन कल्पितोऽव्यक्तराशिरुत्थाप्यः॥

यत्रोदाहरणे द्व्यादयोऽव्यक्तराशयो भवन्ति तदा तस्यैकं यावत्तावत्प्रकल्प्य, अन्येषां द्व्या-दिभिरिष्टैर्गुणितं भक्तं वा, इष्टै रूपैरूनं युक्तं वा यावत्तवदेव प्रकल्प्यम्॥

अथवा, एकस्य यावत्तावदन्येषां व्यक्तान्येव मानानि कल्प्यानि। एवं विदित्वेति यथा क्रिया

निर्वहति तथा बुद्धिमता ज्ञात्वा शेषाणामव्यक्तानि व्यक्तानि वा मानानि कल्प्यानीत्यर्थः॥

विलासी ।

बिभ्राणा करयोः सलीलमुभयोर्वीणां तथा पुस्तकं
पश्यन्ती प्रणतान्कृपामसृणया दृष्ट्या सरोजे स्थिता ।
राकाकैरवबन्धुबन्धुरमुखी बन्धूकवर्णाधरा
सान्द्रानन्दसुधासमुद्रलहरी सा शारदा शास्तु माम् ॥ १ ॥

पूर्वं 'अतो बीजं प्रवक्ष्यामि' इति कथयद्भिराचार्यैर्बीजक्रियानिरूपणं प्रतिज्ञातम्, अतस्तन्निरूपणीयम्, तस्य चातुर्विध्यमास्त इत्याचार्याः सिद्धान्तयन्ति । तथाहि—प्रथममेकवर्णसमीकरणम्, द्वितीयमनेकवर्णसमीकरणम्, तृतीयं मध्यमाहरणम्, चतुर्थं भावितमिति । तत्र समशोधनादिक्रियाकलापेनाज्ञातराशिमानावगमाय यत्रैकं वर्णमधिकृत्य पक्षयोः समता निष्पाद्यते तत् 'एकवर्णसमीकरणम्' इति कथ्यते । यत्रानेकान्वर्णानधिकृत्य पक्षयोः समता निष्पाद्यते तत् 'अनेकवर्णसमीकरणम्' इति कथ्यते । यत्र वर्णवर्गादिकमधिकृत्य पक्षयोः साम्यं विधाय मूलग्रहणपुरस्सरं व्यक्तमानमानीयते तत् 'मध्यमाहरणम्' इति कथ्यते, यतोऽत्र वर्गात्मकराशेः पदग्रहणे प्रायो मध्यमखण्डस्याहरणं दूरीकरणं भवति । यत्र भावितस्याधिकृत्य पक्षयोः समता निष्पाद्यते तत् 'भावितम्' इति व्यपदिश्यते । यद्यप्यत्रैकवर्णसमीकरणस्य लक्षणं मध्यमाहरणविशेषे अनेकवर्णसमीकरणस्य लक्षणं मध्यमाहरणविशेषे भाविते चातिव्याप्तं तथापि गौतमकणभक्षपक्षकक्षावगाहिनामिवास्माकं लक्षणक्षोदे न ग्रहातिशयः । अस्ति चेदाकर्ण्यताम्—यत्रैकमेव वर्णमधिकृत्य पक्षयोः समीकरणेन विनैव मूलग्रहणादव्यक्तं मानं सिध्यति तदेकवर्णसमीकरणम् । एव-

मनेकवर्णसमीकरणस्यापि लक्षणमवसेयम् । एवं नातिव्याप्तिः । 'प्रथममेकवर्णसमीकरणं बीजम् । द्वितीयमनेकवर्णसमीकरणं बीजम्' इति प्रथमद्वितीयशब्दोपादानपुरस्सरं विभागप्रदर्शनाद् बीजद्वैविध्यमेव श्रीभास्कराचार्याणामभिमतम्, इति केचित्॥ 'एक-वर्णसमीकरणम्, अनेकवर्णसमीकरणम्' इति मुख्यं विभागद्वयम् । तत्राद्यं द्विविधम्—एकवर्णसमीकरणं, मध्यमाहरणं चेति । द्वितीयं त्रिविधम्—अनेकवर्णसमीकरणम्, तन्मध्यमाहरणं, भावितं चेत्येवं पञ्चविधो विभागः संभवति, इत्यन्ये ॥ 'प्रदर्शितपञ्चविधविभागे मध्यमाहरणयोस्तत्त्वेनैकरूपस्वीकाराच्चतुर्धापि विभागः संभवति। स एव प्राचां संमतः' इत्यपरे ॥ अथ तत्रानेकवर्णानामेकवर्णपूर्वक-त्वादेकवर्णसमीकरणं प्रथमतः शालिनीत्रयेणाह—यावत्तावदित्या-दिना । अदः श्लोकत्रयमाचार्यैर्व्याख्याातत्वात्पुनर्न व्याख्यायते ॥

भाषाभाष्य ॥

वीणापुस्तकभासुरे हंसकगामिनि वाणि ।
चरणं वाञ्छितदायकं शरणं ते करवाणि ॥ १ ॥
शोषितदुःखपरम्परापारावारपयांसि ।
ददतु शिवं शिववल्लभाचरणसरोजरजांसि ॥ २ ॥
क्षितिजाक्रमणपुरस्सरं खण्डितलोकतमांसि ।
सन्तु प्रीतिसमृद्धये रविकरनिकरमहांसि ॥ ३ ॥
बीजं छात्रमतल्लिकाः सानन्दं कलयन्तु ।
किं चोद्गतमतिवैभवा वादिकुलानि जयन्तु ॥ ४ ॥
भाषाभाष्यरसायनं सोद्योगं रसयन्तु ।
किंच स्वर्गणिकामिव व्युत्पत्तिं वशयन्तु ॥ ५ ॥

अब 'अतो बीजं प्रवक्ष्यामि—' इस श्लोक में प्रतिज्ञात बीजगणित का निरूपण करते हैं—एकवर्णसमीकरण, अनेकवर्णसमीकरण, मध्यमाहरण और भावित इन नामों से बीजगणित चार प्रकार का है। उसके भेदों का सामान्य लक्षण यह है—जहां अव्यक्तराशि के मान के

लिये सम शोधन आदि क्रिया से एक-वर्ण द्वारा दोनों पक्षों की समता सिद्ध की जाती है, उसको एकवर्णसमीकरण कहते हैं। जहां अनेक वर्णों को लेकर, दोनों पक्षों का साम्य सिद्ध किया जाता है, उसको अनेकवर्णसमीकरण कहते हैं। जहां वर्ण वर्ग आदि से पक्षों को समान करते हैं, और वर्गगत राशियों का मूल ला कर व्यक्त-मान साधते हैं, उसको मध्यमाहरण कहते हैं (क्योंकि उस में वर्ग-राशि के मूल लेने के समय में 'द्वयोर्द्वयोश्चातिहतिं द्विनिघ्नीं—' इस सूत्र के अनुसार मध्यम खण्ड का आहरण अर्थात् दूरीकरण होता है, इस लिये उसका मध्यमाहरण नाम रक्खा है) और जिस स्थान में भावित को लेकर, पक्षों का साम्य किया जाता है उसको भावित कहते हैं।

एकवर्णसमीकरण की विधि—

उद्दिष्ट उदाहरण में अव्यक्त राशि का यावत्तावत् १,२,३, आदि मान कल्पना करके प्रश्नकर्ता के आलाप (भाषण) के अनुसार गुणन, भजन, त्रैराशिक, पञ्चराशिक, श्रेढी और क्षेत्र आदि की क्रियाओं से समान दो पक्ष सिद्ध करना। यदि आलाप में, पक्ष समान न हों तो, एक पक्ष में कुछ जोड़ या, घटा कर अथवा उस को किसी से गुण या भाग कर समान कर लेना। और उन दोनों पक्षों में से, किसी एक पक्ष के अव्यक्त आदि को, दूसरे पक्ष के अव्यक्त आदि में घटाना, और दूसरे पक्ष के रूपों को पहले पक्ष के रूपों में घटाना। आशय यह है कि जिस पक्ष में अव्यक्तों को शुद्ध किया है, उस से भिन्न पक्ष में रूपों को शुद्ध करना चाहिए। यदि करणी हों तो, उन को भी, उक्त प्रकार से शुद्ध करना। फिर अव्यक्त राशि के शेष का, रूप शेष में भाग देने से जो लब्धि आवे, वह एक अव्यक्त राशि का व्यक्त मान होता है। उसका कल्पित अव्यक्त राशि में उत्थापन देना। आशय यह है कि——'यदि एक अव्यक्त राशि का यह व्यक्तमान आता है, तो कल्पित अव्यक्त राशि क्या' इस भांति त्रैराशिक से कल्पित अव्यक्त का जो व्यक्तमान उत्पन्न हो, उसको पूर्व अव्यक्त राशि को मिटाकर स्थापन करना चाहिये।

इसी भांति यावत्तावत् वर्ग, घन आदि में भी लब्ध व्यक्तमान के वर्ग, घन आदि से उत्थापन देना चाहिये। जिस उदाहरण में, दो तीन आदि अव्यक्त राशि हों वहां एक अव्यक्त का मान एक यावत्तावत् कल्पना कर के और अव्यक्त राशियों का मान दो, तीन आदि इष्ट से गुणित वा भाजित, इष्ट रूपों से ऊन वा, युक्त यावत्तावत् कल्पना करना। अथवा, एक का यावत्तावत् औरों का व्यक्तमान कल्पना करना। इस भांति, जैसे क्रिया का निर्वाह हो सके वैसा ही व्यक्त अथवा अव्यक्त मान कल्पना करना चाहिये, यह सब वक्ष्यमाण उदाहरणों से भली भांति स्पष्ट होगा।

उपपत्ति--

अज्ञात राशि का मान यावत्तावत् कल्पना कर के, बाद उक्त रीति के अनुसार दो पक्ष तुल्य किये जाते हैं। वहां तुल्य दो पक्षों में तुल्य ही जोड़ वा, घटा देने से और उन को तुल्य ही किसी राशि से गुण वा, भाग देने से उन का तुल्यत्व नहीं नष्ट होता, यह बात प्रसिद्ध है। अब किसी एक पक्ष में, जैसा अव्यक्त राशि है उस (अव्यक्तराशि) का उस पक्ष से शोधन करने में, वहां केवल रूप ही रह जाते हैं, परंतु समता के लिये दूसरे पक्ष से भी अव्यक्तराशि घटाना है इस लिये 'एकाव्यक्तं शोधयेदन्यपक्षात्–' यह कहा है। और अन्यपक्ष में, जैसा रूप राशि है उसका शोधन करने से, उस पक्ष में केवल अव्यक्त राशि रहता है, परंतु समता के लिये उस रूप राशि को दूसरे पक्ष के रूप राशि में घटाना है इसलिये 'रूपाण्यन्यस्ये-तरस्माच्च पक्षात्' कहा है। इस प्रकार एक पक्ष में अव्यक्त राशि और दूसरे पक्ष में रूप राशि हुआ। अब यदि इस अव्यक्तराशि में यह रूपराशि आता है, तो कल्पित अव्यक्त राशि में क्या, इस प्रकार रूपराशि, कल्पित अव्यक्तराशि से गुणित और शेष अव्यक्तराशि से भाजित होता है। वहां 'शेषाव्यक्तेनोद्धरेद्रूपशेषम्–' यह कहा है और कल्पित अव्यक्त राशि से गुणने का उत्थापन में अन्तर्भाव किया है। क्योंकि, यदि शेष अव्यक्तराशि में रूपशेषात्मक राशि पाते हैं, तो एक अव्यक्त में क्या, यहां गुणक के रूप होने से 'शेषा-

व्यक्तेनोद्धरेद्रूपशेषम्—' यही कहा है। इस भांति एक अव्यक्त का व्यक्तमान जान कर, कल्पित अव्यक्त राशियों के मान को जान सकते हैं जैसा—एक का यह व्यक्तमान पाते हैं, तो इष्ट का क्या पावेंगे; यही उत्थापन कहलाता है। इससे उक्त विधि की उपपत्ति स्पष्ट प्रकाशित होती है।

उदाहरणम्—
एकस्य रूपत्रिशती षडश्वा
अश्वा दशान्यस्य तु तुल्यमूल्याः ।
ऋणं तथा रूपशतं च तस्य
तौ तुल्यवित्तौ च किमश्वमूल्यम् ॥३५॥
यदाद्यवित्तस्य दलं द्वियुक्तं
तत्तुल्यवित्तो यदि वा द्वितीयः ।
आद्यो धनेन त्रिगुणोऽन्यतो वा
पृथक् पृथङ्मे वद वाजिमूल्यम् ॥३६॥

अथोद्देशकालापमात्रेण पक्षद्वयसाम्यसिद्धौ प्रथमं तावदुदाहरणमथ 'त्यक्त्वा क्षिप्ता वापि संगुण्य भक्त्वा—' इत्यादिना च यथा पक्षयोः समता संभवति तथोदाहरणद्वयं चोपजातिकयाह—एकस्येति। एकस्य वाणिज्यशालिनो मनुष्यस्य रूपात्रिशती, त्रयाणां शतानां समाहारस्त्रिशती, रूपाणां त्रिशती रूपत्रिशती, रोपयति विमोहयतीति रूपम्। रूप विमोहने। अच्। 'अन्येषाम पि दृश्यते ६।३।१३७।' इति दीर्घः। यद्वा। रूप रूपकरणे इति चौरादिकस्यायमप्यर्थः। 'रूपम्' इति ज्ञातमानस्य राशेः संज्ञेति 'रूपत्रयं—' इत्यादिषु बहुषु स्थलेषु व्यक्ततरमास्ते। परमत्र 'रूपम्' इति

रूप्यस्य नाम प्रतीयते। 'आहतं रूपमस्यास्तीति रूप्यः कार्षापणः' इति 'रूपादाहतप्रशंसयोर्यप्' इति सूत्रव्याख्याने भट्टोजिदीक्षिताः। किञ्च 'कार्षापणः कार्षिकः स्यात्—' इत्यस्य व्याख्यानावसरे 'द्वे रजतरूप्यस्य' इति भानुजिदीक्षितोक्त्या 'रूप्यः कार्षापणः कार्षिकः' इति सर्वे पर्यायशब्दाः सिध्यन्ति। एवं स्थिते प्रोक्त-पर्यायेभ्यो व्यतिरिक्तो रूपशब्दोऽपि रूप्यवाचको वर्तत इति सिध्यति परं दृढतरं प्रमाणं न पश्यामः। कुत्रचित् 'रूप्यकम्' इति दृश्यते तत्र तु पुस्तकशब्दवत्स्वार्थिकः कन्। प्रकृतमनुसरामः—षट् अश्वास्तुरंगा एतावद्धनम्। अन्यस्य तु दश अश्वाः। तथा रूपशतमृणं वर्तते उभयोरप्यश्वाः तुल्यमूल्याः। तुल्यं मूल्यं येषां ते तुल्यमूल्या। मूलेन समं मूल्यम्। 'नौवयोधर्मविषमूलमूलसीतातुलाभ्यस्तार्यतुल्यप्राप्यवध्यानाम्यसमसमितसंमितेषु' इति सूत्रेण यत्प्रत्ययः। एवं तौ समानधनौ। अश्वमूल्यं किमिति। अथैकस्य षट् अश्वाः रूपशतत्रयं चास्ति, परस्य दश अश्वाः रूपशतमृणं चास्ति। परमनयोर्वित्तं समं नास्ति, किंतु प्रथमस्य वित्तार्धं द्वियुक्तं यावद्भवति तावदपरस्य सर्वधनमस्ति। अश्वमूल्येनान्यथा भाव्यम्॥ अथवा अन्यतः सकाशादाद्यो धनेन त्रिगुणो वर्तते। एवं स्थिते पृथक् पृथङ्मे वाजिमूल्यं वद॥

(१) उदाहरण—

एक व्यापारी के पास तीनसौ रुपये और छ घोड़े हैं और दूसरे के पास ऋण सौ रुपये और दश घोड़े हैं, पर दोनों के घोड़ों का मोल समान है और व्यापारी भी आपस में बराबर धनवाले हैं, तो बतलाओ घोड़े का मोल क्या है ?

(२) उदाहरण—

यदि दो से जुड़ा पहले व्यापारी के आधे धन के तुल्य, दूसरे का सब धन है और उस से पहले का धन तिगुना है, तो घोड़ों का मोल क्या है ?

अत्राश्वमूल्यमज्ञातं तस्य मानं यावत्तावदेकं प्रकल्पितम् या १ तत्र त्रैराशिकम् यद्येकस्य यावत्तावन्मूल्यं तदा षण्णां किमिति न्यासः ।

प्र.	फ०	इ०
१ ।	या १ ।	६ ।

फलमिच्छागुणं प्रमाणभक्तं लब्धं षण्णामश्वानां मूल्यम् या ६ । अत्र रूपशतत्रये प्रक्षिप्ते जातमाद्यस्य धनम् या ६ रू ३०० ।

एवं दशानां मूल्यम् या १० । अत्र रूपशते चर्णगते प्रक्षिप्ते जातं द्वितीयस्य धनम् या १ रू १०० ।

एतौ समधनाविति पक्षौ स्वत एव समौ जातौ समशोधनार्थं न्यासः ।

या ६ रू ३००
या १० रू १००

अथ 'एकाव्यक्तं शोधयेदन्यपक्षात्—' इति आद्यपक्षाव्यक्तेऽन्यपक्षाव्यक्ताच्छोधिते शेषम् या ४ । द्वितीयपक्षरूपेष्वाद्यपक्षरूपेभ्यः शोधितेषु शेषम् रू ४०० । अव्यक्तराशिशे-

षेण या ४ रूपशेषे रू ४०० उद्धृते लब्धमेकस्य यावत्तावतो मानं व्यक्तम् १०० । यद्येकस्याश्वस्येदं मूल्यं तदा षरणां किमिति त्रैराशिकेन लब्धं षरणां मूल्यम् ६०० रूपशतत्रययुतं ९०० जातमाद्यस्य धनम् । एवं द्वितीयस्यापि ९०० । अथ द्वितीयोदाहरणे प्रथमद्वितीययोस्ते एव धने ।

या ६ रू ३००
या १० रू १००

अत्राद्यपक्षधनार्धेन द्वियुक्तेन तुल्यमन्यस्य धनमुदाहृतमत आद्यधनार्धे द्वियुक्ते, अथवान्यधने द्विहीने द्विगुणे कृते पक्षौ समौ भवतस्तथा कृते शोधनार्थं न्यासः ।

या ३ रू १५२
या १० रू १००

अथवा, या ६ रू ३००
या २० रू २०४

उभयोरपि शोधनाद्ये कृते लब्धं यावत्तावन्मानम् ३६ ।

अनेन पूर्ववदुत्थापने कृते जाते धने ५१६। २६०।

अथ तृतीयोदाहरणे ते एव धने आद्यधन-त्र्यंशः परधनमिति परं त्रिगुणीकृत्य न्यासः।

या ६ रू ३००
या ३० रू ३००̇

समक्रियया लब्धं यावत्तावन्मानम् २५।
अनेनोत्थापिते जाते ४५०। १५०।

(१) उदाहरण में घोड़े का मोल मालूम नहीं है, इस लिये उसका मान यावत्तावत् एक कल्पना किया या १, अब एक घोड़े का यावत्तावत् मोल है, तो छ घोड़ों का क्या होगा ?

प्र.	फ.	इ.
१	या १	६

फल को इच्छा से गुण कर उस में प्रमाण का भाग देने से, छ घोड़ों का मोल या ६, इस में तीनसौ रुपये जोड़ देने से पहले व्यापारी का धन या ६ रू ३०० । ऐसे ही दश घोड़ों का मोल या १०, इस में ऋण सौ रुपये जोड़ देने से दूसरे व्यापारी का धन या १०, रू १००̇ । ये दोनों समधन हैं, इसलिये पक्ष समान हुए अर्थात् जो मान तीनसौ रुपयों से जुड़े यावत्तावत् छ का है, वही मान सौ रुपयों से ऊन यावत्तावत् दश का है । इन दोनों पक्षों का सम शोधन के लिये न्यास—

या ६ रू ३००
या १० रू १००̇

पहले पक्ष के अव्यक्त या ६ को, दूसरे पक्ष के अव्यक्त या १०

में शोधन करने से और दूसरे पक्ष के रूप १०० को पहले पक्ष के रूप ३०० में शोधन करने से, दोनों पक्षों की स्थिति हुई—

या ० रू ४००
या ४ रू ०

अब, अव्यक्त शेष ४ का रूप शेष ४०० में भाग देने से अव्यक्त राशि का व्यक्तमान १०० हुआ। बाद, यदि एक घोड़ा का १०० मोल है तो ६ घोड़ों का क्या? त्रैराशिक से छः घोड़ों का मोल ६०० हुआ इस में ३०० जोड़ देने से पहले व्यापारी का धन हुआ ९००।

इस भांति दश घोड़ों का मोल १००० हुआ, इस में १०̇० घटा देने से ९०० दूसरे व्यापारी का धन हुआ।

(२) उदाहरण में दोनों के धन हैं—

या ६ रू ३००
या १० रू १००̇

दो से युक्त पहले धन का आधा दूसरे का धन है, इसलिये दोनों पक्ष तुल्य हुए—

या ३ रू १५२
या १० रू १०̇०

अथवा, दूसरे के धन या १० रू १०̇० में २ घटा कर, उसको २ से गुण देने से 'या २० रू २०४̇' हुआ, यह पहले धन के तुल्य है, इस लिये दो पक्ष तुल्य हुए—

या ६ रू ३००
या २० रू २०४̇

अथवा, दो से ऊन दूसरे का धन पहले के धन के आधे के समान है इसलिये दो पक्ष तुल्य हुए—

या ३ रू १५०
या १० रू १०२̇

यहां तीनों पक्षों पर से, उक्त रीति से यावत्तावत् का मान ३६ आया। यदि एक घोड़े का ३६ मोल है, तो छः घोड़ों का क्या,

इस प्रकार छ घोड़ों का मोल २१६ हुआ, इस में ३०० जोड़ देने से पहले का सब धन ५१६ हुआ। और इसी प्रकार दश घोड़ों का मोल ३६० हुआ। इस में १०̇० घटा देने से, दूसरे का सब धन २६० हुआ, यह धन दो से युक्त प्रथम धन के आधे के तुल्य है। जैसा—आद्यधन ५१६ का आधा २५८ में २ जोड़ देने से २६० दूसरे का धन हुआ। अथवा, २६० इस में २ घटा देने से २५८ हुआ, इस को दूना करने से पहले का धन हुआ ५१६। अथवा, दूसरे के धन २६० में २ घटा देने से २५८ हुआ, यह पहले धन ५१६ के आधे २५८ के समान है।

दूसरे उदाहरण के अन्तर्गत तीसरे उदाहरण में वही धन है—

या ६ रू ३००
या १० रू १०̇०

यहां पहले के धन का तीसरा हिस्सा दूसरे का धन कहा है इसलिये दो पक्ष हुए—

या २ रू १००
या १० रू १०̇०

अथवा, दूसरे के धन को तिगुना करने से दो पक्ष हुए—

या ६ रू ३००
या ३० रू ३०̇०

दोनों पक्षों के समीकरण से यावत्तावत् का मान २५ आया, एक घोड़े का २५ मोल है, तो छ घोड़ों का क्या, इस त्रैराशिक से छ घोड़ों का मोल १५० आया, इस में ३०० जोड़ देने से पहले का धन ४५० हुआ। इसी प्रकार, दश घोड़ों का मोल २५० हुआ, इस में १०̇० घटा देने से दूसरे का धन १५० हुआ, इस से तिगुना पहले का धन ४५० है।

उदाहरणम्—

माणिक्यामलनीलमौक्तिकमितिः पञ्चाष्ट सप्त क्रमादेकस्यान्यतरस्य सप्त नव षट्

तद्रत्नसंख्या सखे। रूपाणां नवतिर्द्विषष्टिरनयोस्तौ तुल्यवित्तौ तथा बीजज्ञ प्रतिरत्नजातिसुमते मूल्यानि शीघ्रं वद ॥ ३७॥

अत्राव्यक्तानां बहुत्वे कल्पितानि माणिक्यादीनां मूल्यानि या ३ या २ या १। यद्येकस्य रत्नस्येदं मूल्यं तदोद्दिष्टानां किमिति लब्धानां यावत्तावतां योगे स्वस्वरूपयुते जातौ पक्षौ

या १५ या १६ या ७ रू ९०
या २१ या १८ या ६ रू ६२

एते अनयोर्धने इति समशोधने कृते लब्धं यावत्तावन्मानम् ४। अनेनोत्थापितानि माणिक्यादीनां मूल्यानि १२। ८। ४। एवं सर्वधनम् २४२।

अथवा माणिक्यमानं यावत्तावत्, नीलमुक्ताफलयोर्मूल्ये व्यक्ते एव कल्पिते ५। ३। अतः समीकरणेन लब्धं यावत्तावन्मानम् १३। अनेनोत्थापिते जातं समधनम् २१६। एवं कल्पनावशादनेकधा।

अथ 'अव्यक्तानां द्व्यादिकानामपीह—' इत्यस्योदाहरणं

शार्दूलविक्रीडितेनाह—माणिक्येति । हे सखे, एकस्य रत्नवणिजो माणिक्यामलनीलमौक्तिकमितिः क्रमात् पञ्च अष्ट सप्त, रूपाणां नवतिश्च वर्तते । अन्यतरस्य तु तद्रत्नसंख्या सप्त नव षट् रूपाणां द्विषष्टिश्च वर्तते । हे बीजज्ञ, प्रतिरत्नजातिसुमते, प्रतिरत्नानां जातौ उत्तमाधमविवेकपुरस्सरं मूल्यविचारे सुष्ठु समीचीना मतिः यस्यासौ तत्संबोधनम् । तौ तुल्यवित्तौ यथा स्यातां तथा मूल्यानि वद ॥

उदाहरण—

एक व्यापारी के पास, पांच माणिक्य, आठ नीलम, सात मोती और नब्बे रुपये हैं । दूसरे के पास, सात माणिक्य, नौ नीलम, छ मोती और बासठ रुपये हैं, और दोनों व्यापारियों का धन समान है, तो प्रत्येक रत्नों का क्या मोल है ?

यहां अनेक अव्यक्त हैं, इसलिये माणिक्य आदि रत्नों के यावत्तावत् ३, २, १, मोल कल्पना किए—

या ३ या २ या १

यदि एक माणिक्य का या ३ मोल है, तो पांच का क्या ? इस प्रकार पांच माणिक्य का मोल या १५ हुआ, और आठ नीलम, सात मोती के मोल या १६ या ७ हुए, इन अव्यक्तों के योग या ३८ में ९० जोड़ देने से पहले का धन हुआ या ३८ रू ९० । एक माणिक्य का या ३ मोल है, तो सात का क्या ? इस प्रकार सात माणिक्य का मोल या २१ हुआ । ऐसे ही नौ नीलम और छ मोती के मोल या १८ या ६ हुए, इन अव्यक्तों के योग या ४५ में ६२ जोड़ देने से दूसरे का धन हुआ । इस प्रकार दो पक्ष समान सिद्ध हुए—

या ३८ रू ९०
या ४५ रू ६२

सम-शोधन करने से—

या रू० २८
या ७ रू०

उक्त रीति से यावत्तावत् का मान ४ आया। अब इससे माणिक्य आदि के मोल में उत्थापन देना चाहिए—एक अव्यक्त का ४ मोल है तो यावत्तावत् ३ का क्या, माणिक्य का मोल १२ हुआ, ऐसे ही यावत्तावत् दो और यावत्तावत् एक के मोल हुए ८। ४ इन का क्रम से न्यास १२। ८। ४ फिर, यदि एक माणिक्य का १२ मोल, तो पांच का क्या? इस प्रकार पांच माणिक्य का मोल ६० हुआ। आठ नीलम का मोल ६४ और सात मोतियों का मोल २८ हुआ। इनके योग १५२ में ९० जोड़ देने से पहले व्यापारी का सर्वधन २४२ हुआ। इसी भांति दूसरे के रत्नों के मोल हुए मा. ८४ नी. ७२ मो. २४ इन के योग १८० में ६२ जोड़ देने से, दूसरे व्यापारी का सर्वधन २४२ हुआ।

अथवा, माणिक्य का मान यावत्तावत् एक कल्पना किया या १ और नीलम, मोती के मान ५। ३ फिर, यदि एक माणिक्य का या १ मोल है, तो पांच का क्या? इस प्रकार पांच माणिक्य का मोल या ५ हुआ, नीलम और मोती के मोल हुए ४०। २१ इन का योग ६१ रूप हुआ। यदि एक माणिक्य का या १ मोल है, तो सात का क्या? सात माणिक्य का मोल या ७ हुआ। इसी प्रकार नीलम और मोती के मोल आये ४५। १८ इन का योग ६३ रूप हुआ। यों दो पक्ष सिद्ध हुए—

या ५ रू ६१
या ७ रू ६३

इन में ९० और ६२ जोड़ देने से हुए—

या ५ रू १५१
या ७ रू १२५

फिर समीकरण से यावत्तावत् का मान १३ आया। एक का १३ मोल है तो पांच का क्या? पांच माणिक्य का मोल ६५ हुआ, इस में रूप १५१ जोड़ देने से पहले का सर्वधन २१६ हुआ। फिर, एक का १३ मोल है तो सात का क्या? सात माणिक्य का मोल ९१ हुआ, इस में रूप १२५ जोड़ देने से दूसरे का सर्व-

धन २१६ हुआ । इस प्रकार कल्पना वश अनेक भांति के मोल आवेंगे ।

उदाहरणम्—

एको ब्रवीति मम देहि शतं धनेन
त्वत्तो भवामि हि सखे द्विगुणस्ततोऽन्यः ।
ब्रूते दशार्पयसि चेन्मम षड्गुणोऽहं
त्वत्तस्तयोर्वद धने मम किं प्रमाणे*॥३८॥

अत्र कल्पिते आद्यधने

या २ रू १००
या १ रू १००

अनयोः परस्य शते गृहीते आद्यो द्विगु-

---

* अत्र ज्ञानराजदैवज्ञः—

कालिन्दीजलकेलिलालसमिलद्गोपालमेलद्वया-
देकः संवदतीति कृष्ण विवलानस्मान्यदा यास्यति ।
गोपालत्रिशतीयुतः समबला अन्यैर्भवामो वयं
नो चेत्ते भवतश्चतुर्गुणवजास्तन्मेलमानं वद ॥

श्रीबापुदेवपादोक्तं सूत्रम्—

दानैक्ये सैकेन स्वस्वगुणेनाहते निरेकेण ।
गुणघातेन हृते स्वे स्यातामन्योन्यदानसंयुक्ते ॥

आचार्योक्तोदाहरणे प्र दा=१०० । प्र. गु=२
द्वि. दा= १० । द्विगु= ६

$\frac{(१००+१०)३}{२\times६-१}$ =३० प्रथमस्य धनम् ।

$\frac{(१००\times१०)७}{२\times६-१}$ = ७० द्वितीयस्य धनम् ।

णितः स्यादित्येकालापो घटते। अथाद्याद्दशापनीय दशभिः परधनं युतं षड्गुणं स्यादित्याद्यं षड्गुणीकृत्य न्यासः।

या १२ रू ६ं० ०

या १ रू ११०

अतः समीकरणेन लब्धं यावत्तावन्मानम् ७०
अनेनोत्थापिते जाते धने ४०। १७०।

अथ '–युक्तोनं वा कल्पयेदात्मबुद्ध्या–' इत्यस्योदाहरणं सिंहोद्धतयाह–एक इति। हे सखे, यदि शतं शतसंख्याकं धनं मम देहि तदा त्वत्तो धनेन द्विगुणोऽहं भवामि। 'हि' इति पादपूरणे इत्येको ब्रवीति। अतोऽन्यस्तं प्रति ब्रूते–यदि त्वं दश अर्पयसि मम तदा त्वत्तः षड्गुणोऽहं भवामि, इति तयोः सुहृदोः किं प्रमाणे धने इति मम वद॥

उदाहरण—

एक व्यापारी, दूसरे से कहता है कि हे मित्र! जो तुम सौ रुपये दो तो मैं तुम से धन में दूना हो जाऊं और दूसरा कहता है कि यदि तुम दश रुपये मेरे को दो तो मैं तुम से धन में छ गुना हो जाऊं, तो उन दोनों के पास धन का प्रमाण क्या है?

यहां दोनों का धन, ऐसा कल्पना करना चाहिये जिस से एक आलाप अपने आप घटित हो, जैसा—

या २ रू १ं०ं०

या १ रू १००

इन में दूसरे से सौ रुपये लेने से पहला दूना होता है, क्योंकि ऋण सौ रुपये में, धन सौ रुपये जोड़ देने से धनर्णसाम्य होने से सौ उड़ जाते हैं और यावत्तावत् २ शेष रहता है।

या २ रू०
या १ रू०

इस प्रकार एक आलाप घटित होता है । फिर,

या २ रू १०̇०
या १ रू १००

आद्य धन से दश निकाल कर, दूसरे धन में जोड़ देने से हुए—

या २ रू ११̇०
या १ रू ११०

अब, या २ रू ११०̇ यह षड्गुणित, या १ रू ११० इस शेष के समान है । इसलिये समान दो पक्ष हुए—

या १२ रू ६६̇०
या १ रू ११०

समीकरण से यावत्तावत् का मान ७० आया । यदि एक यावत्तावत् का व्यक्तमान ७० है, तो यावत्तावत् दो का क्या ? दो का व्यक्तमान १४० आया, इस में ऋण सौ रुपये १०० घटा देने से, एक व्यापारी का सर्वधन ४० हुआ । इसी भांति, दूसरे पक्ष में उत्थापन देने से दूसरे का सर्वधन १७० हुआ । दोनों व्यापारियों के धन हुए १७० । ४० । यहां १७० में से १०० लेने से, दूसरे का धन १०० + ४०=१४० यह शेष १७०—१००=७० से दूना होता है । और ४० में से १० लेने से पहले का धन १०+ १७०=१८० यह शेष ४०–१०=३० से छ गुना होता है ।

अथवा, जिस प्रकार दूसरा आलाप घटित होवे । वैसे दोनों के धन कल्पना किये—

या १ रू १०
या ६ रू १०̇

यहां आद्य धन में दश घटा देने से और दूसरे में जोड़ देने से दूसरा स्वतः षड्गुण होता है । दूसरे पक्ष में १०० घटा देने से आद्य पक्ष में १०० जोड़ देने से और शेष धन या ६ रू ११̇० को दूना करने से दो पक्ष समान हुए— .

या १ रू ११०
या १.२ रू २२०

समीकरण से यावत्तावत् का मान ३० आया । इस से पक्षों में उत्थापन देने से पूर्वसाधित घन के तुल्य दोनों के घन हुए ४० । १७०

उदाहरणम्—

माणिक्याष्टकमिन्द्रनीलदशकं मुक्ताफलानां शतं यत्ते कर्णविभूषणे समधनं क्रीतं त्वदर्थे मया । तद्रत्नत्रयमूल्यसंयुतिमितिस्त्र्यूनं शतार्धं प्रिये मूल्यं ब्रूहि पृथग्यदीह गणिते कल्यासि कल्याणिनि ३६ ।

अत्र समधनं यावत्तावत् १ । यदाष्टानां माणिक्यानामिदं मूल्यं तदैकस्य किमिति । एवं त्रैराशिकेन सर्वत्र मूल्यानि ।

या $\frac{१}{८}$ या $\frac{१}{१०}$ या $\frac{१}{१००}$

एषां योगः सप्तचत्वारिंशता सम इति समशोधनार्थं न्यासः ।

या $\frac{४७}{२००}$ रू ०
या ० रू ४७

एतौ पक्षौ समच्छेदीकृत्य छेदगमे समीकरणेन लब्धं यावत्तावन्मानम् २०० अनेनो-

त्थापितानि जातानि रत्नमूल्यानि २५।२०।२ समधनम् २०० । एवं कर्णभूषणे रत्नमूल्यम् ६००

अत्र समच्छेदीकृत्य शोधनार्थमाद्यपक्षेण परपक्षे ह्रियमाणे छेदांशविपर्यासे कृते परस्य छेदो गुणोंऽशो हरश्चेति तुल्यत्वात्तयोर्नाशो भविष्यतीति छेदगमः क्रियते ॥

अथ छात्रमतिवैशद्यार्थं विचित्रोदाहरणं शार्दूलविक्रीडितेनाह—माणिक्याष्टकमिति । हे कल्याणिनि कल्याणविशिष्टे, त्वं चेदिह अव्यक्तगणिते कल्या चतुरासि, अत्र केचित् 'कल्या' इत्यस्य स्थाने 'कल्पा' इति पवर्गादिमवर्णावसानकं पाठं कल्पयन्ति तन्न सुष्ठु बहुटीकाकारोक्तिविसंवादात् । तर्हि तेषां रत्नानां मध्ये एकैकस्य रत्नस्य मूल्यं पृथग्भिन्नं ब्रूहि आख्याहि । यत् रत्नत्रयं ते तव कर्णविभूषणे कर्णयोरलंकारे माणिक्यानामष्टकमिन्द्रनीलानां दशकं मुक्ताफलानां शतं वर्तते । किं लक्षणम् । त्वदर्थे समधनं समानमूल्यं मया क्रीतं, मूल्यदानपुरस्सरं गृहीतमित्यर्थः । 'समधनम्' इत्यस्यायमभिप्रायः—यन्माणिक्याष्टकस्य मूल्यं तदेवेन्द्रनीलदशकस्य तदेव मुक्ताफलशतस्येत्यर्थः । हे प्रिये, तेषां रत्नानां यत्त्रयं तस्य यानि मूल्यानि तेषां युतिः न्यूनं शतार्धं वर्तते ।

उदाहरण—

किसी ने समान मोल से आठ माणिक्य, दश नीलम और सौ मोती खरीदे और उन तीनों रत्नों के मोल का योग सैंतालीस होता है, तो हर एक रत्नों का मोल क्या होगा ?

यहां माणिक्य आदि के मूल्य कल्पना करने से क्रिया का निर्वाह नहीं होता। इसलिये समधन का मान यावत्तावत् १ कल्पना किया, यदि आठ माणिक्य का या १ मोल है, तो एक का क्या, इस प्रकार हर एक रत्नों के मोल हुए—

$$या\ \frac{१}{८}\ या\ \frac{१}{१०}\ या\ \frac{१}{१००}$$

इनका समच्छेद से योग या $\frac{४७}{२००}$ हुआ, यह सैंतालीस के समान है, इसलिये दो पक्ष हुए—

$$या\ \frac{४७}{२००}\ रू०$$
$$या\ ०\quad रू\ ४७$$

'कल्प्यो हरो रूपमहारराशेः—' इस रीति के अनुसार, दूसरे पक्ष के रूप ४७ के नीचे १ हर हुआ—

$$या\ \frac{४७}{२००}\ रू०$$
$$या०\ \frac{४७}{१}\ रू$$

समच्छेद करने से हुए—

$$या\ \frac{४७}{२००}\ रू०$$
$$या०\quad रू\ \frac{९४००}{२००}$$

छेदापगम करने से हुए—

$$या\ ४७\ रू०$$
$$या०\quad रू\ ९४००$$

समीकरण से यावत्तावत् का मान २०० आया, यदि आठ माणिक्य का २०० समधन है, तो १ का क्या, $\frac{२०० \times १}{८} = २५$ हुआ।

यदि दश नीलम का २०० समधन है, तो १ का क्या, $\frac{२०० \times १}{१०} = २०$ हुआ। यदि सौ मोती का २०० समधन है तो १ का क्या? $\frac{२०० \times १}{१००} = २$ हुआ।

क्रम से न्यास २५। २०। २। इनका योग ४७ है। एक माणिक्य

का २५ मोल है, तो आठ का क्या ? $\frac{२५ \times ८}{१}$ = २०० । एक

नीलम का २० मोल है, तो दश का क्या ? $\frac{२० \times १०}{१}$ = २०० ।

एक मोती का २ मोल है, तो सौ का क्या ? $\frac{२ \times १००}{१}$ = २००

इस प्रकार समान धन आते हैं, इनका योग ६०० सब रत्नों का मोल हुआ।

यहां पर समच्छेद कर के शोधन के लिये आद्यपक्ष का परपक्ष में भाग देने से, छेद और अंश के विपर्यास होने पर गुण-हर के तुल्य होने से, वे उड़ जाते हैं । इसलिये लाघवार्थ छेदापगम होता है । अर्थात् छेद मिटा दिया जाता है ।

उदाहरणम्—

पञ्चांशोऽलिकुलात्कदम्बमगमत् त्र्यंशः शिलीन्ध्रं तयोर्विश्लेषस्त्रिगुणो मृगाक्षि कुटजं दोलायमानोऽपरः । कान्ते केतकमालतीपरिमलप्राप्तैककालप्रियादूताहूत इतस्ततो भ्रमति खे भृङ्गोऽलिसंख्यां वद * ॥ ४० ॥

---

* अत्र श्रीधराचार्याः—

षड्भागः पाटलासु भ्रमति गणयुजः स्वत्रिभागः कदम्बे
पादश्चूतद्रुमे च प्रदलितकुसुमे चम्पके पञ्चमांशः ।
प्रोत्फुल्लाम्भोजषण्डे रविकरदलिते त्रिंशदंशोऽभिरेमे
तत्रैको मत्तभृङ्गो भ्रमति नभसि चेत्का भवेद्भृङ्गसंख्या ॥

ज्ञानराजदैवज्ञाः—

मानैः कोकिलमञ्जुलैः परिमलैरानन्दयन्तं फलै—
र्भारद्वाजमुखं द्विजोत्तमकुलं त्वामेत्य शाखाधिपम् ।
जातं पूर्णमनोरथं सुरतरो स्वार्धाङ्घ्रिपञ्चांशकैः
पूर्वादिक्रमतश्चतुर्द्विजयुतस्तिष्ठाम्यहं तान् वद ॥

अत्रालिकुलप्रमाणं यावत्तावत् १। अतः कदम्बादिगतालिप्रमाणं यावत्तावत् $\frac{१४}{१५}$ एतद् दृष्टेन भ्रमरेण युतमलिप्रमाणमिति न्यासः।

या $\frac{१६}{१५}$ रू १५
या १ रू०

एतौ समच्छेदीकृत्य छेदगमे पूर्ववल्लब्धं यावत्तावन्मानम् १५ एतदलिप्रमाणम्॥

अथान्यदुदाहरणं पाटीस्थं प्रदर्शयति—पञ्चांश इति। व्याख्यातोऽयं श्लोको लीलावतीव्याख्याने॥

उदाहरण—

एक भ्रमरों के समूह से उस का पञ्चमांश कदम्ब को गया और तृतीयांश शिलीन्ध्र नामक पुष्प को गया, और उन भागों के त्रिगुण-अन्तर के तुल्य भ्रमर, कुटज नामक पुष्प को गये, केवल एक भ्रमर केतकी और मालती के सुगन्ध में लोभा हुआ आकाश में भ्रमण कर रहा है, तो कहो कितने भ्रमर हैं?

यहां भ्रमरों के समूह का मान यावत्तावत् १ है, इस का पञ्चमांश या $\frac{१}{५}$ और तृतीयांश या $\frac{१}{३}$ हुआ, इनके अन्तर या $\frac{२}{१५}$ को ३ से गुणा या $\frac{६}{१५}$ हुआ, इसमें ३ का अपवर्तन देने से $\frac{२}{५}$ हुआ। फिर उक्त या $\frac{१}{५}$ या $\frac{१}{३}$ या $\frac{२}{५}$ भागों का समच्छेद से योग या $\frac{१४}{१५}$ हुआ, इस में दृष्ट भ्रमर १ जोड़ देने से पहला पक्ष हुआ या $\frac{१४}{१५}$ रू १५ यह यावत्तावत् एक के समान है, इस लिये दो पक्ष हुए—

या $\frac{१५}{१५}$ रू १५
या १ रू ०

समच्छेद और छेदगम से पूर्व रीति के अनुसार यावत्तावत् का मान १५ आया, यही भ्रमरों के समूह की संख्या है ॥

अथान्योक्तमप्युदाहरणं क्रियालाघवार्थं प्रदर्श्यते—

पञ्चकशतदत्तधनात्
फलस्य वर्गं विशोध्य परिशिष्टम् ।
दत्तं दशकशतेन
तुल्यः कालः फलं च तयोः ॥

अत्र काले यावत्तावत्कल्पिते क्रिया न निर्वहति इत्यतः कल्पिताः पञ्चमासा मूलधनं यावत्तावत् १

अस्मात्पञ्चराशिके न्यासः

१०	५
१००	या १
५	०

लब्धं फलं यावत्तावत् $\frac{१}{४}$ अस्य वर्गः याव $\frac{१}{१६}$ मूलधनात्समच्छेदेन शोधिते जातं द्वितीयमूलधनम् $\frac{\text{याव १ या १६}}{१६}$ अत्रापि मासपञ्चकेन पञ्चराशिके कृते न्यासः ।

१	५
१००	याव १ या १६
१०	१६
	०

लब्धं फलं $\frac{\text{याव १ या १६}}{\text{३२}}$ एतत्पूर्वफलस्यास्य या $\frac{१}{४}$ सममिति पक्षौ यावत्तावतापवर्त्य समशोधनाय पक्षयोर्न्यासः ।

या $\frac{१}{३२}$ रू १६
या १ रू $\frac{१}{४}$

प्राग्वल्लब्धं यावत्तावन्मानम् ८ एतन्मूलधनम् । अथवा प्रथमप्रमाणफलेन द्वितीयप्रमाणफले विभक्ते यल्लभ्यते तद् गुणगुणितेन द्वितीयमूलधनेन तुल्यमेव प्रथममूलधनं स्यात्, कथमन्यथा समे काले समं फलं स्यात् । अतो द्वितीयस्यायं गुणः २, द्वितीयमूलधनमेकोनगुणगुणितं फलवर्गे वर्तते, अत एकोनगुणेनेष्टकल्पितकलान्तरस्य वर्गे भक्ते द्वितीयमूलधनं स्यात् तत्फलवर्गयुतं प्रथममूलधनं स्यात्, अतः कल्पितफलवर्गः ४

अतः प्रथमद्वितीयमूलधने ८।४। फलम् २। यदि शतस्य पञ्च कलान्तरं तदाष्टानां किमिति लब्धमेकमासेऽष्टानां फलम् $\frac{२}{५}$। यद्यनेनैको मासस्तदा द्विकेन किमिति लब्धा मासाः ५।

अथ परोक्तमप्युदाहरणं क्रियालाघवार्थं प्रदर्शयति—पञ्चकेति। प्रतिमासं पञ्च वृद्धिर्यस्येति पञ्चकम्। तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपपदा दीयते इति सूत्रेण कन्। तादृशं यच्छतं तेन प्रमाणेन दत्तं यद्धनं तस्य किंचित्कालजं यत्फलं कलान्तरं तस्य वर्गं मूलधनाद्विशोध्य यदवशिष्टं धनं तद्दशकशतेन, प्रतिमासं दश वृद्धिर्यस्येति दशकम्, दशकं च तच्छतं च दशकशतं तेन प्रमाणेन दत्तम्, तयोः प्रथमद्वितीययोर्मूलद्रव्ययोस्तुल्ये काले तुल्यमेव फलं भवति। एवं सति ते के धने इति वदेति शेषः।

उदाहरण—

पांच रुपये सैकड़े के ब्याज पर दिये धन का जो ब्याज आया उस के वर्ग को, मूल धन में घटा देने से जो शेष धन बचा, उस को दश रुपये सैकड़े के ब्याज पर दिया और उन दोनों मूलधनों का काल और ब्याज समान है, तो मूलधन क्या है?

(१) यहां काल का मान यावत्तावत् कल्पना करने से क्रिया का निर्वाह नहीं होता। इसलिये पांच मास और मूलधन का मान यावत्तावत् १ कल्पना किया। यदि एक महीने में सौ का पांच ब्याज मिलता है, तो पांच महीने में यावत्तावत् एक का क्या मिलेगा?

१	५
१००	या १
५	०

'अन्योऽन्यपक्षनयनं—' इस सूत्र के अनुसार न्यास—

१	५
१००	या १
०	५

बहुत राशियों के घात में, अल्पराशियों के घात का भाग देने से या $\frac{२५}{१००}$ हुआ इस में अंश २५ का अपवर्तन देने से या $\frac{१}{४}$ हुआ। यह पांच महीने में यावत्तावत् एक का ब्याज है। अब उसके वर्ग याव $\frac{१}{१६}$ को मूलधन या १ में समच्छेद कर घटा देने से, शेष $\frac{\text{याव १̇ या १६}}{१६}$ रहा, यही दूसरा मूलधन है। यदि एक महीने में सौ का दश ब्याज मिलता है, तो पांच महीने में दूसरे मूलधन का क्या मिलेगा ?

१	५
१००	याव १̇ या १६
	१६
१०	०

'अन्योन्यपक्षनयनं—' सूत्र के अनुसार न्यास—

१	५
१००	याव १̇ या १६
१६	१०

अब, ५ याव १̇ या १६, १० इन राशियों के घात याव ५०̇ या ८०० में १, १००, १६ इन राशियों के घात का भाग देने से $\frac{\text{याव ५̇० या ८००}}{१६००}$ हुआ, इस में पचास का अपवर्तन देने से $\frac{\text{याव १̇ या १६}}{३२}$ हुआ, यह पहले सिद्ध किये या $\frac{१}{४}$ इस ब्याज के समान है, इसलिये दो पक्ष हुए—

$\frac{\text{याव } \dot{१} \text{ या } १६}{३२}$ रू०

या $\frac{१}{४}$ रू०

यावत्तावत् का अपवर्तन देने से—

$\frac{\text{या } \dot{१}}{३२}$ रू १६

या० रू $\frac{१}{४}$

'एकाव्यक्तं शोधयेदन्यपक्षात्—' इस रीति से यावत्तावत् का मान ८ आया, यह पहला मूलधन है। इस से दूसरे मूल धन $\frac{\text{याव } \dot{१} \text{ या } १६}{१६}$ में उत्थापन देना चाहिये इसलिए 'वर्गेण वर्गं गुणयेत्'—इस रीति से ८ के वर्ग ६४ से ऋण यावत्तावत् $\dot{१}$ को गुणने से ६$\dot{४}$ हुए और ८ से यावत्तावत् १६ को गुणने से १२८ हुए इन का क्रमसे न्यास ६$\dot{४}$। १२८ इनके योग ६४ में, हर १६ का भाग देने से, दूसरा मूलधन ४ आया। और पहला, दूसरा ब्याज हुआ २। २। अब इस प्रश्न के उत्तर को व्यक्तरीति से करते हैं—

(२) पहले प्रमाण फल में, दूसरे प्रमाण फल का भाग देने से जो लब्धि आती है उससे गुणित दूसरे मूलधन के तुल्य पहला मूलधन होता है। अन्यथा, कैसे समान काल में समान फल (ब्याज) होगा ? इस लिये दूसरे धन का २ गुण है, और दूसरा धन एकोनगुण गु १ रू $\dot{१}$ से गुण देने से गु० दूध १ दूध $\dot{१}$ फलवर्ग का स्वरूप होता है। क्योंकि पहला खण्ड गु० दूध १ पहला मूलधन है, इस में दूसरे खण्ड दूध $\dot{१}$ को घटा देने से फलवर्ग शेष रहता है। क्योंकि दूसरा मूलधन और फलवर्ग का योग पहले मूलधन के समान है और पहले मूलधन में फलवर्ग को घटा देने से दूसरा मूलधन शेष रहता है, यह भी कहा है। यदि एक से ऊन गुण और दूसरा मूलधन इन का घात फलवर्ग है, तो उसी फलवर्ग में एकोन गुण का भाग देने से, दूसरा मूलधन आता है। यह सिद्ध

हुआ। इसलिये कल्पित ब्याज २ के वर्ग ४ में एकोन गुण १ का भाग देने से, दूसरा धन ४ आया। इस में फल २ के वर्ग ४ को जोड़ देने से, पहला धन ८ हुआ। इसलिये कल्पित फलवर्ग ४ है। इस भांति दोनों मूलधन हुए ८।४ और फल २ हैं। यदि सौ का पांच ब्याज पाते हैं, तो आठ का क्या? आठ का ब्याज $\frac{५ \times ८}{१००} = \frac{४०}{१००}$ इसमें २० का अपवर्तन देने से $\frac{२}{५}$ हुआ, यदि इस ब्याज में एक महीना तो दो ब्याज में क्या? यों अनुपात के द्वारा $\frac{५ \times १ \times २}{२} = ५$ महीने मिले।

उदाहरणम्—

एककशतदत्तधना-
त्फलस्य वर्गं विशोध्य परिशिष्टम्।
पञ्चकशतेन दत्तं
तुल्यः कालः फलं च तयोः॥ ४१॥

अत्र गुणकः ५। एकोनगुणेन ४ इष्टफलस्यास्य वर्गे १६ भक्ते जातं द्वितीयधनम् ४। इदं फलवर्गयुतं जातं प्रथमधनम् २०। अतोऽनुपातद्वयेन कालः २०। एवं स्वबुद्ध्यैवेदं सिध्यति किं यावत्तावत्कल्पनया।

अथ स्वप्रदर्शितक्रियालाघवस्य व्याप्तिं दर्शयितुं गीत्योदाहरणान्तरमाह—एककेति। एको वृद्धिर्यस्य तदेककम्, एककं च तच्छतं चैककशतम्, तेन दत्तं प्रयुक्तं यद्धनं ततो यल्लब्धं फलं

कलान्तरं तस्य वर्गं मूलधनाद्विशोध्य परिशिष्टं धनं पञ्चकशतेन दत्तं कलान्तरार्थं प्रयुक्तमित्यर्थः । तयोः प्रथमद्वितीययोर्मूलधनयोः कालस्तुल्यः फलमपि तुल्यं ते के धने इति निरूपय ॥

उदाहरण—

एक रुपये सैकड़े के व्याज पर दिये धन का जो व्याज मिला, उस के वर्ग को मूलधन में घटा देने से जो शेष धन रहा, उस को पांच रुपये सैकड़े के व्याज पर दे दिया और दोनों मूलधनों का काल तथा व्याज तुल्य है, तो उन दोनों धनों का क्या मान है ?

यहां गुणक ५ है, एकोनगुणक ४ का कल्पित फल ४ के वर्ग १६ में भाग देने से, दूसरा मूलधन ४ आया। इस में फलवर्ग १६ जोड़ देने से पहला मूलधन २० हुआ। अब इस से काल का आनयन करते हैं—यदि सौ का एक व्याज है, तो बीस का क्या ? एक मास में पहले मूलधन का व्याज $\frac{१ \times २०}{१००} = \frac{१}{५}$ हुआ। यदि इस व्याज में एक महीना, तो कल्पित चार व्याज में क्या ? यों काल $\frac{५ \times १ \times ४}{१} = २०$ आया 'इस प्रकार, यह उदाहरण अपनी बुद्धि ही से सिद्ध होता है, यावत्तावत् कल्पना की क्या आवश्यकता है' इस लेख से ग्रन्थकार का पूर्वाचार्यों पर कटाक्ष सूचित होता है।

अथवा बुद्धिरेव बीजम् । तथा च गोले मयोक्तम्—

'नैव वर्णात्मकं बीजं न बीजानि पृथक् पृथक् ।
एकमेव मतिर्बीजमनल्पा कल्पना यतः ॥'

अब प्रशंसापूर्वक मति में बीजत्व का आरोप करते हैं—

अथवा बुद्धि ही बीजगणित है, इस बात को मैंने गोलाध्याय में कही है । वर्णात्मक अर्थात् यावत्तावत् कालक आदि वर्ण रूपी

बीजगणित नहीं है। और एकवर्णसमीकरण, अनेकवर्णसमीकरण इत्यादि भेदों से अलग-अलग भी वह नहीं है। किंतु एक मति (बुद्धि) ही बीजगणित है, जिस से अनेक प्रकार की कल्पनाएँ उत्पन्न होती हैं॥

उदाहरणम्---

माणिक्याष्टकमिन्द्रनीलदशकं मुक्ताफलानां शतं सद्वज्राणि च पञ्चरत्नवणिजां येषां चतुर्णां धनम्। सङ्गस्नेहवशेन ते निजधनाद्दत्त्वैकमेकं मिथो जातास्तुल्यधनाः पृथग्वद सखे तद्रत्नमूल्यानि मे ४२॥

अत्र यावत्तावदादयो वर्णा अव्यक्तानां मानानि कल्प्यन्त इत्युपलक्षणं तन्नामाङ्कितानि कृत्वा समीकरणं कार्यं मतिमद्भिः। तद्यथा–अन्योन्यमेकैकं रत्नं दत्त्वा समधना जातास्तेषां मानानि।

मा. ५ नी. १ मु. १ व. १
नी. ७ मा. १ मु. १ व. १
मु. ९७ मा. १ नी. १ व. १
व. २ मा. १ नी. १ मु. १

'समानां समक्षेपे समशुद्धौ समतैव स्यात्' इत्येकैकं माणिक्यादिरत्नं पृथक् पृथगेभ्यो

विशोध्य शेषाणि समान्येवं जातानि मा. ४ नी. ६ मु. ९६ व. १ ।

यदेकस्य वज्रस्य मूल्यं तदेव माणिक्य-चतुष्टयस्य तदेव नीलषट्कस्य तदेव मुक्ता-फलानां षण्णवतेः । अत इष्टं समधनं प्र-कल्प्य पृथगेभिः शेषैर्विभज्य मूल्यानि लभ्य-न्ते, तथा कल्पितेष्टेन ९६ जातानि मूल्यानि माणिक्यादीनाम् २४।१६।१।९६ ।

अथ पाटीस्थमुदाहरणान्तरं शार्दूलविक्रीडितेनाह—माणि-क्याष्टकमिति । व्याख्यातोऽयं लीलावतीव्याख्याने ॥

उदाहरण—

आठ माणिक्य, दश नीलम, सौ मुक्ता और पांच हीरा ये चार जौहरियों के धन थे और वे स्नेहवश आपस में अपने-अपने धन से एक-एक रत्न देकर समधन हो गये, तो प्रत्येक रत्नों का मोल क्या है ?

यहां जो यावत्तावत् आदि वर्ण अव्यक्त राशियों के मान कल्पना किये जाते हैं वे उपलक्षण हैं । इसलिये हर एक वस्तुओं को अपने-अपने नाम से अङ्कित कर के समीकरण करना चाहिये । परस्पर एक-एक रत्न दे कर, वे चारों समधन हुए ।

मा. ५ नी. १ मु. १ व. १
मा. १ नी. ७ मु. १ व. १
मा. १ नी. १ मु. ९७ व. १
मा. १ नी. १ मु. १ व. २

ये समधन हैं, इसलिये समान रत्न घटा देने से भी समान ही रहेंगे, इस कारण पहले एक-एक माणिक्य में घटाने से—

मा.	४	नी.	१	मु.	१	व.	१
मा.	०	नी.	७	मु.	१	व.	१
मा.	०	नी.	१	मु.	९७	व.	१
मा.	०	नी.	१	मु.	१	व.	१

फिर एक-एक नीलम घटाने से—

मा.	४	नी.	०	मु.	१	व.	१
मा.	०	नी.	६	मु.	१	व.	१
मा.	०	नी.	०	मु.	९७	व.	१
मा.	०	नी.	०	मु.	१	व.	१

फिर एक-एक मुक्ता घटाने से—

मा.	४	नी.	०	मु.	०	व.	१
मा.	०	नी.	६	मु.	०	व.	१
मा.	०	नी.	०	मु.	९७	व.	१
मा.	०	नी.	०	मु.	०	व.	१

फिर एक एक वज्र घटाने से—

मा.	४	नी.	०	मु.	०	व.	०
मा.	०	नी.	६	मु.	०	व.	०
मा.	०	नी.	०	मु.	९६	व.	०
मा.	०	नी.	०	मु.	०	व.	१

अब भी सब समान ही रहे। यहां शेष मा. ४ नी. ६ मु. ९६ और व. १ रहता है, अब जो एक वज्र का मोल है वही चार माणिक्य, छ नीलम और छानबे मुक्ताओं का है। इसलिये इष्ट समधन ९६ कल्पना किया। त्रैराशिक से हर एक रत्नों के मोल लाते हैं—यदि चार माणिक्य का ९६ मोल है, तो एक का क्या? एक माणिक्य का मोल $\frac{९६ \times १}{४}$ = २४ हुआ। यदि छ नीलम का ९६ मोल है, तो एक का क्या? एक नीलम का मोल $\frac{९६ \times १}{६}$ = १६। छानबे मुक्ता का ९६ मोल है, तो एक का क्या; एक मुक्ता

का मोल $\frac{९६\times१}{९६}$=१ और वज्र का मोल ९६ है। इन मोलों का क्रम से न्यास २४ । १६ । १ । ९६ । अब यदि एक माणिक्य का २४ मोल है, तो पांच का क्या? पांच माणिक्य का मोल $\frac{२४\times५}{१}$= १२० हुआ, इसमें १६ । १ । ९६ इन नीलम आदि के मोल को जोड़ देने से समधन २३३ हुआ। यदि एक नीलम का १६ मोल है, तो सात का क्या? सात नीलम का मोल $\frac{१६\times७}{१}$=११२ हुआ, इस में २४ । १ । ९६ इन शेष रत्नों के मोल को जोड़ देने से समधन २३३ हुआ।

इस भांति सत्तानबे मुक्ताओं के मोल ९७ में, २४।१६।९६ इन शेष रत्नों के मोल को जोड़ देने से समधन २३३ हुआ। और एक वज्र के मोल ९६ को दूना करने से, दो वज्र का मोल १९२ हुआ। इस में २४ । १६ । १ इन शेष रत्नों के मोल को जोड़ देने से, समधन २३३ हुआ॥

उदाहरणम्—

पञ्चकशतेन दत्तं
मूलं सकलान्तरं गते वर्षे।
द्विगुणं षोडशहीनं
लब्धं किं मूलमाचक्ष्व॥ ४३॥

अत्र मूलधनं यावत्तावत् १ अतः पञ्चराशिकेन

१	१२
१००	या १
५	०

कलान्तरम् या $\frac{३}{५}$ एतन्मूलयुतं जातं या $\frac{८}{५}$ द्विगुणमूलधनस्य षोडशोनस्य या २ रू १६ सममिति समीकरणेन

या २ रू १६
या $\frac{८}{५}$ रू ०

लब्धं मूलं ४० कलान्तरं च २४।

अथोदाहरणान्तरमार्याह—पञ्चकेति। हे गणक, पञ्चकशतेन यद्दत्तं धनं तद्वर्षे . । व्यतीते सति सकलान्तरं यद्भवति तच्च द्विगुणेन षोडशही न मूलधनेन तुल्यमेवं सति मूलधनं किं स्यादिति कथय ॥

उदाहरण—

पांच रुपये सैकड़े के ब्याज पर दिया धन एक वर्ष के व्यतीत होने पर ब्याज के साथ दो से गुणित और सोलह से हीन मूलधन के तुल्य होता है, तो कितना मूलधन होगा ?

यहां मूलधन का मान यावत्तावत् १ है, इस से पञ्चराशिक से ब्याज लाते हैं—यदि एक महीने में, सौका पांच ब्याज आता है, तो बारह महीने में एक यावत्तावत् का क्या ?

१	१२
१००	या १
५	०

'—अन्योन्यपक्षनयनं—' इस सूत्र के अनुसार बहुत राशियों के घात या ६० में अल्प राशियों के घात १०० का भाग देने से या $\frac{६०}{१००}$ हुआ। इसमें बीस का अपवर्तन देने से या $\frac{३}{५}$ हुआ, यह मूलधन या १ से जुड़ा, दूना और सोलह से ऊन मूलधन के समान है, इसलिये पक्ष हुए—

या $\frac{८}{५}$ रू ०
या २ रू १६

समच्छेद और छेदगम करके समीकरण से यावत्तावत् का मान मूलधन ४० आया । इससे अनुपात करते हैं—एक महीने में सौ का पांच व्याज पाते हैं, तो बारह महीने में चालीस का क्या ?

चालीस का व्याज $\frac{१२ \times ४० \times ५}{१ \times १००}$ = २४ हुआ, इस में मूलधन ४० जोड़ देने से ६४ हुआ । यह दो से गुणित ८० और सोलह से हीन ८०—१६=६४ मूलधन के समान है ॥

उदाहरणम्—

यत्पञ्चकद्विकचतुष्कशतेन दत्तं
खण्डैस्त्रिभिर्नवतियुक् त्रिशतीधनं तत् ।
मासेषु सप्तदशपञ्चसु तुल्यमाप्तं
खण्डत्रयेऽपि सफलं वद खण्डसंख्याम् ४४

अत्र सफलस्य खण्डस्य समधनस्य प्रमाणं यावत्तावत् १ । यद्येकेन मासेन पञ्चफलं शतस्य तदा माससप्तकेन किमिति लब्धं शतस्य फलम् ३५ । एतच्छते प्रक्षिप्य जातम् १३५ । यद्यस्य फलस्य शतं मूलं तदा यावत्तावन्मितस्य सफलस्य किमिति लब्धं प्रथमखण्डप्रमाणम् या $\frac{२०}{२७}$

पुनर्यदि मासेन द्वौ फलं शतस्य तदा दश-

भिर्मासैः किमित्याद्युक्तप्रकारेण द्वितीयखण्डम् या $\frac{५}{६}$ एवं तृतीयम् या $\frac{५}{६}$

एषामैक्यम् या $\frac{६५}{२७}$ सर्वधनस्यास्य ३९० समं कृत्वा यावत्तावन्मानेन १६२ उत्थापितानि खण्डानि १२०।१३५।१३५। सकलान्तरं सममेतत् १६२ ॥

अथ वसन्ततिलकयोदाहरणान्तरमाह—यदिति। यन्नवतियुक् त्रिशतीरूपं धनं ३९० त्रिभिः खण्डैः पञ्चकद्विकचतुष्कशतेन दत्तं तत्सप्तदशपञ्चसु मासेषु क्रमेण खण्डत्रयेऽपि सफलं तुल्यं प्राप्तं चेत् खण्डसंख्यां वद। एतदुक्तं भवति—मूलधनं नवतियुक् शतत्रयमस्ति ३९०, अस्य त्रीणि खण्डानि कृत्वा एकं खण्डं पञ्चकशतप्रमाणेन दत्तं, द्वितीयं द्विकशतेन दत्तं, तृतीयं चतुष्कशतेन दत्तम्, तत्र प्रथमं खण्डं माससप्तके गते सकलान्तरं यावद्भवति, तावदेव द्वितीयं सकलान्तरं मासदशके गते भवति, तृतीयमपि मासपञ्चके गते सकलान्तरं तावदेव भवति, यद्येवं तर्हि कानि खण्डानि संभवन्ति तद्वद ॥

उदाहरण—

तीनसौ नब्बे रुपयों के तीन खण्ड करके, एक खण्ड को पांच रुपये सैकड़े के ब्याज पर, दूसरे को दो रुपये सैकड़े के ब्याज पर और तीसरे को चार रुपये सैकड़े के ब्याज पर दिया और पहलाखण्ड सात महीने व्यतीत होने पर ब्याज सहित जितना होता है, उतना ही दश महीने व्यतीत होने पर ब्याज सहित दूसरा खण्ड और पांच महीने व्यतीत होने पर ब्याज सहित तीसरा खण्ड होता है, तो उन तीनों खण्डों का मान क्या है?

यहां सम धन और व्याज सहित खण्ड का मान यावत्तावत् १ कल्पना कर के यदि एक महीने में सौ का पांच व्याज आता है, तो सात महीने में सौ का क्या ? इस प्रकार सात महीने में सौ का व्याज $\frac{७ \times १०० \times ५}{१ \times १००}$ = ३५ हुआ, इसको १०० में जोड़ने से १३५ हुआ । यदि व्याज के साथ इस खण्ड का मूलधन सौ है, तो व्याज सहित यावत्तावन्मित खण्ड का क्या ? इस प्रकार पहला खण्ड $\frac{१०० \times \text{या } १}{१३५}$, पांच के अपवर्तन से या $\frac{२०}{२७}$ हुआ ।

इसी भांति, यदि एक महीने में सौ का दो व्याज आता है, तो दश महीने में सौ का क्या ? दश महीने में सौ का व्याज $\frac{१० \times १०० \times २}{१ \times १००}$ = २० हुआ । इसको १०० में जोड़ देने से १२० हुआ । यदि इसका मूलधन सौ है, तो यावत्तावत् का क्या ? दूसरा खण्ड $\frac{१०० \times \text{या } १}{१२०}$ बीस के अपवर्तन से या $\frac{५}{६}$ हुआ । इसी प्रकार, तीसरा खण्ड या $\frac{५}{६}$ हुआ ।

इन खण्डों का क्रम से न्यास—

या $\frac{२०}{२७}$ या $\frac{५}{६}$ या $\frac{५}{६}$

इनका समच्छेद करके योग या $\frac{३९०}{१६२}$ हुआ और छ का अपवर्तन देने से या $\frac{६५}{२७}$ हुआ, यह सर्वधन ३९० के समान है, इसलिये दो पक्ष हुए—

या $\frac{६५}{२७}$ रू ०
या ० रू ३९०

समच्छेद और छेदगम करने से हुए—

या ६५ रू ०
या ० रू १०५३०

समीकरण से यावत्तावत् का मान १६२ आया । इस से तीनों

खण्डों में उत्थापन देते हैं—इस मान १६२ को पहले खण्ड से गुणा कर और उस के हार २७ का भाग देने से पहला खण्ड हुआ $\frac{१६२\times२०}{२७}=\frac{३२४०}{२७}=१२०$ । इसी प्रकार यावत्तावन्मान १६२ को ५ से गुणा कर उस में ६ का भाग देने से, दूसरा खण्ड १३५ हुआ । और तीसरा खण्ड भी १३५ हुआ ॥

आलाप—यदि १०० का ५ ब्याज तो १२० का क्या, यों एकसौ बीस का ब्याज $\frac{५\times१२०}{१००}=६$ आया, १ महीने में ६ ब्याज तो ७ महीने में क्या ? सात महीने में ब्याज़ $\frac{६\times७}{१}=४२$ आया, इस में मूलधन १२० जोड़ देने से ब्याज सहित मूलधन १६२ हुआ ।

इसी भांति, यदि १ महीने में २ ब्याज तो १० महीने में क्या? दश महीने में ब्याज $\frac{२\times१०}{१}=२०$ आया । यदि १०० का २० तो १३५ का क्या ? दूसरे खण्ड का ब्याज $\frac{२०\times१३५}{१००}=२७$ आया । इस को मूलधन १३५ में जोड़ देने से, दूसरा खण्ड १६२ सिद्ध हुआ ।

इसी प्रकार, यदि १ महीने में १०० का ४ ब्याज, तो ५ महीने में क्या ? पांच महीने में ब्याज $\frac{५\times१००\times४}{१\times१००}=२०$ आया, यदि मूलधन १०० का २० तो तीसरे खण्ड १३५ का क्या ? तीसरे खण्ड का ब्याज $\frac{२०\times१३५}{१००}=२७$ आया, इस में मूलधन १३५ जोड़ने से तीसरा खण्ड १६२ हुआ । इस प्रकार तीनों खण्डों में ब्याज सहित खण्ड तुल्य ही मिले १६२ । १६२ । १६२ ॥

उदाहरणम्——

पुरप्रवेशे दशदो द्विसंगुणं
विधाय शेषं दशभुक् च निर्गमे ।
ददौ दशैवं नगरत्रयेऽभव-
त्त्रिनिघ्नमाद्यं वद तत्कियद्धनम् ॥४५॥

अत्र धनं या १ । अस्यालापवत्सर्वं कृत्वा पुरत्रयनिवृत्तौ जातं धनम् या ८ रू २८०

एतदाद्यस्य त्रिगुणितस्य या ३ समं कृत्वाप्तं यावत्तावन्मानम् ५६ ।

अथोदाहरणं वंशस्थेनाह—पुरप्रवेश इति । कश्चिद्वणिक् किंचिद्धनं गृहीत्वा व्यापारार्थं किमपि पुरं प्रति गतवान्, तत्र पुरप्रवेशनिमित्तं शुल्कं दश दत्त्वा पुरं प्रविश्य शेषधनं व्यापारेण द्विगुणं विधाय तन्मध्ये दश भुक्त्वा निर्गमनिमित्तं पुनर्दश दत्तवान् । 'रक्षानिर्वेशो राजभागः शुल्कः' इति तद्धितार्हीय-प्रकरणे दीक्षिताः । अथ तच्छेषधनं गृहीत्वा पुरान्तरं गतवान् । तत्रापि दश दत्त्वा द्विगुणीकृत्य दश भुक्त्वा दश दत्त्वा च ततस्तृतीयं नगरं गतवान् । तत्रापि दश दत्त्वा द्विगुणीकृत्य दश भुक्त्वा दश दत्त्वा च स्वगृहं प्रत्यागतवान्, एवं सति यत्प्रथमं धनं तत्त्रिगुणमभवत्, तर्हि तत्प्रथमं धनं कियदिति वदेति प्रश्नार्थः ॥

उदाहरण—

कोई बनियां कुछ धन लेकर व्यापार के लिये किसी नगर को गया, वहां द्वार में प्रवेश करते समय उसने दश रुपये राहदारी के महसूल दिये और उस नगर में जाकर अपने शेष धन को दूना

कर उस में से दश रुपये भोजन में व्यय किये और लौटते समय दश रुपये फिर राहदारी के दिये। इस प्रकार वह व्यापार के लिये तीन नगरों को जाकर अपने घर लौट आया, तो उसका धन पहले से तिगुना हो गया। कहो कितना धन लेकर गया था ?

यहां कल्पित राशि या १ है, नगर में प्रवेश करते समय दश रुपये दिये इसलिये 'या १ रू १̇०' हुआ, वहां शेष धन को दूना किया, इसलिये 'या २ रू २̇०' हुआ, दश रुपये भोजन किये इसलिये 'या २ रू ३̇०' हुआ, दश रुपये नगर से निकलते बार दिये इसलिये 'या २ रू० ४̇०' हुआ। इसी भांति दूसरे नगर में प्रवेश करते समय दश रुपये दिये इसलिये 'या २ रू ५̇०' हुआ, वहां शेष धन को दूना किया इसलिये 'या ४ रू १०̇०' हुआ, दश रुपये भोजन किये इसलिये 'या ४ रू ११̇०' हुआ, दश रुपये नगर से निकलते बार दिये इसलिये 'या ४ रू १२̇०' हुआ। इसी भांति तीसरे नगर में प्रवेश करते समय दश रुपये दिये इसलिये 'या ४ रू १३̇०' हुआ, वहां शेष धन को दूना किया इसलिये 'या ८ रू २६̇०' हुआ, दश रुपये भोजन किये इसलिये 'या ८ रू २७̇०' हुआ, और नगर से निकलते बार दश रुपये दिये इसलिये 'या ८ रू २८̇०' हुआ, यह तिगुने पहले धन के समान है, इसलिये समीकरण के अर्थ न्यास।

या ३ रू ०
या ८ रू २८̇०

समीकरण से यावत्तावत् का मान ५६ आया। आलाप—नगर में प्रवेश करते समय दश रुपये देने से शेष ४६ रहा, दूना करने से ९२ हुआ, दश रुपये भोजन करने से शेष ८२ रहा, नगर से निकलते बार दश रुपये देने से शेष ७२ रहा, फिर दूसरे नगर में प्रवेश करते समय दश रुपये देने से शेष ६२ रहा, दूना करने से १२४ हुआ, दश रुपय भोजन करने से शेष ११४ रहा, जाते बार दश रुपये देने से शेष १०४ रहा, फिर तीसरे नगर में प्रवेश करते समय दश रुपये देने से शेष ९४ रहा, दूना करने से १८८

हुआ, दश रुपये भोजन करने से शेष १७८ रहा और दश रुपये राहदारी देकर अपने घर को गया तो शेष १६८ रहा, यह धन पहले धन ५६ से तिगुना है ॥

उदाहरणम्—

सार्धं तण्डुलमानकत्रयमहो द्रम्मेण मानाष्टकं मुद्गानां च यदि त्रयोदशमिता एता वणिक्काकिणीः। आदायार्पय तण्डुलांशयुगलं मुद्गैकमानान्वितं क्षिप्रं क्षिप्रभुजो व्रजेमहि यतः सार्थोऽग्रतो यास्यति ४६ ॥

अत्र तण्डुलमानं यावत्तावत् २। मुद्गमानम् या १। यदि सार्धमानत्रयेणैको द्रम्मो लभ्यते तदानेन या २ किमिति लब्धं तण्डुलमूल्यम् या $\frac{४}{७}$। यदि मानाष्टकेनैको द्रम्मस्तदानेन या १ किमिति लब्धं मुद्गमूल्यम् या $\frac{१}{८}$ अनयोर्योगः या $\frac{३६}{५६}$ त्रयोदशकाकिणीसम इति द्रम्मजात्या $\frac{१३}{६४}$ साम्यकरणाल्लब्धं यावत्तावन्मानम् $\frac{७}{२४}$ अनेनोत्थापिते तण्डुलमुद्गमूल्ये $\frac{१}{६}$ $\frac{७}{१९२}$ तण्डुलमुद्गमानभागाश्च $\frac{७}{१२}$ $\frac{७}{२४}$

अथोदाहरणान्तरं शार्दूलविक्रीडितेनाह—सार्धमिति। अयं व्याख्यातोऽपि लीलावतीव्याख्याने संदिग्धांशः पुनरप्यभिधीयते—व्रजेम गच्छेम। 'हि इति पृथक्। विधिनिमन्त्रणामन्त्रणा-

धीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्, इति लिङि, व्रजधातोः सकाशादुत्तमपुरुषबहुवचनविवक्षायामसि कृते उक्तवत् 'व्रजेमस्' इति जाते नित्यं ङित इति सकारलोपे 'व्रजेम' इति रूपनिष्पत्तिः। अत एव 'व्रजेम भवदन्तिकं प्रकृतिमेत्य पैशाचकीं—' इत्यादिषु महाकविप्रयोगेषु तादृशमेव रूपमुपलभ्यते।

उदाहरण—

एक पान्थ (राही) किसी बनिये से कहता है कि हे वणिक्, एक द्रम्म में अढाई मान चावल और आठ मान मूंग आता है, इस भाव से तेरह काकिणी में दो भाग चावल और एक भाग मूंग दो, मेरे को खिचड़ी बनानी है, तो कहो उसके दाम और भाग कितने-कितने हैं ?

यहां चावल का मान या २ और मूंग का मान या १ कल्पना करके अनुपात करते हैं—यदि अढाई मान में एक द्रम्म, तो या २ में क्या ? चावल का मोल या $\frac{४}{७}$ आया। यदि आठ मान में एक द्रम्म, तो या १ में क्या ? मूंग का मोल या $\frac{१}{८}$ आया। इन मोलों का समच्छेद से योग या $\frac{३६}{५६}$ हुआ। यह तेरह काकिणी के समान है, पर पूर्वपक्ष द्रम्मात्मक है इसलिये इसको भी द्रम्मात्मक कर लेना चाहिये। इसलिये चौंसठ का भाग देने से दो पक्ष समान सिद्ध हुए—

या $\frac{३६}{५६}$ रू०
या० रू $\frac{१३}{६४}$

आठ से अपवर्तित ७।८ हरों से पक्षों का समच्छेद और छेदगम करने से हुए—

या ३१२ रू०
या० रू ९१

अव्यक्त शेष ३१२ का रूप शेष ९१ में भाग देने से, यावत्तावत् का मान $\frac{९१}{३१२}$ हुआ। इसमें १३ का अपवर्तन देने से $\frac{७}{२४}$ हुआ। इस से सब में उत्थापन देना चाहिये—चावल का मोल या $\frac{४}{७}$ आया था, इस से यावत्तावन्मान $\frac{७}{२४}$ को गुणना है तो 'अंशाहतिश्छेदवधेन भक्ता—' इस सूत्र के अनुसार, अंशों और छेदों का घात $\frac{२८}{१६८}$

हुआ । इस में अंश २८ का अपवर्तन देने से चावल का मोल $\frac{१}{६}$ हुआ । इसी भांति मूंग के मोल या $\frac{१}{८}$ से यावत्तावन्मान $\frac{७}{२४}$ को गुणा देने से मूंग का मोल $\frac{७}{१९२}$ हुआ । इसी प्रकार, चावल और मूंग के या २ या १ भागों से यावत्तावन्मान $\frac{७}{२४}$ को अलग-अलग गुणा देने से चावल और मूंग के हिस्से हुए $\frac{१४}{२४} = \frac{७}{१२}$ । $\frac{७}{२४}$ ॥

उदाहरणम्—

स्वार्धपञ्चांशनवमैर्युक्ताः के स्युः समास्त्रयः ।
अन्यांशद्वयहीनाश्च षष्टिशेषाश्च तान्वद * ॥

अत्र समराशिमानं यावत्तावत् १ अतो विलोमविधिना 'अथ स्वांशाधिकोनेन—' इत्यादिना राशयः या $\frac{२}{३}$ या $\frac{५}{६}$ या $\frac{९}{१०}$ इहान्यभागद्वयोनाः सर्वेऽप्येवं शेषाः स्युः या $\frac{२}{५}$ एतत्षष्टिसमं कृत्वाप्तयावत्तावन्मानेन १५० उत्थापिता जाता राशयः १००।१२५।१३५।

अथानुष्टुभोदाहरणमाह—स्वार्धेति। इह ये राशयः स्वार्धपञ्चांशनवमैर्युक्ताः सन्तः समाः स्युः । अथ चान्यांशद्वयहीनाः सन्तः षष्टिशेषाः स्युस्ते के, तान्वद। एतदुक्तं भवति—राशित्रयमस्ति तत्र प्रथमः स्वस्य निजस्यार्धेन, द्वितीयः स्वपञ्चमांशेन, तृतीयः स्वनवमांशेन युक्तः सर्वेऽपि समा एव भवन्ति । अथच प्रथमराशिर्द्वि-

---

* अत्र ज्ञानराजदैवज्ञः—

सार्धत्रिपञ्चकलवैः सहिताः समाना
अन्यांशयुग्मरहिताश्च खरामशेषाः ।
राशित्रयं वद तदा यदि बुद्धिरेव
बीजं तवास्ति शुभरूपमनेकवर्णम् ॥

तीयस्य पञ्चमांशेन तृतीयस्य नवमांशेन च हीनः सन् षष्टिर्भवति। द्वितीयराशिः प्रथमस्यार्धेन तृतीयस्य नवमांशेन च हीनः सन् षष्टिर्भवति। तृतीयराशिः प्रथमस्यार्धेन द्वितीयस्य पञ्चमांशेन च हीनः सन् षष्टिर्भवति तर्हि ते के राशयः, तान् वद ॥

उदाहरण—

कोई तीन राशि हैं, उन में पहली राशि अपने आधे से, दूसरी अपने पांचवें भाग से, तीसरी अपने नौवें भाग से युक्त करने पर समान हो जाती हैं। और पहली राशि, दूसरे के पांचवें भाग से, तीसरे के नौवें भाग से घटाने पर साठ होती है। दूसरी राशि, पहले के आधे से और तीसरे के नौवें भाग से घटी हुई साठ होती है। तीसरी राशि, पहले के आधे से और दूसरे के पांचवें भाग से घटी हुई साठ होती है तो कहो वे कौन राशियाँ हैं ?

यहां समराशि का मान यावत्तावत् १ है, अब राशियाँ अज्ञात हैं, इसलिये विलोम विधि से ज्ञात होंगी। राशि का आधा $\frac{१}{२}$ पांचवां भाग $\frac{१}{५}$ और नौवां भाग $\frac{१}{९}$ 'अथ स्वांशाधिकोने तु लवाढ्योनो हरो हरः, अंशस्त्वविकृतः—' इस सूत्र के अनुसार या $\frac{१}{३}$ या $\frac{१}{६}$ या $\frac{१}{१०}$। इन भागों को समराशि में अलग-अलग घटाने चाहिये क्योंकि '—स्वमृणं—' यह कहा है। इस प्रकार प्रत्येक राशि सिद्ध हो सकती हैं।

अथवा, राशि या १ है, यह अपने आधे $\frac{१}{२}$ से युक्त करने से $\frac{३}{२}$ हुआ, इसका तीसरा भाग ही $\frac{१}{२}$ राशि का आधा है। इसी भांति और राशियों में भी जानना।

अब प्रकृत में समराशि या १ है, इसे अपने तीसरे भाग या $\frac{१}{३}$ से हीन करने से पहली राशि या $\frac{२}{३}$ हुई। फिर वही समराशि या १ अपने छठे भाग या $\frac{१}{६}$ से हीन दूसरी राशि या $\frac{५}{६}$ हुई। फिर वही या १ अपने दशवें भाग या $\frac{१}{१०}$ से हीन तीसरी राशि या $\frac{९}{१०}$ हुई। इन राशियों का क्रम से न्यास—

या $\frac{२}{३}$ या $\frac{५}{६}$ या $\frac{९}{१०}$।

अब इन में से किसी एक राशि में, अन्य राशियों के दो अंश घटाने चाहिये—पहली राशि या $\frac{२}{३}$ है, इसमें दूसरी राशि या $\frac{५}{६}$ का पांचवां भाग या $\frac{५}{३०}$ घटाने के लिये न्यास—या $\frac{२}{३}$ या $\frac{५}{३०}$, समच्छेद से या $\frac{६०}{९०}$ या $\frac{१५}{९०}$ इनके अन्तर या $\frac{४५}{९०}$ में पैंतालीस का अपवर्तन देने से या $\frac{१}{२}$ हुआ, इसमें तीसरी राशि या $\frac{६}{१०}$ का नौवां भाग या $\frac{६}{९०}$ समच्छेद करके घटाने से या $\frac{७२}{१८०}$ हुआ। इसमें छत्तीस का अपवर्तन देने से या $\frac{२}{५}$ राशि हुई—अब दूसरी राशि या $\frac{५}{६}$ में पहले या $\frac{२}{३}$ का आधा या $\frac{२}{६}$ और तीसरे या $\frac{६}{१०}$ का नौवां भाग या $\frac{६}{९०}$ अर्थात् इनके योग या $\frac{३६}{९०}$ को घटा देने से शेष या $\frac{३६}{९०}$ रहा, इस में अठारह का अपवर्तन देने से, पहले के तुल्य ही राशि या $\frac{२}{५}$ रही। फिर तीसरी राशि या $\frac{६}{१०}$ में पहले या $\frac{२}{३}$ का आधा या $\frac{२}{६}$=या $\frac{१}{३}$ और दूसरे या $\frac{५}{६}$ का पांचवां भाग या $\frac{५}{३०}$= या $\frac{१}{६}$ इनके योग या $\frac{३}{६}$=या $\frac{१}{२}$ को घटा देने से या $\frac{८}{२०}$ शेष रहा, इस में चार का अपवर्तन देने से पहले के तुल्य ही राशि या $\frac{२}{५}$ रही। अब यह साठ के समान है, इस लिये समीकरण के लिये न्यास—

या $\frac{२}{५}$ रू०
या० रू६०

उक्त रीति के अनुसार यावत्तावत् का मान १५० आया। इस से उत्थापन देते हैं—यावत्तावन्मान १५० को पहली राशि या $\frac{२}{३}$ के अंश से गुणा ३०० इस में हर ३ का भाग देने से पहली राशि १०० हुई। इसी प्रकार, यावत्तावत् के मान १५० को दूसरी राशि या $\frac{५}{६}$ के अंश से गुणा ७५० इस में हर ६ का भाग देने से दूसरी राशि १२५ हुई। और यावत्तावत् के मान १५० को तीसरी राशि या $\frac{६}{१०}$ के अंश से गुणा १३५० इस में हर १० का भाग देने से तीसरी राशि १३५ हुई। इनका क्रम से न्यास। १०० । १२५ । १३५ ये राशियाँ क्रम से अपने आधे ५०, पांचवें २५, नौवें भाग १५ से जुड़ी समान होती हैं।

१००+५०=१५०
१२५+२५=१५०
१३५+१५=१५०

} इन्हीं का मान यावत्तावत् कल्पना किया था।

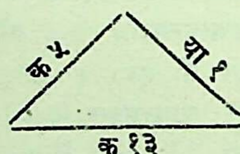
आलाप—पहली राशि १०० अन्य दो राशियों १२५।१३५ के पांचवें और नौवें भाग २५+१५=४० से हीन षष्टि शेष १००−४०=६० होती है। इसी भांति, दूसरी राशि १२५ अन्य दो राशियों १००।१३५ के आधे और नौवें भाग ५०+१५=६५ से हीन षष्टि शेष १२५−६५=६० होती है। तीसरी राशि १३५ अन्य दो राशियों १००।१२५ के आधे और पांचवें भाग ५०+२५=७५ से हीन षष्टि शेष १३५−७५=६० होती है।

उदाहरणम्—

त्रयोदश तथा पञ्च करण्यौ भुजयोर्मिती।
भूरज्ञाता च चत्वारः फलं भूमिं वदाशु मे ४८

अत्र भूमेर्यावत्तावत्कल्पने क्रिया प्रसरतीति स्वेच्छया त्र्यस्रे क १३ भूमिः कल्प्यते फल-विशेषाभावात्। अतोऽत्र कल्पितं त्र्यस्रम्

अत्र 'लम्बगुणं भूम्यर्धं स्पष्टं



त्रिभुजे फलं भवति' इति व्यत्ययेन फलाल्लम्बो जातः क $\frac{६४}{१३}$ एतद्वर्गं भुजकरणी ५ वर्गात् रू ५ अपास्य रू $\frac{१}{१३}$ मूलं जाताबाधा क $\frac{१}{१३}$। इमां भूमेरपास्य 'योगं करण्योर्महतीं प्रकल्प्य' इति जातान्या बाधा क $\frac{१४४}{१३}$ अस्या वर्गात् रू

$\frac{१४४}{१३}$ लम्बवर्ग रू $\frac{६४}{१६}$ युतात् रू $\frac{२०८}{१३}$ मलं जातो भुजः ४ इयमेव भूमिः ।

अथान्यदुदाहरणमनुष्टुभाह—त्रयोदशेति । 'फलं क्षेत्रफलं, भूमिं वद' इति प्रश्नादेव भूमेरज्ञाने सिद्धे 'भूरज्ञाता' इति पुनर्वचनमस्मिन्गणिते भूमेर्यावत्तावत्त्वेनापि ज्ञानं नापेक्षितमिति सूचनार्थम् । अन्यत्स्पष्टार्थमपि व्याख्यायते—हे गणितिक, यस्मिन् क्षेत्रे त्रयोदश तथा पञ्च करण्यौ भुजयोर्मिती प्रमाणे स्तः । भूरज्ञाता अविदितमानेत्यर्थः । फलं चत्वारस्तत्र भूमिमाशु शीघ्रं वद ॥

उदाहरण—

जिस क्षेत्र में एक भुज करणी पांच और दूसरा करणी तेरह है, मि अज्ञात है और क्षेत्रफल चार है, वहां भूमि का मान क्या होगा ?

(१) भूमि का मान यावत्तावत् मानने से, मध्यमाहरण के विना क्रिया का निर्वाह नहीं होता । जैसा—भूमि का मान यावत्तावत् १ कल्पना करके 'त्रिभुजे भुजयोर्योगः—' इस सूत्र के अनुसार आबाधा लाते हैं । भुजों क १३ । क ५ का योग क १३ क ५ है, इस को उन के अन्तर क १३ क ५̇ से गुणने के लिये न्यास—

गुण्य=क १३ क ५
गुणक=क १३ क ५̇

क १६९ क ६५
क ६५̇ क २५̇

गुणनफल=रू १३ रू ५̇

यहां ६५ । ६५̇ इन धनर्ण करणियों की तुल्यता से नाश हुआ । क १६९ क २५̇ इन के मूल रू १३ रू ५̇ के अन्तर रू ८ में भूमि या १ का भाग देने से $\frac{\text{रू } ८}{\text{या } १}$ हुआ, इस से भूमि या को एक

स्थान में ऊन और दूसरे स्थान में युत करने से $\frac{\text{याव १ रू ८̇}}{\text{या १}}$,

$\frac{\text{याव १ रू ८}}{\text{या १}}$ इनका आधा आबाधा हुई $\frac{\text{याव १ रू ८̇}}{\text{या २}}$। $\frac{\text{याव १ रू ८}}{\text{या २}}$।

अब लघु आबाधा $\frac{\text{याव १ रू ८̇}}{\text{या २}}$ के वर्ग $\frac{\text{यावव १ याव १६ रू ६४}}{\text{याव ४}}$

को लघु भुज रू ५ के वर्ग २५ में घटा देने से लम्ब का वर्ग हुआ $\frac{\text{यावव १̇ याव ३६ रू ६४̇}}{\text{याव ४}}$। ऐसे ही बड़ी आबाधा $\frac{\text{याव १ रू ८}}{\text{या २}}$

के वर्ग $\frac{\text{यावव १ याव १६ रू ६४}}{\text{याव ४}}$ को बड़े भुज रू १३ के वर्ग

रू १३ में घटा देने से वही लम्ब वर्ग आया $\frac{\text{यावव १̇ याव ३६ रू ६४̇}}{\text{याव ४}}$।

अब प्रकारान्तर से लम्ब वर्ग का साधन करते हैं—'लम्बगुणं भूम्यर्धं स्पष्टं त्रिभुजे फलं भवति—' इस सूत्र के अनुसार विलोम विधि से क्षेत्रफल ४. भूमि या १ के आधे से या ½ भाजित लम्ब होता है $\frac{\text{रू ८}}{\text{या १}}$ इसका वर्ग $\frac{\text{रू ६४}}{\text{याव १}}$ पहले सिद्ध लम्ब वर्ग के समान है, इसलिये समीकरण के लिए न्यास—

$$\frac{\text{यावव १̇ याव ३६ रू ६४̇}}{\text{याव ४}}$$

$$\frac{\text{रू ६४}}{\text{याव १}}$$

समच्छेद और छेदगम से हुए—

यावव १̇ याव ३६ रू ६४̇

यावव. याव. रू २५६

समशोधन से हुए—

यावव १ याव ३६ रू०

यावव० याव रू ३२०̇

यहां 'अव्यक्तवर्गादि यदावशेषं—' इस वक्ष्यमाण मध्यमाहरण के प्रकार से, दोनों पक्ष में अठारह के वर्ग ३२४ को जोड़ देने से मूल आया—

याव १ रू १८̇

याव ० रू २

अब 'अव्यक्तपक्षर्णगरूपतोऽल्पं—' इस विधि के अनुसार दो प्रकार का यावत्तावत्-वर्ग मान आया २० । १६ । पहला मान २० अनुपपन्न है । दूसरे मान १६ का मूल ४ यावत्तावत् मान है, और यही भूमि है । पहले सिद्ध लम्ब-वर्ग $\frac{\text{याव व १̇ याव ३६ रू ६४̇}}{\text{याव ४}}$ को भूमि या १ के आधे के वर्ग याव १/४ से गुण देने से, क्षेत्रफल का वर्ग $\frac{\text{याव व १̇ याव ३६ रू ६४̇}}{\text{१६}}$ यह क्षेत्रफल ४ के वर्ग १६ के समान है इसलिये समीकरणार्थ न्यास—

$$\frac{\text{याव व १̇ याव ३६ रू ६४̇}}{\text{१६}}$$

रू १६

समच्छेद और छेदगम से हुए—

याव व १̇ याव ३६ रू ६४̇

याव व ० याव ० रू २५६

समशोधन और पक्षों में अठारह का वर्ग जोड़ देने से मूल आया—

याव १ रू १८̇

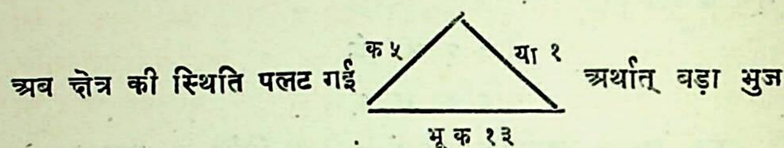
याव ० रू २

यहां भी समीकरण से, द्विविध यावत्तावत् वर्ग का मान आया २० । १६ यहां दूसरे मान १६ का मूल ४ भूमि है ।

(२) आचार्य इस बड़ी प्रक्रिया को छोड़ कर, लघु रीति से

आनयन करते हैं। जैसा—अपनी इच्छा से 'क १३' भुज को भूमि कल्पना किया, क्योंकि ऐसी कल्पना से फल में कुछ भेद नहीं होता।

अब क्षेत्र की स्थिति पलट गई



अर्थात् बड़ा भुज भूमि, छोटा भुज एक भुज और यावत्तावत् १ दूसरा भुज हुआ। 'लम्बगुणं भूम्यर्धं—' इस सूत्र के अनुसार, लम्ब से गुणित भूमि का आधा क्षेत्रफल होता है, तो विलोमकर्म से क्षेत्रफल, भूमि के आधे से भाजित लम्ब होगा। यहां यद्यपि दो के भाग देने से आधा होता है, इस लिये भूमि के आधा करने के लिये दो का भाग देना उचित है तो भी 'वर्गेण वर्गं गुणयेद्भजेच्च—' के अनुसार वर्गरूपिणी भूमि के आधा करने के लिये, चार ही का भाग देना योग्य है। भूमि का आधा क $\frac{१३}{४}$ हुआ, इससे भाजित वर्गीकृत-क्षेत्रफल क १६ लम्ब हुआ। क $\frac{६४}{१३}$ का वर्ग क $\frac{४०९६}{१६९}$ हुआ, इसको ज्ञात कर्ण क ५ के वर्ग क २५ में घटाने के लिये समच्छेद हुआ—

$$\frac{क\ ४०९६}{क\ १६९}\quad \frac{क\ ४२२५}{क\ १६९}$$

इन का 'योगं करण्योर्महतीं प्रकल्प्य——' के अनुसार योग, महती करणी $\frac{८३२१}{१६९}$ हुई, और इन के घात $\frac{१७३०५६००}{२८५६१}$ का मूल $\frac{४१६०}{१६९}$ दूना $\frac{८३२०}{१६९}$ लघुकरणी हुई। इसका और महती के अन्तर $\frac{८३२१}{१६९} - \frac{८३२०}{१६९} = \frac{१}{१६९}$ का मूल क $\frac{१}{१३}$ छोटी आबाधा हुई। और लम्ब क $\frac{६४}{१३}$ के वर्ग रू $\frac{६४}{१३}$ को, भुज क ५ के वर्ग रू ५ में

समच्छेद करके घटा देने से रू $\frac{१}{१३}$ मूल क $\frac{१}{१३}$ आया । यही छोटी आबाधा है । जैसा—करणी के वर्ग में करणी के तुल्य रूप होते हैं, वैसा ही रूपों के वर्ग में, रूप तुल्य करणी होनी चाहिये । जैसा—क ५ का वर्ग रू ५ हुआ, और उसका मूल वही क ५ हुई । क्योंकि जिस राशि का जो वर्ग होता है, उसका मूल वही राशि है । अब उस आबाधा क $\frac{१}{१३}$ को भूमि क १३ में घटाने के लिये न्यास ।

क १३ क $\frac{१}{१३}$

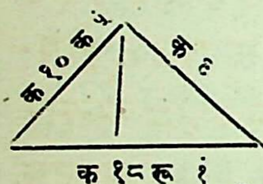
इन का समच्छेद करके योग क $\frac{१७०}{१३}$ महती हुई, और उनके घात क $\frac{१३}{१३}$ में हर का भाग देने से १ लब्धि आई । इसके मूल को दूना करने से लघुकरणी २ हुई । इसका महती करणी $\frac{१७०}{१३}$ के साथ समच्छेद और अन्तर से दूसरी आबाधा क $\frac{१४४}{१३}$ हुई । क $\frac{१४४}{१३}$ आबाधा भुज लम्ब क $\frac{६४}{१३}$ कोटि और अज्ञात भुज या १ कर्ण है। यहां भुज और कोटि के ज्ञान से 'तत्कृत्योर्योगपदं कर्णः—' इस सूत्र से कर्ण ज्ञान सुलभ है । जैसा—आबाधा के वर्ग रू $\frac{१४४}{१३}$ में लम्ब वर्ग रू $\frac{६४}{१३}$ को जोड़ देने से $\frac{२०८}{१३}$ हुआ, इस में छेद १३ का भाग देने से १६ लब्धि का मूल ४ यावत्तावन्मित भुज का मान क ४ हुआ । यही वह भूमि है । (३) अब अन्य भुज क ५ को भूमि कल्पना किया और पूर्व रीति के अनुसार लम्ब क $\frac{६४}{५}$ आया, इसके वर्ग रू $\frac{६४}{५}$ को भुज क १३ के वर्ग रू १३ में समच्छेद करके घटा देने से रू $\frac{१}{५}$ शेष बचा । इसका मूल क $\frac{१}{५}$ पहली आबाधा हुई । इस को भूमि में घटाने के लिये समच्छेद क $\frac{१}{५}$ क $\frac{२५}{५}$ से योग क $\frac{२६}{५}$ महती करणी हुई, और इनके घात २५ में हर घात २५ का भाग देने से १ लब्धि का मूल, द्विगुण २ लघुकरणी हुई । अब इन दोनों करणियों का समच्छेद और अन्तर करने से दूसरी आबाधा क $\frac{१६}{५}$ हुई ।

अब इस दूसरी अबाधा के वर्ग रू $\frac{१६}{५}$ में, लम्बवर्ग रू $\frac{६४}{५}$ को जोड़ने से $\frac{८०}{५}$ में हर ५ का भाग देने से १६ लब्धि का मूल ४ वही भूमि क ४ हुई । इसी को यावत्तावन्मित भुज माना गया था ॥

उदाहरणम्—

दशपञ्चकरण्यन्तर-
मेको बाहुः परश्च षट्करणी ।
भूरष्टादशकरणी
रूपोना लम्बमाचक्ष्व ॥ ४९ ॥

अत्राबाधाज्ञाने लम्बज्ञानमिति लघ्वाबाधा या १ । एतदूना भूरन्याबाधा प्रमाणमिति तथा



न्यासः स्वाबाधावर्गं भुजवर्गा-
दपास्य जातो लम्बवर्गः याव १̇ रू १५ क २०̇० द्वितीयाबाधावर्गं याव १ या क ७२̇ या २ रू १९ क ७२̇ स्वभुजवर्गा रू ६ दपास्य जातो द्वितीयो लम्बवर्गः याव १̇ या २̇ या क ७२ रू १३̇ क ७२ एतौ समाविति समशोधने कृते जातौ पक्षौ

रू २८̇ क १५२
या २ या क ७२̇

अत्र भाजकस्याऽव्यक्तशेषस्य याकारस्य प्र-

योजनाभावादपगमे कृते भाज्यभाजकौ जातौ।

रू २८ं क १५२

रू २ क ७२ं

अत्र 'धनर्णताव्यत्ययमीप्सितायाः—' इत्यादिना द्विसप्ततिमितकरण्या धनत्वं प्रकल्प्य क ४ क ७२ अनया भाज्ये गुणिते जातम् क ३६८६४ क ३१३६ क ५६४४ं८ क २०४८। एतास्वेतयोः क ३६८६४ क ३१३ं६ मूले १९२। ५ं६ अनयोर्योगः रू १३६ शेषकरणयोरनयोः क ५६४४ं८ क २०४८ अन्तरं योग इति जातो योगः क ३६९९२। भाजके च क ४६ं२४। अनया भाज्ये हृते लब्धं यावत्तावन्मानम् रू २ं क ८। इयमेव लघ्वाबाधा एतदूना भूरन्याबाधा रू १ क २। यावत्तावन्मानेन लम्बवर्गावुत्थाप्य स्वाबाधावर्गं स्वभुजवर्गादपास्य वा जातो लम्बवर्गः रू ३ क ८ं एतस्य मूलं सममेव लम्बमानम् रू १ं क २।

उदाहरण—

जिस क्षेत्र में दश और पांच करणियों का अन्तर एकभुज है, करणी छ दूसरा भुज है और रूपोन अठारह करणी भूमि है, वहां लम्ब क्या होगा ?

(१) आबाधा के ज्ञान से लम्ब का ज्ञान होता है. यहां छोटी आबाधा का मान यावत्तावत् १ मान कर उसको भूमि क १८ रू १ं में घटा देने से बड़ी आबाधा या १ं रू १८ रू १ं हुई। अब दोनों आबाधा भुज और दोनों भुज कर्ण हुए और दोनों स्थानों में लम्ब ही कोटि है। अपने अपने आबाधा वर्ग को अपने अपने भुज-वर्ग में घटा देने से लम्बवर्ग होता है, तो लघुभुज क १० क ५ं के वर्ग के लिये न्यास—

क १० क ५ं

वर्ग=क १०० क २०ं क २५

यहां पहली क १०० और तीसरी क २५ करणी का 'योगं करण्योः—' सूत्र के अनुसार योग क २२५ का मूल रू १५ है। और लघु भुजवर्ग रू १५ क २०ं में अपनी आबाधा वर्ग याव १ को घटा देने से लम्बवर्ग याव १ं रू १५ क २०ं सिद्ध हुआ। दूसरे लम्ब-वर्ग का आनयन करते हैं—

दूसरी आबाधा—

या १ं क १८ रू १ं

वर्ग=याव १ या २ या. क ७२ं रू १ क ७२ं क ३२४

यह वर्ग 'स्थाप्योऽन्त्यवर्गः—' इस सूत्र से यथासंभव (करणी और यावत्तावत् आदि के भेद होने से) दूने और चौगुने अन्त अङ्क के गुणन आदि क्रिया से हुआ है। अन्त्यकरणी ३२४ के मूल १८ में रूप १ जोड़ देने से रू १९ का और अन्य खण्डों का, भिन्न-जाति होने से पृथक् स्थिति हुई—

याव १ या २ या. क ७२ं रू १९ क ७२ं

इसको अपने भुज क ६ वर्ग रू ६ में घटा देने से, लम्ब वर्ग हुआ, याव १ या २ं या. क ७२ रू १३ं क ७२ दोनों लम्बवर्ग समान हैं, इसलिये समशोधनार्थं न्यास—

याव १ं रू १५ क २०ं

याव १ं या २ं या. क ७२ रू १३ं क ७२

दूसरे पक्ष के तीन अव्यक्त खण्डों को पहले पक्ष में घटा देने से और पहले पक्ष के रूप १५ और करणी २०० को, दूसरे पक्ष में घटा देने से शेष रहा—

या २ या. क ७२

रू २८ क ७२ क २००

दूसरे पक्ष की क ७२ क २०० करणियों का 'योगं करण्योः—' सूत्र के अनुसार योग क ५१२ से पक्ष हुए—

या २ या. क ७२

रू २८ क ५१२

दोनों पक्ष समान ही हैं, क्योंकि पक्षों का तुल्य शोधन किया था, अब 'शेषाव्यक्तेनोद्धरेद्रूपशेषं व्यक्तं मानं जायतेऽव्यक्तराशेः' के अनुसार व्यक्तमान हुआ—

$$\frac{\text{रू २८ क ५१२}}{\text{या २ या. क ७२}}$$

यदि या २ या. क ७२ इस अव्यक्त का 'रू २८ क ५१२, यह व्यक्तमान आता है, तो यावत्तावत् १ का क्या ? फल की इच्छा से गुणाकर, प्रमाण का भाग देने से लब्धि मिली—

$$\text{लब्धि} = \frac{\text{या} \times \text{रू २८ या} \times \text{क ५१२}}{\text{या २ या} \times \text{क ७२}} ।$$

यावत्तावत् १ का अपवर्तन देने से—

$$= \frac{\text{रू २८ क ५१२}}{\text{रू २ क ७२}} ।$$

इसीलिये आचार्य ने कहा है कि 'अत्र भाजकस्याव्यक्तशेषस्य याकारस्य प्रयोजनाभावादपगमे कृते समभाज्यभाजकौ जातौ' अर्थ— भाजक के अव्यक्त शेष या अर्थात् यावत्तावत् का कुछ प्रयोजन नहीं है। इस लिये उसका अपगम नाश, करने से भाज्य भाजक समान हुए।

अब 'धनर्णताव्यत्ययमीप्सितायाः—' सूत्र के अनुसार भाजकगत क ७२ को धन मानने से, और रू २ को करणीरूप में लाने से भाजक क ४ क ७२ हुआ। भाज्यगत रू २८ का वर्ग ७८४ यह 'क्षयो भवेच्च क्षयरूपवर्गश्चेत्साध्यतेऽसौ करणीत्वहेतोः' इस सूत्र के अनुसार ऋण भाज्य क ७८४ क ५१२ हुआ। अब इन भाज्य भाजकों का गुणन के लिये न्यास—

गुण्य=क ७८४ क ५१२
गुणक=क ४ क ७२

क ३१३६ क २०४८
क ५६४४८ क ३६८६४

गुणनफल=क १८४९६ क ३६९९२

यहां क ३१३६ क ३६८६४ इन के मूल ५६। १९२ हुए, इन का अन्तर १३६ धन हुआ, इसका वर्ग १८४९६ गुणनफल में पहली करणी है। और क २०४८ क ५६४४८ इन में २ का अपवर्तन देने से क १०२४ क २८२२४ इन के मूल ३२। १६८ का अन्तर १३६ हुआ। इसके वर्ग १८४९६ को अपवर्तनाङ्क २ से गुणने से गुणनफल में दूसरी करणी ३६९९२ हुई।

गुण्य=क ४ क ७२
गुणक=क ४ क ७२

क १६ क २८८
क २८८ क ५१८४

गुणनफल=क १६ क ५१८४

यहां क २८८ क २८८ इन का 'धनर्णयोरन्तरमेव—' सूत्र के अनुसार तुल्यता के कारण नाश हुआ तो क १६ क ५१८४ शेष रहीं, इनके मूल ४। ७२ का अन्तर ६८ हुआ, इसका वर्ग करणी ४६२४ हुई। अब भाजकगत क ४६२४ का भाज्यगत क १८४९६

क ३६६९६२ करणियों में भाग देने से यावत्तावन्मान क ४ं क ८ आया, यहां पहली करणी ४ं का 'ऋणात्मिकायाश्च तथा करण्याः—' सूत्र के अनुसार, मूल रू २ं हुआ। इस प्रकार छोटी आबाधा रू २ं क ८ हुई। इसको भूमि रू १ं क १८ में 'योगं करण्योः—' सूत्र के अनुसार घटा देने से, दूसरी आबाधा रू १ क २ हुई। अब यावत्तावन्मान से उत्थापन के लिये लम्बवर्ग का न्यास—

याव १ं रू १५ क २०ं

इस लम्बवर्ग में पहला खण्ड याव १ं है, इसलिये क ४ं क ८ इस यावत्तावन्मान का पूर्व रीति से वर्ग हुआ—

क ४ं क ८

क १६ क १२८ं क ६४

वर्ग=रू १२ क १२८ं

यह वर्ग का मान, यावत्तावत्वर्ग १ं के ऋणगत होने से ऋणरूप १ं से गुणित ऋण यावत्तावत् वर्ग का मान रू १२ं क १२८। और उत्तर खण्ड रू १५ क २०ं व्यक्त होने से यथास्थित रहा। अब 'धनर्णयोरन्तरमेव योगः' सूत्र के अनुसार, रू १२ं रू १५ का योग रू ३ हुआ, और क १२८ क २०ं० का अन्तर 'योगं करण्योः—' सूत्र से अथवा 'आदौ करण्यावपवर्तनीयौ—' इस सिद्ध रीति के अनुसार, क ८ं हुआ। इस भांति लम्बवर्ग 'रू ३ क ८ं' हुआ।

इसी प्रकार, दूसरे लम्ब वर्ग का उत्थापनार्थ न्यास—

याव १ं या २ं या. क ७२ रू १३ं क ७२

यहां पहले तीन खण्ड अव्यक्तात्मक हैं। पूर्वरीति से पहले खण्ड यावत्तावत्वर्ग १ं का मान रू १२ं क १२८ हुआ, और दूसरा खण्ड ऋण यावत्तावत् २ं है, इस से यावत्तावत् मान रू २ं क ८ के प्रथम खण्ड रू २ं को गुणाने से रू ४ हुआ और दूसरा खण्ड क ८ 'वर्गेण वर्गं गुणयेत्—' सूत्र से क ३२ं हुई। अब ऋण यावत्तावत् दो का मान रू ४ क ३२ं हुआ। तीसरा खण्ड यावत्तावत् करणी का घात बहत्तर है, उस से यावत्तावत् मान रू २ं क ८ को गुण

देने से क २८ं८ क ५७६ हुईं, इन में दूसरी का मूल रू २४ आया। अब तीसरे खण्ड का मान रू २४ क २८ं८ हुआ। यहां सर्वत्र, यदि एक यावत्तावत् का मान क ४ं क ८ आता है, तो यावत्तावत् वर्ग १ का क्या? अथवा, यावत्तावत् २ं का क्या? अथवा, यावत्तावत् से गुणित करणी बहत्तर का क्या? इस प्रकार अनुपात से प्रमाण और इच्छा में यावत्तावत् के अपवर्तन से निम्नलिखित मान होते हैं और चौथा खण्ड व्यक्त ही है रू १३ं क ७२। इन सब का योग लम्बवर्ग होने के योग्य है।

रू १२ं क १२८
रू ४ क ३२ं
रू २४ क २८ं८
रू १३ं क ७२

यहां पर रूपों का योग ३ होता है और पहली दूसरी करणियों का १२८। ३२ं का अन्तर 'लघ्व्याहृतायास्तु—' सूत्र के अनुसार क ३२ हुआ, बाद उसका और तीसरी करणी २८ं८ का अन्तर 'लघ्व्याहृतायास्तु—' सूत्र से क १२८ं हुआ, फिर उसका और चौथी करणी ७२ का अन्तर 'योगं करण्योः—' सूत्र से क ८ं हुआ, इस प्रकार लम्बवर्ग रू ३ क ८ं हुआ।

(२) अब प्रकारान्तर से लम्बवर्ग का साधन करते हैं—कर्णरूप लघुभुज क ५ं क १०ं का वर्ग रू १५ क २०ं० में भुजरूप लघु आबाधा क ४ं क ८ के वर्ग रू १२ क १२८ं को घटा देने से वही लम्बवर्ग रू ३ क ८ं आया। इसी प्रकार, बड़ी आबाधा क १ क २ वर्ग रू ३ क ८ हुआ, इस को बड़े भुज क ६ के वर्ग रू ६ में घटा देने से, वही लम्बवर्ग रू ३ क ८ं शेष रहा। अब उसका मूल लाते हैं—'ऋणात्मिका चेत्करणी कृतौ स्याद्धनात्मिकां तां परिकल्प्य साध्ये' सूत्र से रूप ३ के वर्ग ९ में धन करणी आठ के तुल्य रूप ८ घटाने से शेष १ रहा, इस के मूल १ से रूप ३ को युक्त और हीन करने से ४। २ हुआ इन का आधा २। १ हुआ। यहां 'ऋणात्मिकैका सुधियावगम्या' के अनुसार, छोटी

करणी १ को ऋण मानने से लम्ब १̇ क २ हुआ। फिर 'ऋणात्मिकायाश्च तथा करण्या मूलं क्षयो रूपविधानहेतोः' सूत्र से पहली करणी १̇ का मूल रू १̇ क २ लम्ब हुआ।

(३) यह उदाहरण व्यक्तरीति से भी सिद्ध होता है—जैसा—'त्रिभुजे भुजयोर्योगः—' इस सूत्र से क ५̇ क १०। क ६ भुजों का योग क ५̇ क १० क ६ हुआ और लघुभुज क ५̇ क १० को बड़े भुज क ६ में घटा देने से अन्तर क ५ क १०̇ क ६ हुआ। अन्तर से योग को गुणने के लिये न्यास—

गुण्य=क ५̇ क १० क ६
गुणक=क ५ क १̇० क ६

क २५̇ क ५० क ३०
क ५० क १०̇० क ६̇०
क ३०̇ क ६० क ३६

गुणनफल=रू ९̇ क २००

यहां ३० । ३०̇ । ६० । ६̇० । इन धनर्ण करणियों का तुल्यता से नाश हुआ और क ५० क ५० इन करणियों का योग क २०० हुआ। अब क २५̇ क १०० क ३६ के मूल क्रम से ५̇ । १̇० । ६ मिले इन का योग ९̇ हुआ। इस प्रकार पूर्व लिखित गुणनफल रू ९̇ क २०० हुआ। उस गुणनफल में भूमि रू १̇ क १८ का भाग देना है तो 'वर्गेण वर्गं गुणयेद् भजेच्च—' और 'क्षयो भजेच्च क्षयरूपवर्गः—' इस के अनुसार भाज्य=क ८१̇ क २०० भाजक=क १̇ क १८। अनन्तर भाजक के एकीकरण के लिये 'धनर्णता व्यत्ययमीप्सितायाः—' सूत्र के अनुसार भाजकगत क १̇ धन कल्पना करके वैसे 'क १ क १८' छेद से भाज्य-भाजकों के गुणन के लिये न्यास—

क ८१̇ क २००	क १̇ क १८
क १ क १८	क १ क १८
क ८̇१ क २००	क १̇ क १८
क १४५̇८ क ३६००	क १८̇ क ३२४
क २६०१ क ५७६̇८	क २८९

यहां भाज्य को भाजक से गुणा देने से जो करणीखण्ड हुए हैं, उन में क ८१̇ क ३६०० का मूल ९̇। ६० आया। इनका अन्तर ५१ वर्ग क २६०१ हुआ। और क २०० क १४५̇८ में २ का अपवर्तन देने से क १०० क ७२̇९ हुई, इन के मूल १०।२७̇ का अन्तर १७̇ के वर्ग २८̇९ को २ दो से गुणा देने से करणी ५७८̇ हुई।

और भाजक को भाजक से गुणा देने से जो करणीखण्ड हुए हैं, उन में क १८ क १८̇ इन मध्यम करणियों का नाश हुआ, और क १̇ क २२४ का मूल १̇। १८ आया इन के अन्तर १७ का वर्ग क २८९ हुआ। अत्र भाजक क २८९ का भाज्य क २६०१ क ५७̇८ में भाग देने से क ९ क २̇ लब्धि में क ९ का मूल लेने से आबाधाओं का अन्तर रू ३ क २̇ हुआ। इस से भूमि रू १̇ क १८ को ऊन और युत करने से, रू ४̇ क ३२। रू २ क ८ हुआ इसका आधा रू २̇ क ८। रू १ क २ आबाधा हुई। और इस से उक्त रीति के अनुसार लम्ब रू १̇ क २ आया।

उदाहरणम्–

असमानसमच्छेदान् राशींस्तांश्चतुरो वद।
यदैक्यं यद्घनैक्यं वा येषां वर्गैक्यसंमितम्॥५०॥

अत्र राशयः या १ या २ या ३ या ४। येषां योगः या १० वर्गयोगेनानेन याव ३० सम इति पक्षौ यावत्तावतापवर्त्य न्यासः।

या ३० रू ०
या ० रू १०

समशोधनादिना प्राग्वल्लब्धयावत्तावन्मानेनोत्थापिता राशयः $\frac{१}{३}$ $\frac{२}{३}$ $\frac{३}{३}$ $\frac{४}{३}$।

अथ द्वितीयोदाहरणे राशयः या १ या २ या ३ या ४ एषां घनैक्यं याघ १०० एतद्वर्गैक्यमानेन याव ३० सममिति पक्षौ यावत्तावद्वर्गेणापवर्त्य प्राग्वल्लब्धयावत्तावन्मानेनोत्थापिता जाता राशयः $\frac{३}{१०}$ $\frac{६}{१०}$ $\frac{९}{१०}$ $\frac{१२}{१०}$ ।

अथ पक्षयोः समशोधनानन्तरमव्यक्तवर्गघनादिकेऽपि शेषे यथासंभवमपवर्तेन मध्यमाहरणं विनैवोदाहरणसिद्धिरस्तीति प्रदर्शयितुमुदाहरणषट्कमाह तत्रोदाहरणमनुष्टुभाह——असमानानिति। असमानाश्च ते समच्छेदाश्च तान् यदैक्यं येषां वर्गैक्यसंमितमित्येकम् । यद्घनैक्यं येषां वर्गैक्यसंमितमिति द्वितीयमित्युदाहरणद्वयम् । 'असमानसमप्रज्ञ' इति पाठे तु हे असमप्रज्ञ, निरुपमबुद्धे । असमास्तांश्चतुरो राशीन् वदेति योजनीयम् । प्रथमपाठस्त्वसाधुरिति प्रतिभाति । नहि समच्छेदत्वपुरस्कारेणोदाहरणमिह साध्यते किंतु समच्छेदत्वं संपातायातम् । 'असमान्' इति त्वपेक्षितमेव । अन्यथा रूपमितैश्चतुर्भिरुदाहरणसिद्धेरिति नवाङ्कुरकाराणां परामर्शः ॥

उदाहरण——

वे अतुल्य चार राशियाँ कौन-सी हैं, जिन का योग अथवा, घनों का योग उन के वर्गों के योग के तुल्य होता है ।

यहां कल्पित राशि या १। या २। या ३। या ४ हैं इनका योग या १० यह उन राशियों के वर्गयोग याव ३० के समान है, इसलिये समीकरण के लिये न्यास——

याव ३० या ०
याव ० या १०

यावत्तावत् का अपवर्तन देने से—

या ३० रू ०

या ० रू १०

समशोधन से यावत्तावत् मान $\frac{१}{३}$ आया। इस को तीन स्थानों में दो, तीन, चार से गुण देने से और राशियों के मान हुए—

$\frac{१}{३}$ $\frac{२}{३}$ $\frac{३}{३}$ $\frac{४}{३}$

यह सब राशि आपस में असमान अर्थात् तुल्य नहीं हैं और इनका योग $\frac{१०}{३}$ इन्हीं के वर्गयोग $\frac{३०}{९} = \frac{१०}{३}$ के समान है।

दूसरे उदाहरण में भी उक्त राशियों को कल्पित किया—

या १। या २। या ३। या ४

इन के घन हुए—

याघ १ याघ ८ याघ २७ याघ ६४

घनों का योग याघ १०० इन्हीं के वर्गयोग याव ३० के समान है, इसलिये दोनों पक्ष समान हुए—

याघ १०० याव ०

याघ ० याव ३०

यावत्तावत् वर्ग का अपवर्तन देने से—

या १०० रू ०

या ० रू ३०

समीकरण से यावत्तावत् का मान $\frac{३}{१०}$ हुआ।

यदि एक यावत्तावत् का $\frac{३}{१०}$ मान आता है, तो २। ३। ४ यावत्तावत् का क्या ? इस प्रकार राशि सिद्ध हुई—

$\frac{३}{१०}$ $\frac{६}{१०}$ $\frac{९}{१०}$ $\frac{१२}{१०}$

इन के घन हुए—

$$\frac{२७}{१०००} + \frac{२१६}{१०००} + \frac{७२९}{१०००} + \frac{१७२८}{१०००} = \frac{२७००}{१०००}$$ ।

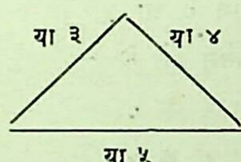
और वर्ग हुए—

$$\frac{९}{१००}+\frac{३६}{१००}+\frac{८१}{१००}+\frac{१४४}{१००}=\frac{२७०}{१००}$$

घनैक्य $\frac{२७००}{१०००}$ में दश का अपवर्तन देने से $\frac{२७०}{१००}$ हुआ, यह वर्गैक्य $\frac{२७०}{१००}$ के समान है।

उदाहरणम्—

त्र्यस्रक्षेत्रस्य यस्य स्यात्फलं कर्णेन संमितम्।
दोः कोटिश्रुतिघातेन समं यस्य च तद्वद ५१॥



अत्रेष्टक्षेत्रभुजानां यावत्तावद्गुणितानां न्यासः या ३। या ४। या ५। अत्र च भुजकोटिघातार्धं फलम् याव ६ एतत्कर्णेनानेन या ५ सममिति पक्षौ यावत्तावतापवर्त्य प्राग्वल्लब्धेन यावत्तावन्मानेनोत्थापिता जाता भुजकोटिकर्णाः $\frac{५}{२}$ $\frac{१०}{३}$ $\frac{२५}{६}$ एवमिष्टवशादन्येऽपि।

अथ द्वितीयोदाहरणे कल्पितं तदेव क्षेत्रम् अस्य फलम् याव ६। एतद्दोः कोटिकर्णघातेनानेन याघ ६० सममिति पक्षौ यावत्तावद्वर्गे-

णापवर्त्य समीकरणेन प्राग्वज्ज्ञाता दोःकोटि-कर्णाः $\frac{२}{५}$ $\frac{३}{१०}$ $\frac{१}{२}$ । एवमिष्टवशादन्येऽपि ।

उदाहरण—

जिस त्र्यस्र क्षेत्र में फल कर्ण के समान है अथवा भुज, कोटि और कर्ण का घात, फल के समान है । वहां प्रत्येक अवयव क्या होंगे ?

यहां भुज, कोटि और कर्ण का मान क्रम से या ३ । या ४ । या ५ कल्पना किया । त्र्यस्रक्षेत्र में भुज, कोटि के घात का आधा क्षेत्रफल होता है । इसी रीति से यहां फल याव ६ हुआ, यह कर्ण के समान है, इसलिये दो पक्ष हुए—

याव ६ या ०

याव ० या ५

यावत्तावत् का अपवर्तन देने से—

या ६ रू ०

या ० रू ५

समशोधन से यावत्तावत् का मान $\frac{५}{६}$ आया । इस से पूर्व कल्पित राशियों में उत्थापन देने से उन के मान हुए $\frac{१५}{६}$, $\frac{२०}{६}$, $\frac{२५}{६}$ इन में यथासंभव अपवर्तन देने से, भुज, कोटि और कर्ण हुआ $\frac{५}{२}$, $\frac{१०}{३}$, $\frac{२५}{६}$ । अब यहां भुज कोटि के घात $\frac{५०}{६}$ का आधा $\frac{५०}{१२}$ = $\frac{२५}{६}$ क्षेत्रफल हुआ और वह कर्ण के समान है ।

दूसरे प्रश्न में क्षेत्रफल याव ६ भुज, कोटि और कर्ण के घात याघ ६० के समान कहा है, इसलिये दो पक्ष समान हुए—

याघ ० याव ६

याघ६० याव ०

यावत्तावत् वर्ग १ का अपवर्तन देने से—

या ० रू ६

या ६० रू ०

समीकरण से यावत्तावत् का मान $\frac{६}{६०} = \frac{१}{१०}$ आया । इस से पूर्व कल्पित राशियों में उत्थापन देने से उन के मान $\frac{३}{१०}$, $\frac{४}{१०}$, $\frac{५}{१०}$, इन में यथासंभव अपवर्तन से भुज, कोटि और कर्ण हुआ $\frac{३}{१०}$, $\frac{२}{५}$, $\frac{१}{२}$ । यहां भुज कोटि के घात $\frac{६}{५०}$ का आधा $\frac{६}{१००}$ क्षेत्रफल है, वह भुज, कोटि और कर्ण इन तीनों के घात $\frac{६}{१०००}$ के समान है । यहां पर भुज, कोटि और कर्ण के ऐसे मान कल्पना करने चाहिए जिससे जात्यत्यस्र में उनका व्यभिचार न हो ॥

उदाहरणम्—

युतौ वर्गोऽन्तरे वर्गौ ययोर्घाते घनो भवेत् ।
तौ राशी शीघ्रमाचक्ष्व दक्षोऽसि गणिते यदि ॥

अत्र राशी याव ५ । याव ४ योगेऽन्तरे च यथा वर्गः स्यात्तथा कल्पितौ । अत्रानयोर्घातः याव व २० एष घन इतीष्टयावत्तावद्दशकस्य घनेन समीकरणे पक्षौ यावत्तावद्घनेनापवर्त्य प्राग्वज्जातौ राशी १०००० । १२५०० ।

१ अत्र ज्ञानराजदैवज्ञाः—
यद्योगादथवान्तरादपि पदं संप्राप्यते साधकै-
रभ्यासादिह लभ्यते घनपदं तौ तावभिज्ञौ वद ।
नानारूपधरौ यथा हरिहरौ सद्बीजवेद्यौ सखे
शंख्याशास्त्रविचारसारचतुरा बुद्धिस्त्वदीयास्ति चेत् ॥
ययोर्योगात् हरिहराख्यरूपात्, अन्तरात् केवलं हरिरूपाद् हररूपाद्वा, साधकैर्गणकैरुपासकैश्च, घनपदं घनमूलं दुर्गममोक्षपथश्च, तौ ताविति संमतौ द्विर्भाव: । अङ्कभेदेन अवतारभेदेन च नानारूपधरौ, सद्बीजमव्यक्तगणितं प्रणवादिकं च, संख्यागणनाविचारश्चेति स्पष्टम् ।

उदाहरण—

जिन दो राशियों का योग वा अन्तर वर्ग होता है और उन का घात घन होता है, वे कौनसी राशियाँ हैं ?

यहां पर ऐसी राशि मानना चाहिये कि जिन का योग अथवा अन्तर वर्ग हो, जैसा राशि याव ४ । याव ५ हैं और इनका योग याव ९ है, फिर अन्तर याव १ है । इस प्रकार उक्त राशियों में, दो आलाप घटते हैं । फिर उन राशियों का घात यावव २० घन है, इसलिये इष्ट यावत्तावत् १० के घन के साथ समीकरण के लिये न्यास—

यावव २० याघ ०
यावव ० याघ १०००

यावत्तावत् घन का अपवर्तन देने से—

या २० रू ०
या ० रू १०००

समशोधन से यावत्तावत् का मान ५० आया । इस से पूर्व राशि याव ४ याव ५ में उत्थापन देते हैं । 'वर्गेण वर्ग—' सूत्र से यावत्तावन्मान का वर्ग २५०० हुआ, यदि एक यावत्तावत् वर्ग का २५०० मान है, तो यावत्तावत्वर्ग चार तथा पांच का क्या ? इस प्रकार राशि १०००० । १२५०० । इन का योग २२५०० वर्ग है; अन्तर २५०० वर्ग है और इन का घात घन १२५०००००० है ॥

उदाहरणम्—

घनैक्यं जायते वर्गो वर्गैक्यं च ययोर्घनः ।
तौ चेद्वेत्सि तदाहं त्वां मन्ये बीजविदां वरम् ५३

अत्र कल्पितौ राशी याव १ याव २ । अनयोर्घनयोगः यावघ ९ एष स्वयमेव वर्गो जातः अस्य मूलं याघ ३ । ननु यावत्तावद्वर्गघनोऽयं

राशिर्न घनवर्गः कथमस्य घनात्मकं मूलमिति चेदुच्यते—यावानेव घनवर्गस्तावानेव वर्गघनः स्यादित्यत एव द्विगतचतुर्गतषड्गताष्टगता वर्गाः स्युः। एषामेकद्वित्रिचतुर्गतानि मूलानि यथाक्रमं स्युः। एवं त्रिषण्णवगता घना एकद्वित्रिगतानि तेषां मूलानि। एवं सर्वत्र ज्ञातव्यम्। अथ राश्योर्वर्गयोगः यावव ५ अयं घन इतीष्टयावत्तावत्पञ्चघनसमं कृत्वा पक्षौ यावत्तावद्घनेनापवर्त्य प्राग्वज्जातौ राशी ६२५। १२५०। एवमन्यत्रापवर्तनं यथा संभवति तथा चिन्त्यम्॥

उदाहरण——

वे दो राशि कौनसी हैं जिन का घनयोग, वर्ग और वर्गयोग, घन होता है। यहां दो राशि ऐसी कल्पित हैं जिन में एक आलाप स्वत: घटित होता है। याव १। याव २ इनका घनयोग यावघ ६ हुआ, यह स्वयं वर्ग है, क्योंकि इस का वर्गमूल याघ ३ है।

शङ्का——'यावघ ६' इस यावत्तावत् वर्ग घन का मूल 'याघ ३' यह यावत्तावत् घन नहीं हो सकता क्योंकि वर्ग का वर्गमूल और घन का घनमूल ही आना उचित है। इसलिये प्रकृत में जो घन का वर्गमूल लिया है वह ठीक नहीं है।

समाधान——जो घन का वर्ग होता है, वही वर्ग का घन है। जैसा—दो स्थानगत समाङ्कघात वर्ग होता है। चार स्थान गत समाङ्कघात वर्गवर्ग होता है, वह भी वर्गात्मक है। इसी भांति छ स्थानगत समाङ्कघात वर्गवर्ग-

वर्ग होता है, वह भी वर्गात्मक है। और आठ स्थानगत समाङ्कघात वर्गवर्गवर्गवर्ग होता है, वह भी वर्गात्मक है।

एक स्थानगत समाङ्क के तुल्य वर्गमूल होता है। दो स्थानगत समाङ्क घात के तुल्य वर्गवर्ग मूल होता है। तीन स्थानगत समाङ्क-घात के तुल्य वर्गवर्गवर्गमूल होता है। चार स्थानगत समाङ्कघात के तुल्य वर्गवर्गवर्गवर्गमूल होता है, इसी प्रकार आगे भी वर्गमूल की स्थिति जाननी चाहिए।

तीन स्थानगत समाङ्कघात घन होता है। छ स्थानगत समाङ्कघात घनघन होता है। नव स्थानगत समाङ्कघात घनघनघन होता है। बारह स्थानगत समाङ्कघात घनघनघनघन होता है। ऐसे ही आगे भी जानना।

एक स्थानगत समाङ्क के तुल्य, घनमूल होता है। दो स्थानगत समाङ्कघात के तुल्य, घनघनमूल होता है। तीन स्थानगत समाङ्क-घात के तुल्य, घनघनघनमूल होता है। चार स्थानगत समाङ्कघात के तुल्य, घनघनघनघनमूल होता है। इसी प्रकार आगे भी घनमूल की स्थिति जाननी चाहिए।

प्रकृत में यावत्तावत् वर्ग का घन छ स्थानगत समाङ्कघात है और वह समद्विघात का समत्रिघातरूप है, इसप्रकार समत्रिघात का समद्वि-घात घनवर्ग हुआ और वह छ स्थानगत समाङ्कघात है, इसलिये कहा है कि 'यावानेव घनवर्गस्तावानेव वर्गघनः स्यात्'।

अब 'यावव ९' इसका स्वरूपान्तर 'याघव ९' यह है, इसका मूल याघ ३ आया है, इसलिये 'याघव ९' यह स्वयं वर्ग है। अथवा 'यावघ ९' यह वर्ग है। अब 'याव १ याव २' इनके, वर्ग यावव १ यावव ४ का योग यावव ५ हुआ, यह घन है, इसलिये यावत्तावत् पांच के घन के साथ समीकरण के लिये न्यास——

यावव ५ याघ ०
यावव ० याघ १२५

यावत्तावत्घन के अपवर्तन देने से——

या ५ रू ०
या ० रू १२५

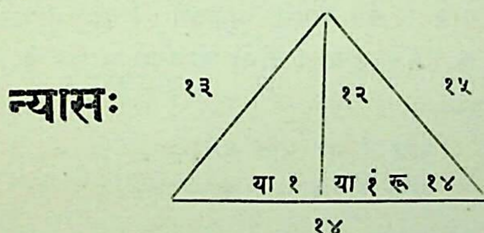
समशोधन से यावत्तावत् का मान २५ आया, 'वर्गेण वर्गं गुणयेद्—' के अनुसार २५ का वर्ग ६२५ हुआ। इस से याव १ याव २ इन राशियों में उत्थापन देने से राशि हुई ६२५। १२५०। इन के घन २४४१४०६२५।१९५३१२५००० का योग २१९७२६५६२५ हुआ, इसका मूल ४६८७५ हुआ। और राशियों के वर्ग ३९०६२५। १५६२५०० हुए, इन का योग १९५३१२५ हुआ, इस का घनमूल १२५ आया।

उदाहरणम्—

यत्र त्र्यस्रक्षेत्रे
धात्री मनुसंमिता सखे बाहू।
एकः पञ्चदशान्य-
स्त्रयोदश वदावलम्बकं तत्र ॥ ५४ ॥

* आबाधाज्ञाने सति लम्बज्ञानमिति लघ्वाबाधा यावत्तावन्मिता कल्पिता या १, एतदूनाश्चतुर्दशान्याबाधा या १ रू १४ स्वाबाधा-

न्यासः



वर्गोनौ स्वभुजवर्गौ तौ समाविति समशोधनार्थं न्यासः।

---

*अत्र पाट्युक्तमृणाबाधोदाहरणमपि द्रष्टव्यम्।

याव १ या ० रू १६९

याव १ या २८ रू २९

अनयोः समवर्गगमे लब्धं यावत्तावन्मानम् ५। अनेनोत्थापिते जाते आबाधे ५।९। लम्बवर्गयोश्चोत्थापितयोरुभयतः सम एव लम्बः १२। अत्रोत्थापनं वर्गस्य वर्गेण घनस्य घनेनैवेति सुधिया ज्ञातव्यम्॥

उदाहरण—

जिस त्र्यस्र क्षेत्र में एक भुज पंद्रह है, दूसरा तेरह है और भूमि चौदह है, वहां लम्ब क्या होगा ?

आबाधा के ज्ञान से लम्ब ज्ञात हो जाता है, इसलिये छोटी आबाधा का मान यावत्तावत् १ कल्पना किया, इस को भूमि १४ में घटा देने से दूसरी आबाधा या १ रू १४ हुई। इसके वर्ग याव १ या २८ रू १९६ में स्वभुज १५ वर्ग २२५ को घटा देने से लम्बवर्ग याव १ या २८ रू २९ हुआ। इसी प्रकार पहली आबाधा के वर्ग याव १ को अपने भुजवर्ग १६९ में घटा देने से लम्बवर्ग याव १ रू १६९ हुआ। दोनों लम्बवर्ग समान हैं, इसलिये समीकरणार्थ न्यास—

याव १ या २८ रू २९

याव १ या ० रू १६९

समीकरण से यावत्तावत् का मान ५ आया, यह छोटी आबाधा का मान है। इस से या १ रू १४ में उत्थापन देने से दूसरी आबाधा ९ आई। 'वर्गेण वर्गं गुणयेद्' सूत्र से, यावत्तावत् वर्ग का मान याव २५ हुआ; इस को लम्बवर्ग के रूप १६९ में घटा देने से शेष लम्बवर्ग १४४ का मूल १२ लम्ब हुआ। इसी प्रकार, दूसरे

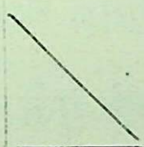
स्थान में उत्थापन देने से यावत्तावत् वर्ग का मान २५ हुआ। यावत्तावत् का मान ५ है इस को २८ से गुण देने से १४० हुआ, रूप २९ धन हैं। अब २५, १४०, २९ इन में पहले १४०। २९ इन धनों का योग १६९ हुआ, इसमें २५ ऋण घटा देने से १४४ शेष का मूल १२ वही लम्ब हुआ॥

उदाहरणम्—

यदि समभुवि वेणुर्द्वित्रिपाणिप्रमाणो
गणक पवनवेगादेकदेशे स भग्नः।
भुवि नृपमितहस्तेष्वङ्गलग्नं तदीयं
कथय कतिषु मूलादेष भग्नः करेषु ॥५५॥

अत्र वंशाधरखण्डं कोटिस्तत्प्रमाणं या १। एतदूना द्वात्रिंशदूर्ध्वं खण्डं कर्णः या १ रू ३२। मूलाग्रयोरन्तरं भुजः रू १६ भुजकोटिवर्ग-योगः याव १ रू २५६ कर्णवर्गस्यास्य याव १

न्यासः



या ६४ रू १०२४ सम इति समवर्गगमे प्राग्वदाप्तयावत्तावन्मानेन १२ उत्थापितौ कोटिकर्णौ १२।२०। एवं भुजकोटियुतावपि ॥

अथ भुजे कोटिकर्णयोगे च ज्ञाते तयोः पृथक्करणं दर्शयितुमुदाहरणं मालिन्याह—यदीति । स्पष्टार्थोऽपि व्याख्यातोऽयं लीलावतीव्याख्याने ॥

उदाहरण—

एक समान भूतल पर बत्तीस हाथ लम्बा बाँस था, वह वायु के झकोरे से एक स्थान से टूट कर मूल से सोलह हाथ की दूरी पर जा लगा, तो वह बाँस मूल से कितने हाथ पर टूटा ।

यहां बाँस के नीचे का खण्ड कोटि है, उस का मान यावत्तावत् माना या १ इस को बाँस के मान ३२ में घटा देने से बाँस के ऊपर का खण्ड कर्ण या १̇ रू ३२ हुआ, मूल और अग्र का अन्तर भुज रू १६ है । भुज और कोटि का वर्गयोग याव १ रू २५६, यह कर्णवर्ग याव १ या ६४̇ रू १०२४ के समान है, इसलिये समीकरण के लिए न्यास—

याव १ या ० रू २५६
याव १ या ६४̇ रू १०२४

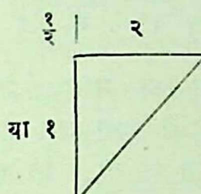
समशोधन से यावत्तावत् का मान १२ आया, यही कोटि का प्रमाण है । इस को बाँस के मान ३२ में घटा देने से कर्ण मान २० हुआ, यही बाँस के ऊपर का खण्ड था ।

इसी भांति कोटि और भुजकर्ण का योग जान कर उन को अलग करना चाहिये; इसका उदाहरण लीलावती में 'अस्ति स्तम्भतले—' यह श्लोक है ।

अथ कोटिकर्णान्तरे भुजे च ज्ञात उदाहरणम्—

चक्रक्रौञ्चाकुलितसलिले क्वापि दृष्टं तडागे
तोयादूर्ध्वं कमलकलिकाग्रं वितस्तिप्रमाणम् ।
मन्दं मन्दं चलितमनिलेनाहतं हस्तयुग्मे
तस्मिन्मग्नं गणक गणय क्षिप्रमम्बुप्रमाणम् ॥

अत्र नलप्रमाणं जलगाम्भीर्यमिति तत्प्रमाणं या १ । इयं कोटिः सा कलिकामानयुता जातः कर्णः या २ रू $\frac{१}{२}$ हस्तद्वयं भुजः २ । न्यासः अत्रापि दोःकोटि वर्गयोगं कर्णवर्गसमं



कृत्वा लब्धं जलगाम्भीर्यम् $\frac{१५}{४}$ कर्णमानम् $\frac{१७}{४}$ ॥

अथ कोटिकर्णान्तरे भुजे च ज्ञाते कोटिकर्णज्ञानं भवतीति प्रदर्शयितुमुदाहरणं मन्दाक्रान्तयाह—चक्रक्रौञ्चाकुलितसलिल इति । व्याख्यातोऽयं लीलावतीव्याख्याने ॥

उदाहरण––

किसी सरोवर में, जल से एक बिलस्त ऊँची कमल की कली दीखती थी वह मन्द मन्द वायु के वेग से अपने स्थान से दो हाथ पर जा कर डूब गई, तो सरोवर में जल कितना गहरा है ?

यहां कमल की डाँड़ी के समान जल की गहराई है, उस का मान यावत्तावत् या १ । यह कोटि है, इस में कमल की कली का मान १ बिलस्त अर्थात् $\frac{१}{२}$ हाथ समच्छेद करके जोड़ देने से, कर्ण का मान या २ रू $\frac{१}{२}$ हुआ । दो हाथ भुज का प्रमाण है, उस का और कोटि या १ का वर्गयोग याव १ रू ४· यह कर्ण वर्ग––

$\frac{\text{याव ४ या ४ रू १}}{४}$ के समान है, इसलिये समीकरण के लिये

न्यास––

$$\frac{\text{याव } ४ \text{ या } ४ \text{ रू } १}{४}$$

याव १ या ०. रू ४

समच्छेद और छेदगम करने से—

याव ४ या ४ रू १

याव ४ या ० रू १६

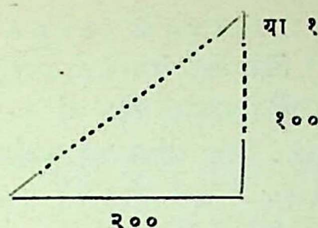
समशोधन से यावत्तावत् का मान $\frac{१५}{४}$ आया। यही जल की गहराई है इसमें समच्छेद से आधे हाथ $\frac{१}{२}$ को जोड़ देने से, कर्णमान $\frac{१७}{४}$ हुआ। भुज २ ज्ञात ही था। इन का क्रम से न्यास—भुज २। कोटि $\frac{१५}{४}$ कर्ण $\frac{१७}{४}$॥

उदाहरणम्—

वृक्षाद्धस्तशतोच्छ्रयाच्छतयुगेवापीं कपिः कोऽप्यगादुत्तीर्याथ परोद्रुतं श्रुतिपथात्प्रोड्डीय किंचिद्द्रुमात्। जातैवं समता तयोर्यदि गतावुड्डीनमानं कियद्विद्वंश्चेत् सुपरिश्रमोऽस्ति गणिते क्षिप्रं तदाचक्ष्व मे ५७॥

अत्र समगतिः ३००। उड्डीनमानं यावत्तावत् १ एतद्युतो वृक्षोच्छ्रायः कोटिः। यावत्तावदूना समगतिः कर्णः। तरुवाप्यन्तरं भुजः। भुजकोटिवर्गैक्यं कर्णसमं कृत्वा लब्धमुड्डीनमानम् ५०॥

न्यासः



अथान्यदुदाहरणं शार्दूलविक्रीडितेनाह—वृक्षादिति । परः कपिर्द्रुमात्किंचित्प्रोड्डीय श्रुतिपथाद्वापीमगादिति योजनीयम् 'श्रुतिपथात्' इति ल्यब्लोपे पञ्चमी। श्रुतिपथमाश्रित्येति तदर्थः। अत्र 'वृक्ष' इति पदं तालादिसरलवृक्षपरकम्, अन्यथा ऋजुत्वाभावात्तादृशोदाहरणासिद्धिः । व्याख्यातोऽपि लीलावतीव्याख्याने ॥

उदाहरण--

सौ हाथ ऊंचे ताल वृक्ष पर दो वानर बैठे थे, उन में से एक वानर उतर कर उस वृक्ष के मूल से, दोसौ हाथ दूरी पर एक बावली को गया और दूसरा वानर कुछ उछल कर, तिरछे मार्ग से, उसी बावली को गया । इस भांति दोनों को तुल्य ही जाना पड़ा, तो वह वानर कितना उछल कर गया है ?

यहां समगति ३०० हाथ है। उछलने का मान यावत्तावत् १ कल्पना किया और इसमें वृक्ष की ऊँचाई १०० जोड़ देने से कोटि या १ रू १०० हुई । समगति ३०० में यावत्तावत् १ को घटा देने से, कर्ण या १̇ रू ३०० हुआ । वृक्ष और बावली का अन्तर २०० हाथ है, वही भुज का प्रमाण है । भुज और कोटि का वर्गयोग कर्णवर्ग के समान होता है, इसलिये दो पक्ष हुए--

याव १ या २०० रू ५००००
याव १ या ६०̇० रू ९००००

समीकरण से यावत्तावत् का मान ५० आया, यही उछलने का प्रमाण है । इस प्रकार भुज २०० कोटि १५० और कर्ण २५० हुआ ।

आलाप——पहला वानर वृक्ष के अग्र से मूल को आया (यों १०० हाथ उतरना पड़ा) फिर वहां से २०० हाथ पर बावली रही, इस कारण २०० हाथ और चलना पड़ा, यों ३०० हाथ पहले की गति हुई। दूसरा वानर ५० हाथ उछल कर कर्णगति से गया था, इस कारण कर्णमान २५० में ५० जोड़ देने से ३०० हाथ हुए, यों दूसरे को भी उतना ही जाना पड़ा।

यहां ताल की उँचाई में यावत्तावत् को जोड़ देने से कोटि हुई या १ ता १। समगति में यावत्तावत् १ को घटा देने से कर्ण हुआ या १̇ ता १ भु १ इनके योग से भुज से जुड़ी हुई दूनी ताल की उँचाई हुई ता २ भु १।

यह कोटि कर्ण का योग है, इसलिये इसका कोटि कर्ण के वर्गान्तर रूप भुज वर्ग में, भाग देने से कोटिकर्णान्तर आवेगा। बाद संक्रमण की रीति से कोटि-कर्ण जाने जायँगे। इसी अभिप्राय को लेकर——

'तालोच्छ्रायो द्व्याहतो बाहुयुक्तः
कोटिश्रुत्योः संयुतिः स्यात्तयाप्तः।
बाहोर्वर्गः कोटिकर्णान्तरं स्या-
त्पश्चात्ताभ्यां कोटिकर्णौ सुबोधौ॥'

इस श्लोक को बनाया है। जैसा——'ता २ भु १' यह योग है, इसका भुजवर्ग में भाग देने से कोटि-कर्णान्तर $\frac{\text{भुव १}}{\text{यो १}}$ हुआ। फिर 'योगोऽन्तरेणोनयुतोऽर्धितस्तौ राशी' सूत्र के अनुसार, इस से हीन और अर्धित किया योग $\frac{\text{भुव १̇ योव १}}{\text{यो २}}$ कोटि हुआ। इस में ताल की उँचाई को घटा देने से, शेष उछलने का मान $\frac{\text{भुव १̇ यो. ता २̇ योव १}}{\text{यो २}}$ रहा। यहां भाज्य में योग 'ता २ भु १' ताल से और ऋण दो से गुणा है, इसलिये ताव ४̇ ता. भु २̇ हुआ। यह भाज्य का दूसरा खण्ड है। और तीसरा खण्ड 'योव १' वर्ग है, इसका स्वरूप, ताव ४ ता. भु ४ भुव १ हुआ। इस भाँति भाज्य का वास्तव रूप हुआ——

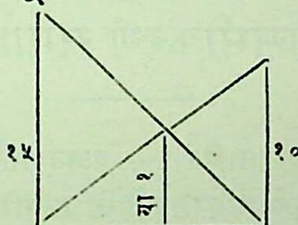
$$\frac{\text{भुव }\dot{१}\text{ ताव ४ ता. भु ४ भु व १ ताव }\dot{४}\text{ ता. भु }\dot{२}}{\text{यो २}}$$

यहां तुल्य धन और ऋणों को उड़ा देने से, शेष का योग $\frac{\text{ता. भु }\dot{२}}{\text{यो २}}$ हुआ इसमें दो का अपवर्तन देने से $\frac{\text{ता. भु }\dot{१}}{\text{यो १}}$ हुआ । इस से 'द्विनिघ्न-तालोच्छ्रिति—' यह पाटीस्थ सूत्र उपपन्न हुआ ॥

उदाहरणम्—

पञ्चदश-दशकरोच्छ्रय-
वेण्वोरज्ञातमध्यभूमिकयोः ।
इतरेतरमूलाग्रग-
सूत्रयुतेर्लम्बमाचक्ष्व ॥ ५८ ॥

अत्र क्रियावतरणार्थमिष्टं वेण्वन्तरभूमानं कल्पितम् २० । सूत्रसम्पाताल्लम्बमानम् या १



न्यासः यदि पञ्चदशकोट्या विंशतिर्भुजस्तदा यावत्तावन्मितया किमिति लब्धा लघुवंशाश्रिताबाधा या $\frac{४}{३}$ । पुनर्यदि दशमितकोट्या विंशतिभुजस्तदा यावत्तावन्मितकोट्या कि-

मिति लब्धा बृहद्वंशाश्रिताबाधा या २ अनयोर्योगं या $\frac{१०}{३}$ विंशतिसमं कृत्वा लब्धो लम्बः ६। उत्थापनेनाबाधे च ८। १२।

अथवा वंशसंबन्धेनाबाधे तद्युतिभूमिरिति, यदि वंशद्वययोगेनानेन २५ आबाधायोगो २० लभ्यते तदा वंशाभ्यां १५। १० किमिति जाते आबाधे ८।१२ अत्रानुपातात्सम एव लम्बः ६ किं यावत्तावत्कल्पनया।

अथवा वंशयोर्वधो योगहृतो यत्र कुत्रापि वंशान्तरे लम्बः स्यादिति किं भूमिकल्पनयापि। एतद्बुविसूत्राणि प्रसार्य बुद्धिमतोह्यम्।

इति श्रीभास्करीये बीजगणित एक-
वर्णसमीकरणं समाप्तम्॥

अथान्यदुदाहरणमार्ययाह—पञ्चदशेति। अत्र लम्बज्ञानार्थं वेणवन्तरालभूमिज्ञानं नावश्यकमिति ज्ञापयितुं 'अज्ञातमध्यभूमिकयोः' इति वेणुविशेषणं दत्तम्। व्याख्यातोऽपि लीलावतीविवरणे॥

उदाहरण—

किसी समान धरातल पर, पन्द्रह और दश हाथ ऊंचे दो बाँस हैं परन्तु उन के मध्य की भूमि का मान अज्ञात है। इन में एक की जड़ से, दूसरे के शिर पर और दूसरे की जड़ से पहले के शिर पर सूत

बाँधने से जो सूतों का संपात होगा, उस से जो लम्ब डाला जाय तो उसका क्या मान होगा ?

क्रिया निर्वाह के लिए बाँसों के मध्य की भूमि को २० इष्ट कल्पना किया और सूतों के मिलने से जो संपात हुआ है उससे जो लम्ब डाला गया है उस का मान यावत्तावत् १ कल्पना किया। यदि १५ कोटि में २० भुज, तो यावत्तावन्मित कोटि में क्या? अनुपात से भुज या $\frac{२०}{१५}$ आया, इस में पांच का अपवर्तन देने से छोटे बाँस के ओर की आबाधा या $\frac{४}{३}$ हुई। यदि १० कोटि में २० भुज, तो लम्बरूप कोटि में क्या? बड़े बाँस के ओर की आबाधा या २ हुई। इन का समच्छेद से योग या $\frac{१०}{३}$ हुआ। यह २० के समान है, इसलिये समीकरणार्थ न्यास—

या $\frac{१०}{३}$ रू ०

या ० रू २०

समच्छेद, छेदगम और समीकरण से यावत्तावत् का मान ६ आया, यही लम्ब का मान है। इससे या $\frac{४}{३}$। या २ इन में उत्थापन देने से आबाधा ८। १२ हुई।

यहां अनुपात करने में यावत्तावन्मान को भूमि से गुण कर, उस में अलग २ बृहत् और लघु वंश (बाँस) का भाग देने से आबाधाएँ सिद्ध हुईं—

$\frac{\text{या. भू १}}{\text{बृवं १}}$ । $\frac{\text{या. भू १}}{\text{लवं १}}$

इन का समच्छेद से योग $\frac{\text{या. भू. लवं १ या. भू. बृवं १}}{\text{लवं १ बृवं १}}$ हुआ

यह भूमि के समान है, इसलिये समीकरण के लिए न्यास—

$\frac{\text{या. भू. लवं १ या. भू. बृवं १}}{\text{लवं. बृवं १}}$

भू १

समच्छेद और छेदगम करने से—

या. भू. लवं १ या. भू. बृवं १
लवं. बृवं. भू १

भूमि का अपवर्तन देने से—

या. लवं १ या. बृवं १
लवं. बृवं. १

समीकरण से 'वंशयोर्वधे योगहृतेऽवलम्बः' यह सिद्ध होता है।

$$\frac{\text{लवं. बृवं १}}{\text{या. लवं १ या. बृवं १}}$$

यहां भूमि का चाहो जो मान कल्पना किया जाय, पर लम्ब वही आवेगा। जैसा—लम्ब $\frac{\text{लवं. बृवं १}}{\text{वंयो १}}$ है, इस को भूमि से गुणा कर, बृहत् वंश का भाग देने से $\frac{\text{लवं. बृवं. भू १}}{\text{वंयो बृवं. १}}$ हुआ। इस में बृहत् वंश का अपवर्तन देने से छोटी आबाधा $\frac{\text{लवं. भू १}}{\text{वंयो १}}$ हुई। इसी भांति लम्ब $\frac{\text{लवं. बृवं १}}{\text{वंयो १}}$ को भूमि से गुणा कर, उस में लघु-वंश का भाग देने से $\frac{\text{लवं. बृवं. भू १}}{\text{वंयो. लवं १}}$ हुआ। इस में लघुवंश के अपवर्तन से बड़ी आबाधा $\frac{\text{बृवं. भू १}}{\text{वंयो १}}$ हुई। इस से 'वंशौ स्वयोगेन हृतावभीष्टभूघ्नौ च लम्बोभयतः कुखण्डे' यह पाटीस्थ सूत्र उपपन्न हुआ। इसीलिये, वंशद्वय योग २५ में आबाधा योग २० आता है, तो हर एक वंशों में क्या? इस प्रकार आबाधा आती है। यह अनुपात युक्त है।

एकवर्णसमीकरण समाप्त ॥

इति द्विवेदोपाख्याचार्यश्रीसरयूप्रसादसुत–दुर्गाप्रसादोन्नीते
बीजविलासिन्येकवर्णसमीकरणं समाप्तम् ॥
दुर्गाप्रसादरचिते भाषाभाष्ये मिताक्षरे।
सवासनाद्य पूर्णाभूदेकवर्णसमीकृतिः ॥

अथाऽव्यक्तवर्गादिसमीकरणम् तच्च 'मध्यमाहरणम्' इति व्याचक्षते आचार्याः। यतोऽत्र वर्गराशावेकस्य मध्यमस्याहरणमिति। तत्र सूत्रं वृत्तत्रयम्—

अव्यक्तवर्गादि यदावशेषं
पक्षौ तदेष्टेन निहत्य किंचित् ।
क्षेप्यं तयोर्येन पदप्रदः स्या-
दव्यक्तपक्षोऽस्य पदेन भूयः ॥ ५९ ॥
व्यक्तस्य पक्षस्य समक्रियैव-
मव्यक्तमानं खलु लभ्यते तत् ।
न निर्वहश्चेद् घनवर्गवर्गे-
ष्वेवं तदा ज्ञेयमिदं स्वबुद्ध्या ॥ ६० ॥
अव्यक्तमूलर्णगरूपतोऽल्पं
व्यक्तस्य पक्षस्य पदं यदि स्यात् ।
ऋणं धनं तच्च विधाय साध्य-
मव्यक्तमानं द्विविधं क्वचित्तत् ॥ ६१ ॥

पूर्वं समशोधनादिना यथैकस्मिन्पक्ष एकजातीयमव्यक्तमेव परपक्षे च व्यक्तमेव भवति तथापवर्तनादिनोपायेन संपाद्य प्रश्नभङ्ग उक्तः, संप्रति यद्यपवर्तेनापि तथा न भवति तत्र मध्यमाहरणलक्षणमुपायान्तरमिन्द्रवज्रोपजातिकाभ्यां चाह—अव्यक्तवर्गादीत्यादिना। एतानि सूत्राण्याचार्यैर्व्याख्यातत्वात्पुनर्न व्याख्यायन्ते ।

एकवर्ण मध्यमाहरण—

अब जहां उक्त रीति की प्रवृत्ति नहीं होती है, वहां मध्यमाहरण नामक रीति कहते हैं—समशोधन करने के बाद, यदि एक पक्ष में अव्यक्त के वर्गादिक हों और दूसरे पक्ष में केवल रूप ही हों, तो दोनों पक्षों को किसी एक इष्ट से गुण वा भाग देना और उन में समान कुछ जोड़ वा घटा देना जिस में अव्यक्त पक्ष का मूल मिल जाय और दूसरे पक्ष का भी मूल मिलेगा, क्योंकि समान पक्षों में समान क योग आदि करने से उन का समत्व नहीं नष्ट होता। इस प्रकार जो मूल मिलेंगे, उन का समीकरण करने से, अव्यक्त राशि का व्यक्त मान आवेगा। यदि ऐसा करने से घनवर्ग, घनवर्गवर्ग आदि में मूल न मिले, तो वहां अपनी बुद्धि से अव्यक्त राशि का मान लाना चाहिये। विशेष—

यहां जो अव्यक्त पक्ष के मूल में ऋणगत रूप आवें, उन से यदि व्यक्तपक्ष के मूल के रूप अल्प हों तो उन को ऋण-धन मान कर, अव्यक्त राशि का मान सिद्ध करना, इस प्रकार दो प्रकार के मान किसी स्थल में उपपन्न होते हैं।

उपपत्ति—

समान दो पक्षों के समीकरण करने से एक पक्ष में अव्यक्त के वर्ग आदि शेष रहते हैं और दूसरे पक्ष में रूप, तो भी वे दोनों पक्ष तुल्य हैं। अब उनको किसी इष्ट से गुण वा भाग दें अथवा उन में समान कुछ जोड़ वा घटा दें, तो भी वे दोनों पक्ष तुल्य रहेंगे। उन के जो मूल लिये जाते हैं, वे भी आपस में समान हैं। फिर एकवर्ण समीकरण के द्वारा अव्यक्त राशि का व्यक्तमान निकलता है। यदि अव्यक्त पक्ष के रूप ऋण हों तो व्यक्तपक्षीय मूल के रूप को धन अथवा ऋण मानना चाहिये क्योंकि 'स्वमूले धनर्णे—' यह कह चुके हैं। फिर समीकरण करने में संशोध्यमान अव्यक्तपक्षीय मूल का ऋणगत रूप धन होगा, तो उसका व्यक्तपक्षीय मूल क धनगत रूप के साथ योग करने से पहला अव्यक्तमान धनगत होगा। इसीभांति, व्यक्तपक्षीय मूल के रूप को ऋण गत

मानने से, उस का अव्यक्तपक्षीय मूल के घनगत रूप के साथ अन्तर करने से, शेष धन ही रहेगा । इस प्रकार अव्यक्तराशि का व्यक्तमान द्विविध होता है । अब पक्षों को अव्यक्तवर्गाङ्क से गुणा कर पीछे उन का मूल लेंगे तो अव्यक्त वर्गस्थान में अव्यक्तवर्गाङ्क ही होगा, फिर पक्षों में अव्यक्त के आधे के वर्ग को जोड़ कर, उस का मूल लेंगे तो, अव्यक्तपक्षीय रूपस्थान में अव्यक्ताङ्कार्ध होगा । बाद 'कृतिस्य आदाय पदानि तेषां द्वयोर्द्वयोश्चाभिहतिं द्विनिघ्नीं शेषात्त्यजेत्' इस सूत्र के अनुसार, अव्यक्तवर्गाङ्क और अव्यक्ताङ्कार्ध इन का दूना घात मध्यम-खण्ड के तुल्य होगा । क्योंकि पहले अव्यक्ताङ्क और अव्यक्तवर्गाङ्क का घात मध्यम-खण्ड के तुल्य होता रहा है । इस भांति पहले पक्ष के मूल मिलने से, दूसरे का भी मूल मिलेगा । परंतु जिस स्थान में अव्यक्ताङ्क दो, चार, छः, आठ इत्यादि समाङ्करूप होगा, वहां उसका अर्ध होगा और जहां विषमाङ्क रूप होगा, उस स्थान में अर्ध भिन्नाङ्क होगा । इसलिये उपायान्तर के लिए श्रीधराचार्य के सूत्रानुसार, चतुर्गुण अव्यक्तवर्गाङ्क से दोनों पक्षों को गुणा कर, अव्यक्त वर्गस्थान में मूल लेने से अव्यक्तवर्गाङ्क दूना होता है । और रूप स्थान में अव्यक्ताङ्कवर्ग को जोड़ देने से, उस का मूल अव्यक्ताङ्क के तुल्य आता है । अब उस के और द्विगुण अव्यक्तवर्गाङ्क के घात को दूना करते हैं, तो चतुर्गुणित अव्यक्तवर्गाङ्क से गुणित अव्यक्ताङ्क मध्यम-खण्ड रूप होता है । उसके त्याग करने से, शून्य शेष रहता है । इस भांति अव्यक्त पक्ष के मूल मिलने से, व्यक्तपक्ष का भी मूल मिलेगा । क्योंकि दोनों पक्ष तुल्य हैं, इस से श्रीधराचार्य का सूत्र भी उपपन्न हुआ ।

अत्र श्रीधराचार्यसूत्रम्—

'चतुराहतवर्गसमै
रूपैः पक्षद्वयं गुणयेत् ।

पूर्वाव्यक्तस्य कृतेः
समरूपाणि क्षिपेत्तयोरेव ॥'

मूलानयनार्थं 'पक्षौ तदेष्टेन निहत्य किंचित्क्षेप्यं तयोः–' इत्युक्तं तत्र केन पक्षौ गुणनीयौ किंवा तयोः क्षेप्यमिति बालावबोधार्थं श्रीधराचार्यकृतं सूत्रमवतारयति–चतुराहतवर्गसमैरिति। चतुर्गुणितेनाव्यक्तवर्गाङ्केन पक्षद्वयं गुणयेत् गुणनात्प्राग्योऽव्यक्ताङ्कस्तद्वर्गतुल्यानि रूपाणि पक्षयोः क्षिपेत् । एवं कृतेऽवश्यमव्यक्तपक्षस्य मूलं लभ्यते द्वितीयपक्षस्याप्येतत्समत्वान्मूलेन भाव्यम्। एवं सति व्यक्तपक्षस्य यदि मूलं न लभ्यते तदा तत्खिलमेवेत्यर्थात्सिद्धम् । अत्र श्रीधराचार्यसूत्रे मूलोपायस्याव्यक्तवर्गाव्यक्तसापेक्षतयोक्तत्वाद्यत्रैकस्मिन्पक्षेऽव्यक्तवर्गोऽव्यक्तं च भवेत्तत्रैवास्य प्रवृत्तिरन्यत्र तु पदोपायः सुधिया स्वधियावधेयः ।

पक्षद्वयस्य वर्गीकरणमन्तरापि सिद्धमूलानयनप्रकारः सिद्धान्तसुन्दरकर्तृज्ञानराजदैवज्ञतनूजेन सूर्येण बीजभाष्ये प्रदर्शितः स यथा–

अव्यक्तवर्गो द्विगुणो विधेय-
श्चाव्यक्तमेवं परिकल्प्य रूपम् ।
वर्णाहतोऽन्योद्विगुणश्च रूप-
वर्गान्वितस्तत्पदमन्यमूलम् ॥

यथा पक्षौ–

याव २ या ६ रू ०
याव ० या ० रू १८

अव्यक्तवर्गाङ्कः २, द्विगुणः ४, अयं मूलेऽव्यक्तः या ४ । अव्यक्तं ६ रूपाणि तेन प्रथमपक्षमूलम् या ४ रू ६ । अव्यक्त-

पक्षः रू १८ अव्यक्ताङ्क ४ हतः ७२ द्विगुणः १४४ रूप ९ वर्ग ८१ युतो २२५ मूलम् १५ इदं द्वितीयपक्षमूलमिति ।

अथ मूलग्रहणविषये मदीया प्रकारद्वयी—

अव्यक्तवर्गः खलु यत्र रूपं
वर्णाङ्कसंख्या विषमेतरास्ति ।
पक्षद्वये तत्र तदर्धवर्गः
संयोज्यते चेद्यदि तर्हि मूलम् ॥
वर्गाङ्कसंख्या यदि चन्द्रभिन्ना
वर्णाङ्कसंख्या तु समा तदानीम् ।
वर्गाङ्कमानेन निहत्य पक्षौ
तत्र क्षिपेद्वर्णदलस्य वर्गम् ॥

यथा किल पक्षौ—

याव १ या ६ रू ०
याव ० या ० रू ५५

इह 'अव्यक्तवर्गः खलु यत्र रूपं—' इति प्रथमसूत्रानुसारेण वर्णाङ्कसंख्यार्धवर्ग ९ योजने पक्षौ मूलप्रदौ जातौ—

याव १ या ६ रू ९
याव ० या ० रू ६४

यथा किलापरौ पक्षौ—

याव ३ या ४ रू ०
याव ० या ० रू ३९

अत्र 'वर्गाङ्कसंख्या यदि चन्द्रभिन्ना—' इति द्वितीयसूत्रेण पक्षौ वर्गाङ्कमानेन ३ संगुण्य तत्र वर्णाङ्कदलवर्ग ४ प्रक्षिप्य च जातौ मूलप्रदौ पक्षौ—

याव ९ या १२ रू ४
याव ० या ० रू १२१

एवं सूत्रद्वयस्यापि तत्र तत्र व्याप्तिरवसेयेति।

आचार्य ने मूलानयन के लिये 'पक्षौ तदेष्टेन निहत्य-' इत्यादि बहुत कुछ कहा, परन्तु पक्षों में क्या जोड़ना चाहिये और उनको किससे गुणना चाहिये, इस बात को सुगमता के साथ दिखलाने के लिये श्रीधराचार्य के सूत्र को लिखा है, उसका यह अर्थ है—

पक्षों के मूल लेने के लिये उन को चतुर्गुणित अव्यक्तवर्गाङ्क से गुणना और गुणन के पहले जो अव्यक्ताङ्क हैं, उसके वर्ग के तुल्य रूप, उनमें जोड़ देना इस प्रकार अव्यक्त पक्ष और दूसरा पक्ष, वर्गात्मक हो जायगा, क्योंकि वे दोनों पक्ष समान हैं।

जो समीकरण[१] में, अव्यक्त के वर्ग की संख्या एक (१) हो और अव्यक्त की संख्या सम अर्थात् २, ४, ६, ८, इत्यादि हों, तो उस में उस सम संख्या के आधे के वर्ग को जोड़ देने से, पक्ष मूलप्रद होंगे।

'यदि अव्यक्त के वर्ग की संख्या एक (१) न हो और अव्यक्त की संख्या सम हो तो, उसको अव्यक्त के वर्ग की संख्या से गुणा देना और उस अव्यक्त संख्या के आधे के वर्ग को जोड़ देना तब पक्षों का मूल मिलेगा।'

यत्र पक्षयोः समशोधने सत्येकस्मिन्पक्षेऽव्यक्तवर्गादिकं स्यादन्यपक्षे रूपाण्येव तत्र द्वावपि पक्षौ केनचिदेकेनेष्टेन तथा गुण्यौ भाज्यौ वा तथा किंचित्समं क्षेप्यं शोध्यं वा यथाव्यक्तपक्षो मूलदः स्यात् तस्मिन् पक्षे मूलदे इतरपक्षेणार्थान्मूलदेन भवितव्यम्, यतः समौ पक्षौ। समयोः समयोगादौ समतैवेत्यतस्तत्पदयोः पुनः समीकरणेनाव्यक्त-

१ यह उक्त 'अव्यक्तवर्गः-' इन दोनों सूत्रों का व्याख्या है।

स्य मानं स्यात् । अथ यद्येवं कृते घनवर्गवर्गादिषु सत्सु कथंचिदव्यक्तपक्षमूलाभावात्क्रिया न निर्वहति तदा बुद्ध्यैवाऽव्यक्तमानं ज्ञेयम् । यतो बुद्धिरेव पारमार्थिकं बीजम् । अथ यद्यव्यक्तपक्षमूले यानि ऋणरूपाणि तेभ्योऽल्पानि व्यक्तपक्षमूलरूपाणि स्युस्तदा तानि धनगतानि कृत्वाऽव्यक्तमितिः साध्या सा चैव द्विधा भवति ।

उदाहरणम्—

अलिकुलदलमूलं मालतीं यातमष्टौ
निखिलनवमभागाश्चालिनी भृङ्गमेकम् ।
निशि परिमललुब्धं पद्ममध्ये निरुद्धं
प्रतिरणति रणन्तं ब्रूहि कान्तेऽलिसंख्याम् ६२

अत्रालिकुलप्रमाणं याव २ एतदर्धमूलं याव १ निखिलनवमभागा अष्टौ याव $\frac{१६}{९}$ मूलभागैक्यं दृष्टालियुगलयुतं राशिसममिति पक्षौ समच्छेदीकृत्य छेदगमे न्यासः ।

याव १८ या० रू०
याव १६ या० रू १८

शोधने कृते जातौ पक्षौ

याव २ या ६ रू ०

याव ० या ० रू १८

एतावष्टाभिः संगुण्य तयोरेकाशीतिरूपाणि प्रक्षिप्य मूले गृहीत्वा तयोः साम्यकरणार्थं न्यासः।

या ४ रू ६

या ० रू १५

प्राग्वल्लब्धं यावत्तावन्मानं ६ अस्य वर्गेणोत्थापिता जातालिसंख्या ७२।

अथात्र शिष्यबुद्धिप्रसारार्थं विविधान्युदाहरणानि निरूपयन्नेकमुदाहरणं मालिन्याह—अलीति। व्याख्यातोऽयं लीलावतीव्याख्याने।

उदाहरण——

किसी भ्रमरों के समूह के आधे का मूल, मालती को गया और आठ से गुणित संपूर्ण का नवाँ भाग भी, मालती को चला गया। रात्रि में सुगन्ध के वश होकर, कमल के कोश में रुके और गुंजार करते हुए एक भ्रमर के प्रति, भ्रमरी गूँज रही है, तो बतलाओ भ्रमरों की क्या संख्या है ?

यहां भ्रमरों के समूह का मान 'याव २' कल्पना किया, इसके आधे का मूल या १ हुआ, और राशि याव २ का आठ-नवमांश याव $\frac{१६}{९}$ हुआ, दृश्य दो भ्रमर हैं। इनका समच्छेद करके योग

$\frac{\text{याव १६ या ९ रू १८}}{\text{९}}$ हुआ, यह राशि के समान है, इसलिये समीकरण के लिए न्यास—

$$\frac{\text{याव १६ या ९ रू १८}}{\text{९}}$$

याव २ या ० रू ०

समच्छेद और छेदगम करने से—

याव १६ या ९ रू १८

याव १८ या ० रू ०

समीकरण करने से शेष रहे—

याव ० या ० रू १८

याव २ या ९ रू ०

यहां अव्यक्तवर्गाङ्क २ को ४ से गुणाने से ८ हुए, इन से दोनों पक्षों को गुण कर, उन में अव्यक्ताङ्क ९ के वर्ग ८१ के तुल्य रूप जोड़ देने से पक्ष मूलप्रद हुए—

याव १६ या ७२ रू ८१

याव ० या ० रू २२५

इनके मूल मिले—

या ४ रू ९

या ० रू १५

फिर समीकरण से यावत्तावत् का मान ६ आया। इसके वर्ग से राशि में उत्थापन देने से, भ्रमरों की संख्या ७२ हुई।

आलाप—७२ इसके आधे ३६ का मूल ६ आया। और संपूर्ण राशि का अष्टगुणित नवमांश ८×८=६४ हुआ। दृश्य २ है। इन ६।६४।२ का योग संपूर्ण राशि ७२ है।

उदाहरणम्—

पार्थः कर्णवधाय मार्गणगणं क्रुद्धो रणे संदधे
तस्यार्धेन निवार्य तच्छरगणं मूलैश्चतुर्भिर्हयान्

शल्यं षड्भिरथेषुभिस्त्रिभिरपिच्छत्रं ध्वजं कार्मुकं
चिच्छेदास्य शिरः शरेण कति ते यानर्जुनः संदधे॥

अत्र बाणसंख्या याव १। अस्यार्धं याव $\frac{१}{२}$।
मूलानि या ४ व्यक्तमार्गणगणं रू १० एषा-
मैक्यमस्य याव १ समं कृत्वा लब्धयावत्ताव-
न्मानेन १० उत्थापिता जाता बाणसंख्या १००

अथोदाहरणान्तरं शार्दूलविक्रीडितेनाह—पार्थ इति । व्याख्यातोऽयं लीलावतीविवृतौ ।

उदाहरण—

कर्ण को मारने के लिए अर्जुन ने जो बाण लिये थे, उन के आधे से कर्ण के बाणों को रोका और उन बाणों के चौगुने मूल से उसके घोड़ों को रोका, छः बाण से शल्य नामक सारथि को आच्छादित किया, तीन बाणों से छत्र, ध्वज और धनुष को काटा, एक बाण से कर्ण का शिर काटा, तो कहो अर्जुन के पास कितने बाण थे?

यहां बाणसंख्या याव १ कल्पना की, इसका आधा याव $\frac{१}{२}$ हुआ, राशि का मूल चतुर्गुण या ४ हुआ, दृश्य १० है, इन का योग $\frac{\text{याव १ या ८ रू २०}}{२}$, यह राशि 'याव १' के समान है।

इसलिये समीकरण के लिए न्यास—

$$\frac{\text{याव १ या ८ रू २०}}{२}$$

याव १

समच्छेद और छेदगम करने से—

याव १ या ८ रू २०

याव २ या ० रू ०

समशोधन करने से—

याव १ या ८ रू ०

याव ० या ० रू २०

'अव्यक्तवर्गः—' इस सूत्र के अनुसार पक्ष मूलप्रद हुए—

याव १ या ८ रू १६

याव ० या ० रू ३६

इनके मूल आये—

या १ रू ४

या ० रू ६

समीकरण से यावत्तावत् का मान १० आया। इस से याव १ इस में उत्थापन देने से बाणसंख्या १०० हुई।

आलाप—१०० इसका आधा ५० हुआ, फिर उस राशि का मूल चतुर्गुण १०×४=४० हुआ, और दृश्य १० है, इन का योग करने से १०० होता है।

उदाहरणम्—

व्येकस्य गच्छस्य दलं किलादि-
रादेर्दलं तत्प्रचयः फलं च।
चयादिगच्छाभिहतिः स्वसप्त-
भागाधिका ब्रूहि चयादिगच्छान्॥६४॥

अत्र गच्छः या ४ रू १। आदिः या २। चयः या १ एषां घातः स्वसप्तभागाधिकः याघ $\frac{६४}{७}$ याव $\frac{१६}{७}$ फलमिदं 'व्येकपदघ्नचय—' इति श्रेढीगणितस्यास्य याघ ८ याव १० या २, सममिति पक्षौ यावत्तावतापवर्त्य सम-

च्छेदीकृत्य छेदगमे शोधने च कृते जातौ पक्षौ

याव ८ या ५४ रू ०
याव ० या ० रू १४

एतयोरष्टगुणयोः सप्तविंशतिवर्ग ७२९ युतयोर्मूले

या ८ रू २७
या ० रू २९

पुनरनयोः समीकरणेनाप्तयावत्तावन्मानेन ७ उत्थापिता आद्युत्तरगच्छाः १४।७।२९।

अथोदाहरणान्तरमुपजातिकयाह—व्येकस्येति । यत्र व्येकस्य एकेन हीनस्य गच्छस्य दलमर्धमादिः, आदेर्दलं प्रचयः, स्वस्य सप्तमभागेनाधिका चयादिगच्छाभिहतिः फलं वर्तते तत्र चयादि-गच्छान् ब्रूहि ।

उदाहरण—

जहां एकोन गच्छ का आधा आदि है, आदि का आधा चय है और अपने सातवें भाग से अधिक चय, आदि और गच्छ का घात फल है, वहां पर चय, आदि और गच्छ क्या होगा ?

गच्छ का मान या १ कल्पना किया, एक से घटा हुआ इसका आधा आदि $\frac{\text{या १ रू १̇}}{२}$ हुआ, आदि का आधा चय $\frac{\text{या १ रू १̇}}{४}$ हुआ, अब 'व्येकपदघ्नचयो मुखयुक् स्यात्—' इस सूत्र के अनुसार फल का आनयन करते हैं—व्येकपद या १ रू १̇ से चय $\frac{\text{या १ रू १̇}}{४}$

को गुणने से $\frac{\text{याव १ या २̇ रू १}}{४}$ हुआ, इस में आदि $\frac{\text{या १ रू १̇}}{२}$ को समच्छेद से जोड़ने पर अन्त्य धन= $\frac{\text{याव १ या ० रू १̇}}{४}$ हुआ। इसमें आदि $\frac{\text{या १ रू १̇}}{२}$ जोड़ने से $\frac{\text{याव १ या २ रू ३̇}}{४}$ हुआ, इस का आधा करने से मध्य धन= $\frac{\text{याव १ या २ रू ३̇}}{४}$ हुआ। अब मध्य धन को गच्छ या १ से गुणने से श्रेढीफल= $\frac{\text{याघ १ याव २ या ३̇}}{८}$ हुआ।

चय = $\frac{\text{या १ रू १̇}}{४}$ । आदि = $\frac{\text{या १ रू १̇}}{२}$ गच्छ=या १ इन का घात $\frac{\text{याघ १ याव २̇ या १}}{८}$ हुआ, अब इस को इसी के सातवें भाग $\frac{\text{याघ १ याव २̇ या १}}{५६}$ से समच्छेद करके युक्त करने से $\frac{\text{याघ ८ याव १६̇ या ८}}{५६}$ हुआ। इसमें ८ का अपवर्तन देने से $\frac{\text{याघ १ याव २̇ या १}}{७}$ हुआ। यह और श्रेढी फल समान है, इसलिये समीकरण के लिए न्यास—

$$\frac{\text{याघ १ याव २ या ३̇}}{८}$$

$$\frac{\text{याघ १ याव २̇ या १}}{७}$$

समच्छेद और छेदगम करने से—

याघ ७ याव १४ या २१̇

याघ ८ याव १६̇ या ८

यावत्तावत् का अपवर्तन देने से—

याव ७ या १४ रू २१̇
याव ८ या १६̇ रू ८

समीकरण करने से—

याव ० या ० रू २९̇
याव १ या ३०̇ रू ०

'अव्यक्तवर्गः—' इस सूत्र के अनुसार १५ का वर्ग जोड़ देने से पक्ष मूलप्रद हुए—

याव ० या ० रू १९६
याव १ या ३०̇ रू २२५

इनके मूल आये—

या ० रू १४
या १ रू १५̇

समशोधन से यावत्तावत् का मान २९ आया। इससे या १। $\frac{\text{या १ रू १̇}}{\text{२}}$ । $\frac{\text{या १ रू १̇}}{\text{४}}$ इन में उत्थापन देने से, गच्छ २९ आदि १४ और चय ७ हुआ। यहां आचार्य ने लाघव के लिये रूपाधिक यावत्तावत् चार गच्छ कल्पना किया, या ४ रू १। फिर उक्तरीति से आदि और चय हुआ या २। या १। इन का घात याघ ८ याव २ हुआ। यह अपने सातवें भाग $\frac{\text{याव ८ याघ २}}{\text{७}}$ से युक्त करने से $\frac{\text{याघ ६४ याव १६}}{\text{७}}$ हुआ। यह फल के समान है, इसलिये उक्तरीति से फल लाते हैं—व्येक पद या ४ से चय या १ को गुणने से याव ४ हुआ, इस में मुख या २ जोड़ने से अन्त्य धन याव ४ या २ हुआ। इस में मुख जोड़ कर, आधा करने से मध्य धन याव २ या २ हुआ। इस को पद या ४ रू १ से गुणने से श्रेढीफल याघ ८ याव १० या २ हुआ। यह पूर्वानीत फल के तुल्य है, इसलिये समीकरण के लिए न्यास—

याघ ६४ याव १६ या ०
———————————
७

याघ ८ याव १० या २

यावत्तावत् का अपवर्तन देने से—

याव ६४ या १६ रू०
———————————
७

याव ८ या १० रू २

समच्छेद, छेदगम और समशोधन करने से—

याव ८ या ५४ रू ०

याव ० या ० रू १४

'वर्गाङ्कसंख्या यदि चन्द्रभिन्ना—' इस सूत्र के अनुसार पक्षों को ८ से गुण कर उन में अव्यक्ताङ्क ५४ के आधे २७ के वर्ग को जोड़ देने से मूल मिले—

या ८ रू २७̇

या ० रू २९

फिर समीकरण से यावत्तावत् का मान ७ आया। इस से उत्थापन देने से आदि, उत्तर और गच्छ हुआ १४ । ७ । २९ ।

आलाप—यहां गच्छ २९ है, इसमें १ घटाने से २८ शेष रहा, इसका आधा १४ आदि है। आदि १४ का आधा ७ चय है। इन सब का घात २८४२ हुआ, इस में इसी का सातवां भाग ४०६ जोड़ने से ३२४८ हुआ, यह श्रेढीफल के समान है।

एकोन पद २८ से गुणित चय १९६ में मुख १४ जोड़ने से अन्त्य धन २१० हुआ। इस में मुख जोड़ कर आधा करने से, मध्य धन ११२ हुआ। इसको पद २९ से गुण देने से श्रेढीफल ३२४८ हुआ। यह पूर्वानीत फल के समान है।

उदाहरणम्—

कः खेन विहृतो राशिः कोट्या युक्तोऽथ वोनितः।

वर्गितः स्वपदेनाढ्यः खगुणो नवतिर्भवेत् ६५

अत्र राशिः या १। अयं खहृतः या $\frac{1}{0}$। अयं कोट्या युक्त ऊनितो वाऽविकृत एव खहरत्वात्। अथायं या $\frac{1}{0}$ वर्गितः याव $\frac{1}{0}$ स्वपदेन या $\frac{1}{0}$ युक्तः याव १ या १ अयं खगुणो जातः याव १ या १ गुणहरयोस्तुल्यत्वेन नाशात्। अथायं नवतिसम इति समशोधने पक्षौ चतुर्भिः संगुण्य रूपं प्रक्षिप्य प्राग्वज्जातो राशिः ६॥

अथान्यदुदाहरणमनुष्टुभाह—क इति। को राशिः खेन विहृतः, कोट्या युक्तः अथवा ऊनितः, वर्गितः, स्वस्य पदेन मूलेन आढ्यो युक्तः, पश्चात् खगुणः सन् नवतिर्भवति। 'तं वद' इति शेषः॥

'आद्ययुक्तो नवोनितः' इति पाठे तु राशिः या १ अयं खहृतः या $\frac{1}{0}$ अस्य खहरत्वं कल्पितमेव, आद्येन या १ युक्तो जातः या २ नवोनितः 'या २ रू ९' वर्गितः याव ४ या ३६ रू ८१ स्वपदेन या २ रू ९ युतः याव ४ या ३४ रू ७२ अयं शून्यगुणो नवतिसम इति शून्येन गुणने प्राप्ते 'शून्ये गुणके जाते

खं हारश्चेत्–' इति पूर्वं शून्यो हर इदानीं गुणस्तस्मादुभयोर्गुणहरयोर्नाशः एवं पक्षौ

याव ४ या ३४ रू ७२
याव ० या ० रू ९०

समशोधनात्पक्षशेषे

याव ४ या ३४ रू ०
याव ० या ० रू १८

एतौ पक्षौ षोडशभिः संगुण्य चतुस्त्रिंशद्वर्गतुल्यानि रूपाणि प्रक्षिप्य मूले गृहीत्वा पक्षयोः शोधनार्थं न्यासः ।

या ८ रू ३४
या ० रू ३८

उक्तवज्जातो राशिः ९ ।

[अथवा 'आद्ययुक्तोऽथ वोनितः' इति पाठे तु राशिः या १ खहतः या $\frac{1}{0}$ आद्येन या १ युक्तोनीकरणाय खहरत्वात्समच्छेदीकरणेन शून्येनैव युक्तोनितः स एव या $\frac{1}{0}$ वर्गितः याव $\frac{1}{0}$ स्वपदेनाढ्यः याव $\frac{1}{0}$ या $\frac{1}{0}$ अयं खगुणः ।

---

१ अयं कोष्ठान्तर्गतः पाठो मुद्रितपुस्तके ।

पूर्वं खहरत्वाद् गुणहरयोर्नाशे कृते जातः याव १ या १ अयं नवतिसम इति समशोधनाय न्यासः।

याव १ या १ रू ०
याव ० या ० रू ९०

समशोधने कृते पक्षाविमौ चतुर्भिः संगुण्यैकं क्षिप्त्वा मूले

या २ रू १
या ० रू १९

अत्र समशोधनाज्जातः प्राग्वद्राशिः ९ ॥]

उदाहरण—

वह कौन राशि है, जिसमें शून्य का भाग देकर कोटि संख्या जोड़ वा घटा देते हैं, फिर वर्ग करके उस में उसी का मूल जोड़ देते हैं और शून्य से गुण देते हैं, तो नब्बे होता है।

कल्पना किया या १ राशि है, इस में शून्य ० का भाग देने से या $\frac{१}{०}$ हुआ, फिर १००००००० कोटि को समच्छेद पूर्वक जोड़ने वा घटाने से राशि ज्यों का त्यों रहा या $\frac{१}{०}$, इस का वर्ग याव $\frac{१}{०}$ हुआ, इस में इसी का मूल या $\frac{१}{०}$ जोड़ देने से $\frac{\text{याव १ या १}}{०}$ हुआ, इस को शून्य से गुणना है, तो 'खगुणश्चिन्त्यश्च शेषविधौ—' इस पाटीस्थ सूत्र के अनुसार $\frac{\text{याव १×० या १×०}}{०}$ हुआ, अब यहां तुल्यता के कारण, शून्य गुणक और हर को उड़ा देने से, याव १ या १ हुआ। यह नब्बे के समान है, इसलिये समीकरणार्थ न्यास—

याव १ या १ रू ०
याव ० या ० रू ६०

पक्षों को ४ से गुणा कर, उन में १ जोड़ कर मूल लेने से—

या ० रू १६
या २ रू १

समीकरण से यावत्तावत् का मान ६ आया, यही राशि है ॥

उदाहरणम्—

कः स्वार्धसहितो राशिः खगुणो वर्गितो युतः ।
स्वपदाभ्यांखभक्तश्च जातःपञ्चदशोच्यताम्६६

अत्र राशिः या १ अयं स्वार्धयुक्तः या $\frac{३}{२}$ खगुणः खं न कार्यः किंतु खगुणश्चिन्त्यः शेषविधौ कर्तव्ये या $\frac{३}{२}$ वर्गितः याव $\frac{६}{४}$ स्वपदाभ्यां $\frac{६}{२}$ युतो जातः $\frac{\text{याव ९ या १२}}{४}$ अयं खभक्तः अत्रापि प्राग्वद्गुणहरयोस्तुल्यत्वान्नाशे कृतेऽविकृतो राशिः तं च पञ्चदशसमं कृत्वा समच्छेदीकृत्य छेदगमे शोधनाज्जातौ पक्षौ

याव ९ या १२ रू ०
याव ० या ० रू ६०

एतौ चतुर्युतौ कृत्वा मूले गृहीत्वा पुनः

समशोधनाल्लब्धं यावत्तावन्मानम् २। तथा चास्मत्पाटीगणिते-

'खहरः स्यात्खगुणः खं
खगुणश्चिन्त्यश्च शेषविधौ ॥
शून्ये गुणके जाते
खं हारश्चेत्पुनस्तदा राशिः ।
अविकृत एव ज्ञेयः—
सर्वत्रैवं विपश्चिद्भिः ॥

अथान्यदुदाहरणमनुष्टुभाह—क इति। को राशिः स्वकीयार्धेन सहितः खगुणो वर्गितः स्वपदाभ्यां युतः स्वस्य द्विगुणमूलेन सहित इत्यर्थः। खेन भक्तः एवं कृते पञ्चदश जातः संपन्नः, भवता उच्यतां कथ्यताम् ॥

उदाहरण—

वह कौन राशि है, जिस को अपने आधे से युक्त करके, शून्य से गुणा देते हैं और उस के वर्ग में उसी का दूना मूल जोड़ कर, शून्य का भाग देने से पन्द्रह होता है।

कल्पना किया कि या १ राशि है, इस को अपने आधे या $\frac{१}{२}$ से युक्त किया या $\frac{३}{२}$ हुआ। अब इस को शून्य से गुणाना है तो 'खगुणश्चिन्त्यश्च शेषविधौ' के अनुसार, या $\frac{३ \times ०}{२}$ हुआ। इसके वर्ग $\frac{\text{याव } ९}{४}$ में इसी का दूना मूल या $\frac{३ \times २}{२}$ समच्छेद करके जोड़ने से $\frac{\text{याव } ९ \text{ या } १२}{४}$ हुआ इस में शून्य का भाग देना है, तो

तुल्य गुणक और हार को उड़ा देने से अविकृत ही रहा $\frac{\text{याव ९ या १२}}{\text{४}}$

यह १५ के समान है, इसलिये समीकरण के लिए न्यास—

$\frac{\text{याव ९ या १२}}{\text{४}}$

रू १५

समच्छेद और छेदगम करने से—

याव ९ या १२ रू ०

याव ० या ० रू ६०

पक्षों को चार से गुणा कर, उन में रूप सोलह जोड़ने से मूलप्रद हुए—

याव ३६ या ४८ रू १६

याव ० या ० रू २५६

अथवा 'वर्गाङ्कसंख्या यदि चन्द्रभिन्ना—' इस सूत्र के अनुसार पक्षों को वर्गाङ्क ९ से गुणा कर, उन में वर्णाङ्क १२ के आधे ६ का वर्ग ३६ जोड़ने से मूलप्रद हुए—

याव ८१ या १०८ रू ३६

याव ० या० रू ५७६

मूल आये—

या ६ रू ४

या ० रू १६

या ९ रू ६

या ० रू २४

दोनों स्थानों में समीकरण से यावत्तावत् का मान २ आया ॥

उदाहरणम्—

राशिर्द्वादशनिघ्नो

राशिघनाढ्यश्च कः समा यस्य ।

राशिकृतिः षड्गुणिता
पञ्चत्रिंशद्युता विद्वन् ॥ ६७ ॥

अत्र राशिः या १ अयं द्वादशगुणितो राशिघनाढ्यश्च याघ १ या १२ अयं याव ६ रू ३५ सम इति शोधने कृते जातमाद्यपक्षे याघ १ याव ६ या १२ अन्यपक्षे रू ३५

अनयोः ऋणरूपाष्टकं प्रक्षिप्य घनमूले

या १ रू २̇

या ० रू ३

पुनरनयोः समीकरणेन जातो राशिः ५।

अथान्यदुदाहरणमार्ययाह—राशिरिति । हे विद्वन् ! को राशिर्द्वादशगुणो राशिघनेन युक्तो यस्य समा षड्गुणिता पञ्चत्रिंशद्युता राशिकृतिः स्यात् ।

उदाहरण—

वह कौन सी राशि है, जिस को बारह से गुण कर, राशि का घन जोड़ देते हैं, तो पैंतीस से जुड़ा हुआ षड्गुणित राशि के वर्ग के समान होता है ।

कल्पना किया या १ राशि है, इस को बारह से गुण कर राशि का घन जोड़ा याघ१ या१२ हुआ, यह पैंतीस से जुड़े षड्गुणित राशि के वर्ग के समान है, इसलिये समीकरण के लिये न्यासं—

याघ १ याव ० या १२ रू ०
याघ ० याव ६ या ० रू ३५

समशोधन करने से—

याघ १ याव ६ या १२ रू ०
याघ ० याव ० या ० रू ३५

पक्षों में ८ घटाने से——

याघ १ याव ६ या १२ रू ८̇
याघ ० याव ० या ० रू २७

इन का घनमूल लेना चाहिये तो पहले पक्ष में प्रथमखण्ड याघ १ का घनमूल या १ आया, इस के तिगुने वर्ग याव ३ का, उस के आदि याव ६ में भाग देने से रू २̇ लब्धि मिली। इस का वर्ग ४ अन्त्य या १ से गुणित या ४ हुआ, फिर तीन से गुणित या १२ को इसके आदि या १२ में घटा दिया और लब्ध रू २̇ के घन रू ८̇ को उस के आदि रू ८̇ में घटा दिया, तब निःशेष हुआ और घनमूल या १ रू २̇ मिला। दूसरे पक्ष का घनमूल रू ३ आया। इन का समीकरण के लिये न्यास——

या १ रू २̇
या ० रू ३

समीकरण से यावत्तावत् का मान ५ आया, यह द्वादशगुणित ६० राशिघन १२५ से जुड़ा १८५ षड्गुणित तथा पैंतीस से जुड़े राशि ५ के वर्ग के समान है।

उदाहरणम्—

को राशिर्द्विशतीक्षुण्णो राशिवर्गयुतो हतः ६८
द्वाभ्यां तेनोनितो राशिवर्गवर्गोऽयुतं भवेत्।
रूपोनं वद तं राशिं वेत्सि बीजक्रियां यदि ६९

अत्र राशिः या १। द्विशतीक्षुण्णः या २००। राशिवर्गयुतो जातः याव १ या २०० अयं द्वाभ्यां गुणितः याव २ या ४०० अनेनायं

राशिवर्गवर्ग ऊनितो जातः 'यावव १ याव २̇ या ४̇०० ' अयं रूपोनायुतसम इति समशोधने कृते जातौ पक्षौ ।

यावव १ याव २̇ या ४̇०० रू०
यावव ० याव ० या ० रू ९९९९

अत्राद्यपक्षे किल यावत्तावच्चतुःशतीं रूपाधिकां प्रक्षिप्य मूलं लभ्यते परं तावति क्षिप्ते नान्यपक्षस्य मूलमस्ति । एवं क्रिया न निर्वहति अतोत्र स्वबुद्धिः । इह पक्षयोर्यावत्तावद्वर्गचतुष्टयं यावत्तावच्चतुःशतीं रूपं च प्रक्षिप्य मूले

याव १ रू १.
या २ रू १००

पुनरनयोः समीकरणेन प्राग्वल्लब्धं यावत्तावन्मानं ११ इत्यादि बुद्धिमता ज्ञेयम् ।

अथान्यदुदाहरणं सार्धानुष्टुभाह—को राशिरिति । हे गणक ! को राशिः द्विशत्या शतद्वयेन क्षुण्णो राशेर्वर्गेण युतः द्वाभ्यां हतः सन् यत्किंचिज्जायते तेन ऊनितो राशेर्वर्गवर्गो रूपोनमयुतं भवेत्, तं राशिं वद यदि त्वं बीजक्रियां वेत्सि ।

उदाहरण—

वह कौन राशि है, जिस को दो सौ से गुण कर, राशि का वर्ग जोड़ देते हैं, फिर दो से गुण कर, उस को राशि के वर्गवर्ग में घटा देते हैं, तो एकोन अयुत होता है ।

यहां राशि यावत्तावत् १ कल्पना किया, उसको २०० से गुण कर राशि वर्ग जोड़ देने से याव १ या २०० हुआ, अब इसको दूना करने से याव २ या ४०० हुआ, इस को राशि के वर्गवर्ग में घटा देने से, यावव १ याव २̇ या ४०̇० हुआ, यह एकोन अयुत के तुल्य है—

यावव १ याव २̇ या ४०̇० रू ०
यावव ० याव ० या ० रू ९९९९

समशोधन से पक्ष यथास्थित रहे। अब इन में यावत्तावद्वर्ग चार और एकाधिक यावत्तावत् चारसौ जोड़ देने से हुए—

यावव १ याव २ या ० रू १
यावव ० याव ४ या ४०० रू १००००

इनके मूल मिले—

याव १ रू १
या २ रू १००

फिर समशोधन करने से हुए—

याव १ या २̇
याव ० रू ९९

इन में १ जोड़ देने से—

याव १ या २ रू १
याव ० या ० रू १००

इनके मूल आये—

या १ रू १̇
या ० रू १०

समीकरण से यावत्तावत् का मान ११ मिला।

आलाप—राशि ११ है, २०० से गुणा देने से २२०० हुआ। इस में राशि ११ का वर्ग १२१ जोड़ने से २३२१ हुआ। इसको २ से गुणा देने से ४६४२ हुआ। अब इस को राशि ११ के वर्ग १२१ वर्ग १४६४१ में घटा देने से ९९९९ एकोन-अयुत होता है, यही प्रश्न था।

उदाहरणम्-

वनान्तराले प्लवगाष्टभागः
संवर्गितो वल्गति जातरागः।
फूत्कारनादप्रतिनादहृष्टा
दृष्टा गिरौ द्वादश ते कियन्तः॥ ७० ॥

अत्र कपियूथं यावत्तावत् १ अस्याष्टांशवर्गो द्वादशयुतो यूथसम इति पक्षौ

याव $\frac{१}{६४}$ या ० रू ७६८
याव ० या १ रू ०

अनयोः समच्छेदीकृत्य छेदगमे शोधने च कृते जातौ पक्षौ

याव १ या ६४ रू ०
याव ० या ० रू ७६८

इह पक्षयोर्द्वात्रिंशद्वर्गं प्रक्षिप्य मूले

या १ रू ३२
या ० रू १६

अत्राव्यक्तपक्षर्णरूपेभ्योऽल्पानि व्यक्तपक्षरूपाणि सन्ति तानि धनमृणं च कृत्वा लब्धं द्विविधं यावत्तावन्मानम् ४८। १६

अथ 'अव्यक्तमूलर्णगरूपतोऽल्पं–' इत्यस्य सूत्रस्योदाहरणमुपजातिकयाह–वनान्तराल इति। वनान्तरालेवनमध्ये प्लवगानां वानराणामष्टभागोऽष्टमांशो वर्गितो जातरागः सन् वल्गति, संजातरागोद्रेकतया शब्दं करोतीत्यर्थः। 'बूत्' इति तन्नादानुकृतिः, बूत्काररूपो यो नादः शब्दस्तस्य यः प्रतिनादः प्रतिशब्दस्ताभ्यां हृष्टाः द्वादश वानराः गिरौ शैले दृष्टाः, एवं ते वानराः कियन्त इत्यभिधीयताम्।

उदाहरण—

किसी जङ्गल में वानरों का आठवां भाग वर्ग किया हुआ सानन्द क्रीड़ा कर रहा है और वहीं एक पर्वत पर बारह वानर आपस में, किलकार कर रहे हैं तो कहो वे कितने हैं?

कल्पना किया या १ वानरों का मान है, इस का आठवां भाग या $\frac{१}{८}$ वर्ग करने से याव $\frac{१}{६४}$ हुआ, इसमें १२ जोड़ देने से याव $\frac{१ \text{ रू } ७६८}{६४}$ हुआ, यह वानरों के यूथ के समान है, इसलिये समीकरण के लिये न्यास—

$$\frac{\text{याव } १ \text{ रू } ७६८}{६४}$$

$$\text{या } १$$

समच्छेद और छेदगम करने से—

याव १ या ० रू ७६८

याव ० या ६४ रू ०

समशोधन करने से—

याव १ या $\dot{६४}$ रू ०

याव ० या ० रू $\dot{७६८}$

इन में ३२ के वर्ग १०२४ को जोड़ देने से—

याव १ या ६४ रू १०२४
याव ० या ० रू २५६

इन के मूल आये—

या १ रू ३२̇
या ० रू १६

यहां अव्यक्तपक्षीय ऋणगत ३२ रूप से व्यक्तपक्षीय धनगत १६ रूप अल्प हैं, इसलिये 'अव्यक्तपक्षर्णगरूपतोऽल्पं---' इस सूत्र के अनुसार व्यक्तपक्ष का द्विविध मूल आया—

या १ रू ३२̇
या ० रू १६
या १ रू ३२̇
या ० रू १६̇

इन के समीकरण करने से द्विविध यावत्तावत् का मान ४८।१६ आया।

आलाप—४८ राशि है, इस के आठवें भाग ६ के वर्ग ३६ में १२ जोड़ देने से राशि होती है। इसी भांति १६ राशि है, इस के आठवें भाग २ के वर्ग ४ में १२ जोड़ देने से वही राशि होती है।

उदाहरणम्—

**यूथात्पञ्चांशकस्त्र्यूनो वर्गितो गह्वरं गतः।
दृष्टः शाखामृगः शाखामारूढो वद ते कति ७१**

अत्र यूथप्रमाणं यावत्तावत् १ अत्र पञ्चांशकस्त्र्यूनः या $\frac{१}{५}$ रू $\frac{१५}{५}$ वर्गितः याव $\frac{१}{२५}$ या $\frac{३०}{२५}$ रू $\frac{२२५}{२५}$ एतद्दृष्टेन युतो याव $\frac{१}{२५}$ या $\frac{३०}{२५}$ रू $\frac{२५०}{२५}$ यूथसम इति समच्छेदीकृत्य छेदगमे शोधने च कृते जातौ पक्षौ

याव १ या पूं५ रू ०
याव ० या ० रू २पूं०

चतुर्भिः संगुण्य पञ्चपञ्चाशद्वर्गं ३०२५ प्रक्षिप्य मूले

या २ रू ५पूं
या ० रू ४५

अत्रापि प्राग्वल्लब्धं द्विविधं यावत्तावन्मानम् ५०।५ द्वितीयमत्र न ग्राह्यमनुपपन्नत्वात् नहि व्यक्ते ऋणगते लोकस्य प्रतीतिरस्तीति।

अथ द्विधा मानस्य क्वाचित्कत्वप्रदर्शनार्थमुदाहरणद्वयमनुष्टुब्द्वयेनाभिहितं तत्र प्रथमं यथा—यूथादिति । यूथात् वानराणां कुलात् पञ्चांशकः पञ्चमो भागः त्रिभिरूनो वर्गितः गह्वरं पर्वतगुहां गतः । एकः शाखामृगो मर्कटः कस्यचित्पादपस्य शाखामारूढो दृष्टः । एवं ते कतीति वद । वाक्यार्थः कर्म ॥

उदाहरण——

वानरों के झुंड से पाँचवां भाग तीन से घटा हुआ तथा वर्गित किसी पर्वत की कन्दरा को चला गया और एक वानर वृक्ष की डाल पर बैठा हुआ देखा गया तो बतलाओ वे कितने वानर हैं ।

कल्पना किया यूथ (झुंड) का मान या १ है, इस का पांचवां भाग या पूं१ इस में ३ घटा देने से $\frac{\text{या १ रू १पूं}}{\text{५}}$ शेष रहा, इस का वर्ग $\frac{\text{याव१ या३ं० रू२२५}}{\text{२५}}$ हुआ, इसमें इष्ट१ जोड़ देनेसे $\frac{\text{याव१ या३ं० रू२५०}}{\text{२५}}$ हुआ । यह यूथ के तुल्य है, इसलिये समीकरण के लिये न्यास——

याव १ या ३̇० रू २५०
―――――――――――
२५

या १

समच्छेद और छेदगम करने से—

याव १ या ३̇० रू २५०
याव ० या २५ रू ०

समशोधन करने से—

याव १ या ५̇५ रू ०
याव ० या ० रू २५̇०

चार से गुणा कर, ५५ के वर्ग ३०२५ को जोड़ने से—

याव ४ या २२̇० रू ३०२५
याव ० या ० रू २०२५

इन के मूल आये—

या २ रू ५५̇
या ० रू ४५

यहां पर भी अव्यक्तपक्षीय ऋणगत ५५̇ रूप से व्यक्तपक्षीय धनगत ४५ रूप अल्प हैं, इसलिये इन का द्विविध मूल आया—

या २ रू ५̇५
या ० रू ४५
―――――――
या २ रू ५̇५
या ० रू ४५̇

इन पर से समीकरण द्वारा, विद्विध यावत्तावन्मान ५० । ५ मिला । परन्तु यहां दूसरा मान ५ अनुपपन्न है, क्योंकि उसका पाँचवां भाग १ है यह तीन से ऊन नहीं होता । इसलिये लोकप्रतीत्यर्थ दूसरा मान ५० लेना उचित है । अब इसका पाँचवां भाग १० है, इसमें ३ घटा देने से ७ शेष रहा, इस का वर्ग ४९ हुआ इस में १ दृश्य जोड़ देने से ५० हुआ, यह राशि के समान है । और यदि यहां पर—

'पञ्चांशस्त्रिच्युतो यूथाद्वर्गितो गह्वरं गतः ।
दृष्टः शाखामृगः शाखामारूढो वद ते कति ॥'

ऐसा प्रश्न हो तो दूसरा ही मान उपपन्न होता है । जैसा—पूर्वानीत दूसरा मान ५ है, इस का पांचवां भाग १ को ३ में घटा दिया तो २ शेष रहा, इस का वर्ग ४ हुआ, इस में दृश्य १ जोड़ने से ५ हुआ यही राशि है । और पहला मान अनुपपन्न होता है । जैसा—पूर्वानीत पहला मान ५० है इस का पांचवां भाग १० यह तीन में नहीं घटता । परन्तु ऐसे स्थल में भी आलाप मिलता है किन्तु लोकप्रतीति नहीं होती । इसी अभिप्राय से आचार्य ने 'अव्यक्तमानं द्विविधं कचित्तत्' यह कहा है ॥

उदाहरणम्—

कर्णस्य त्रिलवेनोना द्वादशाङ्गुलशङ्कुभा ।
चतुर्दशाङ्गुला जाता गणक ब्रूहि तां द्रुतम् ७२

अत्र छाया या १ इयं कर्णत्र्यंशोना चतुर्दशाङ्गुला जाता अतो वैपरीत्येनास्याश्चतुर्दश विशोध्य शेषं कर्णत्र्यंशः या १ रू १४̇ अयं त्रिगुणो जातः कर्णः या ३ रू ४२̇ अस्य वर्गः याव ९ या २५२ रू १७६४ कर्णवर्गेणानेन याव १ रू १४४ सम इति समशोधने कृते जातौ पक्षौ

याव ८ या २५२̇ रू०
याव ० या ० रू १६२̇०

एतौ पक्षौ द्वाभ्यां संगुण्य ऋणत्रिषष्टिवर्गं प्रक्षिप्य मूले

या ४ रू ६३
या ० रू २७

पक्षयोः पुनः समीकरणं कृत्वा प्राग्वल्लब्धं द्विविधं यावत्तावन्मानम् $\frac{४५}{२}$।९ उत्थापिते छाये च $\frac{४५}{२}$।९ द्वितीयच्छाया चतुर्दशभ्यो न्यूनाऽतोऽनुपपन्नत्वान्न ग्राह्या। अत उक्तं 'द्विविधं क्वचित्—' इति।

अत्र पद्मनाभबीजे—

'व्यक्तपक्षस्य चेन्मूल-
मन्यपक्षर्णरूपतः।
अल्पं धनर्णगं कृत्वा
द्विविधोत्पद्यते मितिः॥'

इति यत्परिभाषितं तस्य व्यभिचारोऽयम्।

द्वितीयमुदाहरणं यथा—कर्णस्येति। हे गणक, द्वादशाङ्गुलशङ्कुः कोटिः छायाभुजः, छायाकर्णः कर्णः इति जात्यत्र्यस्त्रं सुप्रसिद्धम्। तत्र कर्णस्य त्रिलवेन त्र्यंशेन द्वादशाङ्गुलशङ्कोश्छाया हीना सती यदि चतुर्दशाङ्गुला भवति तदा तां द्वादशाङ्गुलशङ्कुच्छायां द्रुतं वद॥

उदाहरण—

छाया भुज, द्वादशाङ्गुल शङ्कु कोटि, छायाकर्ण कर्ण यह जात्य क्षेत्र है। यहां यदि कर्ण के तीसरे भाग से ऊन द्वादशाङ्गुलशङ्कु की छाया चौदह अङ्गुल की होती है, तो द्वादशाङ्गुल शङ्कु की छाया क्या है?

कल्पना किया छाया का मान यावत्तावत् १ है। यदि कर्ण के तीसरे भाग से हीन छाया, चौदह अङ्गुल की होती है, तो चौदह से ऊन की गई छाया कर्ण के तीसरे भाग के तुल्य होगी, क्योंकि छाया, कर्ण का तीसरा भाग और चौदह के योग के समान है। इसलिये छाया के मान में १४ घटा देने से, कर्ण का तीसरा भाग बचा या १ रू १४ं। इस को ३ से गुणा देने से, कर्ण या ३ रू ४२ं हुआ। इस का वर्ग याव ९ या २५२ं रू १७६४ यह छाया भुजवर्ग से युक्त द्वादशाङ्गुल शङ्कु कोटि के वर्ग के समान है॰॰॰

याव ९ या २५ं२ रू १७६४

याव १ या ० रू १४४

समशोधन करने से—

याव ८ या २५ं२ रू ०

याव ० या ० रू १६ं२०

दो से गुणा कर, तिरसठ के वर्ग ३९६९ को जोड़ देने से—

याव १६ या ५०ं४ रू ३९६९

याव ० या ० रू ७२९

इन के मूल आये—

या ४ रू ६३ं

या ० रू २७

यहां पर भी 'अव्यक्तपक्षर्णगरूपतोऽल्पं—' इस रीति से व्यक्त पक्ष का द्विविध मूल आया—

या ४ रू ६३ं

या ० रू २७

या ४ रू ६३ं

या ० रू २७ं

इन पर से समीकरण के द्वारा द्विविध यावत्तावत् का मान आया $\frac{९०}{४}=\frac{४५}{२}$ । ९ यहां पर दूसरी छाया ९ चौदह से १४ न्यून होने के कारण अनुपपन्न है। इसलिये पहली छाया ली है। इसके वर्ग $\frac{२०२५}{४}$ में समच्छेद से १२ जोड़ने से $\frac{२६०१}{४}$ हुआ, इसका मूल कर्ण $\frac{५१}{२}$ है। इसका तृतीयांश $\frac{५१}{६}$, इस में ३ का अपवर्तन देने से $\frac{१७}{२}$ को छाया $\frac{४५}{२}$ में घटा देने से $\frac{२८}{२}$ शेष रहा। फिर हर २ का भाग देने से १४ लब्धि आई, यही इष्ट था। इस भांति, द्विविध मान के आने पर भी कहीं-कहीं एक ही मान उपपन्न होता है। इसलिये आचार्य ने 'व्यक्तपत्तस्य चेन्मूलं–' इस पद्मनाभ के सूत्र को दूषित कहा है। तात्पर्य यह है, पद्मनाभ ने अपने सूत्र में 'क्वचित्' यह पद नहीं दिया, इस कारण सर्वत्र द्विविध मान की प्राप्ति हुई। परन्तु यहां आचार्य ने 'द्विविधं क्वचित्तत्' यह कहकर उस द्विविधमान का प्रायिकत्व दिखलाया है।

उदाहरणम्–

चत्वारो राशयः के ते मूलदा ये द्विसंयुताः।
द्वयोर्द्वयोर्यथासन्नघाताश्चाष्टादशान्विताः ७३
मूलदाः सर्वमूलैक्यादेकादशयुतात्पदम्।
त्रयोदश सखे जातं बीजज्ञ वद तान्मम ७४॥

अत्र राशिर्येन युतो मूलदो भवति स किल राशिक्षेपः। मूलयोरन्तरवर्गेण हतो राशिक्षे-

पो वधक्षेपो भवति तयो राश्योर्वधस्तेन युतोऽवश्यं मूलदः स्यादित्यर्थः । राशिमूलानां यथासन्नं द्वयोर्द्वयोर्वधा राशिक्षेपोना राशिवधमूलानि भवन्ति। अत्रोदाहरणे राशिक्षेपाद्वधक्षेपो नवगुणः नवानां मूलं त्रयः अतस्त्र्युत्तराशि राशिमूलानि

या १ रू ०
या १ रू ३
या १ रू ६
या १ रू ९

एषां द्वयोर्द्वयोर्वधा राशिक्षेपोनाः सन्तो राशिवधानामष्टादशयुतानां मूलानि भवन्ति, अत उक्तवद्वधमूलानि

याव १ या ३ रू २
याव १ या ९ रू १६
याव १ या १५ रू ५२

एषां पूर्वमूलानां च सर्वेषां योगः 'याव ३ या ३१ रू ८४' इदमेकादशयुतं त्रयोदशवर्गसमं कृत्वा

याव ३ या ३१ रू ६५
याव ० या ० रू १६९

पक्षशेषं द्वादशभिः संगुण्य तयोरेकत्रिंशद्वर्गं ९६१ निक्षिप्य मूले

या ६ रू ३१
या ० रू ४३

पुनरनयोः समीकरणेन लब्धयावत्तावन्मानेना २ नेनोत्थापितानि राशिमूलानि ३।५।८।११। एषां वर्गा राशिक्षेपोना अर्थाद्राशयो भवन्ति २।२३।६२।११९

अत्राद्यपरिभाषा।

'राशिक्षेपाद्वधक्षेपो यद्गुणस्तत्पदोत्तरम्।
अव्यक्ता राशयः कल्प्या वर्गिताः क्षेपवर्जिताः॥'

इयं कल्पना गणितेऽतिपरिचितस्य।

अथान्यदुदाहरणमनुष्टुब्द्वयेनाह—चत्वार इति। के ते चत्वारो राशयो द्विसंयुताः सन्तो मूलदाः स्युः। द्वयोर्द्वयोर्यथाऽऽसन्नघाताः। एतदुक्तं भवति—प्रथमद्वितीयघातः, द्वितीयतृतीयघातः, तृतीयचतुर्थघातः, एते अष्टादशान्विताः सन्तो मूलदाः स्युः। सर्वेषां मूलानामैक्यादेकादशयुतात्पदं त्रयोदश जातं, हे सखे बीजज्ञ, तांश्चतुरो राशीन्। मम वद कथयेत्यर्थः॥

उदाहरण—

वे चार कौन सी राशियाँ हैं, जिन में दो जोड़ देने से मूल मिलते हैं, और उनके आसन्न घात अर्थात् पहले दूसरे का, दूसरे तीसरे का और तीसरे चौथे का, इस क्रम से जो होते हैं, उनमें अठारह जोड़ देने से मूल मिलते हैं ? और उन मूलों के योग में ग्यारह जोड़ देने से तेरह मूल आता है।

यहां पर पहले राशि की कल्पना करने का प्रकार दिखलाते हैं—

(१) राशि जिसके जोड़ने से मूलप्रद हो वह उस का क्षेप है, यदि राशि में क्षेप जोड़ने से मूल आता है, तो व्यस्तविधि से मूलवर्ग में राशिक्षेप घटा देने से राशि होगा। जैसा—क्षेप से हीन प्रथम मूलवर्ग प्रथम राशि होता है, प्रमूव १ क्षे १̇=प्रथम राशि १ इसी भांति क्षेप से हीन द्वितीय मूलवर्ग द्वितीय राशि होती है, द्विमूव १ क्षे १̇=द्वितीय राशि १ इन दोनों राशियों का घात, जिस के योग से मूलप्रद हो, वह वधक्षेप होता है, इसलिये गुणन के लिये न्यास—

गुण्य= द्विमूव १ क्षे १̇
गुणक= प्रमूव १ क्षे १̇

प्रमूव. द्विमूव १ प्रमूव. क्षे १̇
क्षे. द्विमूव १̇ क्षेव १

गुणन-फल=प्रमूव. द्विमूव १ प्रमूव. क्षे १̇ क्षे. द्विमूव १̇ क्षेव १ यहां पहले खण्ड में, प्रथम और द्वितीय मूलों के वर्ग का घात है, वहां जो वर्गघात होता है वही घातवर्ग है, इसलिये पहले खण्ड के स्थान में, प्रथम और द्वितीय मूलों के घात के वर्ग का स्वरूप मूघाव १ हुआ और दूसरे खण्ड में, क्षेप से गुणा प्रथम मूलवर्ग ऋण है और तीसरे खण्ड में, क्षेप से गुणा द्वितीय मूलवर्ग ऋण है, तो दोनों स्थानों में क्षेप गुणक हुआ। इसलिये लाघवार्थ प्रथम मूलवर्ग और द्वितीय मूलवर्ग के योग को, क्षेप से गुणा देने से द्वितीय और तृतीय खण्डों का स्वरूप मूवयो. क्षे १̇ हुआ। चौथा खण्ड ज्यों का त्यों रहा। इन का क्रम से न्यास—

गुणनफल=मूघाव १ मूवयो. क्षे १ क्षेव १

यहां दूसरे खण्ड में क्षेप गुणित मूलवर्गों का योग ऋण है। मूलवर्गयोग के दो खण्ड किये, पहला खण्ड मूलों के अन्तरवर्ग के तुल्य, दूसरा दूने मूलघात के तुल्य।

प्रथम खण्ड = मूअंव १।

दूसरा खण्ड = मूघा २।

इसका कारण 'राश्योरन्तरवर्गेण द्विघ्ने घाते युते तयोः। वर्गयोगो भवेत्—' इस पाटी विधि से स्पष्ट है। अत्र उन दोनों खण्डों से अलग-अलग ऋणागत क्षेप को गुण दिया तो हुआ—

मूअंव. क्षे १ मूघा. क्षे २

सब खण्डों का क्रम से न्यास——

मूघाव १ मूअंव. क्षे १ मूघा. क्षे २ क्षेव १

यह प्रथम और द्वितीय राशि का घात है, इस में जिस के जोड़ने से मूल मिले, वह वधक्षेप होगा, तो यहां क्षेपगुणित मूलान्तरवर्ग मूअंव. क्षे १ के जोड़ने से दूसरा खण्ड मूअंव. क्षे १ उड़ जाता है और तीन खण्ड शेष रहते हैं—

मूघाव १ मूघा. क्षे २ क्षेव १

इन का 'कृतिभ्य आदाय पदानि—' इस सूत्र के अनुसार मूघा १ क्षे १ मूल आया, यही राशियों के घात का मूल है इससे 'राशिमूलानां यथासन्नं द्वयोर्द्वयोर्वधा राशिक्षेपोना राशिवधमूलानि भवन्ति' यह फक्किका उपपन्न हुई। यहां वधक्षेप का स्वरूप मूअंव. क्षे १ यह है, इससे मूलयोरन्तरवर्गेण हतो राशिक्षेपो वधक्षेपो भवति। यह फक्किका उपपन्न हुई। यदि मूलान्तर वर्ग में राशिक्षेपघात वधक्षेप होता है, तो वधक्षेप में राशिक्षेप का भाग देने से मूलान्तवर्ग होगा और उस का मूल मूलान्तर होगा। इसी भांति, दूसरी-तीसरी राशि की और तीसरी चौथी राशि की वधमूलवासना जाननी चाहिये।

(२) अब प्रकृत में वधक्षेप १८ है, इसमें राशिक्षेप २ का भाग देने से ९ आया, इस का मूल ३ हुआ, यह मूलान्तर है। यहां पहली

राशि का मूल या १ कल्पना किया, इस में उस मूलान्तर को जोड़ देने से दूसरे राशी का मूल या १ रू ३ हुआ । इसी भांति तीसरी और चौथी राशि के मूल या १ रू ६ । या १ रू ९ हुए इन के वर्ग हुए—

(या १)² = याव १
(या १ रू ३)² = याव १ या ६ रू ९
(या १ रू ६)² = याव १ या १२ रू ३६
(या १ रू ९)² = याव १ या १८ रू ८१

इन में राशिक्षेप २ को घटा देने से हुए—

याव १ रू २̇
याव १ या ६ रू ७
याव १ या १२ रू ३४
याव १ या १८ रू ७९

यह सब जोड़ देने से मूलप्रद होते हैं, इसीलिये 'राशिक्षेपाद्वध-क्षेप:—' यह कहा है ।

(३) अब पहली और दूसरी राशि के घात के लिये न्यास—

गुण्य= याव १ या ६ रू ७
गुणक= याव १ रू २̇

यावव १ याघ ६ याव ७
याव २̇ या १२̇ रू १४̇

गुणनफल=यावव १ याघ ६ याव ५ या १२̇ रू १४̇
इसमें १८ जोड़ देने से—

यावव १ याघ ६ याव ५ या १२̇ रू ४

इस में मूलग्रहण के लिये विषम-सम का संकेत करने से—

। – । – ।
यावव १ याघ ६ याव ५ या १२̇ रू ४

यहां पहले खण्ड का मूल याव १ आया, इसका दूना याव २, दूसरे खण्ड याघ ६ में, भाग देने से या ३ लब्धि मिली । इस के वर्ग

याव ६ को तीसरे खण्ड याव ५ में घटा देने से 'याव ४ या १२ रू ४' यह शेष रहा। अब आगत मूल 'याव १ या ३' को दूना करके 'याव २ या ६' शेष खण्ड 'याव ४ या १२' में भाग देने से रू २ लब्धि आई। इस के वर्ग ४ को 'रू ४' इस शेष में घटा देने से, शेष कुछ नहीं रहा। उन मूलों का क्रम से न्यास याव १ या ३ रू २।

इसी भांति दूसरी और तीसरी राशि के घात के लिये न्यास——

गुण्य = याव १ या १२ रू ३४
गुणक = याव १ या ६ रू ७

या व व १ या घ १२ या व ३४
या घ ६ या व ७२ या २०४
याव ७ या ८४ रू २३८

गुणनफल=याव व १ याघ १८ याव ११३ या २८८ रू २३८

इसमें १८ जोड़ देने से——

यावव १ याघ १८ याव ११३ या २८८ रू २५६

उक्त रीति से इसका मूल आया——

याव १ या ६ रू १६

इसी भांति, तीसरी और चौथी राशि के घात के लिये न्यास——

गुण्य = याव १ या १८ रू ७६
गुणक = याव १ या १२ रू ३४

यावव १ याघ १८ याव ७६
याघ १२ याव २१६ या ६४८
याव १२ या ६१२ रू २६८६

गुणनफल = यावव १ याघ ३० याव ३०७ या १५६० रू २६८६

इसमें १८ जोड़ देने से——

यावव १ याघ ३० याव ३०७ या १५६० रू २७०४

उक्त रीति से मूल आया——

याव १ या १५ रू ५२

इस प्रकार आलाप की रीति से मूल लाये गये हैं ।

(४) अब इन का लाघव से आनयन करते हैं—दूसरी राशि का मूल या १ रू ३ है इस को पहली राशि के मूल या १ से गुण कर उस में राशि क्षेप २ को घटा देने से पहला वधमूल याव १ या ३ रू २̇ हुआ । इसी भांति दूसरी और तीसरी राशि के मूलघात के लिये न्यास—

गुण्य= या १ रू ६
गुणक= या १ रू ३
याव १ या ६
या ३ रू १८
गुणनफल=याव १ या ९ रू १८

गुणनफल में राशिक्षेप २ को घटा देने से, दूसरा वधमूल याव १ या ९ रू १६ हुआ । इसी भांति तीसरी और चौथी राशि के मूल घात के लिये न्यास—

गुण्य= या १ रू ९
गुणक= या १ रू ६
याव १ या ९
या ६ रू ५४
गुणनफल=याव १ या १५ रू ५४

गुणनफल में राशिक्षेप २ को घटा देने से, तीसरा वधमूल याव १ या १५ रू ५२ हुआ । राशि मूल और वध मूलों का क्रम से न्यास ।

याव ० या १ रू ०
याव ० या १ रू ३
याव ० या १ रू ६
याव ० या १ रू ९
याव १ या ३ रू २̇
याव १ या ९ रू १६
याव १ या १५ रू ५२

इन मूलों का योग याव ३ या ३१ रू ८४ हुआ, इस में ११ जोड़ने से याव ३ या ३१ रू ९५ हुआ, यह तेरह के वर्ग के समान है, इस लिये समीकरण के लिये न्यास—

याव ३ या ३१ रू ९५
याव ० या ० रू १६९

शोधन करने से हुए—

याव ३ या ३१ रू ०
याव ० या ० रू ७४

बारह से गुणकर, एकतीस का वर्ग जोड़ देने से हुए—

याव ३६ या ३७२ रू ९६१
याव ० या ० रू १८४९

इनके मूल आये—

या ६ रू ३१
या ० रू ४३

समीकरण करने से, यावत्तावत् का मान २ आया। इस से राशिमूल में उत्थापन देने से राशिमूल हुए २।५।८।११। इनके वर्ग ४।२५।६४।१२१ में राशिक्षेप २ अलग अलग ऊन करने से २।२३।६२।११९, इनके आसन्नघात ४६।१४२८। ४३७६ में १८ जोड़ देने से ६४।१४४४।७३९६ इनके मूल ८।३८।८६ मिले, और २।२३।६२। ११९ इनमें अलग अलग २ जोड़ देने से ४।२५।६४।१२१, इन के क्रम से मूल २।५।८।११ मिले, सब मूलों का योग ८ + ३८ + ८६+ २ + ५ + ८ +११=१५८ हुआ, इस में १३ जोड़ देने से १६९ इसका मूल १३ के तुल्य है॥

उदाहरणम्-

क्षेत्रे तिथिनखैस्तुल्ये दोःकोटी तत्र का श्रुतिः।

उपपत्तिश्च रूढस्य गणितस्यास्य कथ्यताम्[१] ७५

अत्र कर्णः या १ । एतत्त्र्यस्रं परिवर्त्य यावत्तावत्कर्णो भूः कल्पिता भुजकोटी तु भुजौ तत्र यो लम्बस्तदुभयतो ये त्र्यस्रे तयोरपि भुजकोटी पूर्वरूपे भवतः । अतस्त्रैराशिकम् । यदि यावत्तावति कर्णे अयं १५ भुजस्तदा भुजतुल्ये कर्णे क इति लब्धं भुजः स्यात् सा भुजाश्रिताबाधा $\frac{\text{रू } २२५}{\text{या } १}$

पुनर्यदि यावत्तावतिकर्णे इयं २० कोटिस्तदा

---

१ ज्ञानराजदैवज्ञाः—

सरित्तीरे नीरान्तरितमभवत्तालयमलं
करैरूर्ध्वं पञ्चेन्दुभिरिपुयमैस्तत्र विहगौ ।
जले लीनं मीनं प्रति समगती तावपततां
तदा तत्तीरान्तः कथय वसुधां तत्समगतिम् ॥

समगतिः या १ । इष्टभूः २० । ततोऽनुपातेन या $\frac{२०}{२५}$ एतदूना भूः पञ्चविंशतिकोटेर्भुजः या ४ रू $\frac{१००}{५}$ तद्वर्गयोगः समगतिवर्गेण सम इति पक्षयोर्मूले या १८ $\frac{\text{रू } ८००}{\text{रू} १२५०}$ अतो यावत्तावन्मानम् २५ ।

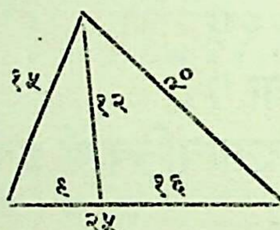
त एव पुनः—

क्षेत्रे यत्र समश्रुती न विदिते कोटिः परा दृश्यते
विद्वद्भिर्विदितं फलं च विपुलं तत्रावलम्बस्तथा ।
आबाधा न कदापि तद्गुणनिधिस्थानं त्वदीयं मया
ज्ञातं वेत्ति सवासनं स विबुधो बालोऽपि मान्यो विदाम् ॥

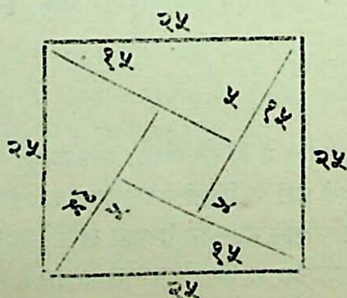
कोटि २० तुल्ये कर्णे केति जाता कोट्याश्रिताबाधा रू ४००
या १

आबाधायुतिर्यावत्तावत्कर्णसमा क्रियते तावद्भुजकोटिवर्गयोगस्य पदं कर्णमानमुत्पद्यते २५ अनेनोत्थापितापिते जाते आबाधे ९।१६। अतो लम्बः १२

न्यासः



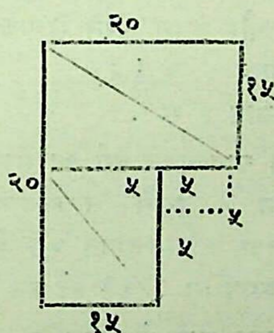
अथान्यथा वा कथ्यते—कर्णः या १ दोः कोटिघातार्धं त्र्यस्रक्षेत्रस्य फलम् १५० । एतद्विषमत्र्यस्रचतुष्टयेन कर्णसमं चतुर्भुजं क्षेत्रमन्यत्कर्णज्ञानार्थं कल्पितम् न्यासः



एवं मध्ये चतुर्भुजमुत्पन्नम् अत्र कोटिभुजान्तरसमं भुजमानम् ५ अस्य फलं २५ भुजकोटिवधो द्विगुणस्त्र्यस्राणां चतुर्णामेतद्योगः६०० सर्वं बृहत्क्षेत्रफलम् ६२५ एतद्यावत्तावत्समं कृत्वा लब्धं कर्णमानम् २५। यत्र व्यक्तस्य न पदं तत्र करणीगतः कर्णः। एतत्करणसूत्रं वृत्तम्—

दोःकोट्यन्तरवर्गेण द्विघ्नो घातः समन्वितः।
वर्गयोगसमः स स्याद् द्वयोरव्यक्तयोर्यथा ६४

अतो लाघवार्थं दोःकोटिवर्गयोगपदं कर्ण इत्युपपन्नम्। तत्र तान्यपि क्षेत्रस्य खण्डानि अन्यथा विन्यस्य दर्शनम्



अथान्यदुदाहरणमनुष्टुभाह—क्षेत्र इति। यत्र क्षेत्रे दोःकोटी तिथिनखैः तुल्ये वर्तेते तत्र का श्रुतिर्भवति। अस्य रूढस्य प्रसिद्धस्य 'तत्कृत्योर्योगपदं कर्णः—' इति गणितस्योपपत्तिर्वासना कथ्यताम्॥

उदाहरण—

जिस क्षेत्र में भुज १५ और कोटि २० है वहां कर्ण क्या होगा? और 'भुज कोटि के वर्गयोग का मूल कर्ण होता है' इस प्रसिद्ध गणित की उपपत्ति क्या है ?

कल्पना किया या १ कर्ण का मान है, अब कर्ण को भूमि और भुज कोटि को भुज कल्पना करने से, क्षेत्र की स्थिति पलट गई, तब भुजों के संपात से लम्ब डाला, (मू० क्षे०) यहां लम्ब के वश से दो त्रिभुज हुए, भुजाश्रित आबाधा भुज, लम्ब कोटि और पहला भुज १५ कर्ण, यह एक त्र्यस्र हुआ। कोट्याश्रित आबाधा भुज, लम्ब कोटि और पहली कोटि २० कर्ण, यह दूसरा त्र्यस्र हुआ। अनुपात— यदि यावत्तावत् कर्ण में पहला भुज १५ आता है, तो पहले भुजरूप कर्ण १५ में क्या ? यों भुजरूप भुजाश्रित आबाधा रू $\frac{२२५}{या १}$ हुई। यदि यावत्तावत् कर्ण में पहली कोटि २० आती है, तो पहली कोटि-रूप कर्ण २० में क्या ? यों भुजरूप कोट्याश्रित आबाधा रू $\frac{४००}{या १}$ हुई। उन दोनों आबाधाओं का योग $\frac{६२५}{या १}$, भूमि या १ के समान हैं, इसलिये समच्छेद और छेदग करने से पक्ष हुए—

याव ० रू ६२५
याव १ रू ०

समीकरण के द्वारा यावत्तावत् वर्ग का मान ६२५ आया इसका मूल २५ कर्ण का मान है इससे 'तत्कृत्योर्योगपदं कर्णः—' यह पाटीस्थ सूत्र उपपन्न हुआ। यावत्तावत् २५ के मान से आबाधाओं में उत्थापन देने से, आबाधा ९।१६ हुई उन से लम्ब १२ आया॥

प्रकारान्तर से उपपत्ति—

भुज कोटि कर्ण रूप जात्यत्र्यस्र को, चारों कोणों में इस भांति लिखना जिस में कर्ण समान चतुर्भुज उत्पन्न हो और उस के अन्तर्गत भुजकोट्यन्तर के समान चतुर्भुज हो (मू. क्षे.) यहां दो-दो जात्य क्षेत्रों

को प्रतिलोम जोड़ने से, भुज-कोटि रूप दो भुजों से, दो आयत क्षेत्र उत्पन्न होते हैं, क्योंकि आयत क्षेत्र में, कर्णरेखा खींचने से, दो जात्य क्षेत्र बनते हैं, तो उन के योग से आयत का बनना क्या आश्चर्य है। और वहां क्षेत्रफल 'तथायते तद्भुजकोटिघातः—' इस सूत्र के अनुसार भुजकोटिघातरूप होता है। इस भांति दो आयत के फलों का योग दूना, भुजकोटिघात भु.को २ हुआ। अथवा, जात्य में भुजकोटि के घात का आधा क्षेत्रफल होता है, तो एक जात्य का फल $\frac{\text{भु.को.१.}}{२}$ हुआ, इस को चतुर्गुण करने से, चार जात्यक्षेत्र के फल योग के समान $\frac{\text{भु.को.४}}{२}$ =भु. को. २ हुआ (इससे भी पहली बात पाई जाती है) इस में भुजकोट्यन्तर के तुल्य, जो चतुर्भुज उत्पन्न हुआ है उसका भुजकोट्यन्तरवर्ग के समान क्षेत्रफल जोड़ देने से कर्ण वर्ग भु. को. २ अंव १ हुआ। क्योंकि कर्णसम चतुर्भुज में कर्णवर्ग ही फल होता है। अब भु.को. २ अंव १=रू ६२५ यह यावत्तावन्मित कर्ण वर्ग के समान है—

याव ० रू ६२५

याव १ रू ०

समीकरण द्वारा यावत्तावद्वर्ग का मान ६२५ आया, इस का मूल २५ यावत्तावत् का मान हुआ, यही कर्ण है॥

उक्त रीति के सूत्र का अर्थ—

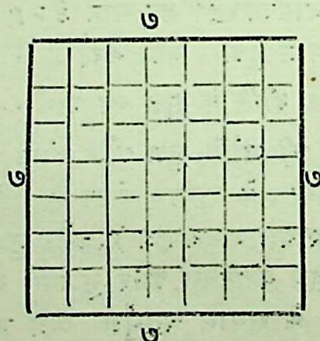
दो अव्यक्त राशि की भांति भुज और कोटि का दूना घात, उन के अन्तरवर्ग से युत वर्गयोग के समान होता है। (मू.क्षे.) यहां पर भी भुज-कोटि-कर्ण रूप चार जात्यक्षेत्र हैं, और भुजकोट्यन्तरवर्गात्मक क्षेत्र है, यह संपूर्ण क्षेत्र कोटिवर्ग और भुजवर्ग का योगरूप दीखता है। क्योंकि बृहद्राशि के समान चतुर्भुज क्षेत्र ऊपर और लघुराशि के समान चतुर्भुज क्षेत्र उस के नीचे एक दिशा में है और उन दोनों के क्षेत्रफल, राशिवर्ग के समान हैं। इस भांति क्षेत्र के पर्यालोचन

से 'दो:कोट्यन्तरवर्गेण[1] (राश्योरन्तरवर्गेण) द्विघ्नो घातः समन्वितः। वर्गयोगसमः स स्यात्—' यह क्रिया निकलती है। यहां राशि के वर्ग योग में उन का दूना घात घटा देने से, अन्तरवर्ग शेष रहता है और अन्तरवर्ग को घटा देने से, उसका दूना घात बाकी रहता है। अथवा, राशि या १ का १ अन्तर या १ का १ का वर्ग याव १ या. का २ काव १ हुआ, इस में इनका दूना घात या. का २ जोड़ देने से मध्यम-खण्ड उड़ गया तो याव १ काव १ यह राशिवर्गयोग के समान शेष रहा। इसलिये 'द्वयोरव्यक्तयोर्यथा' कहा है॥

उदाहरणम्—

भुजात्त्र्यूनात्पदं व्येकं कोटिकर्णान्तरं सखे।
यत्र तत्र वद क्षेत्रे दोःकोटिश्रवणान्मम॥७६॥

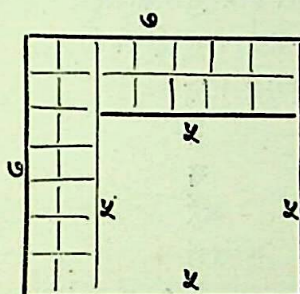
अत्र कोटिकर्णान्तरमिष्टम् २ अतो विलोमेन भुजः १२ तद्यथा कल्पितमिष्टम् २ अस्य सरूपस्य ३ वर्गः ९ त्रियुतः १२ अस्य वर्गः १४४ तत्कोटिकर्णवर्गान्तरम् अतो राश्यो-



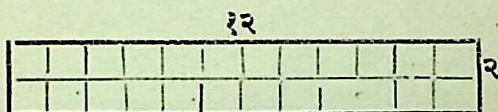
१ अत्र दोःकोट्योरित्युपलक्षणम्।

वर्गान्तरं योगान्तरघातसमं स्यात् । वर्गो हि समचतुरस्रक्षेत्रफलम् । अयं किल सप्तवर्गः ।

अस्मात्पञ्चवर्गं २५ विशोध्य शेषस्य २४ दर्शनम् ।



इहान्तरं द्वौ २ योगो द्वादश १२ योगान्तरघातसमकोष्ठका वर्त्तन्ते २४ तद्दर्शनम् ।



इत्युपपन्नं 'वर्गान्तरं योगान्तरघातसमम्' इति । अत इदं वर्गान्तरं १४४ कल्पितकोटिकर्णान्तरेण २ भक्तं जातम् ७२ । अयं योगो द्विधाऽन्तरेणोनयुतोऽर्धित इति संक्रमणेन जातौ कोटिकर्णौ ३५ । ३७ । एवमेकेन भुज-

कोटिकर्णौ: ७।२४।२५। त्रिभिः १६ $\frac{१७६}{३}$। $\frac{१८५}{३}$ चतुर्भिर्वा। २८। ९६। १००। एवमनेकधा। एवं सर्वत्र ३।

उदाहरण—

जिस क्षेत्र में तीन से हीन भुज का मूल एकोन-कोटिकर्णान्तर है, वहां भुज, कोटि और कर्ण क्या होगा ?

न्यास। भु
३
मू
रू १
कोकअं

'छेदं गुणं गुणं छेदं—' इस विलोम कर्म के अनुसार न्यास—

भु
३
व
रू १
को क अं

इससे ज्ञात हुआ कि सैक वर्गित और त्रियुत कोटिकर्णान्तर भुज होता है। वहां कोटि और कर्ण का अन्तर २ इष्ट कल्पना किया, फिर उस में १ जोड़ने से ३ का वर्ग ९ हुआ, इस में ३ जोड़ने से १२ का वर्ग १४४ हुआ, यह कोटि और कर्ण के वर्गों का अन्तर है, वह योगान्तरघात के समान है, इसलिये १४४ इस में कोटिकर्णान्तर २ का भाग देने से, कोटि-कर्ण का योग ७२ हुआ। बाद 'योगोन्तरेणो-नयुतोऽर्धितस्तौ—' इस संक्रमणरीति से कोटि ३५ कर्ण ३७ हुआ।

अब वर्गान्तर, योगान्तर-घात के तुल्य होता है, इसकी युक्ति दिख-लाते हैं—जैसा सात के समान चतुर्भुज में पांच के समान चतुर्भुज को घटा देने से शेष रहा। (मू. क्षे.) यहां शेष पहला आयत रहा उस

का राश्यन्तर के तुल्य विस्तार और बृहद्राशि के तुल्य दैर्घ्य है। और दूसरे आयत का लघु राशि के तुल्य विस्तार और राश्यन्तर के तुल्य दैर्घ्य है। यह वर्गान्तर का स्वरूप है। क्योंकि दोनों सम चतुर्भुज ही राशि के वर्ग हैं। अब पहले आयत में, दूसरे आयत को जोड़ने से ऐसा स्वरूप हुआ (मू. क्षे.) इस क्षेत्र का राशियोग के तुल्य दैर्घ्य और राश्यन्तर के तुल्य विस्तार है, आयतक्षेत्र में भुज कोटि का घात फल होता है, इस लिये राशियोगान्तर का घात क्षेत्र फल हुआ, यही वर्गान्तर है। इस से उक्त रीति की वासना स्पष्ट प्रकाशित होती है।

प्रकारान्तर से उपपत्ति—

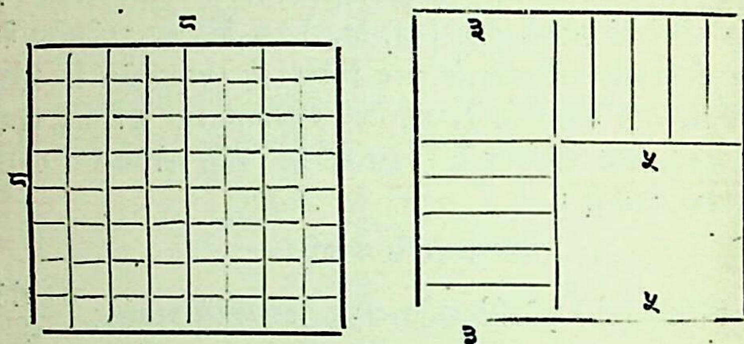
'योगोऽन्तरेणोनयुतोऽर्धितस्तौ राशी—' इस सूत्र के अनुसार $\frac{\text{यो १ अं १}}{\text{२}}$ $\frac{\text{यो १ अं १}}{\text{२}}$ राशि हैं, इन के वर्ग $\frac{\text{योव १ यो.अं २ अंव १}}{\text{४}}$ $\frac{\text{योव १ यो.अं २ अंव १}}{\text{४}}$ हुए। अब पहले वर्ग $\frac{\text{योव १ यो.अं २ अंव १}}{\text{४}}$ को दूसरे वर्ग $\frac{\text{योव १ यो. अं २ अंव १}}{\text{४}}$ में घटा देने से शेष $\frac{\text{यो.अं ४}}{\text{४}}$ रहा, इस में हर ४ का भाग देने से यो. अं १ हुआ। इस से 'योगान्तरघात एव वर्गान्तरम्' यह सिद्ध होता है—

अस्य सूत्रं वृत्तम्—

वर्गयोगस्य यद्राश्योर्युतिवर्गस्य चान्तरम्।
द्विघ्नघातसमानं स्याद्द्वयोरव्यक्तयोर्यथा ६५

अत्र राशी ३।५। अनयोर्युतिवर्गः ६४। तयोर्वर्गौ ९।२५। अनयोर्योगः ३४ एतयोः ६४।३४ अन्तरम् ३० इदं राश्योर्घातेन १५ द्विघ्नेन ३०

समं भवतीत्युपपन्नं तेषां स्वरूपाणि यथा—
न्यासः ।



सूत्रार्थ—

उद्दिष्ट दो राशि का वर्गयोग और योगवर्ग का अन्तर, उन के दूने घात के समान होता है, जैसा दो अव्यक्त का होता है ।

उपपत्ति—

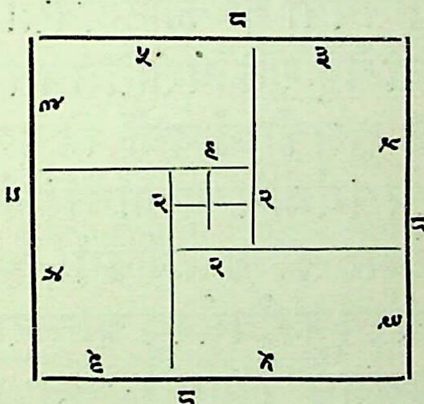
कल्पना किया कि ५ । ३ राशि हैं और इन के योग के समान बड़ा चतुर्भुज है (मू. क्षे.) उसका क्षेत्रफल राशि योगका वर्ग है । इस बड़े चतुर्भुज में लघु और बृहत् राशि के समान चतुर्भुज घटा दिये तो, दो क्षेत्र शेष रहे । उन के भुज राशि के तुल्य हैं, अर्थात् वे आयत क्षेत्र हैं और उन के फल राशिघात हैं, तो उन दोनों का योग करने से राशि-घात दूना होगा इस से उक्त सूत्र की उपपत्ति स्पष्ट प्रकाशित होती है ।

अथवा, कल्पना किया या १ । का १ राशि हैं इन के योग या १ का १ का वर्ग याव १ या. का २ काव १ हुआ, इस में इनका वर्गयोग याव १ काव १ घटा देने से, उन का दूना घात या. का २ शेष रहता है । इस लिये कहा है कि 'द्वयोरव्यक्तयोर्यथा' ॥

अन्त्यकरणसूत्रं वृत्तम्—

चतुर्गुणस्य घातस्य युतिवर्गस्य चान्तरम् ।
राश्यन्तरकृतेस्तुल्यं द्वयोरव्यक्तयोर्यथा ॥६६॥

अत्र राशी ३।५ अनयोर्युतिवर्गाच्चतुर्षु कोणेषु घातचतुष्टयेऽपनीते मध्ये राश्यन्तरवर्गसमाः कोष्ठका दृश्यन्त इत्युपपन्नं तद्दर्शनम् ।



सूत्रार्थ—

उद्दिष्ट दो राशि का योगवर्ग और उन का चौगुना घात, इन का अन्तर उन दो राशि के अन्तरवर्ग के समान होता है । जैसा दो अव्यक्तों का होता है ।

उपपत्ति—

कल्पना किया ५ । ३ राशि हैं, और राशि योग के समान बड़ा चतुर्भुज क्षेत्र है । उसके चारों कोण पर राशि तुल्य भुज वाले चार आयतक्षेत्र हैं और मध्य में राश्यन्तर के समान चतुर्भुज है । (मू.क्षे.) यहां प्रत्येक आयतक्षेत्र में राशिघात फल है, तो चार आयतक्षेत्र का चतुर्गुण राशिघात फल होगा । योगरूप बड़े क्षेत्र में, चार आयत

घटा देने से, राश्यन्तर वर्ग के समान चतुर्भुज शेष रहता है और उस का फल राश्यन्तर का वर्ग है, इस से 'चतुर्गुणस्य—' यह सूत्र उपपन्न हुआ। इसी भांति या १। का १ राशि हैं, इनके योग या १ का १ के वर्ग याव १ या. का २ काव १ में, इन्हीं का चतुर्गुण घात या. का ४ घटा देने से, राश्यन्तर या १ का १ का वर्ग याव १ या. का २ काव १ शेष रहता है। इस लिये 'द्वयोरव्यक्तयोर्यथा' यह कहा है।

उदाहरणम्—

चत्वारिंशद्युतिर्येषां दोःकोटिश्रवसां वद।
भुजकोटिवधो येषु शतं विंशतिसंयुतम् ॥७७॥

अत्र किल भुजकोट्योर्वधो द्विगुणः २४० तद्युतिवर्गस्य वर्गयोगस्य चान्तरं यो हि भुजकोट्योर्वर्गयोगः स एव कर्णवर्गः, अतो भुजकोटियुतिवर्गस्य कर्णवर्गस्य चान्तरमिदं २४० योगान्तरघातसमं स्यात्। अत इदमन्तरं २४० योगेनानेन ४० भक्तं जातं भुजकोटियुतिकर्णान्तरं ६ 'योगाऽन्तरेणोनयुतोऽर्धित—' इत्यादिना संक्रमणेन जातो भुजकोटियोगः २३। कर्णः १७। चतुर्गुणस्य घातस्य—' इति भुजकोटियुतिवर्गादस्मात् ५२९ चतुर्गुणघातेऽस्मिन् ४८० शोधिते शेषं जातो दोःकोट्यन्तरवर्गः ४९। अस्य मूलम् ७। इदं दोःकोटि-

विवरं 'योगोऽन्तरेणोनयुतोऽर्धितः' इति जाते भुजकोटी ८ । १५ ।

उदाहरण—

भुज, कोटि और कर्ण का घात चालीस है और भुज, कोटि का घात दोसौ चालीस है, तो भुज, कोटि कर्ण क्या हैं ?

कल्पना किया कर्ण का मान या १ है, इस को ४० में घटा देने से भुज कोटि का योग शेष रहा या १̇ रू ४० इस का वर्ग याव १ या ८̇०० रू १६०० यह भुजकोटि के योग का वर्ग है, इसमें द्विगुण भुजकोटि घात २४० घटा देने से भुजकोटि का वर्गयोग शेष रहा याव १ या ८̇० रू १३६० यह कर्णवर्ग के समान है, इसलिये समीकरण के लिये न्यास—

याव १ या ८̇० रू १३६०
याव १ या ० रू ०

समीकरण से यावत्तावत् का मान १७ आया । इसको सर्वयोग ४० में घटा देने से भुजकोटि योग २३ रहा । इस भांति अव्यक्त क्रिया के द्वारा सिद्ध होने पर भी आचार्य ने व्यक्तरीति से कहा है— भुजकोटि का घात १२० है, यह दूना करने से २४० हुआ । यह भुजकोटिवर्गयोग और भुजकोटियोगवर्ग का अन्तर है, भुजकोटिवर्गयोग कर्णवर्ग के तुल्य होता है, इसलिये भुजकोटियोगवर्ग और कर्णवर्ग का अन्तर हुआ । तब 'वर्गान्तरं हि योगान्तरघातसमं भवति' इसके अनुसार, योग ४० का भाग देने से भुजकोटियोग और कर्ण का अन्तर ६ आया । फिर 'योगोऽन्तरेणोनयुतोऽर्धितः—' इस संक्रमण सूत्र से कर्ण १७ और भुजकोटि का योग २३ आया । फिर 'चतुर्गुणस्य घातस्य—' इस सूत्र से भुजकोटि के योग २३ वर्ग ५२९ में चौगुने भुजकोटि के घात ४×१२०=४८० को घटा देने से, शेष ४९ रहा । यह भुजकोटि के अन्तर का वर्ग है, इस का मूल ७ भुजकोट्यन्तर हुआ । पुनः 'योगोऽन्तरेणोनयुतोऽर्धितः—' के अनुसार भुज कोटि हुए । ८ । १५ ॥

उदाहरणम्—

योगो दोःकोटिकर्णानां
षट्पञ्चाशद् ५६ वधस्तथा ।
षट्शतीसप्तभिः क्षुण्णा ४२००
येषां तान्मे पृथग्वद ॥ ७८ ॥

अत्र कर्णः या १ । अस्य वर्गः याव १ स एव भुजकोटिवर्गयोगः अत्र दोःकोटिकर्णयोगे कर्णोने जातो भुजकोटियोगः या १ रू ५६ तथा त्रयाणां घाते कर्णभक्ते जातो भुजकोटिवधः

रू ४२००
―――――
या १

अथ 'वर्गयोगस्य यद्राश्योर्युतिवर्गस्य चान्तरम् । द्विघ्नघातसमानं स्यात्—' इति वर्गयोगः याव १ युतिवर्गः याव १ या ११२ रू

१ अत्र श्रीबापुदेवपादोक्तं सूत्रम्—

युत्या विभक्तान्नृपनिघ्नघाता-
त्फलं विशोध्यं किल योगवर्गात् ।
शेषस्य मूलेन समन्विताया
युतेश्चतुर्थांश इह श्रुतिः स्यात् ॥

भुजकोटिकर्णानां योगः ५६ । वधः ४२०० । अत उक्तवत्कर्णः २५ । 'कर्णस्य-वर्गाद्—' इत्याचार्योक्त्या भुजकोटी ७ । २४ ॥

३१३६ अनयोरन्तरम् या ११२ रू ३१३६
एतद्द्विघ्नघातस्यास्य रू ८४०० सममिति
या १

समच्छेदीकृत्य छेदगमे जातौ पक्षौ

याव ११२ या ३१३६ रू०
याव ० या ० रू ८४००

एतौ द्वादशाधिकशतेनापवर्त्य शोधितौ जातौ

याव १ या २८ रू ०
याव ० या ० रू ७५

एतौ ऋणरूपेण संगुण्य चतुर्दशवर्गसमरूपाणि प्रक्षिप्य मूले या १ रू १४
या ० रू ११

उक्तवच्छोधने कृते लब्धं यावत्तावन्मानम् २५ अत्र विकल्पेन द्वितीयं कर्णमानमुत्पद्यते ३ एतदनुपपन्नत्वान्न ग्राह्यम्। अत्र त्रयाणां घातः ४२०० कर्ण २५ भक्तो जातो भुजकोटिवधः १६८। तथेयं भुजकोटियुतीः ३१। 'चतुर्गुणस्य घातस्य—' इत्यादिना जातं दोःकोट्यन्तरम् १७ 'योगोऽन्तरेणोनयुतोऽर्धितः-'

इत्यादिना जाते भुजकोटी ७। २४ एवं सर्वत्र क्रियोपसंहारं कृत्वा मतिमद्भिः क्कापि युक्त्यैवोदाहरणमानीयते ऽव्यक्तकल्पनया तु महती क्रिया भवति ॥

इति श्रीभास्करीये बीजगणित एकवर्णसंबन्धि मध्यमाहरणं समाप्तम् ॥

उदाहरण—

भुज, कोटि और कर्ण का योग छप्पन है, और घात बयालीस सौ है, तो उन को अलग अलग बतलाओ ?

कल्पना किया कर्ण का मान या १ है। इस का वर्ग याव १ यह भुजकोटि के वर्ग का योग है, और भुज, कोटि, कर्ण के योग ५६ में कर्ण या १ को घटा देने से भुजकोटियोग या $\dot{१}$ रू ५६ हुआ और भुज, कोटि और कर्ण के घात ४२०० में कर्ण या १ का भाग देने से, भुज-कोटि का घात रू $\frac{४२००}{या\ १}$ हुआ, भुज-कोटि के योग या $\dot{१}$ रू ५६ के वर्ग याव १ या $\dot{११२}$ रू ३१३६ में भुजकोटि के वर्गयोग याव १ को घटा देने से, भुजकोटि का द्विगुण घात शेष रहा—या $\dot{११२}$ रू ३१३६। क्योंकि 'वर्गयोगस्य यद्राश्योः—' कहा है। अब वह पूर्वानीत द्विगुण भुजकोटिघात रू $\frac{८४००}{या\ १}$ के तुल्य है, इसलिये समीकरण के लिये न्यास—

या $\dot{११२}$ रू ३१३६
या ० रू $\frac{८४००}{या\ १}$

समच्छेद और छेदगम करने से हुए—

याव ११२̇ या ३१३६ रू ०
याव ० या ० रू ८४००

११२ का अपवर्तन देने से हुए—

याव १̇ या २८ रू ०
याव ० या ० रू ७५

समशोधन करने से हुए——

याव ० या ० रू ७५̇
याव १ या २̇८ रू ०

मूल के लिये १४ का वर्ग १९६ जोड़ने से हुए—

याव ० या ० रू १२१
याव १ या २̇८ रू १९६

इन के मूल आये——

या ० रू ११
या १ रू १̇४

'अव्यक्तपक्षर्णगरूपतोऽल्पम्——' इस सूत्र के अनुसार, व्यक्तपक्ष के द्विविध मूल मिले——या ० रू ११
या १ रू १̇४
या ० रू ११̇
या १ रू १४̇

इन से समीकरण के द्वारा द्विविध यावत्तावत् का मान २५ । ३ आया । यहां पर पहला मान २५ लेना चाहिये ; क्योंकि दूसरा मान ३ अनुपपन्न है । इस प्रकार द्विविधकर्ण मान सिद्ध हुआ ।

एकवर्णमध्यमाहरण समाप्त ।

इति द्विवेदोपाख्याचार्यश्रीसरयूप्रसादसुत-दुर्गाप्रसादोन्नीते बीज-विलासिन्येकवर्णमध्यमाहरणं समाप्तम् ।

दुर्गाप्रसादरचिते भाषाभाष्ये मिताक्षरे ।
सम्पूर्णाभूदेकवर्णमध्यमाहरणक्रिया ॥

अथानेकवर्णसमीकरणम् ।

तत्र सूत्रं सार्धवृत्तत्रयम्—

आद्यं वर्णं शोधयेदन्यपक्षा-
दन्यान् रूपाण्यन्यतश्चाद्यभक्ते ।
पक्षेऽन्यस्मिन्नाद्यवर्णोन्मितिः स्या-
द्वर्णस्यैकस्योन्मितीनां बहुत्वे ॥ ६८ ॥

समीकृतच्छेदगमे तु ताभ्य-
स्तदन्यवर्णोन्मितयः प्रसाध्याः ।
अन्त्योन्मितौ कुट्टविधेर्गुणाप्ती
ते भाज्यतद्धाजकवर्णमाने ॥ ६९ ॥

अन्येऽपि भाज्ये यदि सन्ति वर्णा-
स्तन्मानमिष्टं परिकल्प्य साध्ये ।
विलोमकोत्थापनतोऽन्यवर्ण-
मानानि भिन्नं यदि मानमेवम् ॥ ७० ॥

भूयः कार्यः कुट्टकोऽत्रान्त्यवर्णं
तेनोत्थाप्योत्थापयेद्व्यस्तमाद्यान् ।

इदमनेकवर्णसमीकरणं बीजम् । यत्रोदाहरणे द्वित्रादयोऽव्यक्तराशयो भवन्ति तेषां यावत्तावदादयो वर्णा मानेषु कल्प्याः । तेऽत्र

पूर्वाचार्यैः कल्पिता यावत्तावत्कालकनीलकपीतकलोहितकहरितकश्वेतकचित्रककपिलकपिङ्गलकधूम्रकपाटलकशबलकश्यामलकमेचकेत्यादि । अथवा कादीन्यक्षराण्यव्यक्तानां संज्ञा असंकरार्थं कल्प्याः । अतः प्राग्वदुद्देशकालापवाद्विधिं कुर्वता गणकेन पक्षौ समौ कार्यौ, पक्षा वा समाः कार्याः । ततः सूत्रावतारोऽयम्—तयोः समयोरेकस्मात्पक्षादितरपक्षस्याद्यं वर्णं शोधयेत्तदन्यवर्णान् रूपाणि चेतरस्मात्पक्षाच्छोधयेत्तत आद्यवर्णशेषेणेतरपक्षे भक्ते भाजकवर्णोन्मितिः । बहुषु पक्षेषु ययोर्ययोः साम्यमस्ति तयोरेवं कृते सत्यन्या उन्मितयः स्युस्ततस्तासून्मितिषु एकवर्णोन्मितयो यद्यनेकधा भवन्ति ततस्तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः समीकृतच्छेदगमेन 'आद्यं वर्णं शोधयेत्—' इत्यादिनान्त्यवर्णोन्मितयः स्युः । एवं यावत्, तावत्संभवः । ततोऽन्त्योन्मितौ भाज्यवर्णे योऽङ्कः स भाज्यराशिः, यो भाजके स भाजकः, रूपाणि क्षेपः, अतः कुट्टविधिना यो गुण उत्पद्यते तद्भाज्यवर्णमानं या लब्धिस्तद्भाजक-

वर्णमानं, तयोर्मानयोर्दृढभाजकभाज्याविष्टेन वर्णेन गुणितौ क्षेपकौ कल्प्यौ, ततः स्वस्वमानेन सक्षेपेण पूर्ववर्णोन्मितौ वर्णावुत्थाप्य स्वच्छेदेन हरणे यल्लभ्यते तत्पूर्ववर्णस्य मानम्। एवं विलोमकोत्थापनतोऽन्यवर्णमानानि भवन्ति। यदि तु अन्त्योन्मितौ द्व्यादयो वर्णा भवन्ति तदा तेषामिष्टानि मानानि कृत्वा स्वस्वमानैस्तानुत्थाप्य रूपेषु प्रक्षिप्य कुट्टकः कार्यः। अथ यदि विलोमकोत्थापने क्रियमाणे पूर्ववर्णोन्मितौ तन्मितिर्भिन्ना लभ्यते तदा कुट्टकविधिना यो गुण उत्पद्यते स क्षेपः स भाज्यवर्णमानं तेनान्त्यवर्णमानेषु तं वर्णमुत्थाप्य पूर्वोन्मितिषु विलोमकोत्थापनप्रकारेणान्यवर्णमानानि साध्यानि, इह यस्य वर्णस्य यन्मानमागतं व्यक्तमव्यक्तं व्यक्ताव्यक्तं वा तस्य मानस्य व्यक्ताङ्केन गुणने कृते तद्वर्णाक्षरस्य निरसनमुत्थापनमुच्यते॥

आद्यं वर्णं—इत्यादिसूत्राण्याचार्यैरेव व्याख्यातानीति न पुनर्व्याक्रियन्ते॥

अनेकवर्णसमीकरण—

जिस उदाहरण में दो, तीन आदि अव्यक्त राशि हों वहां उनके

मान यावत्तावत्, कालक, नीलक, पीतक, लोहितक, हरितक, श्वेतक, चित्रक, कपिलक, पिङ्गलक, धूम्रक, पाटलक, शबलक, श्यामलक और मेचक इत्यादि कल्पना करना। फिर प्रश्नकर्ता के कथनानुसार क्रिया के द्वारा दो अथवा अनेक पक्ष समान सिद्ध करना और उन पक्षों में से एक पक्ष के आद्यवर्ण को अन्य पक्ष के आद्यवर्ण में घटा देना एवं दूसरे पक्ष के वर्ण और रूप को इतर पक्ष के सजातीयों में घटा देना अर्थात् यदि पहले पक्ष के आद्यवर्ण को, दूसरे पक्ष के आद्यवर्ण में घटाया हो, तो दूसरे पक्ष के अन्यवर्ण तथा रूप को पहले पक्ष के अन्यवर्ण तथा रूप में घटाना और यदि दूसरे पक्ष के आद्यवर्ण को पहले पक्ष के आद्यवर्ण में घटाया हो, तो पहले पक्ष के अन्यवर्ण तथा रूप को दूसरे पक्ष के अन्यवर्ण तथा रूप में घटा देना। फिर आद्यपक्ष का दूसरे पक्ष में भाग देने से आद्यवर्ण की उन्मिति (मान) होगी। उक्त रीति से समशोधन करने से, एक पक्ष में आद्यवर्ण रहता है और अन्यवर्ण तथा रूप के स्थान में शून्य, अन्य पक्ष में आद्यवर्ण के स्थान में शून्य होता है और अन्यवर्ण तथा रूप विद्यमान ही रहते हैं। अनन्तर, आद्यवर्ण शेष का दूसरे शेष में भाग देने से, आद्यवर्ण का मान आता है। यदि एक वर्ण की अनेक उन्मिति आवें, तो उन से समीकरण द्वारा अन्यवर्ण की उन्मिति होंगी। इस प्रकार अन्त्य में जो उन्मिति आवे, उस से कुट्टक द्वारा गुण लब्धि लाना चाहिये। जैसा अन्त्य उन्मिति में जो भाज्य तथा भाजक गत वर्णाङ्क हों उन को क्रम से कुट्टकीय भाज्य-भाजक कल्पना करना और रूपों को क्षेप, बाद इन से उक्त रीति के अनुसार जो गुण-लब्धि मिलेंगी उन में से गुण भाज्य वर्ण का व्यक्तमान और लब्धि भाजक वर्ण का व्यक्तमान होगा। यदि अन्त्य उन्मिति में और भी वर्ण हों, तो उन का इष्टमान कल्पना करके, अपने अपने मान से उन वर्णों में उत्थापन देना और आगत अङ्क को रूप में जोड़ देना, जिस से भाज्य स्थान में, एक वर्णाङ्क तथा रूप हो जाय। फिर उन से कुट्टक द्वारा गुण-लब्धि क्रम से भाज्य-भाजक वर्ण के मान होंगे, और विलोम (उलटा) उत्थापन के द्वारा, अन्यवर्ण अर्थात् पूर्व भाज्य-भाजक के वर्ण से भिन्नवर्णं के मान सिद्ध करने चाहिये जैसा—आगत मान के

दृढ़ भाजक, भाज्य को, इष्टवर्ण से गुण कर वैसे भाजक-भाज्य को क्षेप कल्पना करना। फिर क्षेप से सहित अपने अपने मान से पूर्व वर्णोन्मिति के वर्ण में उत्थापन देना। अपने अपने छेद का भाग देने से जो लब्ध मिले, वह पूर्ववर्ण का मान होगा। आगे के वर्ण के मान जानने से, उसके पहले वर्ण का मान ज्ञात होता है। जैसा कालक के मान से यावत्तावत् का मान, नीलक मान से कालक का मान। इस लिये उसको विलोम उत्थापन कहते हैं। यदि विलोम उत्थापन करने से भी, पहले वर्ण का मान भिन्न आवे, तो फिर कुट्टक करना और वहां पर भी गुण-लब्धि को सक्षेप करके, भाज्य-भाजक के वर्ण मान को ज्ञात करना। यहां उस सक्षेप गुण से अन्त्य वर्ण-मान में, जो वर्ण हो उस में उत्थापन देकर फिर आद्य से व्यस्त (उलटा) उत्थापन देना। जिस मान में पहले उत्थापन देने से भिन्न मान आया था वह मान आद्य है। यहां पर जिस वर्ण का व्यक्त अथवा अव्यक्त जो मान आया है, उसको व्यक्ताङ्क से गुण देने से, उस वर्ण का दूरीकरण होता है। इस लिये इसको उत्थापन कहते हैं॥

उदाहरणानि—

(माणिक्यामलनीलमौक्तिकमितिः पञ्चाष्टसप्त क्रमादेकस्यान्यतरस्य सप्त नव षट् तद्रत्नसंख्यां सखे। रूपाणां नवतिर्द्विषष्टिरनयोस्तौ तुल्यवित्तौ तथा बीजज्ञ प्रतिरत्नजातिसुमते मूल्यानि शीघ्रं वद॥)

अत्र माणिक्यादीनां मूल्यानि यावत्तावदीनि प्रकल्प्य तद्गुणरत्नसंख्यां च रूपाणि च प्रक्षिप्य समशोधनार्थं न्यासः।

या ५ का ८ नी ७ रू ९०
या ७ का ९ नी ६ रू ६२

'आद्यं वर्णं शोधयेत्——' इत्यादिना जाता यावत्तावदुन्मितिरेकैव $\frac{\text{का } \dot{1} \text{ नी } 1 \text{ रू } 28}{\text{या } 2}$

एकत्वादियमेवान्त्यातोऽत्र कुट्टकः कार्यः। इह भाज्ये वर्णद्वयं वर्ततेऽतो नीलकमानमिष्टं रूपं कल्पितम् १ अनेन नीलकमुत्थाप्य रूपेषु प्रक्षिप्य जातम्

$\frac{\text{का } \dot{1} \text{ रू } 29}{\text{या } 2}$

अतः कुट्टकविधिना 'हरतष्टे धनक्षेपे—' इत्यादिना गुणाप्ती सक्षेपे पी २ रू १
पी ं१ रू १४

अत्र शून्येन पीतकमुत्थाप्य जातानि माणिक्यादीनां मूल्यानि १४।१।१ अथवैकेन पीतकेन १३।३।१ द्वाभ्यां वा १२।५।१। त्रिभिर्वा ११।७।१ एवमिष्टवशादानन्त्यम् ॥

उदाहरण—

एक व्यापारी के पास पांच माणिक्य, आठ नीलम, सात मोती और

नब्बे रुपये हैं। दूसरे के पास, सात माणिक्य, नौ नीलम, छः मोती और बासठ रुपये हैं। परंतु दोनों व्यापारी धन में समान हैं, तो प्रत्येक रत्नों का क्या मोल है ?

यहां माणिक्य, नीलम और मोती के क्रम से या १। का १। नी १ मोल कल्पना किया। यदि १ माणिक्य का या १ मोल है, तो ५ का क्या मोल आया या ५। इसी प्रकार, आठ नीलम और सात मोती के मोल का ८। नी ७। इनका योग नब्बे से युत, एक का धन या ५ का ८ नी ७ रू ९० हुआ। इसी भाँति, दूसरे का धन या ७ का ९ नी ६ रू ६२ हुआ। इन दोनों के धन तुल्य हैं, इस लिये समशोधन के लिये न्यास—

या ५ का ८ नी ७ रू ९०

या ७ का ९ नी ६ रू ६२

दोनों पक्षों में पहले पक्ष के आद्यवर्ण या ५ को घटा देने से भी, दोनों पक्ष व शेष समान ही रहे—

या ० का ८ नी ७ रू ९०

या २ का ९ नी ६ रू ६२

यहां पहले पक्ष में शून्य शेष का कुछ प्रयोजन नहीं है, इसलिये 'आद्यं वर्णं शोधयेदन्यपक्षात्—' यह कहा है। इसी भाँति दूसरे पक्ष के अन्यवर्ण का ९ नी ६ तथा रूप ६२ को दोनों पक्षों में घटा देने से भी, पक्ष-शेष समान ही रहे—

का १̇ नी १ रू २८

या २ का ० नी ० रू ०

यहां दूसरे पक्ष में; कालकादि शून्य शेष का कुछ प्रयोजन नहीं है इसलिये 'अन्यान् रूपाण्यन्यतः—' यह कहा है। यदि यावत्तावत् दो का 'का १̇ नी रू २८, यह कालकादि मान आता है, तो एक यावत्तावत् का क्या ? अनुपात से 'आद्यभक्ते पक्षेऽन्यस्मिन्नाद्यवर्णोन्मितिः स्यात्' यह उपपन्न हुआ।

इस प्रकार प्रकृत में आद्यवर्ण शेष का, अन्यपक्ष शेष में भाग देने

से, यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{का १̇ नी १ रू २८}}{\text{या २}}$ आई। यहां अन्य वर्ण की उन्मिति का असम्भव है, इसलिये यही अन्त्य उन्मिति हुई। अब कुट्टक करना चाहिये, परंतु भाज्य में दो वर्ण हैं इस कारण 'अन्येऽपि भाज्ये यदि सन्ति वर्णास्तन्मानमिष्टं परिकल्प्य साध्ये' इस के अनुसार, प्रकृत में नीलक का मान व्यक्त १ कल्पना किया। इस को रूप २८ में जोड़ देने से $\frac{\text{का १̇ रू २९}}{\text{या २}}$ हुआ। अब भाज्य वर्णाङ्क को भाज्य, भाजक वर्णाङ्क को भाजक और रूप को क्षेप कल्पना करके, कुट्टक के लिये न्यास—

भा. १̇ । क्षे. २९

हा. २ ।

'हरतष्टे धनक्षेपे' के अनुसार न्यास—

भा. १̇ । क्षे. १ ।

हा. २ ।

उक्त रीति से वल्ली आई $\frac{०}{१}$ इस से लब्धि-गुण हुए $\frac{०}{१}$। लब्धि के विषम होने से, अपने अपने तक्षण $\frac{१}{२}$ में शुद्ध करने से लब्धि-गुण $\frac{१}{१}$। फिर 'तद्वत्क्षेपे धनगते व्यस्तं स्याद्दणभाज्यके' के अनुसार, प्रकृत में भाज्य के ऋण होने से $\frac{१}{१}$ इस लब्धि-गुण को, अपने अपने $\frac{१}{२}$ तक्षणों में, शुद्ध करने से, लब्धि गुण हुए $\frac{०}{१}$ क्षेपतक्षणलाभ १४ को लब्धि में जोड़ देने से लब्धि १४ हुई और गुण यथास्थित रहा। यहां लब्धि भाजकवर्ण (यावत्तावत्) का व्यक्त मान रू १४ हुआ और गुण भाज्य वर्ण (कालक) का व्यक्तमान रू १ हुआ। अब 'इष्टाहत-स्वस्वहरेण युक्ते—' इसके अनुसार, इष्ट पीतक १ कल्पना करके उस से गुणित अपने अपने हर से लब्धि-गुण को युक्त किया तो सक्षेप हुए—

पी २ रू १ का १ ⎫ यह यावत्तावत् और कालक का
पी १ रू १४ या १ ⎭ मान है।

नीलक का मान १ पहले कल्पना कर चुके थे। अब उन मानों का क्रम से न्यास——

पी ० रू १ नीलक
पी २ रू १ कालक
पी १̇ रू १४ यावत्तावत्

यहां एक पीतक का मान व्यक्त शून्य ० कल्पना करके, उस से उत्थापन देने के लिये त्रैराशिक करते हैं—

यदि १ पीतक का ० व्यक्तमान है, तो ऋणपीतक १̇ का क्या? पीतक का मान ० आया। इस को रूप १४ में जोड़ देने से, यावत्तावत् का मान १४ आया। यदि १ पीतक का ० व्यक्तमान है, तो २ पीतक का क्या? पीतक के मान ० को रूप १ में जोड़ देने से कालक का मान १ आया और नीलक का मान १ आया। इस प्रकार, माणिक्य आदि के मोल १४।१।१ हुए। और पीतक का मान व्यक्त १ कल्पना करने से, अनुपात द्वारा ऋण-पीतक एक का मान १̇ आया, इस को रूप १४ में जोड़ देने से, यावत्तावत् का मान १३ आया। इसी प्रकार कालक और नीलक का मान ३।१ मिला। इस प्रकार माणिक्य आदि के मोल १३।३।१ सिद्ध हुए। यदि पीतक का मान व्यक्त २ कल्पना करने से, माणिक्य आदि के मोल १२।५।१ आये अथवा पीतक का मान व्यक्त ३ कल्पना करने से, उन रत्नों के मोल ११।७।१ मिले। इस प्रकार कल्पना-वश अनेक प्रकार के मोल सिद्ध होंगे।

(उदाहरणम्—

एको ब्रवीति मम देहि शतं धनेन
त्वत्तो भवामि हि सखे द्विगुणस्ततोऽन्यः।
ब्रूते दशार्पयसि चेन्मम षड्गुणोऽहं
त्वत्तस्तयोर्वद धने मम किं प्रमाणे ॥)

अत्र धने या १ । का १ परधनाच्छतमपास्य पूर्वधने शतं प्रक्षिप्य जातम् या १ रू १०० । का १ रू १०० परधनादाद्यं द्विगुणमिति परधनेन द्विगुणेन समं कृत्वा लब्धा यावत्तावदुन्मितिः $\frac{\text{का २ रू ३००}}{\text{या १}}$

पुनराद्यधनाद्दशस्वपनीतेषु परधने क्षिप्तेषु

जातम् या १ रू १०
का १ रू १०

आद्यात्परः षड्गुण इत्याद्यं षड्गुणं परसमं कृत्वा लब्धा यावत्तावदुन्मितिः $\frac{\text{का १ रू ७०}}{\text{या ६}}$

अनयोः कृतसमच्छेदयोश्छेदगमे समीकरणं तत्रानेन वैकवर्णत्वात्पूर्वबीजेनागतं कालकवर्णमानम् १७०

अनेन यावत्तावदुन्मानद्वयेऽपि कालकमुत्थाप्य रूपाणि प्रक्षिप्य स्वच्छेदेन विभज्य लब्धं यावत्तावदुन्मानम् ४० ।

उदाहरण--

एक व्यापारी दूसरे से कहता है कि हे मित्र ! जो तुम सौ रुपये दो तो मैं तुम से धन में दूना हो जाऊं और दूसरा यह कहता है कि यदि तुम दस रुपये मुझे दो तो, मैं तुम से धन में छ गुणा हो जाऊं, तो बतलाओ उन दोनों का धन क्या है ?

कल्पना किया या १ । का १ दोनों के धन हैं । दूसरे के धन का १ में से सौ रुपये घटा कर पहले के धन में जोड़ देने से या १ रू १०० हुआ, यह द्विगुण दूसरे के शेष धन २ × (का १ रू १०̇०) के तुल्य है । इसलिये समीकरण के अर्थ न्यास--

या १ का ० रू १००
या ० का २ रू २०̇०

'आद्यं वर्णं शोधयेत्--' इसके अनुसार यावत्तावत् का मान $\frac{\text{का २ रू ३०̇०}}{\text{या १}}$ आया । फिर पहले के धन या १ में से, दस घटा कर दूसरे के धन में जोड़ देने से, का १ रू १० हुआ । यह छः गुने पहले के शेष धन ६ × (या १ रू १̇०) के तुल्य है, इसलिये समीकरण के लिए न्यास--

या ६ का ० रू ६०̇
या ० का १ रू १०

सम-शोधन करने से, यावत्तावत् का मान $\frac{\text{का १ रू ७०}}{\text{या ६}}$ आया ।

'वर्णस्यैकस्योन्मितीनां बहुत्वे--' इस के अनुसार, आगत यावत्तावत् की उन्मितियों का समीकरण के लिए न्यास--

$$\frac{\text{का २ रू ३०̇०}}{\text{या १}}$$

$$\frac{\text{का १ रू ७०}}{\text{या ६}}$$

हरों में यावत्तावत् का अपवर्तन देकर, समच्छेद और छेदगम करने से हुए--

का १२ रू १८००
का १ रू ७०

एकवर्ण समीकरण की रीति से, कालक का मान १७० आया। यहां कालक का मान स्वत: अभिन्न आया, इसलिये कुट्टक करने का प्रयोजन नहीं है। जिस स्थान में समशोधन करने के बाद, हर का भाग देने से उन्मिति भिन्न आती है, वहां पर कुट्टक के द्वारा अभिन्न की जाती है।

अब आगत कालक मान से दोनों यावत्तावत् मानों में, उत्थापन देना चाहिये, १ कालक का १७० मान है, तो २ कालक का क्या? दो कालक का मान ३४० आया, इस में ऋण रूप ३०० जोड़ देने से ४० शेष रहा, इस में हर १ का भाग देने से यावत्तावत् का मान ४० आया। इसी प्रकार एक कालक का मान १७० हुआ, इस में रूप ७० जोड़ देने से २४० हुआ। इस में हर ६ का भाग देने से, वही यावत्तावत् का मान ४० आया। इस प्रकार, दोनों के घन हुए। १७०। ४०।

उदाहरणम्——

अश्वाः पञ्चगुणाङ्गमङ्गलमिता येषां चतुर्णां धनान्युष्ट्राश्च द्विमुनिश्रुतिक्षितिमिता अष्टद्विभूपावकाः। तेषामश्वतरा वृषा मुनिमहीनेत्रेन्दुसंख्या क्रमात्सर्वे तुल्यधनाश्च ते वद सपद्यश्वादिमूल्यानि मे ॥ ७६ ॥

अत्राश्वादीनां मूल्यानि यावत्तावदीनि प्रकल्प्य तद्गुणगुणितायामश्वादिसंख्यायां जातानि चतुर्णां धनानि

या ५ का २ नी ८ पी ७

या ३ का ७ नी २ पी १

या ६ का ४ नी १ पी २

या ८ का १ नी २ पी १

एतानि समानीत्येषां प्रथमद्वितीययोः साम्य-करणाल्लब्धा यावत्तावदुन्मितिः $\frac{\text{का ५ नी ६̇ पी ६̇}}{\text{या २}}$

द्वितीयतृतीययोरपि लब्धा यावत्तावदुन्मितिः $\frac{\text{का ३ नी १ पी १̇}}{\text{या ३}}$ ।

एवं तृतीयचतुर्थयोः $\frac{\text{का ३ नी २̇ पी १}}{\text{या २}}$ ।

पुनरासां मध्ये प्रथमद्वितीययोः समीकृत-च्छेदगमे साम्यकरणेन कालकोन्मितिः

$$\frac{\text{नी २० पी १६}}{\text{का ९}}$$

एवं द्वितीयतृतीययोरपि $\frac{\text{नी ८ पी ५̇}}{\text{का ३}}$ ।

अनयोः समच्छेदीकृतयोः साम्यकरणेन लब्धं नीलकोन्मानम् $\frac{\text{पी ३१}}{\text{नी ४}}$ ।

'अन्त्योन्मितौ कुट्टविधेर्गुणाप्ती–' इति कुट्टककरणेन लब्धो गुणकः सक्षेपः लो ४रू० एतत्पीतकमानम्। लब्धिः लो ३१रू० एतन्नीलकमानम् । कालकोन्मानेन नीलकपीतकौ स्वस्वमानेनोत्थाप्य स्वच्छेदेन विभज्य लब्धं कालकमानम् लो७६ रू०। अथ यावत्तावन्माने कालकादीन् स्वमानेनोत्थाप्य स्वच्छेदेन विभज्य लब्धं यावत्तावन्मानम् लो ८५ रू० लोहिते रूपेणेष्टेनोत्थापिते जातानि यावत्तावदादीनां परिमाणानि ८५।७६।३१।४। द्विकेनेष्टेन १७०।१५२।६२।८। त्रिकेण२५५।२२८। ९३।१२। एवमिष्टवशादानन्त्यम् ॥

अथोदाहरणान्तरं शार्दूलविक्रीडितेनाह— अश्वा इति। येषां चतुर्णां वणिजां धनानि वस्तुमूल्यरूपाण्येवंविधानि सन्ति। अश्वा घोटकाः पञ्चगुणाङ्गमङ्गलमिताः. तत्रैवं विभागः—एकस्य पञ्च, द्वितीयस्य त्रयः, तृतीयस्य षट्, चतुर्थस्य मङ्गलान्यष्टौ। उष्ट्रा द्विमुनिश्रुतिक्षितिमिताः, तत्रैवं विभागः–एकस्य द्वौ, द्विती-

यस्य सप्त, तृतीयस्य चत्वारः, चतुर्थस्य एकः। तेषामश्वतरा अष्ट-द्विभूपावकाः, तत्रैवं विभागः—एकस्याष्ट, द्वितीयस्य द्वौ, तृतीयस्यैकः, चतुर्थस्य त्रयः। वृषा मुनिमहीनेत्रेन्दुसंख्याः, तत्राप्येवं विभागः—एकस्य सप्त, द्वितीयस्यैकः, तृतीयस्य द्वौ, चतुर्थस्यैकः। ते सर्वे तुल्यधनाः सपदि द्रुतमश्वादीनां मूल्यानि मे वद ॥

उदाहरण—

क, ख, ग, घ चार व्यापारी हैं, इन में क के पास पांच घोड़ा, दो ऊंट, आठ खच्चर और सात बैल हैं; ख के पास तीन घोड़ा, सात ऊंट, दो खच्चर और एक बैल है; ग के पास छ घोड़ा, चार ऊंट, एक खच्चर और दो बैल हैं; घ के पास आठ घोड़ा, एक ऊंट, तीन खच्चर और एक बैल है, पर वे चारो व्यापारी धन में तुल्य हैं। तो घोड़ा वगैरह का मोल क्या है ?

कल्पना किया कि घोड़ा आदि के या १। का १। नी १। पी १। मोल हैं, यदि एक घोड़ा आदि जीवों के, या १, का १, नी १, पी १, मोल आते हैं, तो ५। २। ८। ७ इन के क्या ? पहले का धन 'या ५ का २ नी ८ पी ७' हुआ। इसी प्रकार दूसरे का धन 'या ३ का ७ नी २ पी १'। तीसरे का धन 'या ६ का ४ नी १ पी २' और चौथे का धन 'या ६ का १ नी ३ पी १' हुआ। ये धन समान हैं, इसलिये पहले और दूसरे धन का समीकरण के लिये न्यास—

या ५ का २ नी ८ पी ७
या ३ का ७ नी २ पी १

'आद्यं वर्णं शोधयेत्—' इस रीति से, यावत्तावत् की उन्मिति

$$\frac{\text{का ५ नी ६ पी ६}}{\text{या २}}$$ आई।

इसी प्रकार, दूसरे और तीसरे धन का साम्य करने के लिए न्यास—

या ३ का ७ नी २ पी १
या ६ का ४ नी १ पी २

समीकरण से यावत्तावत् की उन्मिति (का ३ नी १ पी १̇) / (या ३) आई ।

तीसरे और चौथे धन का समीकरण के लिये न्यास—

या ६ का ४ नी १ पी २

या ८ का १ नी ३ पी १

साम्य करने से यावत्तावत् की उन्मिति (का ३ नी २̇ पी १) / (या २) आई ।

यहां एक यावत्तावत् वर्ण की तीन उन्मितियाँ समान हैं । अब अन्यवर्णों का मान जानने के लिये पहले और दूसरे यावत्तावत् मान का समीकरण के लिये न्यास—

(का ५ नी ६̇ पी ६̇) / (या २)

(का ३ नी १ पी १̇) / (या ३)

इन के हर में यावत्तावत् का अपवर्तन देकर, समच्छेद और छेदगम करने से हुए—

का १५ नी १८̇ पी १८̇

का ६ नी २ पी २̇

समशोधन से कालक की उन्मिति (नी २० पी १६) / (का ९) आई ।

इसी प्रकार, दूसरे और तीसरे यावत्तावत् मान का साम्य के लिये न्यास—

(का ३ नी १ पी १̇) / (या ३)

(का ३ नी २̇ पी १) / (या २)

हर में यावत्तावत् का अपवर्तन देकर, समच्छेद और छेदगम करने से हुए—

का ६ नी २ पी २̇

का ९ नी ६̇ पी ३

समीकरण से कालक की उन्मिति $\frac{\text{नी ८ पी ५}}{\text{का ३}}$ आई।

यहां कालकवर्ण की दो उन्मितियाँ आई हैं। अब अन्यवर्ण का मान जानने के लिये उन का समीकरण के लिए न्यास—

$$\frac{\text{नी २० पी १६}}{\text{का ६}}$$

$$\frac{\text{नी ८ पी ५}}{\text{का ३}}$$

हर में कालक का अपवर्तन देकर, समच्छेद और छेदगम करने से हुए—

नी ६० पी ४८
नी ७२ पी ४५

समीकरण से नीलक की उन्मिति $\frac{\text{पी ६३}}{\text{नी १२}}$। इस में ३ का अपवर्तन देने से $\frac{\text{पी २१}}{\text{नी ४}}$ हुई। अन्त्य की उन्मिति यही है, इसलिये उस का कुट्टार्थ न्यास—

भा. २१ । क्षे. ०
हा. ४ ।

क्षेप के अभाव होने से लब्धि-गुण $\frac{0}{0}$ हुए। लोहितक १ इष्ट कल्पना करके 'इष्टाहत—' इस सूत्र के अनुसार, सक्षेप लब्धि-गुण हुए—

लो २१ रू० नीलक
लो ४ रू० पीतक

यहां लब्धि, भाजक वर्ण, नीलक का, मान है। और गुण, भाज्य वर्ण पीतक का, मान है। अब इस से कालक की उन्मिति में उत्थापन देना चाहिये। १ नीलक का लो २१ यह मान है, तो २० नीलक का क्या? ल बीस नीलक का मान लो ६२० हुआ। १ पीतक का लो ४ यह मान है, तो १६ पीतक का क्या? सोलह पीतक का मान लो ६४ हुआ। अब इन मानों के योग ६२०+६४=६८४ में

हर ६ का भाग देने से, कालक का मान लो ७६ आया। इसी प्रकार दूसरी कालक की उन्मिति में उत्थापन देते हैं—१ नीलक का लो ३१ यह मान है, तो ८ नीलक का क्या ? आठ नीलक का मान लो २४८ हुआ । १ पीतक का लो ४ यह मान है, तो ५ पीतक का क्या ? ऋण-पांच पीतक का मान लो २० हुआ । अब दोनों मानों के योग २४८+२०=२२८ में हर ३ का भाग देने से वही कालक का मान लो ७६ आया। अब ७६।३१।४ इन कालक नीलक और पीतक के मान से, यावत्तावत् की उन्मितियों में उत्थापन देते हैं—कालक मान ७६ पांच से गुणा देने से ३८० हुआ, नीलक मान ३१ ऋण छ से गुणा देने से १८६ हुआ, पीतक मान ४ ऋण छः से गुणा देने से २४ हुआ । इन के योग १७० में हर २ का भाग देने से, यावत्तावत् की उन्मिति लो ८५ आई । इसी प्रकार, दूसरे और तीसरे यावत्तावन्मान में उत्थापन देने से वही यावत्तावत् की उन्मिति लो ८५ मिली । अब ज्ञात मानों का क्रम से न्यास—

लो ८५ रू० यावत्तावत्
लो ७६ रू० कालक
लो ३१ रू० नीलक
लो ४ रू० पीतक

यहां लोहितक का व्यक्तमान १ कल्पना करके अनुपात करते हैं—यदि १ लोहितक का रू १ यह मान है, तो ८५ लोहितक का क्या? यावत्तावत् का मान व्यक्त $\frac{१\times ८५ लो}{१ लो}=८५$ आया, यह एक घोड़ा का मोल है । इसी प्रकार, एक ऊंट का मोल ७६, एक खच्चर का मोल ३१, और १ बैल का मोल ४ हुआ । लोहितक का व्यक्त मान २ कल्पना करने से, घोड़ा आदि के मोल १७०।१५२।६२।८ हुए और ३ कल्पना करने से २५५ । २२८ । ९३ । १२ हुए ।

आलाप-पहले का धन 'या ५ का २ नी ८ पी ७' है । यदि १ घोड़ा का ८५ मोल है, तो पांच घोड़ों का क्या ? पांच घोड़ों का मोल ४२५ हुआ । यदि १ ऊंट का ७६ मोल है, तो दो ऊंटों का

क्या ? दो ऊंटों का मोल १५२ हुआ। यदि एक खच्चर का ३१ मोल है तो आठ का क्या ? आठ खच्चरों का मोल २४८ हुआ। यदि १ बैल का ४ मोल है, तो सात का क्या ? सात बैलों का मोल २८ हुआ। और सब का योग समधन ८५३ हुआ। इस प्रकार चारों के घोड़ा आदि के मोल और सम धन हुए—

४२५+१५२+२४८+२८=८५३
२५५+५३२+६२ +४ =८५३
५१०+३०४+३१ +८ =८५३
६८०+७६ +९३ +४ =८५३

उदाहरणम्—

त्रिभिः पारावताः पञ्च पञ्चभिः सप्त सारसाः।
सप्तभिर्नव हंसाश्च नवभिर्बर्हिणां त्रयम् ॥
द्रम्मैरवाप्यते द्रम्मशतेन शतमानय।
एषां पारावतादीनां विनोदार्थं महीपते[1] ॥

अत्र पारावतादीनां मूल्यानि यावत्तावदादीनि प्रकल्प्य ततोऽनुपातेन पारावतादीनानीय तेन शतेन समक्रिया कार्या। अथवा त्रिपञ्चादीनि मूल्यानि पञ्चसप्तादीञ्जीवाँश्च यावत्तावदादिभिःसंगुण्य समक्रिया कार्या तद्यथा—

---

१ अत्र ज्ञानराजदैवज्ञाः—

मुक्तानीलमहाप्रवालविलसद्वैदूर्यवज्रैः क्रमा-
दम्भोधीषुरसाद्रिपावकमितैर्भाषाब्धिमुख्याः सखे।
लभ्यन्ते शतयुग्ममानय शतद्वन्द्वेन तेषां यदा
यास्यामः पुनरुद्यमाय सधना रत्नाकरान्तःपुरम् ॥

या ३ का ५ नी ७ पी ९ एतानि मूल्यानि शतसमानि कृत्वा लब्धं यावत्तावन्मानम् ।

का ५̇ नी ७̇ पी ९̇ रू १००
————————
या ३

पुनः या ५ का ७ नी ९ पी ३ एताञ्जीवाञ्शतसमान्कृत्वा लब्धं यावत्तावन्मानम् ।

का ७̇ नी ९̇ पी ३̇ रू १००
———————— ।
या ५

अनयोः कृतसमच्छेदयोश्छेदगमे लब्धं कालकमानम्

नी २̇ पी ९̇ रू ५०
———————— ।
का १

अत्र भाज्ये वर्णद्वयं वर्तत इति पीतकमानमिष्टं रूपचतुष्टयं कल्पितम् ४ अनेन पीतकमुत्थाप्य रूपेषु प्रक्षिप्य जातम्

नी २̇ रू १४
————
का १

अतः कुट्टकविधिना लब्धिगुणौ सक्षेपौ

लो २̇ रू १४
लो १ रू ०

यावत्तावदुन्माने स्वस्वमानेन कालकादी-

नुत्थाप्य स्वस्वच्छेदेन विभज्य लब्धं यावत्ता-
वन्मानम् लो १ रू २।

लोहितकमिष्टेन रूपत्रयेणोत्थाप्य जातानि
यावत्तावदादीनां मानानि १।८।३।४ एभिर्मू-
ल्यानि जीवाश्चोत्थापिताः

मूल्यानि ३। ४०। २१। ३६
पक्षिणः ५। ५६। २७। १२

अथवा चतुष्केणेष्टेन मानानि २। ६। ४। ४।
उत्थापिते

मूल्यानि ६। ३०। २८। ३६
जीवाश्च १०। ४२। ३६। १२

अथवा पञ्चकेन मानानि ३।४।५।४।उत्थापिते
मूल्यानि ९। २०। ३५। ३६।
जीवाश्च १५। २८। ४५। १२।

एवमिष्टवशादनेकधा।

अथोदाहरणान्तरं प्राचीनोक्तमनुष्टुब्द्वयेनाह—त्रिभिरिति। त्रिभिर्द्रम्मैः पञ्च पारावताः कपोता अवाप्यन्ते तथा पञ्चभिर्द्रम्मैः सप्त सारसाः, सप्तभिर्द्रम्मैर्नव हंसाः, नवभिर्द्रम्मैर्बर्हिणां मयूराणां त्रयमवाप्यते। एवं सति द्रम्मशतेन एषां पारावतादीनां शतमानय महीपतेर्विनोदार्थम्।

उदाहरण—

अ, ने क, से कहा कि तीन द्रम्म के पांच कबूतर, पांच द्रम्म के सात सारस, सात द्रम्म के नौ हंस और नौ द्रम्म के तीन मोर आते हैं। तुम राजा के विनोद के लिये, सौ द्रम्म में, सौ ही कबूतर आदि पक्षी खरीद लाओ, तो उन पक्षियों की और मूल्य की क्या संख्या है?

कल्पना किया कबूतर आदि जीवों के या १, का १, नी १, पी १ मोल हैं। ३ द्रम्म के ५ कबूतर आते हैं, तो या १ के क्या? कबूतर या $\frac{५}{३}$ आये। इसी प्रकार अनुपात से सारस, हंस और मोर का $\frac{७}{५}$। नी $\frac{६}{७}$। पी $\frac{३}{९}$ आये। इन मोलों का योग समच्छेद से हुआ—

$$\frac{\text{या १५७५ का १३२३ नी १२१५ पी ३१५}}{\text{६४५}}$$

९ का अपवर्तन देने से—

$$\frac{\text{या १७५ का १४७ नी १३५ पी ३५}}{\text{१०५}}$$

यह १०० के तुल्य है, इसलिये पक्षों का समच्छेद और छेदगम करके न्यास—

या १७५ का १४७ नी १३५ पी ३५ रू०
रू० १०५००

'आद्यं वर्णं शोधयेत्—' के अनुसार, समीकरण से यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{का १४७̇ नी १३५̇ पी ३५̇ रू १०५००}}{\text{या १७५}}$ आई। मोलों का योग भी १०० के समान है, इसलिये उनके समीकरण के लिए न्यास—

या १ का १ नी १ पी १ रू०
या ० का ० नी ० पी ० रू १००

समशोधन से यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{का १̇ नी १̇ पी १̇ रू १००}}{\text{या १}}$।

दोनों यावत्तावत् की उन्मितियाँ परस्पर तुल्य हैं, इस कारण समीकरण के लिये न्यास—

का १४७̇ नी १३५̇ पी ३५̇ रू १०५००
―――――――――――――――
या १७५

का १̇ नी १̇ पी १̇ रू १००
―――――――――――――――
या १

समच्छेद और छेदगम करने से—

का १४७̇ नी १३५̇ पी ३५̇ रू १०५००
का १७५̇ नी १७५̇ पी १७५̇ रू १७५००

समशोधन से कालक की उन्मिति आई—

नी ४̇० पी १̇४० रू ७०००
―――――――――――――――
का २८

चार का अपवर्तन देने से—

नी १̇० पी ३५̇ रू १७५०
―――――――――――――――
का ७

यहां भाज्य में दो वर्ण हैं, इसलिये पीतक का मान व्यक्तरूप ३३ कल्पना किया और उस से पीतक ३५̇ को गुण देने से ११५̇५ हुआ इस को रूप १७५० में जोड़ देने से ५९५ हुआ। इस भाँति कालक की उन्मिति हुई—

नी १̇० रू ५९५
―――――――――――――――
का ७

यह अन्त्य की उन्मिति है, इस कारण कुट्टक के लिये न्यास—

भा. १̇० । क्षे. ५९५ ।
हा. ७ ।

'क्षेप: शुध्येत्—' इस सूत्र के अनुसार गुण० लब्धि ८५ आई। यहां गुण नीलक का मान लो ७ रू० और लब्धि कालक का मान लो १̇० रू ८५ हुआ। इनसे इस यावत्तावत् के मान

का १̇ नी १̇ पी १̇ रू १००
―――――――――――――――
या १

में उत्थापन देते हैं—कालक आदि के मान ऋणरूप १̇ से गुण देने से हुए—

लो १० रू ८५ कालक
लो ७̇ रू ० नीलक
लो ० रू ३̇३ पीतक

इन का योग लो ३ रू १ १̇८ हुआ, इस में रूप १०० जोड़ कर हर १ का भाग देने से, यावत्तावत् की उन्मिति लो ३ रू १̇८ आई। इसी भाँति दूसरे यावत्तावत् के मान में, उत्थापन देने से, वही उन्मिति मिली । इनका क्रम से न्यास—

लो ३ रू १८̇ यावत्तावत्
लो १० रू ८५ कालक
लो ७ रू ० नीलक
लो ० रू ३३̇ पीतक

यहां लोहितक का रूप ७ व्यक्त मान कल्पना किया, फिर १ लोहितक का ७ मान है, तो ३ लोहितक का क्या ? अनुपात से तीन लोहितक का मान २१ आया, इसमें रूप १८̇ जोड़ देने से यावत्तावत् की उन्मिति रू ३ आई । इसी भाँति कालक की उन्मिति रू १५ नीलक की उन्मिति रू ४६ और पीतक की उन्मिति रू ३३ आई । इनका योग, सौ के समान है ३+१५+४६+३३=१००

३ द्रम्म के ५ कबूतर तो ३ के क्या, यों पांच ही मिले ।
५ द्रम्म के ७ सारस तो १५ के क्या, यों इक्कीस मिले ।
७ द्रम्म के ९ हंस तो ४६ के क्या, यों तिरसठ मिले ।
९ द्रम्म के ३ मोर तो ३३ के क्या, यों ग्यारह मिले ।

इन जीवों का योग भी, सौ के समान है—

५ + २१ + ६३ + ११=१००

अथवा ३ । ५ । ७ । ९ मूल्य कल्पना किया। अब इन्हें उन गुणकों से गुण देना चाहिये कि जिससे गुणितों का योग सौ के तुल्य हो । इसी भाँति, उन्हीं गुणकों से ५ । ७ । ९ । ३ इन जीवों को भी गुण देना चाहिये कि जिस से गुणितों का योग सौ के तुल्य हो । परन्तु वे गुणक अज्ञात हैं, इस लिये उन के मान या १ का १ नी १ पी १ कल्पना किये हैं ।

अब इन को क्रम से ३ । ५ । ७ । ९ इन मूल्यों से गुणा देने से, या ३ का ५ नी ७ पी ९ इन का योग सौ के तुल्य है, इसलिये समीकरण के लिये न्यास—

या ३ का ५ नी ७ पी ९ रू ०
या ० का० नी० पी० रू १००

समशोधन से यावत्तावत् की उन्मिति

का ५̇ नी ७̇ पी ९̇ रू१००
———
या ३

अब ५ । ७ । ९ । ३ इन जीवों को क्रम से, गुणक से गुणाकर सौ के साथ समीकरण करने के लिये न्यास—

या ५ का ७ नी ९ पी ३ रू ०
या ० का ० नी ० पी ० रू १००

समशोधन से यावत्तावत् की उन्मिति आई—

का ७̇ नी ९̇ पी ३̇ रू १००
———
या ५

दोनों यावत्तावत् की उन्मितियों का समीकरण के लिये न्यास—

का ५̇ नी ७̇ पी ९̇ रू १००
———
या ३

का ७̇ नी ९̇ पी ३̇ रू १०९
———
या ५

यावत्तावत् का अपवर्तन देकर, समच्छेद और छेदगम से हुए—

का २५̇ नी ३५̇ पी ४५̇ रू ५००
का २१ नी २७̇ पी ९̇ रू ३००

समशोधन से कालक की उन्मिति आई—

नी ८̇ पी ३६̇ रू २००
———
का ४

चार का अपवर्तन देने से—

नी २̇ पी ९̇ रू ५०
———
का १

भाज्य में दो वर्ण हैं, इसलिये पीतक का मान व्यक्त रूप४ कल्पना किया, १ पीतक का ४ मान है तो पीतक ९̇ का क्या? रूप३६̇ हुआ, इस में रूप ५० जोड़ देने से, रूप १४ हुआ। इस भांति भाज्य का

स्वरूप हुआ $\frac{\text{नी २̇ रू १४}}{\text{का १}}$ । अब कुट्टक के लिये न्यास——

भा. २ । क्षे. १४ ।
हा. १ ।

'क्षेप: शुध्येद्धरोद्धृत:—' इस सूत्र के अनुसार, लब्धि-गुण $\frac{१४}{०}$ 'इष्टाहतस्वस्वहरेण—' के अनुसार, लोहितक इष्ट मानने से संक्षेप लब्धि गुण हुए——

लो २̇ रू १४ कालक
लो १ रू ० नीलक

यहां लब्धि कालक का मान और गुण नीलक का मान है। इन से दोनों यावत्तावत् के मानों में उत्थापन देना चाहिये——जैसा पहला यावत्तावत् का मान है——

$$\frac{\text{का ५̇ नी ७̇ पी ९̇ रू १००}}{\text{या ३}}$$

१ कालक का लो २̇ रू १४ यह मान है, तो ऋण कालक ५̇ का क्या, लो १० रू ७̇० हुआ।

१ नीलक का लो १ रू ० यह मान है, तो ऋण नीलक ७̇ का क्या, लो ७̇ रू ० हुआ।

१ पीतक का लो ० रू ४ यह मान है, तो ऋण पीतक ९̇ का क्या, लो ० रू ३̇६ हुआ।

इन मानों का योग लो ३ रू १०̇६ हुआ। इसमें रूप १००जोड़ कर, हर या ३ का भाग देने से, यावत्तावत् का मान लो १ रू २̇ आया। इसी भांति दूसरे यावत्तावत् के मान में उत्थापन देने से वही

मान आया $\frac{\text{का ७̇ नी ९̇ पी ३̇ रू १००}}{\text{या ५}}$ । अब इन मानों का क्रम

न्यास——

लो १ रू २̇ यावत्तावत्
लो २̇ रू १४ कालक
लो १ रू ० नीलक
लो ० रू ४ पीतक

यहां लोहितक का व्यक्त मान रूप ३ कल्पना करने से गुणक १। ८ । ३ । ४ हुए। इनसे ३ । ५ । ७ । ९ इन मूल्य द्रम्मों को यथाक्रम गुण देने से, कबूतर आदि जीवों के मूल्य ३ । ४० । २१ । ३६ हुए। और इन्हीं गुणकों से ५ । ७ । ९ । ३ इन को यथाक्रम गुण देने से कबूतर आदि जीवों की संख्या हुई ५ । ५६ । २७ । १२ अथवा, लोहितक का व्यक्त मान रूप ४ कल्पना किया तो २ । ६ । ४ । ४ गुणक हुए। इन से मूल्य द्रम्मों को यथाक्रम गुण देने से, जीवों के मूल्य ६ । ३० । २८ । ३६ हुए और इन्हीं गुणकों से जीवों की संख्याओं को गुण देने से, जीव १० । ४२ । ३६ । १२ हुए। अथवा, लोहितक का व्यक्त मान रूप ५ कल्पना किया तो, ३ । ४ । ५ । ४ गुणक उत्पन्न हुए। इन से भी उक्त रीति के अनुसार, मूल्य ९।२०। ३५ । ३६ और जीव १५ । २८ । ४५ । १२ आये।
इष्ट के कल्पनावश नानाविध मूल्य और जीवों के मान मिलेंगे ॥

उदाहरणम्—

षड्भक्तः पञ्चाग्रः
पञ्चविभक्तो भवेच्चतुष्काग्रः ।
चतुरुद्धतस्त्रिकाग्रो
द्व्यग्रस्त्रिसमुद्धृतः कः स्यात्[1] ॥ ८० ॥

---

१ अत्र श्रीबापुदेवपादोक्तं सूत्रम्—
भाजकानां लघुतमापवर्त्यो रूपवर्जितः ।
राशिः स्यादिष्टगुणितापवर्त्यव्यस्त्वनेकधा ॥
आचार्योक्तोदाहरणे भाजकाः ६ । ५ । ४ । ३ । २ एतेषां लघुतमापवर्त्यः ६० रूपोनो राशिः ५९ अयमेकादीष्टगुणेनापवर्तेन युक्तोऽनेकधा भवति ।

अत्र राशिः या १ अयं षड्भक्तः पञ्चाग्र इति षड्भिर्भागे ह्रियमाणे कालको लभ्यत इति कालकगुणो हरः स्वाग्रेण पञ्चकेन युतो यावत्तावता सम इति साम्यकरणेन यावत्ता-

वदुन्मितिः $\frac{\text{का ६ रू ५}}{\text{या १}}$

एवं पञ्चादिहरेषु नीलकादयो लभ्यन्त इति जाता यावत्तावदुन्मितयः

$\frac{\text{नी ५ रू ४}}{\text{या १}}$ $\frac{\text{पी ४ रू ३}}{\text{या १}}$ $\frac{\text{लो ३ रू २}}{\text{या १}}$

आसां प्रथमद्वितीययोः समीकरणेन लब्धा

कालकोन्मितिः $\frac{\text{नी ५ रू १̇}}{\text{का ६}}$

एवं द्वितीयतृतीययोः समीकरणेन लब्धा

नीलकोन्मितिः $\frac{\text{पी ४ रू १̇}}{\text{नी ५}}$

एवं तृतीयचतुर्थयोः समीकरणेन लब्धा

पीतकोन्मितिः $\frac{\text{लो ३ रू १̇}}{\text{पी ४}}$

अतः कुट्टकाल्लब्धे लोहितकपीतकयोर्माने सक्षेपे

ह४ रू३ लो

ह३ रू२ पी

नीलकोन्माने पीतकं स्वमानेनोत्थाप्य जातम्

ह १२ रू ७

नी ५

अत्र स्वच्छेदेन हरणे नीलकमानं भिन्नं लभ्यते इति कृत्वाभिन्नं कर्तुं 'भूयः कार्यः कुट्टकः—' इति पुनः कुट्टकात्सक्षेपो गुणः श्वे ५ रू ४ एतद्धरितकमानम्, अनेन लोहितक-पीतकयोर्माने हारितकमुत्थाप्य जाते लोहि-तकपीतकयोर्माने

श्वे २० रू १६ लो

श्वे १५ रू १४ पी

इदानीं नीलकोन्माने पीतकं स्वमानेनोत्था-प्य स्वच्छेदेन विभज्य लब्धं नीलकमानम-भिन्नम् श्वे १२ ह ११ अनेन कालकमाने नीलकं स्वमानेनोत्थाप्य स्वच्छेदेन विभज्य लब्धं कालकमानम् श्वे १० रू ६ ।

एभिर्मानैर्यावत्तावदुन्मितिषु कालकादीनुत्थाप्य लब्धं यावत्तावन्मानम् श्वे ६० रू ५९।

अथवा षड्भक्तः पञ्चाग्र इति प्राग्वज्जातो राशिः का ६ रू ५ अयमेव पञ्चहतश्चतुरग्र इति लब्धं नीलकं प्रकल्प्य तद्गुणितहरेण स्वाग्रयुतेन नी ५ रू ४ समीकरणेन जातम्

नी ५ रू १
───────
का ६

एतत्कालकमानं भिन्नं लभ्यत इति कुट्टकेनाभिन्नकालकोन्मानम् पी ५ रू ४ अनेन पूर्वराशि का ६ रू ५ मुत्थाप्य जातम् पी ३० रू २९ पुनरयं चतुर्भक्तस्त्र्यग्र इति प्राग्वत्साम्ये कृते जातम् लो ४ रू २६
───────
पी ३०

अत्रापि कुट्टकाल्लब्धं पीतकमानम् ह २ रू १ अनेन पूर्वराशा पी ३९ रू २० वुत्थापिते जातो राशिः ह ६० रू ५९ पुनरयं त्रिभक्तो द्व्यग्र इति स्वत एव जातः शून्यैकद्व्याद्युत्थापनाद्बहुधा ॥

अथ 'भूयः कार्यः कुट्टकः—' इति पूर्वोक्तसूत्रखण्डस्य व्याप्तिं दर्शयितुमुदाहरणान्तरमार्ययाह—षड्भक्त इति। को राशिः षड्भक्तः पञ्चाग्रः पञ्चशेषः स्यात्। स एव राशिः पञ्चभक्तः संश्चतुष्काग्रः स्यात्। चतुरुद्धृतस्त्रिकाग्रः स्यात्। त्रिसमुद्धृतो द्व्यग्रः स्यादिति निरूप्यताम्॥

उदाहरण—

वह कौन राशि है, जिस में ६ का भाग देने से पांच शेष रहता है, पांच का भाग देने से चार शेष, चार का भाग देने से तीन शेष, और तीन का भाग देने से दो शेष रहता है?

कल्पना किया या १ राशि का मान है। इस में छः का भाग देने से पांच शेष रहता है और लब्ध कालक आता है, तो हर ६ और लब्धि का १ का घात, शेष ५ युत, भाज्य राशि या १ के तुल्य है, इसलिये—

का ६ रू ५
या १

समीकरण से यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{का ६ रू ५}}{\text{या १}}$ आई। फिर या १ में ५ का भाग देने से ४ शेष रहता है और लब्ध नीलक आता है, तो हर ५ और लब्धि नी १ का घात, शेष ४ युत, भाज्य-राशि या १ के तुल्य है, इसलिये—

नी ५ रू ४
या १

समीकरण से यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{नी ५ रू ४}}{\text{या १}}$ आई। फिर या १ में ४ का भाग देने से ३ शेष रहता है, और लब्ध पीतक आता है, तो हर ४ और लब्धि पी १ का घात, शेष ३ युत, भाज्य-राशि या १ के तुल्य है, इसलिये—

पी ४ रू ३
या १

समीकरण से यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{पी ४ रू ३}}{\text{या १}}$ आई।

फिर, या १ में ३ का भाग देने से २ शेष रहता है और लब्ध लोहितक आता है, तो हर ३ और लब्धि लो १ का घात, शेष २ रू, भाज्य-राशि या १ के तुल्य है, इसलिये—

लो ३ रू २
या १

समीकरण से यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{लो ३ रू २}}{\text{या १}}$ आई।

यहां एक यावत्तावत् वर्ण की चार उन्मितियाँ मिलीं। इन का 'वर्णस्यैकस्योन्मितीनां बहुत्वे--' इस के अनुसार समीकरण करना चाहिये, तो पहली और दूसरी यावत्तावत् उन्मिति का समीकरण के लिये न्यास--

$\frac{\text{का ६ रू ५}}{\text{या १}}$

$\frac{\text{नी ५ रू ४}}{\text{या १}}$

यावत्तावत् का अपवर्तन देकर, समच्छेद और छेदगम करने से हुए—

का ६ नी ० रू ५
का ० नी ५ रू ४

समीकरण से कालक की उन्मिति $\frac{\text{ना ५ रू १̇}}{\text{का ६}}$ आई।

दूसरी और तीसरी यावत्तावत् उन्मिति का समीकरण के लिये न्यास—

$\frac{\text{नी ५ रू ४}}{\text{या १}}$

$\frac{\text{पी ४ रू ३}}{\text{या १}}$

यावत्तावत् का अपवर्तन देकर, समच्छेद और छेदगम करने से हुए—

नी ५ पी ० रू ४
नी ० पी ४ रू ३

समीकरण से नीलक की उन्मिति $\frac{\text{पी ४ रू } \dot{१}}{\text{नी ५}}$ ।

तीसरी और चौथी यावत्तावत् उन्मिति का समीकरण के लिये न्यास—

$\frac{\text{पी ४ रू ३}}{\text{या १}}$

$\frac{\text{लो २ रू २}}{\text{या १}}$

यावत्तावत् का अपवर्तन देकर, समच्छेद और छेदगम करने से हुए—

पी ४ लो ० रू ३
पी ० लो २ रू २

समीकरण से पीतक की उन्मिति $\frac{\text{लो २ रू } \dot{१}}{\text{पी ४}}$ आई। यही अन्त्य की उन्मिति है, इसलिये कुट्टक के लिये न्यास—

भा. ३ । क्षे. १ ।
हा. ४ ।

उक्त रीति से वल्ली ० १ १ ० आई। उससे लब्धि $\frac{१}{१}$ गुण $\frac{१}{१}$ हुए। लब्धि क सम होने से

लब्धि-गुण ज्यों के त्यों रहे। परन्तु क्षेप के ऋण होने से $\frac{३}{४}$ इन अपने अपने हरों में शुद्ध करने से, लब्धि-गुण $\frac{२}{३}$ हुए। अब हरितक इष्ट मानने से 'इष्टाहतस्वस्वहरेण—' के अनुसार लब्धि-गुण सक्षेप हुए—

ह ३ रू २ पीतक
ह ४ रू ३ लोहितक

यहां लब्धि पीतक का मान और गुण लोहितक का मान है।

पीतक के मान, ह ३ रू २ से पूर्वागत नीलक के मान $\frac{\text{पी ४ रू १̇}}{\text{नी ५}}$ में उत्थापन देते हैं—

यदि १ पीतक का ह ३ रू २ यह मान है, तो पीतक ४ का क्या, ह १२ रू ८ हुआ, फिर रूप ८ में ऋण रूप १̇ जोड़ देने से रूप ७ हुआ। फिर ह १२ रू ७ में हर नी ५ का भाग देने से नीलक का मान $\frac{\text{ह १२ रू ७}}{\text{नी ५}}$ हुआ।

यहां हर का भाग देने से भिन्न मान आता है। इसलिये 'भिन्नं यदि मानमेवम्' भूयः कार्यः कुट्टकः—, इसके अनुसार फिर कुट्टक के लिये न्यास—

भा. १२ । क्षे. ७ ।

हा. ५ ।

हरतष्टे धनक्षेपे—, इस रीति से न्यास—

भा. १२ । क्षे. २ ।

हा. ५ ।

उक्त रीति से वल्ली २ आई। इस से लब्धि-गुण १० हुए। फिर 'क्षेपत-
२ ४
२
०

क्षणालाभाढ्या—' के अनुसार १ जोड़ देने से लब्धि ११ हुई। इस प्रकार $\frac{११}{४}$ लब्धि-गुण हुए। यहां, लब्धि ११ नीलक का मान और गुण ४ हरितक का मान है। अब श्वेतक १ इष्ट कल्पना करने से 'इष्टाहतस्वस्वहरेण—' के अनुसार सक्षेप लब्धि-गुण हुए—

श्वे १२ रू ११ नीलक

श्वे ५ रू ४ हरितक

यहां 'श्वे ५ रू ४' इस हरितक मान से—

ह ३ रू २ पीतक

ह ४ रू ३ लोहितक

इन पूर्वानीत अन्तिम पीतक, लोहितक के मानों में उत्थापन देना चाहिये। तात्पर्य यह है कि जिस वर्ण का मान जहां पर आया है वह वर्ण पहले जिस मान के भीतर में हो, वहां उसी वर्ण में उत्थापन देना उचित है। जैसा–, हरितक का 'श्वे ५ रू ४' यह मान है, तो ३ हरितक का क्या, श्वे १५ रू १२ हुआ। अब रूप १२ में रूप २ जोड़ने से, पीतक का मान, श्वे १५ रू १४ हुआ। इसी भाँति—यदि १ हरितक का, श्वे ५ रू ४ यह मान है, तो ४ हरितक का क्या, श्वे २० रू १६ हुआ। अब रूप १६ में रूप ३ जोड़ देने से, लोहितक का मान श्वे २० रू १९ हुआ।

इन का क्रम से न्यास—

श्वे २० रू १९ लोहितक

श्वे १५ रू १४ पीतक

इस भाँति, अन्त्य वर्णों में उत्थापन हुआ। अब '——अन्त्यवर्णं तेनोत्थाप्योत्थापयेद् व्यस्तमाद्यात्—' इस के अनुसार, लोहितक और पीतक के मान से नीलकमान आदि लेकर, व्यस्त उत्थापन देते हैं—जैसा—श्वे १५ रू १४ इस पीतक के मान से $\frac{\text{पी ४ रू १}}{\text{नी ५}}$ इस पूर्वानीत नीलक के मान में, उत्थापन देना है—यदि १ पीतक का श्वे १५ रू १४ यह मान है तो ४ पीतक का क्या, श्वे ६० रू ५६ हुआ। यहां रूप ५६ में ऋणरूप १ जोड़ देने से ५५ हुआ। अब हर ५ का भाग देने से नीलक का मान श्वे १२ रू ११ हुआ। यह कुट्टकागत नीलकमान श्वे १२ रू ११ के समान ही है। अब इस से $\frac{\text{नी ५ रू १}}{\text{का ६}}$ इस कालक के मान में उत्थापन देते हैं—१ नीलक का श्वे १२ रू ११ यह मान है, तो नीलक ५ का क्या, श्वे ६० रू ५५ हुआ। इस में रूप १ जोड़ देने से श्वे ६० रू ५४ हुआ। इस में हर ६ का भाग

देने से कालक का मान श्वे १० रू ६ आया । अब इन मानों से यावत्तावत् की उन्मितियों में उत्थापन देते हैं—

यहां पहली यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{का ६ रू ५}}{\text{या १}}$ है । यदि १ कालक का, श्वे १० रू ६ यह मान है, तो कालक ६ का क्या, श्वे ६० रू ५४ हुआ । इस में रूप ५ जोड़ देने से, श्वे ६० रू ५९ हुआ । फिर हर १ का भाग देने से, यावत्तावत् की उन्मिति श्वे ६० रू ५९ आई ।

दूसरी यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{नी ५ रू ४}}{\text{या १}}$ है । यदि १ नीलक का श्वे १२ रू ११ यह मान आता है, तो ५ नीलक का क्या, श्वे ६० रू ५५ हुआ । इस में रूप ४ जोड़ कर, हर १ का भाग देने से यावत्तावत् की उन्मिति श्वे ६० रू ५९ आई ।

तीसरी यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{पी ४ रू ३}}{\text{या १}}$ है । यदि १ पीतक का श्वे १५ रू १४ यह मान है, तो ४ पीतक का क्या, श्वे ६० रू ५६ हुआ । इस में रूप ३ जोड़ कर हर १ का भाग देने से, यावत्तावत् की उन्मिति श्वे ६० रू ५९ आई ।

चौथी यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{लो ३ रू २}}{\text{या १}}$ है । यदि १ लोहितक का श्वे २० रू १९ यह मान है, तो ३ लोहितक का क्या, श्वे ६० रू ५७ हुआ । इस में रूप २ जोड़ कर, हर १ का भाग देने से यावत्तावत् की उन्मिति श्वे ६० रू ५९ आई । इस भाँति, चारों यावत्तावत् की उन्मितियां तुल्य ही मिलीं । अब पूर्वागत यावत्तावत् आदि वर्णों के मानों का क्रम से न्यास—

श्वे ६० रू ५९ यावत्तावत्
श्वे १० रू ९ कालक
श्वे १२ रू ११ नीलक
श्वे १५ रू १४ पीतक
श्वे २० रू १९ लोहितक

यहां श्वेतक का शून्य ० व्यक्त मान कल्पना करके, उत्थापन देते हैं—१ श्वेतक का ० यह मान है, तो ६० श्वेतक का क्या, यों ० आया, इस में रूप ५९ जोड़ देने से, यावत्तावत् की उन्मिति व्यक्त ५९ आई। इसी भाँति अनुपात द्वारा कालक, नीलक, पीतक और लोहितक की क्रम से व्यक्त उन्मिति हुई ९। ११। १४। १९ यहां राशि ५९ में ६ का भाग देने से कालक मान तुल्य लब्धि ९ आती है। इसी भाँति, उस राशि में पांच आदि के भाग देने से नीलक आदि वर्णों के मानों के तुल्य लब्धि आती हैं।

अथवा, श्वेतक का व्यक्त मान रूप १ कल्पना किया, बाद १ श्वेतक का १ मान है, तो ६० श्वेतक का क्या? यों ६० हुआ, इस में रूप ५९ जोड़ देने से ११९ यह राशि आई और उक्त रीति से लब्धियाँ हुईं १९। २३। २९। ३३। इस भाँति इष्ट के कल्पना-वश से नानाविध राशि मिलेंगे।

उक्त प्रश्न का प्रकारान्तर से उत्तर लाते हैं—या १ इस में छ का भाग देने से, पांच शेष रहता है तो, उक्त रीति से $\frac{\text{का } ६ \text{ रू } ५}{\text{या } १}$, यह यावत्तावत् की उन्मिति आती है। अब इस में हर का भाग देने से, का ६ रू ५ राशि आई। इस में पाँच का भाग देने से, लब्धि नीलक और शेष ४ रहा, हर-लब्धि का घात, शेष से जुड़ा भाज्य राशि के समान होता है, इस प्रकार दो पक्ष तुल्य हुए—

का ६ नी ० रू ५
का ० नी ५ रू ४

समीकरण से कालक की उन्मिति $\frac{\text{नी } ५ \text{ रू } \dot{१}}{\text{का } ६}$ आई। इस में हर का भाग देने से, लब्धि भिन्न आती है, इसलिये कुट्टक के लिये न्यास—

भा. ५। क्षे $\dot{१}$। वल्ली ०
हा. ६। १
१
०

इससे लब्धि-गुण हुए $\frac{१}{१}$ । क्षेप के ऋण होने से, अपने अपने हरों में शुद्ध करने से लब्धि-गुण हुए $\frac{४}{५}$ । यहां लब्धि कालक वर्ण का मान और गुण नीलक वर्ण का मान है । अब पीतक १ इष्ट मानने से 'इष्टाहतस्वस्वहरेण——' इस के अनुसार लब्धि गुण सक्षेप हुए—

पी ५ रू ४ कालक
पी ६ रू ५ नीलक

यहां नीलक के मान का कुछ आवश्यक नहीं है, इसलिये कालक ही का मान ग्रहण किया है । अब, उस से का ६ रू ५ इस राशि में उत्थापन देते हैं—यदि १ कालक का पी ५ रू ४ यह मान है तो ६ कालक का क्या, यों पी ३० रू २४ हुआ, इस में रूप ५ जोड़ देने से, राशि पी ३० रू २९ हुई । इसमें चार का भाग देने से लब्धि लोहितक और शेष ३ रहा, हर-लब्धि का घात, शेषयुत भाज्य राशि के तुल्य होता है, इस से दो पक्ष समान हुए—

पी ३० लो ० रू २९
पी ० लो ४ रू ३

समीकरण से पीतक की उन्मिति $\frac{\text{लो ४ रू २६̇}}{\text{पी ३०}}$ आई । २ का

अपवर्तन देने से $\frac{\text{लो २ रू १३̇}}{\text{पी १५}}$ हुई ।

भाज्य में भाजक का भाग देने से, लब्धि निरग्र नहीं आती, इसलिये कुट्टक करते हैं—

भा. २ । क्षे १३̇ ।   वल्ली ०
हा. १५ ।   ७
१३
०

उक्त रीति से लब्धि-गुण $\frac{१३}{९१}$ हुए । अपने अपने हार से तष्टित करने से $\frac{१}{१}$ हुए । क्षेप के ऋण होने से, इन्हें अपने अपने हरों में शुद्ध करने से लब्धि-गुण $\frac{१}{१४}$ हुए । यहां लब्धि पीतक वर्ण का मान

और गुण्य लोहितक वर्ण का मान है। अब हरितक १ इष्ट कल्पना करने से 'इष्टाहत–' के अनुसार, पीतक और लोहितक के मान सक्षेप हुए—

ह २ रू १ पीतक

ह १५ रू १४ लोहितक

अब पीतक का मान ह २ रू १ से पी ३० रू २९ इस राशि में उत्थापन देते हैं——१ पीतक का ह २ रू १ यह मान है, तो ३० पीतक का क्या, यों ह ६० रू ३० हुआ, इस में रूप २९ जोड़ देने से राशि ह ६० रू ५९ हुई। इस में ३ का भाग देने से, स्वतः २ शेष बचता है। इसलिये ह ६० रू ५९ यह राशि हुई। अब हरितक का मान व्यक्त ० कल्पना करने से उक्त रीति के अनुसार ५९ राशि हुई, व्यक्तमान १ कल्पना करने से ११९ राशि हुई। अब लब्धियों के लिये उत्थापन देते हैं— पहले कालक का मान पी ५ रू ४ आया है। १ पीतक का ह २ रू १ यह मान है, तो ५ पीतक का क्या, यों ह १० रू ५ हुआ। इस में रूप ४ जोड़ देने से, कालक का मान ह १० रू ९ हुआ। और नीलक का मान पी ६ रू ५ आया है। १ पीतक का ह २ रू १ यह मान है, तो ६ पीतक का क्या, यों ह १२ रू ६ हुआ। इस में रूप ५ जोड़ देने से, नीलक मान ह १२ रू ११ हुआ। और लोहितक का मान तो कुट्टक द्वारा प्रथम ही आया है—ह १५ रू १४। अब, हर एक हरितक में शून्य ० का उत्थापन देने से, कालक, नीलक और लोहितक के मान के तुल्य ९। १४। १४ ये लब्धियाँ सिद्ध हुईं।

उदाहरणम्–

स्युः पञ्चसप्तनवभिः क्षुण्णेषु हृतेषु केषु विंशत्या।
रूपोत्तराणि शेषाण्यवाप्तयश्चापि शेषसमाः॥ ८॥

अत्र शेषाणि या १। या १ रू १। या १

रू २ । एता एव लब्धयः । प्रथमो राशिः का १ अस्मात्पञ्चगुणिताद्राशेर्लब्धिगुणं हरमपास्य जातं शेषम् का ५ या २० एतद्यावत्तावत्समं कृत्वा लब्धा यावत्तावदुन्मितिः

का ५
———
या २१

अथ द्वितीयो राशिः नी १ अस्मात्सप्तगुणा-द्रूपाधिकयावत्तावद्गुणहरमपास्य जातम् नी ७ या २̇० रू २̇० एतदस्य या १ रू १ समं कृत्वा लब्धा यावत्तावदुन्मितिः

नी ७ रू २१̇
———
या २१

एवं तृतीयः पी १ अस्मान्नवगुणाल्लब्धि (या १ रू २) गुणहरमपास्य शेषम् पी ९ या २१̇ रू ४̇० इदमस्य या १ रू २ समं कृत्वा लब्धा यावत्तावदुन्मितिः

पी ९ रू ४२̇
———
या २१

आसां प्रथमद्वितीययोर्द्वितीयतृतीययोः साम्यकरणेन लब्धे कालकनीलकयोरुन्मिती

नी ७ रू २१̇
———
का ५

पी ९ रू २̇१
———
नी ७

अत्र नीलकोन्मितौ कुट्टकेन नीलकपीतकयोर्माने कृत्वा कालकोन्मितौ नीलके स्वमानेनोत्थापिते कालकमानं भिन्नं लभ्यत इति कुट्टकेनाभिन्ने कालकलोहितकयोर्माने

ह ६३ रू ४२ का
ह ५ रू ३ लो

अत्र नीलकपीतकयोर्लोहितके स्वमानेनोत्थापिते जाते तन्माने

ह ४५ रू ३३ नी
ह ३५ रू २८ पी

यथाक्रमेण न्यासः

ह ६३ रू ४२ का
ह ४५ रू ३३ नी
ह ३५ रू २८ पी

अथ यावत्तावदुन्मितिषु कालकादीन्स्वस्वमानेनोत्थाप्य स्वच्छेदेन विभज्य लब्धं यावत्तावन्मानम् ह १५ रू १०। अत्र शेषसमे फले नहि शेषं भागहाराधिकं भवितुमर्हति अत्र हरितकं शून्येनोत्थाप्य जाता राशयः ४२।

३३ । २८ । अग्राणि च १० । ११ । १२ एता एव लब्धयः ।

अथान्यदुदाहरणमार्ययाह—स्युरिति । केषु राशिषु पञ्चसप्तनवभिः क्षुण्णेषु हतेषु विंशत्या हृतेषु भक्तेषु रूपोत्तराणि, रूपमेक उत्तरो वृद्धिर्येषां तानि रूपोत्तराणि शेषाणि उर्वरितानि स्युः, अवाप्तयो लब्धयश्च शेषसमा एव स्युः ॥

उदाहरण—

वे तीन कौन राशि हैं, जिन को क्रम से पांच, सात और नौ से गुणा देते हैं और बीस का भाग देते हैं, तो रूपोत्तर शेष तथा शेष के समान लब्धि आती है ।

कल्पना किया १ का १ नी १ पी १ राशि हैं और पहला शेष या १ है । इस में रूप १ जोड़ देने से, दूसरा शेष या १ रू १ हुआ। इस में रूप १ जोड़ देने से, तीसरा शेष या १ रू २ हुआ । और अपने अपने शेष के समान लब्धि कल्पना की, जैसा—पहली लब्धि या १, दूसरी लब्धि या १ रू १, तीसरी लब्धि या १ रू २ । अब पहली राशि का १ है, यह ५ से गुणा देने से का ५ हुआ । इस में बीस का भाग देने से, लब्धि या १ आई । इस को हर २० से गुणा कर, भाज्य-राशि का ५ में घटा देने से, शेष का ५ या २̇० रहा । यह कल्पित शेष या १ के समान है, इस लिये समीकरण के लिये न्यास—

का ५ या २̇०
या १

समशोधन से यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{का } ५}{\text{या } २१}$ आई । दूसरी राशि नी १ है, ७ से गुणा देने से नी ७ हुआ । इस में बीस का भाग देने से, लब्धि या १ रू १ आई । इस को हर २० से गुणा कर, भाज्य-राशि नी ७ में घटा देने से, शेष नी ७ या २̇० रू २̇० रहा, यह कल्पित-शेष या १ रू १ के तुल्य है, इस कारण समीकरण के लिये न्यास—

नी ७ या २०̇ रू २̇०
या १ रू १

समीकरण से यावत्तावत् की उन्मिति (नी ७ रू २̇१)/(या २१) आई।

तीसरी राशि पी १ है, यह ६ से गुणा देने से पी ६ हुआ। इस में बीस का भाग देने से, लब्धि या १ रू २ आई। इस को हर २० से गुणा कर भाज्य-राशि पी ६ में, घटा देने से, शेष 'पी ६ २०̇ रू ४̇०' रहा यह कल्पित-शेष 'या १ रू २' के तुल्य है, इसलिये समीकरण के लिये न्यास—

पी ६ या २०̇ रू ४̇०
या १ रू २

समीकरण से यावत्तावत् की उन्मिति (पी ६ रू ४२̇)/(या २१) आई।

अत्र पहली और दूसरी यावत्तावत् उन्मिति का समीकरण के लिये न्यास— (का ५)/(या २१)
(नी ७ रू २̇१)/(या २१)

यावत्तावत् का अपवर्तन देकर, समच्छेद और छेदगम करने से हुए—

का १०५ नी ० रू ०
का ० नी १४७ रू ४४१̇

इन में २१ का अपवर्तन देने से, अथवा पहले या २१ का अपवर्तन देने से हुए—

का ५ नी ० रू ०
का ० नी ७ रू २̇१

समीकरण से कालक की उन्मिति (नी ६ रू २१̇)/(का ५) आई।

इसी भाँति, दूसरी और तीसरी यावत्तावत् की उन्मिति का समीकरण के लिये न्यास—

$$\frac{\text{नी ७ रू २१̇}}{\text{या २१}}$$

$$\frac{\text{पी ९ रू ४२̇}}{\text{या २१}}$$

यावत्तावत् २१ का अपवर्तन आदि देने से हुए—

नी ७ पी ० रू २१̇
नी ० पी ९ रू ४२̇

समीकरण से नीलक की उन्मिति $\frac{\text{पी ९ रू २१̇}}{\text{नी ७}}$ आई ।

यह अन्त्य की उन्मिति है, इसलिये कुट्टक के लिये न्यास—

भा. ९ । क्षे. २१̇ । वल्ली १
हा. ७ । ३
२१
०

इस से अथवा '—क्षेपो हारहृतः फलम्' इस के अनुसार, लब्धि-गुण ३ हुए । क्षेप के ऋण होने से, अपने अपने हारों में शुद्ध करने से, हुए $\frac{६}{७}$ लब्धि नीलक का मान और गुण पीतक का मान हुआ । अब लोहितक १ इष्ट मानने से 'इष्टाहतस्वस्वहरेण—' के अनुसार, नीलक और पीतक के मान सक्षेप हुए—

लो ९ रू ६ नीलक
लो ७ रू ७ पीतक

अब नीलक मान से कालक मान $\frac{\text{नी ७ रू २१̇}}{\text{का ५}}$ में उत्थापन देते हैं—१ नीलक का लो ९ रू ६ यह मान है, तो ७ नीलक का क्या, यों लो ६३ रू ४२ हुआ । इस में रूप २१̇ जोड़ देने से, लो ६३ रू २१ हुआ, यह कालक ५ के तुल्य है । क्योंकि रूप २१̇ से हीन

नीलक ७ कालक ५ के तुल्य है, इसका कारण यह है कि पहले सम-शोधन करने से, शेष समान रहे हैं। यदि ५ कालक का लो ६३रू२१ यह मान है, तो १ कालक का क्या, $\frac{\text{लो ६३ रू २१}}{\text{का ५}}$ हुआ (इसीलिये उत्थापन देने में सर्वत्र हर का भाग दिया जाता है) प्रकृत में हर का भाग देने से भिन्न मान आता है, इसलिये 'भूयः कार्यः कुट्टकः—' के अनुसार, कुट्टक के लिये न्यास——

भा. ६३ । क्षे. २१ ।
हा. ५ ।

'हरतष्टे धनक्षेपे——' के अनुसार न्यास——

भा. ६३ । क्षे. १ ।	वल्ली	१२
हा. ५ ।		१
		१
		१
		०

उक्त रीति से लब्धि गुण $\frac{२५}{२}$ हुए। वल्ली के विषम होने से अपने अपने हरों में घटा देने से $\frac{३८}{३}$ हुए 'क्षेपतक्षणलाभाढ्या—' के अनुसार लब्धि ४२ हुई। इस भाँति लब्धि-गुण हुए $\frac{४२}{३}$ लब्धि कालक का मान और गुण लोहितक का मान हुआ। अब हरितक १ इष्ट मानकर 'इष्टाहत—' इस से सक्षेप लब्धि गुण हुए——

ह ६३ रू ४२ कालक
ह ५ रू ३ लोहितक

और अन्त्यवर्ण के मान हैं——

लो ९ रू ६ नीलक
लो ७ रू ७ पीतक

अब उस लोहितक मान ह ५ रू ३ से अन्त्यवर्ण में उत्थापन देना चाहिये 'भूयः कार्यः कुट्टकः—' इस सूत्र में कुट्टक शब्द से गुण का ग्रहण होता है क्योंकि 'कुट्टक' यह गुण विशेष का नाम है। इसलिये

उस गुण से अन्त्यवर्ण में उत्थापन देना उचित है। प्रकृत में उस गुणरूप लोहितकमान से, नीलक और पीतक के मान में उत्थापन देते हैं——१लोहितक का ह ५ रू ३ यह मान है, तो ६ लोहितक का क्या, यों ह ४५ रू २७ हुआ, इस में रूप ६ जोड़ देने से, नीलक का मान ह ४५ रू ३३ हुआ। १ लोहितक का ह ५ रू ३ यह मान है, तो ७ लोहितक का क्या, ह ३५ रू २१ हुआ, इस में रूप ७ जोड़ देने से, पीतक का मान ह ३५ रू २८ हुआ। अब नीलक और पीतक के आद्य कालक से व्यस्त उत्थापन देते हैं—वहां कालक का मान पहले कुट्टक के द्वारा ह ६३ रू ४२ यह आया है।

पहली यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{का ५}}{\text{या २१}}$ है। १ कालक का ह ६३ रू ४२ यह मान है, तो कालक ५ का क्या, यों ह ३१५ रू २१० हुआ। इस में हर २१ का भाग देने से यावत्तावत् की उन्मिति ह १५ रू १० आई। दूसरी यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{नी ७ रू २१}}{\text{या २१}}$ है। नीलक का ह ४५ रू ३३ यह मान है, तो नीलक ७ का क्या, यों ह ३१५ रू २३१ हुआ। इस में रूप २१ जोड़ देने से, ह ३१५ रू २१० हुआ। इस में हर २१ का भाग देने से, यावत्तावत् की उन्मिति ह १५ रू १० आई। तीसरी यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{पी ६ रू ४२}}{\text{या २१}}$ है। १ पीतक का ह ३५ रू २८ यह मान है, तो ६ पीतक का क्या, यों ह ३१५ रू २५२ हुआ। इस में रूप ४२ जोड़ देने से ह ३१५ रू २१० हुआ। इस में हर २१ का भाग देने से यावत्तावत की उन्मिति ह १५ रू १० आई। यावत्तावत् आदि के मानों का क्रम से न्यास——

ह १५ रू १० यावत्तावत्
ह ६३ रू ४२ कालक
ह ४५ रू ३३ नीलक
ह ३५ रू २८ पीतक

यहां हरितक का मान व्यक्त शून्य कल्पना करने से, अनुपात के द्वारा यावत्तावत् आदि वर्णों के व्यक्तमान हुए १० । ४२ । ३३ । २८ । यावत्तावत् का मान १० पहला शेष है, इस में १ जोड़ने से दूसरा शेष ११ हुआ, इस में १ जोड़ने से तीसरा शेष १२ हुआ । यहां हरितक का एक आदि व्यक्तमान मानने से, शेष बीस से अधिक होता है । इसलिये शून्य ही से उत्थापन दिया है, क्योंकि सर्वत्र हर से शेष न्यून रहता है । इसलिये ४२।३३।२८ राशियाँ आईं इन्हें क्रम से ५।७।९ से गुणा देने से २१०।२३१।२५२ हुए । इन में २० का भाग देने से १०।११।१२ लब्धि आईं और रूपोत्तर १०।११।१२ शेष रहे ॥

उदाहरणम्—

एकाग्रो द्विहृतः कःस्याद् द्विकाग्रस्त्रिसमुद्धृतः
त्रिकाग्रः पञ्चभिर्भक्तस्तद्वदेव हि लब्धयः ८२

अत्र राशिः या १ अयं द्विहृत एकाग्र इति तत्फलं च द्विहृतमेकाग्रमिति फलप्रमाणम् का २ रू १ एतद्गुणं हरं स्वाग्रेण युतं तस्य समं कृत्वा लब्धं यावत्तावन्मानम् का४ रू ३ अस्यैकालापो घटते। पुनरपि त्रिहृतो द्व्यग्र इति तत्फलं च नी ३ रू २ एतद्गुणहरमग्रयुतं च नी ९ रू ८ इदमस्य का ४ रू ३ समं कृत्वा कालकमानं भिन्नं कुट्टकेनाभिन्नं जातम् पी ९ रू ८ अनेन कालकमुत्थाप्य जातो राशिः पी ३६ रू ३५ अस्यालापद्वयं घटते। पुनरयं

पञ्चभक्तस्त्र्यग्र इति तत्फलं च लो ५ रू ३ इदं हरगुणमग्रयुतमस्य पी ३६ रू ३५ समं कृत्वा पीतकमानं भिन्नं कुट्टकेनाभिन्नं कृत्वा जातम् ह २५ रू ३ अनेन पीतकमुत्थाप्य जातो राशिः ह ९०० रू १४३ हरितकस्य शून्यादि-नोत्थापनेनानेकविधः ॥

अथान्योदाहरणमनुष्टुभाह—एकाग्र इति। को राशिर्द्विहृतः सन्नेकाग्रः स्यात्। त्रिसमुद्धृतः सन् द्विकाग्रः स्यात्। पञ्चभिर्भक्तः संस्त्रिकाग्रः स्यात्। लब्धयोऽपि तद्वदेव भवेयुः। एतदुक्तं भवति—राशौ द्विविहृते यल्लभ्यते तदपि द्विविहृतं सदेकाग्रं स्यात्। राशौ त्रिसमुद्धृते यल्लभ्यते तदपि त्रिसमुद्धृतं सद् द्विकाग्रं स्यात्। राशौ पञ्चभिर्भक्ते यल्लभ्यते तदपि पञ्चभक्तं सत्त्रिकाग्रं स्यादित्यर्थः ॥

उदाहरण——

वह कौन सी राशि है जिस में दो का भाग देने से एक शेष रहता है। तीन का भाग देने से दो शेष और पाँच का भाग देने से तीन शेष रहता है। इसी भाँति लब्धि में दो का भाग देने से एक, तीन का भाग देने से दो और पाँच का भाग देने से तीन शेष रहता है?

कल्पना किया या १ राशि है। और लब्धि ऐसी कल्पना की कि जिसमें हर का भाग देने से, उद्दिष्ट शेष के तुल्य शेष रहें। जैसा—

१ = का २ रू १

२ = नी ३ रू २

३ = लो ५ रू ३

या १ में २ का भाग देने से का २ रू १ यह लब्धि आई, और इस में २ का भाग देने से शेष का० रू १ रहा, अत्र लब्धि का २ रू १ और हर २ के घात का ४ रू २ में शेष का० रू १ जोड़ देने स का ४ रू ३ यह यावत्तावत् के तुल्य है। इसलिये समीकरण करने से

यावत्तावत् का मान का ४ रू ३ आया। इस में एक आलाप घटित होता है। अर्थात् २ का भाग देने से का २ रू १ लब्धि आती है और रू १ शेष रहता है तथा लब्धि का २ रू १ में २ का भाग देने से रू१ शेष रहता है। इस भांति दोनों स्थानों में शेष तुल्य बचता है। अब का ४ रू ३ इस राशि में ३ का भाग देने से, नी ३ रू २ लब्धि आई और इस में ३ का भाग देने से शेष नी० रू २ रहा, अब लब्धि नी ३ रू २ और हर के घात नी ६ रू ६ में, शेष नी० रू २ जोड़ देने से, नी०रू यह पूर्व राशि के तुल्य है, इसलिये समीकरण के लिये न्यास——

का ४ नी ० रू ३
का ० नी ६ रू ८

समीकरण से कालक की उन्मिति $\frac{\text{नी ६ रू ५}}{\text{का ४}}$ आई।

इसकी अभिन्नता के लिये कुट्टक करते हैं——

भा ० ६ । क्षे ० ५ ।
हा ० ४ ।

'हरतष्टे धनक्षेपे—' इस के अनुसार न्यास——

भा ० ६ । क्षे ० १ । वल्ली २
हा ० ४ । १
०

इस से लब्धि गुण हुए $\begin{matrix}२\\१\end{matrix}$ लब्धि के विषम होने से, अपने अपने हरों में शुद्ध करने से $\begin{matrix}७\\३\end{matrix}$ हुए, 'क्षेपतक्षणलाभाढ्या—' के अनुसार, लब्धि में १ जोड़ देने से लब्धि ८ हुई। यह कालक का मान और गुण नीलक का मान हुआ। अब इष्ट पीतक १ कल्पना करने से 'इष्टाहतस्वंस्वहरेण—' इस के अनुसार लब्धि-गुण सक्षेप हुए——

पी ६ रू ८ कालक
पी ४ रू ३ नीलक

अब कालक मान से यावत्तावन्मान का ४ रू ३ में उत्थापन देते हैं—यदि कालक १ का पी ६ रू ८ मान है, तो कालक ४ का क्या?

पी ३६ रू ३२ हुआ। इस में रूप ३ जोड़ देने से, यावत्तावत् का मान पी ३६ रू ३५ हुआ। इस में दो आलाप घटित होते हैं अर्थात् २ का भाग देने से, पी १८ रू १७ लब्धि आती है और रू १ शेष रहता है, लब्धि पी १८ रू १७ में, २ का भाग देने से रू १ शेष रहता है। इस भाँति उभयत्र शेष समान बचता है। फिर पी ३६ रू ३५ में ३ का भाग देने से पी १२ रू ११ लब्धि आती है और रू २ शेष रहता है लब्धि पी १२ रू ११ में, ३ का भाग देने से रू २ शेष रहता है यहां भी उभयत्र शेष तुल्य रहता है। अब पी ३६ रू ३५ इसमें ५ का भाग देने से, लो ५ रू ३ लब्धि आई। और इस में ५ का भाग देने से शेष लो ० रू ३ रहा, अब लब्धि लो ५ रू ३ और हर ५ के घात लो २५ रू १५ में, शेष लो ० रू ३ जोड़ देने से लो २५ रू १८ यह पूर्वराशि के तुल्य है, इसलिए समीकरण के लिए न्यास—

पी ३६ लो ० रू ३५
पी ० लो २५ रू १८

समीकरण से यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{लो २५ रू १७}}{\text{पी ३६}}$ आई। अब इस की अभिन्नता के लिये कुट्टक करते हैं—

भा ० २५ । क्षे ० १७ ।
हा ० ३६ । वल्ली

वल्ली
०
१
२
३
१
१७
०

इस से लब्धि गुण हुए $\begin{matrix}१ & ५ & ३\\ २ & २ & १\end{matrix}$ अपने अपने हरों से तष्टित करने से हुए $\begin{matrix}३\\ ५\end{matrix}$ लब्धि के विषम होने से, अपने अपने हरों में शुद्ध करने से हुए $\begin{matrix}२ & २\\ ३ & १\end{matrix}$ क्षेप के ऋण होने से, फिर अपने अपने हरों में शुद्ध करने से हुए $\begin{matrix}३\\ ५\end{matrix}$ लब्धि पीतक का मान और गुण लोहितक का मान हुआ

और हरितक १ इष्ट मानने से 'इष्टाहतस्वस्वहरेण-' के अनुसार लब्धि गुण सक्षेप हुए—

ह २५ रू ३ पीतक
ह ३६ रू ५ लोहितक

अब पीतक मान से यावत्तावत् की उन्मिति पी ३६ रू ३५ में उत्थापन देते हैं—१ पीतक का ह २५ रू ३ यह मान आता है तो ३६ पीतक का क्या, ह ९०० रू १०८ हुआ। इस में रूप ३५ जोड़ देने से यावत्तावत् की उन्मिति ह ९०० रू १४३ हुई।

अब हरितक में शून्य ० का उत्थापन देने से १४३ यह राशि आई। इस भाँति १ आदि इष्ट मानने से अनेक राशि मिलेंगे।

अथवा। लोहितक मान से, यावत्तावत् उन्मिति पी ३६ रू ३५ के तुल्य लो २५ रू १८ में उत्थापन देते हैं—यदि १ लोहितक का ह ३६ रू ५ यह मान है, तो २५ लोहितक का क्या, ह ९०० रू १२५१ हुआ इस में रूप १८ जोड़ देने से वही बात सिद्ध हुई ह ९०० रू १४३। राशि १४३ में २ का भाग देने से ७१ लब्धि आई और शेष १ रहा, और लब्धि ७१ में २ का भाग देने से १ शेष रहा। फिर ३ का भाग देने से ४७ लब्धि आई और शेष २ रहा, लब्धि ४७ में ३ का भाग देने से २ शेष रहा। फिर ५ का भाग देने से २८ लब्धि आई और शेष ३ रहा, और लब्धि २८ में ५ का भाग देने से ३ शेष रहा॥

उदाहरणम्-

कौ राशी वद पञ्चषट्कविहृतावेकद्विकाग्रौ ययो-
र्द्व्यग्रं त्र्युद्धृतमन्तरं नवहृता पञ्चाग्रका स्याद्युतिः
घातः सप्तहृतः षडग्र इति तौ षट्काष्टकाभ्यां विना

विद्वन् कुट्टकवेदिकुञ्जरघटासंघट्टसिंहोऽसि चेत्

अत्र कल्पितौ राशी पञ्चषट्कविहृतावेकद्व्यग्रौ या ५ रू १ । या ६ रू २ अनयोरन्तरं त्रिहृतं द्व्यग्रमिति लब्धं कालकस्तद्गुणहरमग्रयुतमन्तरेणानेन या १ रू १ समं कृत्वा लब्धं यावत्तावन्मानम् का ३ रू १ । अनेनोत्थापितौ जातौ राशी का १५ रू ६ । का १८ रू ८ । पुनरनयोर्युतिर्नवहृता पञ्चाग्रेति लब्धं नीलकस्तद्गुणं हरमग्रयुतं योगस्यास्य का ३३ रू १४ समं कृत्वा कालकमानं भिन्नम् नी ९ रू ९ / का ३३ कुट्टकेनाभिन्नं जातम् पी ३ रू० । अनेनोत्थापितौ जातौ राशी पी ४५ रू ६ । पी ५४ रू ८ । पुनरनयोर्घाते वर्गत्वान्महती क्रिया भवतीति पीतकमेकेनोत्थाप्य प्रथमो राशिर्व्यक्त एव कृतः ५१ पुनरनयोः सप्ततष्टयोर्घातः सप्ततष्टः पी ३ रू २ समं कृत्वा प्राग्वत्कुट्टके-

१—अत्र ज्ञानराजदैवज्ञाः—

अङ्कौ कौ हररामचन्द्रहरणादेकत्वमग्रे गतौ
तद्योगः शशिभक्तितोऽग्ररहितो रामाहृतं चान्तरम् ।
यद्वा तौ विषयैर्निरग्र इह यल्लब्धैक्यमप्याहृतं
निःशेषं सकलैः सुरैर्वद सखे तौ रावणाद्वाविव ॥

नाप्तं पीतकमानम् ह ७ रू ६ अनेनोत्थापितो जातो राशिः ह ३७८ रू ३३२ पूर्वराशेः क्षेपः पी ४५ आसीत् स हरितकेनानेन ह ७ गुणितस्तस्य क्षेपः स्यादिति जातः प्रथमः क्षेपः ह ३१५ रू ५१।

अथवा प्रथममेवैकं व्यक्तं प्रकल्प्य। द्वितीयः साध्यः। वा जातौ राशी रू ५१।ह १२६ रू ८०।

अथान्यदुदाहरणं शार्दूलविक्रीडितेनाह—काविति। हे विद्वन्, पञ्चषट्कविहृतौ एकद्विकाग्रौ कौ राशी वर्तेते। ययो राश्योरन्तरं विवरं त्र्युद्धृतं द्व्यग्रं भवति। ययोर्युतिर्नवहृता पञ्चाग्रा भवति। ययोर्घातः सप्तहृता सन् षडग्रो भवति। इति षट्काष्टकाभ्यां विना तौ राशी वद। यतः षट्काष्टकयोरप्युक्तालापसंभवे प्रसिद्धत्वात्प्रतिपादने न विद्वत्ताप्रकर्षोऽस्तद्भिन्नौ राशी वदेति तात्पर्यम्। यदि त्वं चेत्कुट्टकवेदिकुञ्जरघटासंघट्टसिंहोऽसि। कुट्टकवेदिन एव कुञ्जराः करटिनः तेषां घटाः संस्थानविशेषास्ताभिर्यो संघट्टस्तत्संमर्दनार्थं संघर्षस्तत्र सिंहः शार्दूलोऽसि वर्तसे तदा भणेत्यर्थः॥

उदाहरण—

वे दो कौन राशि हैं, जिनमें पांच और छ का भाग देने से एक तथा दो शेष रहता है और उन के अन्तर में तीन का भाग देने से, दो शेष रहता है और उन के योग में नौ का भाग देने से, पांच शेष रहता है एवं उन दोनों राशियों के घात में, सात का भाग देने से छ शेष रहता है, परंतु वे दोनों राशि छ और आठ से भिन्न होनी चाहिए।

यहां पर ऐसी दो राशि कल्पना करनी चाहिये कि जिनमें पहला आलाप स्वतः घटित हो जैसा—या ५ रू १। या ६ रू २। अब इनमें क्रम से ५ तथा ६ का भाग देने से १। २ शेष रहते हैं। राशि

या ५ रू १ । या ६ रू २ के अन्तर या १ रू १ में ३ का भाग देने से २ शेष रहता ह और लब्धि का १ आती है तो हर ३ और लब्धि का १ का घात शेष २ युत का ३ रू २, राश्यन्तर रूप भाज्य राशि या १ रू १ के तुल्य हुआ—

या १ का ० रू १
या ० का ३ रू २

समीकरण से यावत्तावत् का मान का ३ रू १ आया । इससे पूर्व राशि में उत्थापन देते हैं—१ यावत्तावत् का, का ३ रू १ यह मान है, तो यावत्तावत् ५ का क्या ? यों का १५ रू ५ हुआ । इस में १ जोड़ देने से पहली राशि का १५ रू ६ हुई । १ यावत्तावत् का, का ३ रू १ यह मान है तो यावत्तावत् ६ का क्या ? का १८ रू ६ हुआ, इस में २ जोड़ देने से दूसरी राशि का १८ रू ८ हुई । इनमें दो आलाप घटित होते हैं । फिर का १५ रू ६ । का १८ रू ८ के योग का ३३ रू १४ में ९ का भाग देने से ५ शेष रहता है और लब्धि नीलक १ आती है हर ९ और लब्धि नी १ का घात, शेष ५ युत नी ९ रू ५, भाज्यराशि का ३३ रू १४ के तुल्य हुआ—

का ३३ नी ० रू १४
का ० नी ९ रू ५

समशोधन से कालक की उन्मिति $\frac{\text{नी ९ रू ९̇}}{\text{का ३३}}$ आई । तीन का अपवर्तन देने से $\frac{\text{नी ३ रू ३̇}}{\text{का ११}}$ हुई । अब अभिन्नमान जानने के लिये कुट्टक करते हैं—

भा. ३ । क्षे. ३ ।
हा. ११ ।　　　वल्ली हुई ०
३
१
३
०

उक्त रीति से लब्धि-गुण हुए ३ १२ अपने अपने हार से तष्टित करने से हुए ० १ वल्ली के विषम होने से, अपने अपने हारों में शुद्ध करने से हुए ३ १० क्षेप के ऋण होने से, फिर अपने अपने हारों में शुद्ध करने से हुए ० १ लब्धि कालक का मान और गुण नीलक का मान हुआ। अब पीतक १ इष्ट मान कर 'इष्टाहतस्वस्वहरेण—' के अनुसार लब्धि-गुण सक्षेप हुए—

पी ३ रू ० कालक
पी ११ रू १ नीलक

कालक मान से राशि में उत्थापन देते हैं—वहां पहली राशि का १५ रू ६ है। १ कालक का पी ३ रू ० मान है, तो कालक १५ का क्या? पी ४५ रू ० हुआ। इस में रूप ६ जोड़ देने से पी ४५ रू ६ पहली राशि हुई। दूसरी राशि का १८ रू ८ है। १ कालक का पी ३ रू ० मान है, तो कालक १८ का क्या? पी ५४ रू० हुआ इसमें रू १८ जोड़ देने से, दूसरी राशि हुई पी ५४ रू १८। अब इन में तीन आलाप घटित होते हैं। फिर इन दोनों राशियों के घात करने से वर्ग हो जाता है, तो क्रिया फैलती है। इसलिये पीतक का व्यक्तमान रूप १ कल्पना करके पहले राशि में उत्थापन देते हैं— यदि १ पीतक का रू १ मान है तो पीतक ४५ का क्या? रू ४५ हुआ, इस में ६ जोड़ देने से पहली राशि व्यक्त हुआ ५१। और दूसरी राशि ज्यों की त्यों रही पी ५४ रू ८। अब इनके घात को सात से तष्टित करना है, वहां रू ५१। पी ५४ रू ८ इन्हीं को सात से तष्टित किया रू २। पी ५ रू १ बाद में घात करने से पी १० रू २ हुआ। फिर सात से तष्टित करने से, पी ३ रू २ हुआ। इस में ७ का भाग देने से ६ शेष रहता है और लब्धि लो १ आती है, तो हर ७ और लब्धि लो १ घात, शेष ६ युत, लो ७ रू ६ भाज्यराशि पी ३ रू २ के तुल्य हुआ—

पी ३ लो ० रू २
पी ० लो ७ रू ६

समशोधन से पीतक की उन्मिति $\frac{\text{लो ७ रू ४}}{\text{पी ३}}$ आई। अब 'हरतष्टे धनक्षेपे—' सूत्र के अनुसार कुट्टक के लिये न्यास—

भा. ७ । क्षे. १ ।
हा. ३ । वल्ली २
१
०

उक्त रीति से लब्धि-गुण हुए $\frac{२}{१}$ लब्धि के विषम होने से, अपने अपने हारों में शुद्ध करने से $\frac{५}{२}$ हुए 'क्षेपतक्षणलाभाढ्या—' के अनुसार लब्धि-गुण हुए $\frac{६}{२}$ लब्धि पीतक का मान और गुण लोहितक का मान हुआ। अब हरितक १ इष्ट से 'इष्टाहतस्वस्वहरेण—' के अनुसार, लब्धि-गुण सक्षेप हुए—

ह ७ रू ६ पीतक
ह ३ रू २ लोहितक

अब पीतक मान से राशि में उत्थापन देते हैं—दूसरी राशि पी ५४ रू ८ है। यदि १ पीतक का ह ७ रू ६ यह मान है, तो पीतक ५४ का क्या ? ह ३७८ रू ३२४ हुआ। इस में रूप ८ जोड़ देने से, दूसरी राशि ह ३७८ रू ३३२ हुई। और पहली राशि व्यक्त ही है तथा पहली राशि का क्षेप पी ४५ रहा, उसको हरितक ७ से गुण देने से पहली राशि का क्षेप ३१५ हुआ। इस भाँति पहली राशि ह ३१५ रू ५१ हुई। अब हरितक में शून्य का उत्थापन देने से राशि मिलीं ५१ । ३३२ ।

उक्त प्रश्न का प्रकारान्तर से उत्तर—

कल्पना किया पहली राशि व्यक्त ५१ है और दूसरी या १ है इस में छः का भाग देने से, २ शेष रहता है और लब्धि कालक १ कल्पना की, अब लब्धि का १ से गुणित और शेष २ युत, हर ६ दूसरी राशि के समान है—

का ६ रू २=रू ५१

इनका अन्तर हुआ—

का ६ रू ४६

इसमें ३ का भाग देने से २ शेष रहता है और लब्धि नीलक १ कल्पना की अब लब्धि नी १ और हर ३ का घात शेष २ युत अन्तररूप भाज्य-राशि के समान हुआ—

का ६ नी० रू ४६
का० नी ३ रू २

समीकरण से कालक की उन्मिति $\frac{\text{नी ३ रू ५१}}{\text{का ६}}$ आई । ३ के अपवर्तन देने से हुई $\frac{\text{नी १ रू १७}}{\text{का २}}$ ।

कुट्टक के लिये न्यास—

भा. १ । क्षे. १७ ।
हा. २ ।

'हरतष्टे धनक्षेपे—' के अनुसार न्यास—

भा. १ । क्षे. १ । वल्ली ०
हा. २ । १
०

उक्त रीति से लब्धि-गुण हुए $\begin{smallmatrix}\text{०}\\\text{१}\end{smallmatrix}$ लब्धि के विषम होने से, अपने अपने हारों में शुद्ध करने से हुए $\begin{smallmatrix}\text{१}\\\text{१}\end{smallmatrix}$ 'क्षेपतक्षणलाभाढ्या—' के अनुसार ८ जोड़ देने से लब्धि ९ हुई । इस भाँति लब्धि-गुण हुए $\begin{smallmatrix}\text{९}\\\text{१}\end{smallmatrix}$ लब्धि कालक का मान और गुण नीलक का मान हुआ । अब इष्ट पीतक १ मानकर 'इष्टाहतस्वस्वहरेण—' के अनुसार लब्धि-गुण सक्षेप हुए—

पी १ रू ९ कालक
पी २ रू १ नीलक

अब कालक मान से का ६ रू ४६ इस अन्तर रूप में उत्थापन देते हैं—यदि १ कालक का पी १ रू ९ यह मान है, तो ६ कालक का क्या ? पी ६ रू ५४ हुआ । इस में ऋण रूप ४६ जोड़ देने से राश्यन्तर का मान पी ६ रू ५ आया । इस में ३ का भाग देने से

स्वत: २ शेष रहता है। अब पी ६ रू ५ इस अन्तर को पहली राशि के रूप ५१ में जोड़ देने से दूसरी राशि पी ६ रू ५६ हुई, इस का और पहली राशि का योग पी ६ रू १०७ हुआ । इस में ६ का भाग देने से ५ शेष रहता है और लब्धि लो १ आई । फिर हर ६ और लब्धि लो १ का घात शेष ५ युत भाज्य राशि के समान है, इसलिये समीकरण करने के लिये न्यास—

पी ६ लो० रू १०७

पी ० लो ६ रू ५

समशोधन से पीतक की उन्मिति $\frac{\text{लो ९ रू १०२̇}}{\text{पी ६}}$ आई। ३ का

अपवर्तन देने से $\frac{\text{लो ३ रू ३४̇}}{\text{पी २}}$ हुई ।

कुट्टक के लिये न्यास—

भा. ३ । क्षे. ३४̇ ।

हा. २ ।

'क्षेपो हारहृतः फलम्–' के अनुसार, लब्धि-गुण हुए १७̇ यहाँ क्षेप के ऋण होने से, लब्धि ऋणगत आई । लब्धि पीतक का मान और गुण नीलक का मान हुआ । अनन्तर हरितक १ इष्ट मान कर 'इष्टाहतस्वस्वहरेण–' के अनुसार लब्धि गुण सक्षेप हुए—

ह ३ रू १७̇ पीतक

ह २ रू ० लोहितक

अब पीतक मान से दूसरी राशि पी ६ रू ५६ में उत्थापन देते हैं—१ पीतक का ह ३ रू १७̇ मान है, तो ६ पीतक का क्या ? ह १८ रू १०̇२ हुआ । इस में रूप ५६ जोड़ देने से, दूसरी राशि हुई ह १८ रू ४̇६ और पहली राशि तो व्यक्त ही है ५१ । इनके योग ह १८ रू ५ में ६ का भाग देने से ५ शेष रहता है । अब ५१ । ह १८ रू ४̇६ इनको सात से तष्टित करने से २ । ह ४ रू ४̇ शेष बचे, इन का घात ह ८ रू ८̇ हुआ, लाघवार्थ इस को फिर सात से तष्टित किया ह १ रू १̇ अब इस में ७ का भाग देने से ६ शेष रहता है

और लब्धि श्वेतक १ कल्पना की। बाद, हर ७ और लब्धि श्वे १ का घात शेष ६ युत भाज्यराशि ह १ रू १̇ के तुल्य हुआ—

ह १ श्वे ० रू १̇
ह ० श्वे ७ रू ६

समीकरण से हरितक की उन्मिति $\frac{\text{श्वे ७ रू ७}}{\text{ह १}}$ आई। यह स्वतः अभिन्न है, इसलिये कुट्टक की आवश्यकता नहीं है। अब श्वे ७ रू ७ इस से दूसरी राशि ह १८ रू ४̇६ में उत्थापन देते हैं—१ हरितक का श्वे ७ रू ७ मान है, तो १८ हरितक का क्या ? श्वे १२६ रू १२६ हुआ। इस में रूप ४६̇ जोड़ देने से दूसरी राशि श्वे १२६ रू ८० हुई। श्वेतक का मान शून्य ० मान कर, अनुपात करते हैं— एक श्वेतक का शून्य ० मान है तो १२६ श्वेतक का क्या ? यों ० हुआ, इस में रूप ८० जोड़ देने से, दूसरी राशि ८० हुई और पहली राशि ५१ व्यक्त है। इस भाँति दोनों राशि ५१।८० हुईं।

उदाहरणम्—

नवभिः सप्तभिः क्षुण्णः को राशिस्त्रिंशता हृतः।
यदग्रैक्यं फलैक्याढ्यं भवेत्षड्विंशतेर्मितम्[१] ॥

अत्रैकहरत्वाच्छेषयोः फलयोर्युतिदर्शनाच्च गुणयोगो गुणकः कल्पितः रू १६ राशिः या १। लब्धैक्यप्रमाणं कालकस्तद्गुणितं हरं

---

१ ज्ञानराजदैवज्ञाः—

मार्तण्डैर्मुनिभिर्मृडैश्च भजनादेकोऽग्रतो दृश्यते
विश्वाप्तः स पुनर्द्वयं समभवत्संख्यावतां संमतः।
ऐक्यं तत्फलतोऽवतारकृतिहृत्सत्तारकाग्रं सखे
तं जानीहि गुरूपदेशविधिना बीजं विजानासि चेत् ॥

अर्थान्तरे—विश्वमाप्तः। अवताराणां कृत्या ह्रियत इति। सत्तारकाग्रं तारकब्रह्मरूपम्। तं परमेश्वरम्। शेषं स्पष्टम्।

गुणगुणिताद्राशेरपास्य जातं शेषम् या १६ का ३̇० एतत्फलेन कालकेन युतं या १६ का २६̇ षड्विंशतिसमं कृत्वा कुट्टकेन प्राग्वज्जातं यावत्तावन्मानम् नी २९ रू २७ अत्र लब्ध्यग्रयोगस्यैकतानिर्देशात्क्षेपो न देयः ॥

अथोदाहरणान्तरमनुष्टुभाह—नवभिरिति । को राशिः पृथङ्नवभिः सप्तभिः गुणः उभयत्र त्रिंशतौ हृतो ययोः शेषक्यं फलैक्येन युतं षड्विंशतिसमं स्यात्तं राशिमाख्याहीत्यर्थः ॥

उदाहरण—

वह कौन राशि है, जिस को अलग अलग नौ और सात से गुणकर, दोनों स्थानों में तीस का भाग देते हैं, तो शेष तथा लब्धि का योग छब्बीस के समान होता है ।

यहाँ दोनों स्थानों में एक ही हर होने से और शेषों का तथा लब्धियों का योग होने से, लाघव के लिये ९।७ इन गुणकों के योग १६ को गुणक कल्पना किया और राशि या १ कल्पना किया, अब उस कल्पित गुणक १६ से राशि को गुण देने से या १६ हुआ, इस में ३० का भाग देने से, यदि लब्धियों के योग के तुल्य लब्धि ग्रहण करें तो शेष भी दोनों शेषों के योग के तुल्य होगा, इसलिये लब्धियों के योग के तुल्य लब्धि कालक १ कल्पना की। अब उस से गुणित हर का ३० को गुण से गुणित राशि या १६ में घटा देने से शेष या १६ का ३̇० रहा । यह शेषों के योग के तुल्य है । इस में लब्धियों के योग का १ को जोड़ देने से २६ के तुल्य हुआ। इसलिये इनका समीकरण के लिए न्यास—

या १६ का २९̇ रू ०
या ० का ० रू २६

समशोधन से यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{का २९ रू २६}}{\text{या १६}}$ आई। इस

की अभिन्नता के लिये कुट्टक करते हैं—'हरतष्टे धनक्षेपे—' के अनुसार न्यास——

भा. २६ । क्षे. १० ।
हा. १६ । वल्ली १
१
४
१०
०

उक्त क्रिया करने से लब्धि-गुण हुए $\begin{matrix}६०\\५०\end{matrix}$ अपने २ हारों से तष्टित करने से हुए $\begin{matrix}३\\२\end{matrix}$ लब्धि के विषम होने से, अपने २ हारों में शुद्ध करने से हुए $\begin{matrix}२६\\१४\end{matrix}$ 'क्षेपतक्षणलाभाढ्या—' के अनुसार लब्धि २६ में १ जोड़ देने से लब्धि और गुण हुआ। $\begin{matrix}२७\\१४\end{matrix}$ लब्धि यावत्तावत् का मान और गुण कालक का मान हुआ। बाद, नीलक १ इष्ट कल्पना करने से 'इष्टाहत—' के अनुसार, सक्षेप लब्धि और गुण हुआ——

नी २६ रू २७ यावत्तावत्
नी १६ रू १४ कालक

यहाँ नीलक का मान व्यक्त शून्य ० मान कर, उत्थापन देने से यावत्तावत् और कालक का मान २७ । १४ आया।

आलाप——राशि २७ है, ९ और ७ से गुणा देने से हुआ २७× ९=२४३ । २७ × ७=१८९ इन में ३० का भाग देने से ८।६ लब्धि मिली और ३ । ९ शेष रहे। ८ + ६ + ३ + ९ इन का योग, २६ के समान है। और लब्धियों ८ । ६ का योग १४, कालक मान १४ के तुल्य है। यहाँ पर १ आदि इष्ट मानने से, आलाप नहीं मिलेगा। क्योंकि लब्धि और शेषों का योग प्रश्न में छब्बीस ही के समान कहा हुआ है॥

उदाहरणम्—

कस्त्रिसप्तनवक्षुण्णो राशिस्त्रिंशद्विभाजितः ।
यदग्रैक्यमपि त्रिंशद्धृतमेकादशाग्रकम् ॥८५॥

अत्रापि गुणयोगो गुणः प्राग्वत् रू १९ राशिः या १ लब्धं कालकः १ एतद्गुणं हरं गुणगुणिताद्राशेरपास्य शेषम् या १९ का ३० एतदग्रैक्यं त्रिंशत्तष्टमेव ततः प्रथमालापे द्वितीयालापस्यान्तर्भूतत्वादिदमेवैकादशसमं कृत्वा प्राग्वज्जातो राशिः नी ३० रू २९ ।

अथान्यदुदाहरणमनुष्टुभाह—क इति । को राशिस्त्रिधा त्रिभिः सप्तभिर्नवभिः क्षुण्णः त्रिंशता विभाजितः शेषत्रयाणामैक्यं त्रिंशता भक्तमेकादशाग्रं भवति तं राशिं वदेत्यर्थः ।

उदाहरण—

वह कौन राशि है, जिस को अलग अलग तीन, सात और नौ से गुण कर, तीस का भाग देने से जो कुछ शेष रहता है उसके योग में, तीस का भाग देने से ग्यारह शेष रहता है ।

कल्पना किया या १ राशि है, इस को गुणों ३ । ७ । ९ के योग १९ से गुण देने से या १९ हुआ इसमें तीस का भाग देने से लब्धि कालक १ कल्पना की, तात्पर्य यह है कि, राशि को तीन, सात और नौ से गुणकर, बाद तीस का भाग देने से जो लब्धि आवे उसका और शेषों के योग में तीस का भाग देने से जो लब्धि आवे उसका योग, कालक कल्पना किया । क्योंकि राशि को गुणयोग से गुण कर, हर का भाग देने से, शेष हर से न्यून ही रहेगा । तब लब्धि उक्त चार लब्धियों की युतिरूप होती है । इस लिये, शेष ग्यारह के तुल्य होगा । प्रकृत में हर ३० गुणित लब्धि का ३० को गुण से गुणित राशि या १९ में घटा देने से शेष या १९ का ३̇० रहा, यह ११ के तुल्य है, इस लिये समीकरण के लिए न्यास—

या १९ का ३̇० रू ०
या ० का ० रू ११

समशोधन से यावत्तावत् की उन्मिति (का ३० रू ११)/(या १९) आई। अब कुट्टक के लिये न्यास—

भा. ३० । क्षे. ११ ।
हा. १९ । वल्ली— १
१
१
२
१
११
०

इस से लब्धि-गुण हुए १२१ । ७७ अपने अपने हारों से तष्टित करने से हुए १/१ लब्धि के विषम होने से, अपने अपने हारों में शुद्ध करने से हुए २९/१८ । यहाँ लब्धि यावत्तावत् का मान और गुण कालक का मान है । अब इष्ट नीलक १ मानने से 'इष्टाहत—' के अनुसार लब्धि-गुण सक्षेप हुए ।

नी ३० रू २९ यावत्तावत्
नी १९ रू १८ कालक

नीलक में शून्य ० का उत्थापन देने से यावत्तावत् का मान २९ और कालक का मान १८ आया ।

आलाप—राशि २९ है, क्रम से ३ । ७ । ९ गुण देने से हुआ ८७ । २०३ । २६१ । फिर ३० का भाग देने से लब्धि २ । ६ । ८ और शेष २७ । २३ । २१ आये । शेषों के योग ७१ में ३० का भाग देने से लब्धि २ और शेष ११ आया । यहाँ २ । ६ । ८ । २ इन चारों लब्धियों का योग १८ कालकमान के तुल्य है । अथवा, राशि २९ को गुण योग १९ से गुण देने से ५५१ हुआ, इस में हर ३० का भाग देने से, कालकमान के तुल्य लब्धि १४ आई और शेष ११ के समान रहा । यहाँ पर राशि या १ को अलग अलग गुणकों से गुण कर, प्रत्येक गुणनफल में हर का भाग देने से, जो लब्धि आती

हैं उनके योग के तुल्य यदि कालक कल्पना किया जाय तो, शेषों के योग में तीस का भाग फिर देना चाहिये। इस भाँति दो आलाप हुए। परन्तु वैसी कल्पना करने से क्रिया का निर्वाह नहीं होता, इसलिये चारों लब्धियों के योग के तुल्य कालक कल्पना करने से शेष ११ के समान स्वतः होता है। इसलिये 'प्रथमालापे द्वितीयालापस्यान्तर्भूतत्वम्' यह युक्त ही कहा है ॥

उदाहरणम्—

कस्त्रयोविंशतिक्षुण्णः षष्ठ्याशीत्या हृतः पृथक्।
यदग्रैक्यं शतं दृष्टं कुट्टकज्ञ वदाशु तम् ॥८६॥

अत्र सूत्रं वृत्तम्—

अत्रैकाधिकवर्णस्य भाज्यस्थस्येप्सिता मितिः।
भागलब्धस्य नो कल्प्या क्रिया व्यभिचरेत्तथा

अतोऽन्यथा यतितव्यम्—अत्र स्वस्वभागहारा न्यूने शेषे यथा भवतो यथा च खिलं न स्यात्तथा शेषयोगं विभज्य क्रिया कार्या। तथा कल्पिते शेषे ४०।६० राशिः या १ एष त्रयोविंशतिगुणः षष्टिहृतः फलं कालकस्तद्गुणं हरं शेषयुतमस्य या २३ समं कृत्वा लब्धं यावत्तावन्मानम्

$\frac{\text{का } ६० \text{ रू } ४०}{\text{या } २३}$ । एवमन्यत् $\frac{\text{नी } ८० \text{ रू } ६०}{\text{या } २३}$

अनयोः समीकरणे कुट्टकेन लब्धे कालकनीलकमाने

पी ४ रू ३ का
पी ३ रू २ नी

आभ्यामुत्थापने यावत्तावन्मानं भिन्नं स्यादिति कुट्टकेनाभिन्नं जातम् लो २४० रू २०। अथवा शेषे ३०।७० आभ्यां राशिः लो २४० रू ९०।

अथान्यदुदाहरणमनुष्टुभाह—क इति । को राशिस्त्रयोविंशत्या क्षुण्णः पृथक् षष्ट्या अशीत्या च हृतः, यदग्रयोरैक्यं शतं शतप्रमाणं दृष्टं हे कुट्टकज्ञ, तं राशिमाशु वद ।

अथैतदुदाहरणोपकारि सूत्रमनुष्टुभाह—अत्रेति । अत्र प्रकृतोदाहृतौ भाज्यस्थस्य एकाधिकवर्णस्य एको योऽधिकवर्णः कुट्टकोपयुक्तवर्णादतिरिक्तस्तस्य भागलब्धस्य भागे हृते लब्धस्य मितिरीप्सिताभिमता नो कल्प्या न कार्या । नन्वत्र तथाकल्पने को दोष इत्यत आह—क्रिया व्यभिचरेत्तथेति । तथा कल्पने सति क्रिया व्यभिचरेत् राशिसिद्ध्यभावात् क्रिया व्यभिचार इति तात्पर्यम् । व्यभिचारस्तु कुट्टककरणानन्तरमवसेयः ॥

उदाहरण—

ऐसी कौन राशि है, जिस ो तेईस से गुणा कर, उसमें अलग अलग साठ और अस्सी का भाग देने से जो शेष रहें, उनका योग सौ होता है।

कल्पना किया या १ राशि है इस को २३ गुणा देने से या २३ हुआ इस में साठ का भाग देने से, कालक लब्धि आई और अस्सी का

भाग देने से नीलक लब्धि आई । अब अपनी अपनी लब्धि से गुणे हर को तेईस से गुणित राशि में घटा देने से शेष रहे—

या २३ का ६०. । या २३ नी ८०

इन दोनों शेषों का योग ४६ का ६० नी ८० यह १०० के समान है, इसलिए समीकरण के लिए न्यास—

या ४६ का ६० नी ८० रू०
या ० का ० नी ० रू १००

समशोधन से यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{का ६० नी ८० रू १००}}{\text{का ४६}}$

दो का अपवर्तन देने से $\frac{\text{का ३० नी ४० रू ५०}}{\text{या २३}}$ हुई ।

यहाँ यावत्तावत् की उन्मिति भिन्न आती है । उस को कुट्टक द्वारा अभिन्न करनी चाहिये । 'अन्येऽपि भाज्ये यदि सन्ति वर्णाः—' इस के अनुसार, कालक अथवा नीलक इन दोनों में से किसी एक वर्ण का मान व्यक्त मानना चाहिये । पर प्रकृत में अयुक्त है, इसी बात को दिखलाने के लिये आचार्य ने 'अत्रैकाधिक—' यह सूत्र कहा है । उसका अर्थ—यहाँ भाज्य में जो एक अधिकवर्ण अर्थात् कुट्टकानुपयुक्त वर्ण है, उसका यथेष्ट व्यक्तमान न मानना चाहिये । क्योंकि वैसी कल्पना करने से क्रिया व्यभिचरित होगी ।

इस कारण, आचार्य ने उपायान्तर किया है, जैसा—अपने अपने भागहार से न्यून तथा अखिल शेष कल्पना किये ४०।६० राशि या १ है २३ से गुणा देने से या २३ हुआ इस में ६० का भाग देने से लब्धि कालक १ आई । अब लब्धि का १ से हर ६० को गुणा कर उस में शेष ४० जोड़ देने से, का ६० रू ४० यह गुण से गुणित राशि या २३ के तुल्य हुआ—

या ० का ६० रू ४०
या २३ का ० रू ०

समशोधन से यावत्तावत् का मान $\frac{\text{का ६० रू ४०}}{\text{या २३}}$ आया ।

फिर राशि या १ को २३ से गुणा कर, उस में ८० का भाग देने से लब्धि नीलक १ आई। फिर लब्धि नी १ से हर ८० को गुणा कर, उस में शेष ६० जोड़ देने से, नी ८० रू ६० यह गुण से गुणित राशि या २३ के तुल्य हुआ—

या ० का ० नी ८० रू ६०
या २३ का ० नी ० रू ०

समशोधन से यावत्तावत् का मान $\frac{\text{नी ८० रू ६०}}{\text{या २३}}$ आया।

इन दोनों मानों का समीकरण के लिये न्यास—

$\frac{\text{का ६० रू ४०}}{\text{या २३}}$

$\frac{\text{नी ८० रू ६०}}{\text{या २३}}$

यावत्तावन्मित हरों के तुल्य होने से, छेदापगम करने से हुए—

का ६० नी ० रू ४०
का ० नी ८० रू ६०

समशोधन से कालक का मान भिन्न $\frac{\text{नी ८० रू २०}}{\text{का ६०}}$ आया,

२० का अपवर्तन देने से $\frac{\text{नी ४ रू १}}{\text{का ३}}$ हुआ।

कुट्टक के लिये न्यास—

भा. ४। क्षे. १। वल्ली १
हा. ३। १
०

उक्त रीति के अनुसार, लब्धि गुण हुए $\frac{१}{१}$ लब्धि के विषम होने के कारण, अपने अपने हारों में शुद्ध करने से $\frac{३}{२}$ हुए। लब्धि कालक का मान और गुण नीलक का मान है। इष्ट पीतक १ मानकर 'इष्टाहत—' के अनुसार लब्धि-गुण सक्षेप हुए—

पी ४ रू ३ कालक
पी ३ रू २ नीलक

इन से दोनों यावत्तावत् के मानों में उत्थापन देते हैं—पहला मान का $\frac{\text{६० रू ४०}}{\text{या २३}}$ है । १ कालक का पी४ रू३ यह मान है तो कालक ६० का क्या? यों पी २४० रू१८० हुआ । इस में रूप ४० जोड़ कर, हर या २३ का भाग देने से, यावत्तावत् का मान भिन्न हुआ $\frac{\text{पी २४० रू २२०}}{\text{या २३}}$

दूसरा यावत्तावत् का मान $\frac{\text{नी ८० रू ६०}}{\text{या २३}}$ आया है । १ नीलक का पी ३ रू २ यह मान है, तो नीलक ८० का क्या ? यों पी २४० रू १६० हुआ । इस में रूप ६० जोड़ कर, हर या २३ का भाग देने से, यावत्तावत् का मान $\frac{\text{पी २४० रू २२०}}{\text{या २३}}$ आया ।

अब उसको अभिन्न जानने के लिये 'हरतष्टे धनक्षेपे—' सूत्र के अनुसार न्यास—

भा. २४० । क्षे. १३ । वल्ली १०
हा. २३ ।   २
                            ३
                            १३
                            ०

उक्त रीति के अनुसार लब्धि गुण हुए $\frac{\text{६ ४ ६}}{\text{६ १}}$ । अपने अपने हारों से तष्टित करने से हुए $\frac{\text{२ २ ६}}{\text{२ २}}$ । लब्धि के विषम होने से, अपने अपने हारों में शुद्ध करने से $\frac{\text{१ १}}{\text{१}}$ हुए । फिर 'क्षेपतक्षणलाभाढ्या' के अनुसार लब्धि ११ में ९ जोड़ देने से २० हुई । इस भाँति लब्धि और गुण हुआ $\frac{\text{२ ०}}{\text{१}}$ लब्धि यावत्तावत् का मान, गुण नीलक का मान है । अब लोहितक १ इष्ट मान कर 'इष्टाहतस्वस्वहरेण—' के अनुसार लब्धि-गुण सक्षेप हुए—

लो २४० रू २० यावत्तावत्
लो २३ रू १ पीतक

लोहितक में शून्य ० का उत्थापन देने से यावत्तावत् का मान २० आया, यही राशि है। अथवा ३०।७० शेष कल्पना किये तो उक्त रीति के अनुसार लो २४० रू ६० राशि हुई॥

उदाहरणम्—

कः पञ्चगुणितो राशिस्त्रयोदशविभाजितः।
यल्लब्धं राशिना युक्तं त्रिंशज्जाता वदाशु तम्॥

अत्र राशिः या १। एष पञ्चगुणस्त्रयोदश-हृतः फलं कालकः १ एतत्फलं राशियुतं या १ का १ त्रिंशत्समं क्रियत इत्युक्तं यत इयं क्रिया निराधारा नात्र गुणो न च हर उपलभ्यते तथा चोक्तम्—

'निराधारा क्रिया यत्रानियताधारिकापि वा।
न तत्र योजयेत्तां तु कथं वा सा प्रवर्तते॥'

अतोऽत्रान्यथा[1] यतितव्यम्—अत्र किल हर-तुल्ये राशौ कल्पिते १३ राशिफलयोगेनानेन १८ यदीदं ५ फलं तदा त्रिंशता किमिति

१—अत्रैकवर्णसमीकृतिद्वारेण तु सम्यङ्निर्वाहः। यथा राशिः या १ पञ्चगुणस्त्रयोदशभक्तः या $\frac{५}{१३}$ समच्छेदेन राशियुतः या $\frac{१८}{१३}$ त्रिंशता सम इति समच्छेदीकृत्य छेदगमे न्यासः या १८ रू० । या ० रू ३९० ।

अतः समशोधनेन लब्धा यावत्तावदुन्मितिः $\frac{३९०}{१८}$ षड्भिरपवर्ते कृते जातः स एव राशिः $\frac{६५}{३}$ ॥

लब्धं फलम् $\frac{२५}{३}$ एतत्त्रिंशतोऽपास्य शेषं जातो राशिः $\frac{६५}{३}$ ।

अथान्यदुदाहरणमनुष्टुभाह—क इति । को राशिः पञ्चगुणितः त्रयोदशविभाजितः एवं यल्लब्धं तद्राशिना युक्तं सत् त्रिंशज्जाताः संपन्नाः तं राशिमाशु वद ॥

अथैतदुदाहरणोपयोगिनीं वृद्धिसंमतिमनुष्टुभाह—निराधारेति। यत्र खलूदाहृतौ क्रिया प्रश्नोत्तरसाधनोपायसंपत् निराधारा आधार-शून्या । यमालम्ब्य क्रिया वितता भवति तेन रहितेत्यर्थः । वा अनियताधारिकापि स्यात् । अनियतोऽनिर्धारितः संदेहपदवीमा-रूढ इति यावत् आधारो यस्या सा। तत्र तां क्रियां तु न योजयेत्। एवं सति को दोष इत्यत आह—कथं वा सा प्रवर्त्तते निराधारा-नियताधारवत्तया च तस्याः प्रवृत्तिरेव नास्तीति तात्पर्यम् ॥

उदाहरण—

वह कौन राशि है जिसको पांच से गुण कर, तेरह का भाग देने से, जो शेष रहता है, उस में राशि को जोड़ देने से, तीस होते हैं ।

कल्पना किया राशि या १ है, पांच से गुणित करके तेरह का भाग देने से लब्धि का १ आई । इस को राशि में जोड़ देने से या १ का १ हुआ । यह ३० के समान है, परन्तु यहां पर क्रिया का निर्वाह नहीं होता । क्योंकि, कोई गुण, हर नहीं उपलब्ध है । इसीलिये आचार्य ने कहा है कि जिस स्थान में क्रिया निराधार अथवा, अनि-यताधार हो वहां उसको नहीं करना चाहिये । इस कारण इष्टकर्म से राशि का आनयन किया है । जैसा—हर के तुल्य राशि कल्पना किया १३ यह ५ से गुण देने से ६५ हुआ इस में १३ का भाग देने से ५ लब्धि आई । इस में १३ जोड़ देने से १८ हुआ, यदि इस राशि-फल योग १८ में ५ फल आता है, तो राशि फल योग ३० में क्या ? यों $\frac{१५०}{१८}$ हुआ। इस में ६ का अपवर्तन देने से $\frac{२५}{३}$ हुआ। अब इस को समच्छेद करके ३० में घटाने से, राशि शेष रहा $\frac{६५}{३}=२१\frac{२}{३}$ ।

आलाप–राशि $\frac{६५}{३}$ को ५ से गुणा देने से $\frac{६५ \times ५}{३}$ इस में १३ का भाग देने से $\frac{६५ \times ५}{३ \times १३}$ हुआ। अब $\frac{२५}{३}$ में राशि $\frac{६५}{३}$ जोड़ देने से $\frac{९०}{३}$ और हर ३ का भाग देने से ३० हुए ॥

अथाद्योदाहरणम्–

'षडष्टशतकाः क्रीत्वा समार्घेण फलानि ये।
विक्रीय च पुनः शेषमेकैकं पञ्चभिः पणैः ॥
जाताः समपणास्तेषां कः क्रयो विक्रयश्च कः।'

अत्र क्रयः या १ विक्रय इष्टं दशाधिकं शतम् ११० क्रयः षड्गुणितो विक्रयेण हृतो लब्धिः कालकः१ लब्धिगुणं हरं षड्गुणिताद्राशेरपास्य जातम् या६ का११० इदं पञ्चगुणं लब्धियुतं जाताः प्रथमस्य पणाः या ३० का ५४६। एवं द्वितीयतृतीययोरपि पणाः साध्याः तत्र लब्धिरनुपातेन–यदि षण्णां कालकस्तदाष्टानां शतस्य च किमिति लब्धिरष्टानां का $\frac{४}{३}$ शतस्य च का $\frac{५०}{३}$। लब्धिगुणं हरं भाज्यादपास्य शेषं पञ्चगुणं लब्धियुतं जाता द्वितीयस्य पणाः या $\frac{१२०}{३}$ का $\frac{२१९६६}{३}$। एवं तृतीयस्य या $\frac{१५००}{३}$ का $\frac{२७४५}{३}$। एते सर्वे समा इति समच्छे-

दीकृत्य छेदगमे प्रथमाद्वितीयपक्षयोर्द्वितीय-तृतीययोःसमीकरणेन च लब्धा यावत्तावदुन्मितिस्तुल्यैव का $\frac{५४६}{या ३०}$ अत्र कुट्टकाल्लब्धं यावत्तावन्मानम् नी ५४६ रू० । नीलकमेकेनोत्थाप्य जातः क्रयः ५४६ समधनम् । इदमनियताधारक्रियायामाद्यैरुदाहृत्य यथाकथंचित्समीकरणं कृत्वाऽऽनीतम् । इयं तथा कल्पना कृता यथात्रानियताधारायामपि नियताधारक्रियावत्फलमागच्छति एवंविधकल्पनाच्च क्रिया संकोचाद्यत्र व्यभिचरति तत्र बुद्धिमद्भिर्बुद्ध्या संधेयम् ।

तथा चोक्तम्—

आलापो मतिरमलाऽ-
व्यक्तानां कल्पना समीकरणम् ।
त्रैराशिकमिति बीजे
सर्वत्र भवेत्क्रियाहेतुः ॥

इति श्रीभास्करीये बीजगणितेऽनेकवर्ण-समीकरणम् ।

अथ सार्धानुष्टुभोक्तमाद्योदाहरणं प्रदर्शयति—षडष्टशतका इति। षट अष्टौ शतं च धनं विद्यते येषां ते षडष्टशताः। 'अर्श आदिभ्योऽच्' इति मत्वर्थीयोऽच् प्रत्ययः। त एव षडष्टशतकाः। स्वार्थिकः कन्। एवंविधा ये फलव्यापारिणः समार्घेण समेनैव मूल्येन स्वस्वपणानुपातेन फलानि क्रीत्वा तानि समेनैव केनाचिन्मूल्येन विक्रीय च यच्छेषं पणविक्रयान्न्यूनमेकैकं फलं पञ्चभिः पञ्चभिः पणैः पुनर्विक्रीय समपणाः। समाः पणा येषां ते समपणाः। एवं चेत्तर्हि तेषां फलव्यापारिणां क्रयः पणलभ्यफलप्रमाणं विक्रयः पणदेयफलप्रमाणं किमिति प्रश्नः॥

अत्र व्यक्तरीत्या नवांकुरकर्तृगुरुणा विष्णुदैवज्ञेन कृतं सूत्रं यथा—

शेषविक्रयहतेष्टविक्रयः शीतरश्मिरहितो भवेत्क्रयः।
पुंधनादधिक इष्टविक्रयः कल्प्यमित्यमवगम्य धीमता॥

यथा—शेषविक्रयेण ५ इष्टविक्रयो ११० हतः ५५० एकोनो जातः क्रयः ५४९।

अत्र वासना। आलापे कृते क्रये स्वगुणगुणिते विक्रयविहृते लब्धिः शेषं च तत्र गुणोनविक्रयतुल्यमेव शेषम् गु १ वि १ इदं शेषविक्रयगुणितम् शेवि.गु १ शेवि.वि १ इदं गुणगुणितशेषविक्रयमित्या रूपोनया लब्ध्या गु. शेवि १ रू १ युतं तत्र तुल्यधनर्णयोः प्रथमखण्डयोर्नाशे कृते समपणमानमुर्वरितम् शेवि. वि १ रू १ अतः 'शेषविक्रयहतेष्टविक्रयः—' इति सूत्रसमुपपद्यते।

इह पूर्वक्रयस्य ५४९ समपणमानं ५४९ साम्येनावगमात् केवलक्रये ५४९ सैककरणेन ५५० विक्रय ११० भक्तेन ५ लब्धिः शेषविक्रयतुल्यैव। इयं खलु गुणकैः ६।८।१००गुणिता ३०।४०।५००। एता रूपोना एव लब्धयः २९।३९।४९९। एताः शेषविक्रयमित्या ५ पृथक् पृथग्गुण ६।८।१०० गुणितया रूपोनया २९।३९।४९९ समाना एव आसते। अथ गुणै-

६।८।१०० रूना इष्टविक्रया ११० एव शेषाणि १०४।१०२ १० भवन्ति कथमन्यथा पूर्वक्रयस्य समपणतुल्यत्वं संपद्यते ।

अथवा क्रयः या १ स्वगुण ६ गुणितः या ६ इष्टविक्रयेण ११० भक्तो लब्धं कालकः १ इदं हरगुणितं भाज्याद्विशोध्य शेषम् या ६ का ११०̇ शेषविक्रयगुणम् या ३० का ५५०̇ लब्ध्या का १ युतं या ३० का ५४९̇ समपणमानमतो यावत्तावत्सममिति न्यासः ।

या ३० का ५४९̇
या १ का ०

समशोधनाल्लब्धं यावत्तावन्मानम् $\frac{\text{का } ५४९}{\text{या } २९}$

अत्र कुट्टकेन यावत्तावन्मानं ५४९ कालकमानं च २९ एवमन्यगुणादपि तद्यथा—राशिः या १ अष्टगुणितः या ८ विक्रयेण ११० भक्तो लब्धं नीलकः १ इदं हरगुणितं नी ११० भाज्याद्विशोध्य शेषम् या ८ नी ११०̇ शेषविक्रय ५ गुणितम् या ४० नी ५५०̇ लब्ध्या नी १ युतं या ४० नी ५४९̇ समपणमानमतो यावत्तावत्सममिति समशोधनाल्लब्धं यावत्तावन्मानम् $\frac{\text{नी } ५४९}{\text{या } ३९}$

अत्र कुट्टकाज्जातं यावत्तावन्मानं ५५९ नीलकमानं च ३९ अथैवं क्रयः या १ शतगुणितः या १०० विक्रयेण ११० भक्तो लब्धं पीतकः १ इदं हरगुणितं पी ११० भाज्यादपास्य शेषम् या १०० पी ११०̇ पञ्चगुणितम् या ५०० पी ५५०̇ लब्ध्या पी १ युतं समपणमानं या ५०० पी ५४९̇ यावत्तावत्सममिति साम्यकरणाल्लब्धं यावत्तावन्मानम् $\frac{\text{पी } ५४९}{\text{या } ४९९}$

अत्र कुट्टकेन क्षेपाभावत्वाल्लब्धिगुणौ ० 'इष्टाहतस्वस्वहरेण—' इत्यादिना यावत्तावन्मानम् ५४९ पीतकमानं च ४९९ अत्र सर्वत्र

क्रय एक एव ५४६ कालकनीलकपीतकमानानि लब्धयः २६। ३६। ४६६ अत्र शेषविक्रय ५ हतेष्टविक्रयो ५०० रूपोन एव क्रयः सिध्यति ५४६ परंतु पुरुषधनाधिक एवेष्टविक्रयः ११० कल्प्य यतोऽन्त्यधनं शतं १०० तस्मादाधिकमेवास्ति ११० तन्न्यूनत्वे आलापासंभवः शेषविक्रय ५ पुरुषधन १०० घातस्य ५०० रूपोनस्य ४६६ लब्धित्वेन लब्ध्यधिकमेव समपणमानं शेषस्य पञ्चगुणितस्य लब्धियुतस्य समपणमानत्वात् ४४६ अत उक्तं पुंधनाधिनाधिक इहेष्टविक्रयः कल्प्य इत्थमवगम्य धीमता, इति। अथात्र षडष्टशतानां धनानां ६।८।१०० द्वाभ्यामपवर्तनसंभवाद्यदि समपणमानस्यापि द्व्यपवर्तनसंभवस्तदेष्टविक्रयः पुंधनाल्पोऽपि संभवति तत्रेष्टविक्रयोऽपवर्ताङ्कगुणितो यथा पुंधनादधिकः स्यात्तथात्रेष्टविक्रयकल्पने उक्तालापः स्यादिति। यथा विक्रयः कल्पितः ५१ अयमपवर्तनाङ्क २ गुणितः १०२ पुरुषधनात् १०० अधिकोऽस्ति तेनेष्टविक्रयः ५१ शेषविक्रयः ५ गुणितः २५५ रूपोनः २५४ पूर्वरीत्या जातः क्रयः २५४ अयमपवर्ताङ्क २ भक्तः प्रकृतविक्रये ५१ जातः क्रयः १२७

आलापो यथा—क्रयः १२७ षडष्टशतकैर्गुणितः ७६२।१०। १६।१२७०० सर्वत्र विक्रयेण ५१ भक्तो लब्धानि १४।१९। २४९। शेषाणि ४८।४७।१ पञ्चगुणानि २४०।२३५।५ स्वस्वलब्धियुतानि जातानि समपणानि २५४।२५४।२५४। अत्रेष्टविक्रयस्याज्ञानात्कुट्टकेन तस्य ज्ञानं जायते पञ्चमितो भाज्यः ५ केन गुणेन गुणितो रूपहीनो द्विभक्तः शुध्यतीति गुण एव विक्रयो लब्धिः क्रय इति यथा न्यासः

भा. ५। क्षे. १। वल्ली २
हा. २। १
०

लब्धिगुणौ २।१ वल्ल्या विषमत्वाद्दणक्षेपत्वाच्चाविकृतावेत्र २। १ अत्रेष्टं कल्पितम् २५ 'इष्टाहत–' इत्यादिना लब्धिः १२७ गुणश्च ५१ तत्र लब्धिः क्रयः १२७ गुणो विक्रयः ५१ अत्र धनानां ६ । ८ । १०० समपणमानस्य २५४ द्वाभ्यामपवर्तनसंभवादनयोरेकस्यापवर्तनं कृत्वालापः स्यात्। यथा–समपणमानं २५४ द्वाभ्यामपवर्तितं जातः क्रयः १२७ अथवा धनान्येव द्वाभ्यामपवर्तितानि ३।४ ५० तत्र क्रयः २५४ अत्राप्यालापः संभवति[1] ।

इति द्विवेदोपाख्याचार्यश्रीसरयूप्रसादसुत दुर्गाप्रसादोन्नीते बीजविलासिन्यनेकवर्णसमीकरणं समाप्तम् ।

१—कुट्टकागतक्रयविक्रयसाधने श्रीवापुदेवपादोक्तं सूत्रम्—

शेषविक्रयहृद्रूपं भाज्यं शुद्धिं च रूपकम् ।
पुंस्वापवर्तनं हारं कृत्वा कल्प्यस्तथा गुणः ॥
यथा पुंस्वापवर्तघ्नः पुंधनादधिको भवेत् ।
गुणः स्याद् विक्रयस्तत्र तथा लब्धिर्भवेत्क्रयः ॥
पुंस्वापवर्तौ भाज्यश्च न भवेतां यदा दृढौ ।
पुंस्वापवर्तनं रूपं तदा कल्प्यं विजानता ॥

अत्र कल्प्यते शेषविक्रयः $\frac{१}{५}$ भाज्यः १ ÷ $\frac{१}{५}$ = ५ । शुद्धिः १̇ पुंस्वानां ६ । ८ । १०० अपवर्तनं २ हारः । अतो लब्धिगुणौ २।१ इह गुणः १ पुंस्वापवर्तघ्नः पुंधनादधिको न भवतीति तथा गुणः ५१ कल्पितः स एव विक्रयः । लब्धिस्तु १२७ क्रयः ।

अथवा शेषविक्रयः $\frac{१}{४}$ । भाज्यः १ ÷ $\frac{१}{४}$ = ४ । शुद्धिः १̇ । पुंस्वापवर्तनं हारः २। अत्र भाज्यहारयोर्द्वाभ्यामपवर्तनसंभवान्न दृढत्वम् अपवर्तने तु क्षेपस्यानपवर्तनात् कुट्टकासंभव इति रूपं हारं कृत्वा न्यासः । भा. ४ क्षे १̇
हा. १

क्षेपो हारहृतः फलमिति लब्धिगुणौ १।० ऋणक्षेपत्वात्स्वहारशुद्धौ ३।१ अत्र शतमिष्टं प्रकल्प्य इष्टाहत इत्यादिना जातौ लब्धिगुणौ ४०३।१०१ एतौ क्रयविक्रयौ । अत्रेष्टविक्रयः १०१ शेषविक्रयगुणः ४०४ रूपोनो जातः क्रयः ४०३ अनेन षडष्टशतकाः ६ । ८ । १०० गुणिताः २४१८।३२२४।४०३०० विक्रयेण १०१ भक्ताः लब्धयः २३ । ३१ । ३९९ शेषाणि ९५ । ९३ । १ चतुर्गुणितानि ३८० । ३७२। ४ स्वस्वलब्धियुतानि जाताः समपणाः ४०३ । ४०३ । ४०३ इति ।

उदाहरण—

क, ख, ग, तीन व्यापारियों का धन क्रम से ६ । ८ और १०० पण है, उन्होंने तुल्य भाव से कुछ फल खरीद कर, तुल्य ही भाव से बेंच दिये । जो फल शेष रह गये, उनको पांच पांच पण पर बेंच दिये, तो कहो क्रय और विक्रय क्या है ?

कल्पना किया क्रय का मान या १ है, ६ से गुणा देने से या ६ हुआ, इसमें इष्ट विक्रय ११० का भाग देने से, कालक लब्ध आया, अब लब्धि गुणित हर का ११० को छ से गुणित क्रय या ६ में घटा देने से, शेष या ६ का ११̇० रहा, इस को ५ से गुणा देने से, या ३० का ५५̇० हुआ । इसमें लब्धि का १ जोड़ देने से पहले का पण हुआ ।

या ३० का ५४̇९

इसी भाँति क्रय या १, ८ से गुणा देने से या ८ हुआ, इसमें विक्रय ११० का भाग देना है, लब्धि के लिये यह युक्ति है—६ में का १ तो ८ में क्या, यों अनुपात से २ के अपवर्तन देने से, लब्धि का $\frac{४}{३}$ आई । लब्धि-गुणित हर का $\frac{४४०}{३}$ को भाज्य या ८ में समच्छेद करके घटा देने से शेष $\frac{\text{या२४का४४̇०}}{३}$ रहा । यह ५ से गुणा कर लब्धि का $\frac{४}{३}$ जोड़ देने से दूसरे का पण हुआ—

$$\frac{\text{या १२० का २१९̇६}}{३}$$

इसी भाँति क्रय या १, १०० से गुणा देने से, या १०० हुआ इसमें विक्रय ११० का भाग देना है, वहां लब्धि जानने के लिये यह युक्ति है—६ में का १ तो १०० में क्या, यों त्रैराशिक से लब्धि $\frac{\text{का १००}}{६}$ आई २ का अपवर्त्तन देने से हुई का $\frac{५०}{३}$ इस लब्धि से गुणे हुये हर $\frac{\text{का ५५००}}{३}$ को भाज्य या १०० में समच्छेद से घटा

देने से, शेष $\frac{\text{या३००का५५०̇०}}{}$ को ५ से गुणा देने से $\frac{\text{या१५००का२७५०̇०}}{\text{३}}$ हुआ इस में लब्धि $\frac{\text{का ५०}}{\text{३}}$ जोड़ देने से तीसरे का पक्ष हुआ—

$$\frac{\text{या १५०० का २७४५̇०}}{\text{३}}$$

सब आपस में समान हैं, इसलिये पहले और दूसरे का समीकरण के लिए न्यास—

$$\frac{\begin{matrix}\text{या ३० का ५४६̇}\\ \text{या१२०का२१९̇६}\end{matrix}}{\text{३}}$$

समच्छेद और छेदगम से हुए—

या ९० का १६४७̇
या १२०का २१९̇६

समशोधन से यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{का ५४६}}{\text{या ३०}}$ आई ।

दूसरे और तीसरे का समीकरण के लिये न्यास—

$$\frac{\text{या १२० का २१९६̇}}{\text{३}}$$

$$\frac{\text{या १५०० का २७४५०}}{\text{३}}$$

छेदगम से हुए—

या १२० का २१९६̇
या १५०० का२७४५०

समशोधन से यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{का २५२५४}}{\text{या १३८०}}$ आई, ४६ का अपवर्त्तन देने से $\frac{\text{का ५४६}}{\text{या ३०}}$ हुई ।

इसी भाँति पहले और तीसरे का समीकरण के लिये न्यास—

या ३० का ५४६
या १५००का २७४५०
―――――――――
३

समच्छेद और छेदगम से हुए—

या ९० का १६४७
या १५०० का २७४५०

समशोधन से यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{का } २५८०३}{\text{या } १४१०}$ आई, ४७

का अपवर्तन देने से $\frac{\text{का}५४६}{\text{या } ३०}$ हुई।

यहाँ उन्मिति भिन्न आती है, इसलिये कुट्टक द्वारा 'क्षेपाभावोऽथवा यत्र—' के अनुसार, लब्धि-गुण हुए $\frac{०}{०}$ अब, नीलक १ इष्ट मान कर 'इष्टाहत—' सूत्र के अनुसार, लब्धि-गुण सक्षेप हुए—

नी ५४६ रू ० यावत्तावत्
नी ३० रू ० कालक

लब्धि यावत्तावत् का मान और गुण कालक का मान है। नीलक वर्ण का व्यक्तमान १ कल्पना करके, उत्थापन देने से यावत्तावत् का मान ५४६ आया। यहीं क्रय है और कालक का मान पहली लब्धि का मान ३० है।

आलाप—१ पण में ५४६ फल आते हैं, तो ६, ८ और १०० में क्या ? यों अलग-अलग अनुपात से फल मिले ३२९४।४३६८। ५४६००।

प्रथम विक्रय-काल में, ११० फलों का १ पण मिलता है, तो ३२९४। ४३६८ और ५४६०० फलों का क्या ? यों अलग अलग अनुपात से पण मिले २९। ३९। ४९६ और फल शेष रहे १०४। १०२। १०।

द्वितीय विक्रय-काल में १ फल का ५ पण मिलते हैं, तो १०४।१०२। १० इन शेष फलों में क्या ? यों अलग-अलग अनुपात से पण

मिले ५२० । ५१० । ५० इन में पहले आये हुए २६।३६।४६६ इन पक्षों को यथाक्रम जोड़ देने से समपक्ष हुए—

५२० + २६ = ५४६
५१० + ३६ = ५४६
५० + ४६६ = ५४६

शङ्का—यहाँ पहली लब्धि २६ आई है और कुट्टक से कालक की उन्मिति ३० आती है, वह नहीं चाहिये, क्योंकि लब्धि का मान कालक मान चुके हैं, इसलिये दोनों की एकता होनी चाहिये ।

समाधान—लब्धि दो प्रकार की होती है, एक धनशेष, दूसरी ऋणशेष, और शेष भी दो प्रकार का होता है, एक धनशेष, दूसरा ऋणशेष । हर से न्यून जिस अङ्क से घटा हुआ भाज्य, हर के भाग देने से शुद्ध हो वहाँ शेष धन शेष और लब्धि धन शेष लब्धि कहलाती है । इसी भाँति, हर से न्यून जिस अङ्क से जुड़ा हुआ भाज्य, हर के भाग देने से शुद्ध हो वहाँ शेष ऋणशेष और लब्धि ऋणशेष लब्धि कहलाती है ।

जैसा, भाज्य २६ और हर १३ है, अब भाज्य २६ में हर १३ से न्यून ३ को घटा कर २६ में हर १३ का भाग देने से, शेष शून्य ० रहा और लब्धि २ आई, यह लब्धि २ तथा रूप ३ ये दोनों क्रम से धनशेषसंज्ञक लब्धि और धनशेषसंज्ञक शेष कहे जाते हैं । इसी भाँति, भाज्य २६ में हर १३ से न्यून १० को जोड़ कर ३६ में हर १३ का भाग देने से, शेष शून्य ० रहा और लब्धि ३ आई, अब यह लब्धि ३ तथा रूप १० दोनों क्रम से ऋणशेष संज्ञक लब्धि और ऋणशेषसंज्ञक शेष कहलाते हैं । यहाँ हीन और युत भाज्य २६ । ३६ का अन्तर १३ शेषों ३ । १० के योग १३ के समान है । और वह अन्तर हर १३ के तुल्य है । अन्यथा वे हर के भाग देने से कैसे शुद्ध होंगे, और २ । ३ इन दोनों लब्धियों का रूप १ तुल्य अन्तर होता है, इसलिये धनशेष लब्धि २ में १ जोड़ने से ऋण शेष लब्धि ३ होती है और ऋणशेष लब्धि ३ में १ कम कर देने से धनशेष लब्धि २ होती है । इस भाँति सर्वत्र जानना चाहिये ।

प्रकृत में, केवल भाज्य का रूपमित ऋणशेष होने से, गुण से गुणित, भाज्य का, गुण तुल्य ऋणशेष होता है, यहाँ पूर्वोक्त क्रय ५४६ है, वह ६ से गुण देने से ३२६४ हुआ, इसमें कल्पित विक्रय ११० का भाग देने से लब्धि धनशेषसंज्ञक २६ आई और शेष धनशेषसंज्ञक १०४ रहा। अथवा गुण से गुणित राशि ३२६४ में गुण तुल्य ६ जोड़ देने से ३३०० हुआ, इसमें हर ११० का भाग देने से लब्धि ३० ऋणशेषसंज्ञक आई और शेष ऋणशेषसंज्ञक ६० रहा, केवल भाज्य ५४६ में रूप जोड़ कर ५५० हर ११० का भाग देने से, शेष शून्य ० रहता है। इसलिये ऋणशेष १ गुण ६ से गुणित ६, गुण से गुणित भाज्य ३२६४ के ऋण शेष ६ के तुल्य हुआ। यहाँ आचार्य ने, कल्पित क्रय या १ को प्रथम गुण ६ से गुण कर, या ६ में हर ११० का भाग देकर, जो कालकरूप लब्धि ग्रहण की है, वह ऋणशेष रूप है। अब गुण से गुणित भाज्य के दो खण्ड कल्पना किया, पहला खण्ड प्रथम गुण से गुणित क्रय के तुल्य, दूसरा प्रथमगुणतुल्य, इन के योग में हर का भाग देने से ऋणशेषसंज्ञक प्रथम-लब्धि आती है। उसका स्वरूप यह है—

$$\frac{\text{प्रगु} \times \text{क्र} + \text{प्रगु}}{\text{ह}}$$

यहाँ ऐसी ही लब्धि के ग्रहण करने से, दूसरी आदि लब्धि के लिये अनुपात करना युक्त है, जैसा—यदि प्रथम गुण में, प्रथम लब्धि मिलती है तो द्वितीय गुण में क्या, इस प्रकार दूसरी लब्धि का स्वरूप हुआ—

$$\frac{\text{द्विगु} \times \text{क्र} + \text{द्विगु}}{\text{ह}}$$

यहाँ द्वितीय गुण से गुणित क्रय में, द्वितीय गुण जोड़ कर, हर का भाग देने से द्वितीय लब्धि आती है, वह भी ऋणशेष संज्ञक है। इसी भाँति, तीसरे गुण के द्वारा तीसरी लब्धि का स्वरूप सिद्ध हुआ—

$$\frac{\text{तृगु} \times \text{क्र} + \text{तृगु}}{\text{ह}}$$

अब ऋणशेषसंज्ञक प्रथम लब्धि ३० है, इससे अनुपात करते हैं—
यदि ६ की ३० लब्धि है, तो ८ की क्या, यों दूसरी लब्धि $\frac{३०\times८}{६}$ = ४० आई।
इसी भाँति तीसरी लब्धि $\frac{३०\times१००}{६}$ = ५५० आई। क्रय ५४६ को
अलग-अलग तीनों गुणक से गुणा कर, उस में हर का भाग देने से २९।
३९।४९९ ये धनशेषसंज्ञक लब्धि आती हैं। इनमें यथाक्रम १ जोड़
देने से ऋणशेषसंज्ञक लब्धि हुई ३०।४०।५०० और यदि ६ की २९
लब्धि है, तो ८ की क्या, यों अनुपात से दूसरी लब्धि $\frac{२९\times८}{६}$ =
$\frac{२९\times४}{३}$ = $\frac{११६}{३}$ पूर्वागत लब्धि ३९ के तुल्य नहीं होती कि जिस से
धन-शेष लब्धि का मान, कालक कल्पना करें, और ऋणशेष लब्धि
कल्पना करने से तो अनुपात युक्त होता है।

शङ्का—यदि ऋणशेष लब्धि कल्पना की है तो हर से गुणित उस
लब्धि को गुणा से गुणित क्रय में घटा देने से, धन शेष मित कैसे होगी?

समाधान—वहाँ पर ऋणशेषसंज्ञक लब्धि निरेक करने से, धन-
शेषसंज्ञक होगी। उन से उक्त आलाप के तुल्य क्रिया युक्त होती है।
जैसा—कल्पित क्रय या १ है, यह गुणा ६ से गुणा देने से या ६ हुआ
इस में हर ११० का भाग देने से, लब्धि कालक आई। अब कालक
निरेक करने से का १ रू १̇ हुआ। हर ११० से गुणा देने से का
११० रू ११̇० हुआ। इसको गुणा ६ गुणित भाज्य या ६ में,
घटा देने से, शेष या ६ का ११̇० रू ११० रहा। ५ से गुणा देने से
या ३० का ५५̇० रू ५५० हुआ। इस में लब्धि का १ रू १̇
जोड़ देने से पहले के पद हुए—

या ३० का ५४̇९ रू ५४९

इसी भाँति, दूसरी लब्धि का $\frac{४}{३}$ निरेक करने से $\frac{\text{का ४ रू ३̇}}{३}$ हुई। फिर हर

११० से गुणा देने से $\frac{\text{का ४४० रू ३̇३०}}{\text{३}}$, इस को गुणा से गुणित भाज्य या ८ में समच्छेद से घटा देने से, शेष $\frac{\text{या २४ का ४४̇० रू ३३०}}{\text{२}}$ रहा, ५ से गुणित $\frac{\text{या १२० का २२०̇० रू १६५०}}{\text{३}}$, इस में लब्धि $\frac{\text{४ का ४ रू ३̇}}{\text{३}}$ जोड़ देने से, दूसरे के पया हुए—

$$\frac{\text{या १२० का २१९̇६ रू १६४७}}{\text{३}}\ ।$$

इसी भाँति, तीसरी लब्धि $\frac{\text{का ५०}}{\text{३}}$ निरेक करने से $\frac{\text{का ५० रू ३̇}}{\text{३}}$ हुई। फिर, हर ११० से गुणित $\frac{\text{का ५५०० रू ३३̇०}}{\text{३}}$, इसको गुणा १०० गुणित भाज्य या १०० में घटा देने से, शेष $\frac{\text{या ३०० का ५५०̇० रू ३३०}}{\text{३}}$ रहा, ५ से गुणा देने से $\frac{\text{या १५०० का २७५०̇० रू १६५०}}{\text{३}}$ इसमें लब्धि $\frac{\text{का ५० रू ३̇}}{\text{३}}$ जोड़ देने से, तीसरे के पया हुए—

$$\frac{\text{या १५०० का २७४५̇० रू १६४७}}{\text{३}}$$

यहाँ पहले, दूसरे और तीसरे के रूप स्थान में ५४९ रूप अधिक हैं, क्योंकि पूर्वसाधित, पहले या ३० का ५४̇९, दूसरे $\frac{\text{या १२० का २१९̇६}}{\text{३}}$ और तीसरे $\frac{\text{या १५०० का २७४̇५०}}{\text{३}}$, पया के स्थान में रूपाभाव ही है। इसलिये प्रकृत में सिद्ध किये हुए पयों के समशोधन करने से भी

यावत्तावत् की उन्मिति पूर्व के तुल्य ही आती है। जैसा—पहले और दूसरे के पक्षों का समीकरण के लिये न्यास—

या ३० का ५४९ रू ५४ं९

या १२० का २१९ं६ रू १६४७

———————————

३

समच्छेद और छेदगम से हुए—

या ९० का १६४७ रू १६४ं७

या १२० का २१९ं६ रू १६४७

समशोधन करने में तुल्यरूपों के उड़ जाने से, यावत्तावत् की उन्मिति पूर्व तुल्य ही आई (का ५४९)/(या ३०)। इसी भाँति, दूसरे और तीसरे के पक्षों का समीकरण के लिये न्यास—

या १२० का २१९ं६ रू १६४७

———————————

३

या १५०० का २७४ं५० रू १६४७

———————————

३

तुल्यता के कारण हरों के अपगम करने से हुए—

या १२० का २१९ं६ रू १६४७

या १५०० का२७४ं५० रू १६४७

समशोधन करने में तुल्य रूपों के उड़ जाने से, यावत्तावत् की उन्मिति पूर्व तुल्य ही आई (का २५२५४)/(या १३८०) = (का ५४९)/(या ३०) इसी भाँति पहले और तीसरे के पक्षों का समीकरण के लिये न्यास—

या ३० का ५४ं९ रू ५४९

या १५०० का २७४ं५० रू १६४७

———————————

३

समच्छेद और छेदगम से हुए—

या ९० का १६४ं७ रू १६४७

या १५०० का २७४ं५० रू १६४७

समशोधन करने में तुल्य रूपों के उड़ जाने से यावत्तावत् की उन्मिति पूर्व तुल्य ही आई $\frac{\text{का२५८०३}}{\text{या १४६०}} = \frac{\text{५४६}}{\text{या३०}}$ यहाँ पर मेरे प्रकार से सिद्ध प्रथम, द्वितीय और तृतीय पत्त रूप ५४६ से ऊन आचार्य के सिद्ध किये हुए प्रथम, द्वितीय और तृतीय पत्त होते हैं। और वे भी आपस में तुल्य हैं, क्योंकि समान में समान ही शुद्ध कर देने से, उनकी समता नहीं नष्ट होती। इसलिये आचार्योक्त क्रिया युक्तियुक्त है।

शङ्का—यहाँ यावत्तावत् का मान $\frac{\text{का ५४६}}{\text{या ३०}}$ आया है इस में तीन का अपवर्त्तन लगता है वह अवश्य देना चाहिये, क्योंकि 'भाज्यो हार: क्षेपकश्चापवर्त्यः—' इस सूत्र के अनुसार कुट्टक के लिये उस की आवश्यकता पाई जाती है। इस कारण अपवर्त्तन देने से $\frac{\text{का १८२}}{\text{या १०}}$ हुआ। परन्तु उद्दिष्ट सिद्ध नहीं होता।

समाधान—यहाँ शेष की आवश्यकता है और अपवर्त्तन देन से शेष अपवर्तित होते हैं। इसलिये उद्दिष्ट सिद्ध नहीं होता, तो ऐसे स्थल में अपवर्तन न देना चाहिये। इसी बात को आचार्य ने महा-प्रश्नाध्याय में कहा है।

उद्दिष्टं कुट्टके तज्ज्ञैर्ज्ञेयं निरपवर्तनम्।
व्यभिचार: क्वचित्क्वापि खिलत्वापत्तिरन्यथा॥

इस भाँति नवांकुरकार कृष्णदैवज्ञ ने आचार्योक्त मार्ग का समाधान बतलाया है। परन्तु सिद्धान्ततत्त्वविवेककार कमलाकर ने

'नवांकुरेऽपि बीजोत्थे कुट्टकानपवर्तने।
सिद्धान्तसंमतिर्योक्ताऽसदर्थाऽज्ञानतोऽस्ति सा॥'

इस श्लोक से उक्त समाधान को दूषित ठहराया है।

अब जिस में अपवर्तन आदि का सन्देह न हो वैसा कहते हैं—क्रय का मान या १ और विक्रय ११० है। केवल क्रय या १ में, विक्रय ११० का भाग देने से जो लब्धि आई, उसको ऋणशेष संज्ञक कालक १ कल्पना किया।

अनुपात—एकगुण क्रय की कालक १ लब्धि है, तो षड्गुणित क्रय की क्या ? प्रथम लब्धि का ६ आई । ऐसे ही अनुपात से, दूसरी और तीसरी लब्धि आई का ८ । का १०० इन लब्धियों में १ कम कर देने से धन-शेष लब्धि हुई—

(१) का ६ रू १̇
(२) का ८ रू १̇
(३) का १०० रू १̇

अलग, अलग हर ११० से गुण देने से हुई—

(१) का ६६० रू ११̇०
(२) का ८८० रू ११̇०
(३) का ११००० रू ११̇०

इन अपने अपने गुण से गुणित क्रय में, घटा देने से शेष रहे—

(१) या ६ का ६६̇० रू ११०
(२) या ८ का ८८̇० रू ११०
(३) या १०० का ११००̇० रू ११०

५ से गुण देने से हुए—

(१) या ३० का ३३̇०० रू ५५०
(२) या ४० का ४४̇०० रू ५४०
(३) या ५०० का ५̇५००० रू ५५०

यथाक्रम धनशेष लब्धियों को जोड़ देने से हुए—

(१) या ३० का ३२९४̇ रू ५४९
(२) या ४० का ४३९̇२ रू ५४९
(३) या ५०० का ५४̇९०० रू ५४९

अब पहले और दूसरे का समीकरण के लिये न्यास—

या ३० का ३२९४̇ रू ५४९
या ४० का ४३९̇२ रू ५४९

समशोधन से यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{का १०९८}}{\text{या १०}}$ । २ का अपवर्तन देने से $\frac{\text{का ५४९}}{\text{या ५}}$ हुई ।

दूसरे और तीसरे का समीकरण के लिये न्यास—

या ४० का ४३६̇२ रू ५४६

या ५०० का ५४६̇०० रू ५४६

समशोधन से यावत्तावत् की उन्मिति (का ५०५०८ / या ४६०) । ६२ का अपवर्तन देने से, पहले के तुल्य ही आई—

(का ५४६ / या ५)

पहले और तीसरे का समीकरण के लिये न्यास—

या ३० का ३२६४̇ रू ५४६

या ५०० का ५४६̇०० रू ५४६

समशोधन से यावत्तावत् की उन्मिति (का ५१६०६ / या ४७०) ६४ का अपवर्तन देने से, पहले के तुल्य ही आई (का ५४६ / या ५) इस से कुट्टक से 'क्षेपाभावोऽथवो यत्र—' सूत्र के अनुसार, लब्धि और गुण हुआ ०/० । बाद में नीलकवर्ण १ इष्ट कल्पना करके, 'इष्टाहत—' के अनुसार, लब्धि गुण सक्षेप हुए—

नी ५४६ रू ० यावत्तावत

नी ५ रू ० कालक

लब्धि यावत्तावत् का मान और गुण कालक का मान हुआ। नीलक का व्यक्तमान १ कल्पना करके, उत्थापन देने से राशि हुई—

यावत्तावत्=५४६

कालक=५

अब कालक मान ५ से पूर्वानीत तीनों लब्धियों में उत्थापन देने से, धन लब्धि शेष हुई—

पूर्वानीतलब्धि ।	धनशेषलब्धि ।
(१) का ६ रू १	२६
(२) का ८ रू १̇	३६
(३) का १०० रू १̇	५४६

इस भाँति अनेक प्रकार से, उक्त प्रश्न का उत्तर आता है ।

अनेकवर्णसमीकरण समाप्त ।

दुर्गाप्रसादरचिते भाषाभाष्ये मिताक्षरे ।
सवासनाद्य संपूर्णाऽनेकवर्णसमीकृतिः ॥

अथानेकवर्णमध्यमाहरणभेदाः ।

तत्र श्लोकोत्तरार्धादारभ्य सूत्रं सार्धवृत्तत्रयम्—

वर्गाद्यं चेत्तुल्यशुद्धौ कृतायां
पक्षस्यैकस्योक्तवद्वर्गमूलम् ॥ ६८ ॥
वर्गप्रकृत्या परपक्षमूलं
तयोः समीकारविधिः पुनश्च ।
वर्गप्रकृत्या विषयो न चेत्स्या-
त्तदान्यवर्णस्य कृतेः समं तम् ॥ ६९ ॥
कृत्वा परं पक्षमथान्यमानं
कृतिप्रकृत्याद्यमितिस्तथा च ।
वर्गप्रकृत्या विषयो यथा स्या-
त्तथा सुधीभिर्बहुधा विचिन्त्यम् ॥७०॥
बीजं मतिर्विविधवर्णसहायनीह
मन्दावबोधविधये विबुधैर्निजाद्यैः ।

विस्तारिता गणकतामरसांशुमद्भि-
र्या सैव बीजगणिताह्वयतामुपेता॥७१॥

यत्र पक्षयोः समशोधने कृते सत्यव्यक्तवर्गादिकमवशेषं भवति तत्र पूर्ववत् 'पक्षौ तदेष्टेन निहत्य–' इत्यादिना एकस्य पक्षस्य मूलं ग्राह्यम्, अन्यपक्षे यद्यव्यक्तवर्गः सरूपो वर्तते तदा तस्य पक्षस्य वर्गप्रकृत्या मूले साध्ये तत्र वर्णवर्गे योऽङ्कः सा प्रकृतिः, रूपाणि क्षेपः प्रकल्प्यः, एवं यत्कनिष्ठपदं तत्प्रकृतिवर्णमानं यज्ज्येष्ठं तदस्य वर्गस्य मूलम् अतस्तत्पूर्वपक्षमूलेन समं कृत्वा पूर्ववर्णमानं साध्यम्, अथ यद्यन्यपक्षे व्यक्तवर्गः साव्यक्तः, अव्यक्तमेव सरूपमरूपं वा वर्तते, तदा वर्गप्रकृतेर्न विषयः कथं तत्र मूलमित्यत आह–वर्गप्रकृत्या इति। तदान्यवर्णवर्गसमं कृत्वा प्राग्वदेकस्य पक्षस्य मूलं ग्राह्यं तदन्यपक्षस्य वर्गप्रकृत्या मूले साध्ये तत्रापि कनिष्ठं प्रकृतिवर्णमानं ज्येष्ठं तत्पक्षस्य पदमिति पदानां यथोचितं समीकरणं कृत्वा वर्णमानानि सा-

ध्यानि । अथ यदि द्वितीयपक्षे तथा भूतमपि न विषयस्तदा यथा यथा वर्गप्रकृत्या विषयो भवति तथा तथा बुद्धिमद्भिर्बुद्ध्या विधाया-व्यक्तमानानि ज्ञातव्यानि । अथ यदि बुद्ध्यैव ज्ञातव्यानि तर्हि बीजेन किमित्याशङ्क्याह—बीजं मतिरिति । हि यस्मात्कारणाद् बुद्धिरेव पारमार्थिकं बीजं वर्णास्तु तत्सहायाः गणक-कमलातिग्मरश्मिभिराद्यैराचार्यैर्मन्दावबोधा-र्थमात्मीया या मतिर्विविधवर्णान् सहायान्कृ-त्वा विस्तारं नीता सैव संप्रति बीजगणित-संज्ञां गता ॥

एवमनेकवर्णसमीकरणखण्डं प्रतिपाद्य मध्यमाहरणसंज्ञं तद्विशेषं निरूपयितुं तदारम्भं प्रतिजानीते—अथ मध्यमाहरणभेदा इति वक्ष्य-माणसूत्रे पूर्वोत्तरार्धयोश्छन्दोभेदोऽस्तीति कस्यचिद् भ्रमः स्यात्तन्नि-रासार्थमाह-तत्र श्लोकोत्तरार्धादारभ्येति । यदिह प्रथमतोऽर्धं पठ्यते न तत्पूर्वार्धं किंतु 'भूयः कार्यः कुट्टकः—' इति प्राक्पठितपूर्वार्धस्य श्लोकस्योत्तरार्धमित्यर्थः । अथ शालिन्युत्तरार्धेनोपजातिकाद्वयेन च मध्यमाहरणस्येति कर्तव्यतामाह—वर्गाद्यमिति । इदं सार्धसूत्र-द्वितयमाचार्यैरेव विवृतमतो मया न व्याक्रियते । 'वर्गप्रकृत्या विषयो यथा स्यात्तथा सुधीभिर्बहुधा विचिन्त्यम्—' इत्युक्तं तत्र यदि बुद्ध्यैव विचिन्त्यं तर्हि किं बीजेनेत्याशङ्कायामुत्तरं सिंहोद्धतयाह—बीज-मिति । अस्याप्यर्थ आचार्यैरेव विवृतः ।

अनेकवर्णमध्यमाहरण—

अब पक्षों के समशोधन करने से जहां अव्यक्त वर्गादि शेष रहें वहां एक पक्ष का वर्गमूल 'पक्षौ तदेष्टेन निहत्य किंचित्—' इत्यादि प्रकार से और दूसरे पक्ष का मूल वर्गप्रकृति से लेना चाहिये तात्पर्य यह है कि—दूसरे पक्ष में अव्यक्त-वर्ग सरूप हो तो, वहां जो अव्यक्त वर्गाङ्क है उसको प्रकृति और रूप को क्षेप कल्पना करना फिर इष्ट को कनिष्ठ कल्पना कर के ज्येष्ठ सिद्ध करना कनिष्ठ प्रकृति वर्ण का व्यक्तमान और ज्येष्ठ दूसरे पक्ष का मूल होगा अनन्तर, उन दोनों पक्षों के मूलों का समीकरण करना। यदि वर्ग-प्रकृति का विषय न हो तो, उस का अन्य वर्ण के वर्ग के साथ समीकरण कर के अन्यमिति तथा आद्यमिति सिद्ध करना, तात्पर्य यह है कि—यदि अन्यपक्ष में इष्ट अव्यक्तवर्ग साव्यक्त हो, अथवा, अव्यक्त ही रूप से सहित या, रहित हो तो, वर्गप्रकृति का विषय न होगा। ऐसी दशा में, उस का अन्यवर्ग के साथ समीकरण करके पूर्व रीति के अनुसार, एक पक्ष का वर्गमूल लेना और दूसरे पक्ष का मूल वर्ग-प्रकृति से लाना। यहां पर भी, कनिष्ठ प्रकृतिवर्ण का मान और ज्येष्ठ, उस पक्ष का मूल होगा। फिर उन मूलों का यथोचित समीकरण करके, वर्णमानों को सिद्ध करना, यदि ऐसा करने से भी वर्गप्रकृति का विषय न हो तो, जिस भाँति वर्गप्रकृति का विषय हो सके वह अपनी बुद्धि से जानना चाहिये।

यदि बुद्धि से ही जानना है तो, बीजगणित का क्या प्रयोजन है ? इस शंका का समाधान करते हैं—गणकरूपी कमलों के विकासक सूर्य के समान पूर्व आचार्यों ने, मन्दजनों के बोधार्थ यावत्तावत् आदि वर्णों से फैलाई गई बुद्धि ही इस समय बीजगणित नाम को प्राप्त हुई है। अर्थात् पूर्व आचार्यों की बुद्धि ही बीजगणित नाम से कही जाती है और यावत्तावत् आदि वर्णसमूह उस के सहकारी हैं।

इदं किल सिद्धान्ते मूलसूत्रं संक्षिप्तमुक्तं बालावबोधार्थं किंचिद्विस्तार्योच्यते—सूत्रम्—

एकस्य पक्षस्य पदे गृहीते
द्वितीयपक्षे यदि रूपयुक्तः ।
अव्यक्तवर्गोऽत्र कृतिप्रकृत्या
साध्ये तथा ज्येष्ठकनिष्ठमूले ॥ ७२ ॥
ज्येष्ठं तयोः प्रथमपक्षपदेन तुल्यं
कृत्वोक्तवत्प्रथमवर्णमितिस्तु साध्या ।
ह्रस्वं भवेत्प्रकृतिवर्णमितिः सुधीभि-
रेवं कृतिप्रकृतिरत्र नियोजनीया ॥७३॥
अस्यार्थो व्याख्यात एव ॥

'पक्षस्यैकस्योक्तवद्वर्गमूलं वर्गप्रकृत्या परपक्षमूलं–' इत्यादि प्रथममभिहितं तत्र परपक्षः कीदृशः सन्वर्गप्रकृतेर्विषयो भवति । अथ च यदि विषयस्तर्हि वर्गप्रकृत्या परपक्षमूले गृहीतेऽपि केन पदेन पूर्वमूलसमीकरणं कार्यमित्यादि मन्दावबोधार्थमुपजातिकया वसन्ततिलकया च विशदयति—एकस्येत्यादि । यत्र पक्षयोः समशोधने कृते सत्यव्यक्तवर्गादिकमवशेषं भवति तत्र पूर्ववत् 'पक्षौ तदेष्टेन निहत्य किंचित् क्षेप्यं–' इत्यादिनैकपक्षस्य मूले गृहीते सति यदि द्वितीयपक्षेऽव्यक्तवर्गः सरूपः स्यात्तदासौ पक्षो वर्गप्रकृतेर्विषय इति वर्गप्रकृत्या मूले साध्ये, तत्र वर्णवर्गे योऽङ्कः सा प्रकृतिः कल्प्या रूपाणि क्षेपः कल्प्यः, एवं कनिष्ठज्येष्ठे साध्ये । अथ तयोर्ज्येष्ठकनिष्ठयोर्मध्ये ज्येष्ठं प्रथमपक्षपदेन समं कृत्वोक्तवत् 'एकाव्यक्तं शोधयेत्' इत्यादिनैकवर्णसमीकरणेन प्रथमवर्णमितिः साध्या । यस्य पक्षस्य पूर्वं पदं गृहीतं स प्रथमः तत्र यो वर्णः स प्रथमवर्णः । प्रथमश्चासौ वर्णश्चेति कर्मधारयो द्रष्टव्यः । द्वितीय

वर्णाङ्कितपक्षस्य यदि प्रथमतः पदं गृह्यते तदा व्यभिचारः स्यात्। अथ तयोर्मध्ये यत्कनिष्ठं तत्प्रकृतिवर्णमानं स्यात् ॥

उक्त अर्थ को विशद करते हैं—

जहां पक्षों का समशोधन करने के बाद, अव्यक्तवर्गादि शेष रहता है, वहां 'पक्षौ तदेष्टेन—' इस रीति के अनुसार, एक पक्ष का मूल लेने से, यदि दूसरे पक्ष में अव्यक्त वर्ग सरूप हो तो, उसका वर्ग प्रकृति से मूल लेना—वर्णवर्ग के अङ्क को प्रकृति और रूप को क्षेप मान कर 'इष्टं ह्रस्वं—' सूत्र के अनुसार, कनिष्ठ तथा ज्येष्ठ सिद्ध कर के ज्येष्ठ पद को पहले पक्ष के पद के साथ 'एकाव्यक्तं शोधयेद्—' इस एकवर्णसमीकरण की रीति से, प्रथम वर्ण की उन्मिति सिद्ध करना। यहां जिस पक्ष का मूल पहले लिया गया है, वह प्रथम है और वहां पर जो वर्ण है वह प्रथमवर्ण है। जो कनिष्ठ है वह प्रकृतिवर्ण की उन्मिति है। इस भाँति वर्गप्रकृति का नियोग करना चाहिये ॥

उदाहरणम्—

को राशिर्द्विगुणो राशिवर्गैः षड्भिः समन्वितः।
मूलदो जायते बीजगणितज्ञ वदाशु तम्[1] ८८॥

अत्र यावत्तावद्राशिर्द्विगुणो वर्गैः षड्भिः समन्वितः याव ६ या २ एष वर्ग इति कालकवर्गेण समीकरणार्थं न्यासः

---

१ ज्ञानराजदैवज्ञाः—

को राशिः शरनिहतः स्ववर्गहीनो
नि:शेषं निजपदमर्पयत्यशेषम् ।
तं राशिं दिश दशकंधरोपमानं
मानस्ते यदि गणितेऽस्ति षट्प्रमाणे ॥

याव ६ या २ काव ०

याव ० या ० काव १

अत्र समशोधने जातौ पक्षौ

याव ६ या २

काव १

अथैतौ षड्भिः संगुण्य रूपं प्रक्षिप्य प्राग्वत्प्रथमपक्षमूलम् या ६ रू १ अथ द्वितीयपक्षस्यास्य काव ६ रू १ वर्गप्रकृत्या मूले क २ । ज्ये ५

वा, क २० । ज्ये ४९

ज्येष्ठं प्रथमपक्षपदेनानेन या ६ रू १ समं कृत्वा लब्धं यावत्तावन्मानम् $\frac{२}{३}$ वा ८ ह्रस्वं प्रकृतिवर्णस्य कालकस्य मानम् २ । वा २० । एवं कनिष्ठज्येष्ठवशेन बहुधा ॥

उदाहरण—

वह कौन राशि है, जिस को दूना कर के, उसी में षड्गुणित राशिवर्ग जोड़ देते हैं तो, वर्गात्मक होती है ।

कल्पना किया या १ राशि है । २ से गुणित या २ षड्गुण राशिवर्ग जोड़ देने से याव ६ या २ हुआ, यह वर्ग है इसलिये कालकवर्ग के साथ समीकरण के लिए न्यास—

याव ६ या २ काव ०

याव ० या ० काव १

'आद्यं वर्णं–' के अनुसार, समीकरण से पक्ष यथास्थित रहे, मूल के लिये ६ से गुण कर १ जोड़ देने से हुए—

याव ३६ या १२ रू १

काव ६ रू १

आद्यपक्ष का मूल या ६ रू १ आया और दूसरे पक्ष में अव्यक्त वर्ग सरूप है, तो कालक वर्णाङ्क ६ को प्रकृति और रूप १ को क्षेप कल्पना किया। फिर इष्ट २ को कनिष्ठ मान कर, उस के वर्ग ४ को प्रकृति ६ से गुण कर, उस में क्षेप १ जोड़ देने से २५ हुआ। इस का मूल ५ ज्येष्ठमूल हुआ। अथवा कनिष्ठ २० है, इसके प्रकृतिगुणित वर्ग ४०० × ६=२४०० में, क्षेप १ जोड़ देने से २४०१ इस का मूल ४९ ज्येष्ठ है। यहां यदि पहले पक्ष का या ६ रू १ मूल आता है, तो दूसरे पक्ष काव ६ रू १ का भी मूल आवेगा। अन्यथा उन पक्षों की समता न होगी। अब कौन सा वर्णवर्ग छः से गुणित और रूपयुत वर्ग होता है, यह वर्ग प्रकृति का विषय हुआ। यहां कालक का मान व्यक्त २ माना यही कनिष्ठ है। इसलिये कहा है— 'ह्रस्वं भवेत्प्रकृतिवर्णमितिः–'। इस दशा में, ज्येष्ठ दूसरे पक्ष का मूल हुआ, इस कारण आद्यपक्ष के मूल के साथ समीकरण के लिये न्यास–

या ६ रू १

या ० रू ५

अथवा,

या ६ रू १

या० रू ४९

समशोधन से यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{४}{६}$, २ का अपवर्तन देने से $\frac{२}{३}$ अथवा ८। और कनिष्ठ प्रकृति वर्ण कालक का मान २। अथवा २०। आलाप—राशि $\frac{२}{३}$, द्विगुण करने से $\frac{४}{३}$ हुई, और राशि $\frac{२}{३}$ का वर्ग $\frac{४}{९}$ षड्गुण $\frac{२४}{९}$ हुआ, अब इस से जुड़ी हुई द्विगुण $\frac{४}{३}$ राशि $\frac{३६}{९}$ वर्गात्मक होती है अर्थात् उसका मूल $\frac{६}{३}$=२ आता है।

अथवा, राशि ८ दूना करने से १६ हुआ और राशि ८ का

वर्ग ६४ षड्गुणा ३८४ हुआ । इस से जुड़ी हुई द्विगुणा राशि ३८४+१६=४०० मूलप्रद होती है ।

आद्योदाहरणम्—

राशियोगकृतिर्मिश्रा राश्योर्योगघनेन चेत् ।
द्विघ्नस्य घनयोगस्य सा तुल्या गणकोच्यताम्

अत्र क्रिया यथा न विस्तारमेति तथा बुद्धिमता राशी कल्प्यौ । तथा कल्पितौ या १ का १ । या १ का १ अनयोर्योगः या २ अस्य कृतिरस्यैव घनेन मिश्रा याघ ८ याव ४ । अथ राश्योः पृथग्घनौ । प्रथमस्य याघ १ यावकाभा ३ कावयाभा ३ काघ १ द्वितीयस्य याघ १ यावकाभा ३ कावयाभा ३ काघ १ अनयोर्योगः याघ २ यावयाभा ६ द्विघ्नः याघ ४ यावयाभा १२ समशोधनार्थं न्यासः ।

याघ ८ याव ४ यावयाभा ०
याघ ४ याव ० यावयाभा १२

समशोधने कृते पक्षौ यावत्तावतापवर्त्य रूपं प्रक्षिप्य प्रथमपक्षमूलम् या २ रू १ परपक्षस्यास्य काव १२ रू १ वर्गप्रकृत्या मूले

क २ । ज्ये ७

वा, क २८ । ६७

कनिष्ठं कालकमानं ज्येष्ठमस्य या २ रू १ समं कृत्वा लब्धं यावत्तावन्मानम् ३ वा । ४८ स्वस्वमानेनोत्थापने कृते जातौ राशी ५ । १ । वा । २० । ७६ इत्यादि ।

अथान्योदाहरणमनुष्टुभा लिखति—राशियोगकृतिरिति । हे गणक, सा राश्योर्योगघनेन मिश्रायुता राशियोगकृतिः द्विघ्नस्य घनयोगस्य तुल्या भवतीति भवतोच्यताम् ॥

उदाहरण—

वे दो कौन राशि हैं, जिन का योगवर्ग उनके योगघन से जुड़ा हुआ, दूने घनयोग के तुल्य होता है ।

यहां ऐसी राशि मानी जिस से क्रिया का विस्तार न हो जैसा— या १ का १̇ । या १ का १ इन का योग या २ हुआ, इस के वर्ग याव ४ में राशियोग या २ का घन, याघ ८ जोड़ देने से याघ ८ याव ४ हुआ । अत्र राशि का घन करते हैं—वहां प्रथम राशि या १ का १̇ है ।

या १ का १̇
या १ का १̇

याव १ या का १̇
का या १̇ काव १

याव १ या का २̇ काव १
याव १ या॰ का २̇ काव १
या १ का १̇

याघ १ याव. का ३̇ या॰ काव ३
का. याव १̇ या॰ काव २ काघ १̇

घन=याघ १ याव. का ३̇ या. काव ३ काघ १̇ । दूसरी राशि का घन हुआ—

याघ १ याव. का ३ या. काव ३ काघ १ ।

इन दोनों घनों का 'धनर्णयोः—' सूत्र से योग हुआ—

याघ १ याव. का ३̇ या. काव ३ काघ १̇
याघ १ याव. का ३ या. काव ३ काघ १

याघ २ या. काव ६

दूना करने से 'याघ ४ या. काव १२' यह पूर्वानीत 'याघ ८ याव ४' के तुल्य है, इसलिये समीकरण के लिए न्यास—

याघ ८ याव ४ या. काव०
याघ ४ याव . या. काव १२

समशोधन से हुए—

याघ ४ याव ४ या. काव०
याघ. याव. या. काव १२

यावत्तावत् का अपवर्तन देकर, १ जोड़ने से हुए—

याव ४ या ४ का. रू १
याव. या. काव १२ रू १

पहले पक्ष का मूल या २ रू १ आया और दूसरे पक्ष का वर्ग-प्रकृति से मूल लेना चाहिये। वहां अव्यक्तवर्ग सरूप है। अब अव्यक्तवर्गांक १२ को प्रकृति और रूप १ को क्षेप माना, फिर इष्ट २ कनिष्ठ के वर्ग ४ को प्रकृति १२ गुणित ४८ में १ जोड़ कर, मूल लेने से ज्येष्ठ ७ आया। अथवा, कनिष्ठ २८ है उक्त रीति से ज्येष्ठ ९७ आया। यहां कनिष्ठ कालक का मान और ज्येष्ठ दूसरे पक्ष का मूल है। अब उस का आद्यपक्षीय मूल के साथ समीकरण के लिये न्यास—

या २ रू १
या ० रू ७

अथवा या २ रू १
या ० रू ९७

समशोधन से यावत्तावत् की उन्मिति ३ अथवा ४८। यहाँ 'ह्रस्वं भवेत्प्रकृतिवर्गमितिः—' के अनुसार, कालक प्रकृति वर्ग होने से, कनिष्ठ ही कालक का मान हुआ। अत्र यावत्तावन्मान ३ में कालक मान २ को घटा देने से, राशि १।५ हुए, अथवा २०।७६ क्योंकि पहले या १ का १। या १ का १, यह दो राशि कल्पित हुई थीं।

आलाप—जैसा—१।५ राशि का योग ६ वर्ग ३६ में, राशि-योग ६ का घन २१६ जोड़ देने से २५२, यह द्विगुण राशिघन योग २×(१+१२५)=२५२ के तुल्य हुआ।

अथान्यत्सूत्रं सार्धवृत्तम्—

द्वितीयपक्षं[1] सति संभवे तु
कृत्यापवर्त्यात्र पदे प्रसाध्ये।
ज्येष्ठं कनिष्ठेन तदा निहन्या-
च्चेद्वर्गवर्गेण कृतोऽपवर्तः॥ ७४॥
कनिष्ठवर्गेण तदा निहन्या-
ज्ज्येष्ठं ततः पूर्ववदेव शेषम्।

स्पष्टार्थम्॥

द्वितीयपक्षस्य वर्गप्रकृत्या पदं ग्राह्यमित्युक्तम्, अथ यदि द्वितीयपक्षे साव्यक्तवर्गोऽव्यक्तवर्गवर्गः स्याद्यदि वा साव्यक्तवर्ग-वर्गोऽव्यक्तवर्गवर्ग वर्गः स्यात्तदा नासौ वर्गप्रकृतेर्विषयस्तत्कथं पदं ग्राह्यमित्याशङ्कायां मन्दावबोधार्थं सार्धोपजातिकयाह—द्वितीय-पक्षमिति। संभवे सति द्वितीयपक्षं कृत्यापवर्त्य पदे प्रसाध्ये। एवं वर्गवर्गेणापवर्तनसंभवे सति वर्गवर्गेणापवर्त्य पदे प्रसाध्ये।

---

१ 'द्वितीयपक्षे' इति मूलपुस्तकपाठः॥

एतदुक्तं भवति—द्वितीयपक्षे यदि साव्यक्तवर्गोऽव्यक्तवर्गवर्गोऽस्ति तदाऽव्यक्तवर्गेणापवर्ते कृते सरूपोऽव्यक्तवर्गः स्यादिति वर्गप्रकृतेर्विषयः । एवं द्वितीयपक्षे यदि साव्यक्तवर्गवर्गोऽव्यक्तवर्गवर्गवर्गोऽस्ति तत्राव्यक्तवर्गवर्गेणापवर्ते कृते सति सरूपोऽव्यक्तवर्गः स्यादिति वर्गप्रकृतेर्विषयः । अतः प्राग्वत्पदे साध्ये । इयान् विशेषः—अव्यक्तवर्गेणापवर्ते कृते यज्ज्येष्ठमागतं तत्कनिष्ठेन गुणयेत् । अव्यक्तवर्गवर्गेणापवर्ते तु यज्ज्येष्ठमागतं तत्कनिष्ठवर्गेण गुणयेत् । कनिष्ठं तूभयत्र यथास्थितमेव । एवं त्र्यादिगतवर्गेणापवर्ते कनिष्ठवर्गवर्गादिना ज्येष्ठगुणनं द्रष्टव्यम् । शेषं पूर्ववत् ।

वर्गप्रकृति से दूसरे पक्ष का मूल लेना चाहिये, यह पूर्व कथित है । यदि अव्यक्तवर्ग के साथ अव्यक्तवर्गवर्ग हो वा, अव्यक्तवर्गवर्ग के साथ अव्यक्तवर्गवर्गवर्ग हो तो इस प्रकार मूल लेना चाहिये—यदि संभव हो तो, दूसरे पक्ष में अपवर्तन देकर, कनिष्ठ तथा ज्येष्ठ सिद्ध करना अर्थात् यदि साव्यक्तवर्ग, अव्यक्तवर्गवर्ग हो तो, अव्यक्तवर्ग का अपवर्तन देने से, सरूप अव्यक्तवर्ग होगा । और यदि साव्यक्तवर्गवर्ग, अव्यक्तवर्गवर्ग हों तो, अव्यक्तवर्गवर्ग का अपवर्तन देने से सरूप अव्यक्तवर्ग होगा । इस भाँति दोनों स्थलों में वर्गप्रकृति का विषय सिद्ध होने से, उक्त रीति से कनिष्ठ-ज्येष्ठ होंगे । परन्तु इतना विशेष है कि—यदि अव्यक्तवर्ग का अपवर्तन लगा हो तो, ज्येष्ठ को कनिष्ठ से गुण देना और यदि अव्यक्तवर्गवर्ग का अपवर्तन लगा हो तो, ज्येष्ठ को कनिष्ठ वर्ग से गुण देना कनिष्ठ तो उभयत्र ज्यों के त्यों रहेंगे, इस प्रकार अपवर्तन से ज्येष्ठ, कनिष्ठ के वर्गवर्ग आदि से गुणा जायगा, शेष क्रिया पूर्व के तुल्य जाननी चाहिए ॥

उपपत्ति—

यहां पहले पक्ष का मूल मिलने से और दूसरे पक्ष का न मिलने से सिद्ध होता है कि यह पक्ष भी वर्गात्मक है । अन्यथा उन का साम्य कैसे होगा । उस में अन्यवर्ग का अपवर्तन देने से भी वर्गत्व नहीं नष्ट होता क्योंकि वर्ग से वर्ग को गुण वा भाग देने से उस का वर्गत्व

बना रहता है। यहां अव्यक्तवर्ग का अपवर्तन देने से जो सरूप अव्यक्तवर्ग होता है, वह भी वर्ग है। उस का वर्गप्रकृति से जो ज्येष्ठ मूल आवे, उस को अव्यक्तवर्ग के मान कनिष्ठ से, गुण देना चाहिये। क्योंकि 'ह्रस्वं भवेत्प्रकृतिवर्गमिति:—' के अनुसार, मूल को मूल ही से गुण देना उचित है। इस भाँति दूसरे पक्ष का मूल सिद्ध होता है। इसी युक्ति से अव्यक्त वर्गवर्ग का अपवर्तन देने से, जो सरूप अव्यक्त वर्ग हो वह भी वर्ग है। उस का वर्गप्रकृति से जो मूल आवे, वह कनिष्ठवर्ग से गुणित दूसरे पक्ष का मूल होगा।

उदाहरणम्—

यस्य वर्गकृतिः पञ्चगुणा वर्गशतोनिता।
मूलदा जायते राशिं गणितज्ञ वदाशु तम्॥८६॥

अत्र राशिः या १ अस्य वर्गकृतिः पञ्चगुणा वर्गशतोना यावव ५ याव १०० अयं वर्ग इति कालकवर्गसमं कृत्वा गृहीतं कालकवर्गस्य मूलम् का १ द्वितीयपक्षस्यास्य यावव ५ याव १०० यावत्तावद्वर्गेणापवर्त्य वर्गप्रकृत्या मूले

क १०। ज्ये २०।

वा, क १७०। ज्ये ३८०

कृत्यापवर्ते कृते 'ज्येष्ठं कनिष्ठेन तदा निहन्यात्—' इति जातम् ज्ये २००। वा। ज्ये ६४६०० इदं कालकमानं कनिष्ठं प्रकृतिवर्णमानं स एव राशिः १०। वा। १७०।

उदाहरण—

वह कौन राशि है, जिस के पञ्च गुण वर्गवर्ग में, शत गुणित राशिवर्ग घटा देने से वर्ग होता है ।

राशि या १ का वर्गवर्ग यावव १ यह ५ से गुणित यावव ५ में शतगुण राशिवर्ग याव १०० घटा देने से, यावव ५ याव १०̇० यह वर्ग है । इसलिये कालकवर्ग के साथ समीकरण के लिये न्यास—

यावव ५ याव १०̇० काव,
यावव ० याव ० काव १

समशोधन से पक्ष यथास्थित रहे । कालक पक्ष का मूल का १ आया और दूसरे पक्ष में यावत्तावत्वर्ग का अपवर्तन देने से याव ५ रू १०̇० हुआ । अब यावत्तावद्वर्गांक ५ को प्रकृति और रूप १०̇० को क्षेप माना । फिर इष्ट १० कनिष्ठ मान कर, उस का वर्ग १०० प्रकृति ५ से गुणित ५०० में क्षेप १०̇० घटा देने से, शेष ४०० रहा । इस का मूल २० ज्येष्ठमूल हुआ । दूसरे पक्ष में यावत्तावत् के वर्ग का अपवर्तन दिया था, इसलिये ज्येष्ठ २० कनिष्ठ १० से गुणित दूसरे पक्ष का मूल २०० हुआ । इस का प्रथम पक्ष के मूल का १ के साथ समीकरण से कालक का मान २०० आया और कनिष्ठ १० यावत्तावत् वर्ण का मान है, यही राशि है ।

आलाप—१० का वर्गवर्ग १०००० हुआ ५ से गुणित ५०००० इस में शत गुण राशिवर्ग १०००० घटा देने से, शेष ४०००० का मूल २० कालक मान के तुल्य है । अथवा, कनिष्ठ १७० से ज्येष्ठ ३८० हुआ, यह कनिष्ठ १७० से गुणित दूसरे पक्ष का मूल ६४६०० हुआ । इस का आद्यपक्षीय मूल का १ के साथ समीकरण से कालक का मान ६४६०० आया और कनिष्ठ १७० यावत्तावत् का मान है, वही राशि है ।

उदाहरणम्—

कयोः स्यादन्तरे वर्गो वर्गयोगो ययोर्घनः ।
तौ राशी कथयाभिन्नौ बहुधा बीजवित्तम ६०॥

अत्र राशी या १ । का १ अनयोरन्तरं या १̇ का १ नीलकवर्गसमं कृत्वा लब्धं यावत्तावन्मानम् का १ नीव १̇ अनेन यावत्तावदुत्थाप्य जातौ राशी का १ नीव १̇ । का १ । अनयोर्वर्गयोगः काव २ नीव का भा २̇ नीवव १ एष घन इति नीलकवर्गघनसमं कृत्वा शोधने कृते जातं प्रथमपक्षे नीवघ १ नीव व १̇ द्वितीयपक्षे काव २ नीव का भा २̇ पक्षौ द्वाभ्यां संगुण्य नीलकवर्गवर्गं प्रक्षिप्य द्वितीयपक्षस्य मूलम् का २ नीव १̇ प्रथमपक्षं नीवघ १ नीवव १̇ नीलकवर्गवर्गेणापवर्त्य नीव २ रू १̇ वर्गप्रकृत्या मूले

क ५ । ज्ये ७ ।

वा, क २९ । ज्ये ४१ ।

'चेद्वर्गवर्गेण कृतोपवर्तः, कनिष्ठवर्गेण तदा निहन्याज्ज्येष्ठं—' इति जातम् ज्ये १७५ । वा ज्ये ३४४८१ । कनिष्ठं नीलकमानं तेनोत्थापितं प्राङ्मूलं जातम् का २ रू २̇५ वा । का२ रू ८४१̇ इदं ज्येष्ठमूलसमं कृत्वा लब्धं

कालकमानम् १०० वा १७६६१ स्वस्वमाने-नोत्थाप्य जातौ राशी ७५।१००वा १६८२०। १७६६१ । इत्यादि ॥

यत्र वर्गवर्गेणापवर्तनं तादृशमुदाहरणमनुष्टुभाह—कयोरिति । हे बीजवित्तम । प्रकर्षे तमप् । कयो राश्योरन्तरे कृते सति वर्गः स्यात्, ययोर्वर्गयोगो घनः स्यात् तौ राशी अभिन्नौ बहुधा कथय। अत्र 'अभिन्नौ बहुधा' इति पदद्वयमनावश्यकं सर्वत्र कनिष्ठज्येष्ठ-मूलयोरानन्त्याभ्युपगमात् ॥

उदाहरण—

वे दो कौन राशि हैं, जिन का अन्तरवर्ग और वर्गयोग घन होता है। कल्पना किया या १ । का १ राशियों का अन्तर या १̇ का १ यह वर्ग है, इस कारण नीलक वर्ग के साथ समीकरण के लिये न्यास—

या १̇ का १ नीव०
या० का० नीव १

'आद्यं वर्णं—' इस रीति के अनुसार, समीकरण से यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{\text{का १ नीव } \dot{१}}{\text{या १}}$ । इस से या १ इस पहले राशि में उत्थापन देने से, का १ नीव १̇ हुआ और दूसरी राशि का १ ज्यों की त्यों रही। अब का १ नीव १̇ । का १ का वर्ग—काव १ का. नीव २̇ नीवव १ । काव १ । योग 'काव २ का. नीव २̇ नीवव १' घन है। इस कारण नीलकवर्गघन के साथ समीकरण के लिये न्यास—

काव २ का. नीव २̇ नीवव १ नीवघ०
काव ० का. नीव ० नीवव० नीवघ १

समशोधन से हुए—

काव २ का. नीव २̇ नीवव ० नीवघ०
काव ० का. नीव ० नीवव १̇ नीवघ १̇

दो से गुणा कर, नीलकवर्गवर्ग जोड़ देने से हुए——

काव ४ का. नीव ४̇ नीवव १

नीवव १̇ नीवघ २

पहले पक्ष का मूल का २ नीव १̇ आया और दूसरे पक्ष नीवव १̇ नीवघ २ में, नीलकवर्गवर्ग का अपवर्तन देने से, नीव २ रू १̇ हुआ। अब नीलकवर्गाङ्क २ प्रकृति और रूप १̇ क्षेप मान कर 'इष्टं ह्रस्वं—' सूत्र से इष्ट ५ मान कर ज्येष्ठमूल ७ आया। दूसरे पक्ष में वर्गवर्ग का अपवर्तन दिया था, इस कारण कनिष्ठवर्ग २५ से गुणित ज्येष्ठमूल, दूसरे पक्ष का मूल १७५ हुआ। आद्यपक्ष का मूल क २ नीव १̇ है, और कनिष्ठ ५ प्रकृतिवर्ण नीलक का मान है। इससे आद्यपक्ष के मूल 'का २ नीव १̇' के दूसरे खण्ड 'नीव १̇' में, उत्थापन देना है, पर वह वर्गात्मक और ऋण है, इसलिये कनिष्ठ ५ का वर्ग ऋण २५̇ हुआ। इस भाँति आद्य पक्ष का मूल क १ रू २५̇ सिद्ध हुआ। इसका दूसरे पक्ष के मूल के साथ समीकरण के लिये न्यास—

का. २. रू २५̇

का ० रू १७५

समशोधन से कालक की उन्मिति १०० आई। पहली राशि का १ नीव १̇। का १ हैं। उत्थापन देने से, कालक का मान १०० आया। इस में कनिष्ठ वर्ग तुल्य नीलक वर्ग २५̇ घटा देने से, शेष ७५ रहा यही यावत्तावत् का मान है। और कालक का मान दूसरी राशि १०० है। अथवा कनिष्ठ २९ माना तो ज्येष्ठ ४१ आया, यह कनिष्ठ २९ वर्ग ८४१ से गुणित दूसरे पक्ष का मूल ३४४८१ हुआ। यह आद्य पक्षीय मूल का २ नीव १̇ के तुल्य है। वहां रूप के स्थान में प्रकृति वर्णमान कनिष्ठ २९ के वर्ग रू ८४१̇ को लिख कर न्यास—

का २ रू ८४१̇

का० रू ३४४८१

समशोधन से कालक की उन्मिति १७६६१ आई, यह दूसरी राशि है। इस में कनिष्ठवर्गतुल्य नीलकवर्ग ८४१̇ घटा देने से, दूसरी राशि १६८२० हुई। इस भाँति अनन्त राशियाँ आवेंगी॥

अन्यत् सूत्रं सार्धवृत्तम्—

साव्यक्तवर्गो यदि वर्णवर्ग-
स्तदान्यवर्णस्य कृतेः समं तम् ॥ ७५ ॥
कृत्वा पदं तस्य तदन्यपक्षे
वर्गप्रकृत्योक्तवदेव मूले ।
कनिष्ठमाद्येन पदेन तुल्यं
ज्येष्ठं द्वितीयेन समं विदध्यात् ॥ ७६ ॥

अत्र प्रथमपक्षमूले गृहीते सत्यन्यपक्षे साव्यक्ताव्यक्तकृतिः सरूपा वा भवति तत्राद्यपक्षस्यान्यवर्णवर्गसमीकरणं कृत्वा मूलं ग्राह्यं तदन्यपक्षस्य वर्गप्रकृत्या मूले, तयोः कनिष्ठमाद्यस्य पदेन ज्येष्ठं द्वितीयपक्षपदेन च समं कृत्वा वर्णमाने साध्ये ॥

अथ यत्रैकस्य पक्षस्य पदे गृहीते सति द्वितीयपक्षे साव्यक्तोऽव्यक्तवर्गः सरूपो वा भवति तदा नोक्तरीतिप्रवृत्तिरतस्तत्रोपायमुपजातिकोत्तरार्धेनोपजातिकया चाह—सेति । अथ यदि द्वितीयपक्षे वर्णवर्गः साव्यक्तः सरूपश्च भवेत्तर्हि तमन्यवर्णस्य कृतेः समं कृत्वा तस्य प्रथमपक्षस्य पदमानेयम् । तदन्यपक्षे प्रथमपक्षेतरपक्षे उक्तवदेव वर्गप्रकृत्या मूले कनिष्ठज्येष्ठे साध्ये । आद्यपदेन कनिष्ठं द्वितीयेनं पदेन ज्येष्ठं च समं विदध्यात् । तेन तेन सह समीकरणं कुर्यादिति तात्पर्यम् ॥

एक पक्ष का मूल लेने से, यदि दूसरे पक्ष में साव्यक्त और सरूप अव्यक्त वर्ग हो तो, मूल-ग्रहण की रीति कहते हैं--

यदि दूसरे पक्ष में वर्णावर्ग अव्यक्त और रूप से सहित हो तो, उसको दूसरे वर्ण के वर्ग के तुल्य करके, पहले पक्ष का मूल लेना और इतरपक्ष का वर्गप्रकृति से लाकर आद्यपक्षीय-मूल का कनिष्ठ के साथ और द्वितीय पक्षीय-मूल का ज्येष्ठ के साथ समीकरण करना चाहिये।

उपपत्ति--

पहले पक्ष का मूल मिलने से, उस के तुल्य दूसरे पक्ष का भी मूल मिलना चाहिये। परन्तु मूल के न मिलने से, उस वर्गरूप दूसरे पक्ष का अन्य वर्ण के वर्ग के साथ समीकरण किया, जिस से वर्गप्रकृति की प्रवृत्ति हो। अब पहला पक्ष भी अन्यवर्णावर्ग के तुल्य हुआ और पहले पक्ष का मूल अन्यवर्ण के तुल्य हुआ। 'ह्रस्वं भवेत्प्रकृतिवर्णमितिः' के अनुसार, अन्यवर्ण का मान कनिष्ठ है, इसलिये '—कनिष्ठमाद्येन पदेन तुल्यं' यह उपपन्न हुआ। इस प्रकार आगे के ज्येष्ठों का यथाक्रम आगे साधित पक्षों के साथ साम्य करना उचित ही है। इसलिये 'ज्येष्ठं द्वितीयेन समं—' यह कहा है॥

उदाहरणम्—

त्रिकादिद्व्युत्तरश्रेढ्यां[1] गच्छे क्वापि च यत्फलम्।
तदेव त्रिगुणं कस्मिन्नन्यगच्छे भवेद्वद[2] ॥६१॥

---

१ 'त्रिकादिद्व्युत्तरः श्रेढ्यां' इत्यपपाठो बहुत्र दृश्यते,

२ ज्ञानराजदैवज्ञाः—

पञ्चादिद्विचयेन यत्प्रतिदिनं दत्तं धनं केनचि-
त्तस्मादप्यधिकैर्दिनैस्त्रिगुणितं तद्वत्परेणार्पितम्।
तद्वित्ते वद वत्स वासरमिती चैवानयोरस्ति ते
चेद्वर्गप्रकृतौ कृतिर्बहुविधैर्वर्णैर्विचित्रा सखे॥
तयोरर्पणदिनानि ४। ८ धने च ३२। ९६

अत्र श्रेढ्योर्न्यासः । आदिः ३ । चयः २। गच्छः या १ । आदिः ३ । चयः २। गच्छः का १ । अनयोः फले याव १ या २। काव १ का २ । अनयोराद्यं त्रिगुणं परसमं कृत्वा शोधनार्थं न्यासः ।

याव ३ या ६
काव १ का २

शोधने कृते पक्षौ त्रिगुणीकृत्य नव प्रक्षिप्य प्रथमपक्षस्य मूलम् या ३ रू २ । द्वितीय-पक्षस्यास्य काव ३ का ६ रू ९ नीलकवर्गेण साम्यं कृत्वा तथैव पक्षौ त्रिगुणीकृत्य ऋण-मष्टादश प्रक्षिप्य मूलम् का ३ रू ३ । तदन्य-पक्षस्यास्य नीव ३ रू १८ वर्गप्रकृत्या मूले

क ९ । ज्ये १५ ।
वा, क ३३ । ज्ये ५७ ।

कनिष्ठमाद्येनानेन या ३ रू ३ समं कृत्वा लब्धे यावत्तावत्कालकमाने २।४।वा१०।१८। एवं सर्वत्र ॥

अत्रोदाहरणमनुष्टुभाह—त्रिकादीति । त्रिकमादिस्त्रिकादिः, द्वौ उत्तरो द्व्युत्तरः, त्रिकादिश्च द्व्युत्तरश्च त्रिकादिद्व्युत्तरौ,

त्रिकादिद्व्युत्तरौ यस्यां सा त्रिकादिद्व्युत्तरा, सा चासौ श्रेढी च, तस्यां त्रिकादिद्व्युत्तरश्रेढ्यां कापि गच्छे यत्फलं तदेव त्रिगुणं फलमन्यगच्छे त्रिकादिद्व्युत्तरविशिष्टे कस्मिन्निति वद ॥

उदाहरण––

जिस श्रेढी में तीन आदि और दो चय हैं वहां अनिर्दिष्ट गच्छ में जो त्रिगुण फल होता है वह फल तीन आदि तथा दो चय के किस गच्छ में होगा।

यहां आदि ३ चय २ और गच्छ या १ है। तथा आदि ३ चय २ और गच्छ का १ है। 'व्येकपदघ्नचयो मुखयुक्–' इस के अनुसार पहला गच्छ या १ व्येक करने से या १ रू १̇ हुआ, चय२ से गुणित या २ रू २̇ हुआ। इस में आदि ३ जोड़ देने से या २ रू १ अन्त्य धन हुआ। इस में आदि ३ को जोड़ कर आधा करने से, मध्यधन या १ रू २ हुआ। गच्छ या १ से गुणित पहला फल (सर्वधन) याव १ या २ हुआ। इसी प्रकार, दूसरा फल (सर्वधन) काव १ का २ हुआ। यह त्रिगुण पहले फल के समान है, इस कारण समीकरण के लिये न्यास––

याव ३ या ६ काव० का०

याव० या० काव १ का २

समशोधन से पक्ष ज्यों के त्यों रहे। मूल के लिये ३ से गुण कर, ९ जोड़ देने से हुए––

याव ९ या १८ रू ९

काव ३ का ६ रू ९

पहले पक्ष का मूल या ३ रू ३ आया और दूसरा पक्ष काव ३ का ६ रू ९ अव्यक्त वर्ग, अव्यक्त तथा रूप से जुड़ा है, इसलिये इसका नीलक वर्ग के साथ समीकरण के अर्थ न्यास––

काव ३ का ६ नीव ० रू ९

काव ० का ० नीव १ रू ०

समशोधन से हुए—

काव ३ का ६
नीव १ रू ६

३ से गुणा कर, नौ जोड़ने से हुए—

काव ६ का १८ रू ६
नीव ३ रू १८

यहाँ पहले पक्ष का मूल का ३ रू ३ आया और दूसरे पक्ष नीव ३ रू १८ का मूल वर्गप्रकृति से इष्ट कनिष्ठ ६ मानकर, इसका वर्ग ८१ प्रकृति ३ से गुणित २४३ हुआ, इसमें क्षेप १८ घटा देने से, शेष २२५ का मूल १५ ज्येष्ठ हुआ । यहाँ कनिष्ठ ६ का पहले सिद्ध प्रथम पक्ष के मूल या ३ रू ३ के साथ समीकरण के लिये न्यास—

या ३ रू ३
या ० रू ६

इसी भाँति ज्येष्ठ १५ का पीछे सिद्ध किये गये प्रथम पक्ष के मूल का ३ रू ३ के साथ समीकरण के लिये न्यास—

का ३ रू ३
का ० रू १५

दोनों स्थानों में समीकरण द्वारा क्रम से यावत्तावत् तथा कालक की उन्मिति २ । ४ आई । ये दोनों गच्छों के प्रमाण हैं ।

अथवा । कनिष्ठ ३३ है, इससे ज्येष्ठमूल ५७ आया । अब कनिष्ठ ३३ का पहले मूल के साथ और ज्येष्ठ का दूसरे मूल के साथ समीकरण के लिये न्यास––

या ३ रू ३
या ० रू ३३

का ३ रू ३
का ० रू ५७

दोनों स्थानों में समशोधन से यथाक्रम यावत्तावत् तथा कालक की उन्मिति आई १० । १८ ये दोनों गच्छ हैं ।

आलाप–(१) आदि ३ । चय २ । गच्छ २ ।
(२) आदि ३ । चय २ । गच्छ ४ ।

'व्येकपदघ्न–' सूत्र के अनुसार धन सिद्ध हुए––
(१) मध्यधन ४ । अन्त्यधन ५ । सर्वधन ८
(२) मध्यधन ६ । अन्त्यधन ६ । सर्वधन २४

पहली श्रेढी का फल ८ है, यह ३ से गुणित २४ हुआ । यही दूसरा फल है ।

अथान्यत्सूत्रं वृत्तद्वयम्–

सरूपके वर्णकृती तु यत्र
तत्रेच्छयैकां प्रकृतिं प्रकल्प्य ।
शेषं ततः क्षेपकमुक्तवच्च
मूले[1] विदध्यादसकृत्समत्वे ॥ ७७ ॥
सभाविते वर्णकृती तु यत्र
तन्मूलमादाय च शेषकस्य ।
इष्टोद्धृतस्येष्टविवर्जितस्य
दलेन तुल्यं हि तदेवकार्यम् ॥ ७८ ॥

यत्र प्रथमपक्षमूले गृहीते द्वितीयपक्षे वर्णयोः कृती सरूपे अरूपे वा भवतस्तत्रैकां वर्ण-

---

१ सव्याख्योऽयं श्लोको बहुषु मूलपुस्तकेष्विहैवोपलभ्यतेऽत एव मयापि प्राचीनपुस्तकानुरोधादत्रैवोपन्यस्तः, टीकापुस्तके तु 'ययोर्वर्गयुतिर्घातयुता–' इति स्वोदाहृतेः प्राग्दृश्यते युक्तश्च तत्रत्यन्यास एवास्य, किंच मूलपुस्तके "सभाविते वर्णकृती तु यत्र–इत्येतद्विषयीभूतमुदाहरणम्––ययोर्वर्गयुतिः––" इति लेखोपलब्धिस्तत्प्राङ्न्यासे प्रमाणमिति विभावयन्तु विवेकिनः ।

कृतिं प्रकृतिं प्रकल्प्य शेषं क्षेपः ततः 'इष्टं ह्रस्वं तस्य वर्गः प्रकृत्या क्षुण्णः—' इत्यादिकरणेन क्षेपजातीयं वर्णमेकादिहतं युतं वा स्वबुद्ध्या कनिष्ठपदं प्रकल्प्य ज्येष्ठं साध्यम् । अथ वर्गगता चेत्प्रकृतिः 'इष्टभक्तो द्विधा क्षेपः—' इत्यादिना मूले साध्ये । यत्र भावितं वर्तते तत्र 'सभाविते वर्णकृती—' इत्यादिना तदन्तर्वर्तिनो यावतो मूलमस्ति तावतो मूलं ग्राह्यं शेषस्येष्टोद्धृतस्येष्टविवर्जितस्य दलेन समं तदेव मूलं कार्यम्। यत्र तु द्वित्र्यादयो वर्णवर्गाद्या भवन्ति तत्र द्वाविष्टौ वर्णौ मुक्त्वाऽन्येषामिष्टानि मानानि कृत्वा मूले साध्ये । एवं तदैव यदाऽसकृत्समीकरणं यदा तु सकृदेव समीकरणं तदैकं वर्णं मुक्त्वाऽन्येषामिष्टानि मानानि कृत्वा प्राग्वन्मूले ॥

यदि दूसरे पक्ष में दो, तीन आदि वर्णवर्ग हों तो, वर्गप्रकृति की प्रवृत्ति कहते हैं—

पहले पक्ष का मूल लेने के बाद, दूसरे पक्ष में (सरूपके वर्णकृती) जहाँ रूप के साथ दो वर्ण वर्ग हों, (यहाँ 'सरूपके' यह उक्ति उपलक्षण है, इसलिये यदि रूप न हों या अनेक रूप हों, तो भी उन को क्षेप पक्ष में मानना चाहिये । 'वर्णकृती' इस द्विवचन से जहाँ दो, तीन आदि वर्ण वर्ग हों वहाँ वर्णों का इष्ट व्यक्तमान मान

कर उन से उन वर्णों में उत्थापन देना चाहिये, और यदि रूप भी हों तो उन्हें कल्पित व्यक्तमान में जोड़ देना। अब 'सरूपके वर्णाकृती' रूपाभाव में 'अरूपके वर्णाकृती' वही बात सिद्ध होती है) वहाँ स्वेच्छा से, एक वर्ण के वर्ग को प्रकृति मान कर शेष वर्णवर्ग को अथवा, सरूप वर्णवर्ग को क्षेप कल्पना करके उक्त रीति से कनिष्ठ-ज्येष्ठ सिद्ध करना। यदि वर्गात्मक प्रकृति हो तो 'इष्टभक्तो द्विधा-क्षेपः—' इस से कनिष्ठ-ज्येष्ठ लाना। इस क्रिया से कनिष्ठ-ज्येष्ठ अव्यक्तरूप आवेंगे तो राशिमान भी अव्यक्तात्मक होगा, तब उक्त क्रिया से क्या प्रयोजन निकला? इसीलिये कहते हैं—'असकृत्समत्वे'। यदि आलाप के अनुसार, फिर समीकरण करना हो तो, राशि का अव्यक्तमान ठीक ही है। जो न करना हो तो, दो-तीन आदि वर्णों की तरह, द्वितीय वर्ण का भी व्यक्तमान कल्पना कर लेना। इस भाँति सरूप अव्यक्त वर्ग होगा, तब उक्त रीति से राशि का व्यक्त-मान सिद्ध होगा।

उपपत्ति—

यहाँ पर विशेष यह है कि पहले प्रकृति वर्ण का मान व्यक्त कल्पना किया है। यहाँ पर अव्यक्त अथवा व्यक्ताव्यक्त कल्पना किया जाता है इस से 'सरूपके[1] वर्णाकृती—' यह सूत्र युक्तियुक्त है।

---

१ अत्र विशेषः—

सरूपके वर्णकृती इतीह श्रीज्ञानराजो निजबीजमध्ये।
अदर्शनात्तादृगुदाहृतीनामरूपके वर्णकृती पपाठ॥
एतद्भ्रमध्वान्तसहस्ररश्मिबिम्बाथितं तत्त्वविवेकपद्यम्।
प्रदर्श्यते संप्रति बीजमर्मजिज्ञासुहृत्पद्मविकासनाय॥
यथाभीष्टराश्योश्च वर्गौ शरा ५ ष्टधा—१६
हतौ तद्युतिः खाश्वि २० हीना कृतिः स्यात्।
शराघ्नैकवर्गो नख २० घ्नान्यवर्गो-
नितो भूप १६ युक्तोऽपि वर्गोऽथवा स्यात्॥
तयोस्ते पदे तौ च राशी प्रचक्ष्व
पटुत्वेऽभिमानोऽत्र यद्यस्ति बीजे।

एक पक्ष का मूल लेने से, दूसरे पक्ष में जहाँ भावित के सहित वर्णवर्ग हों, वहाँ वर्गप्रकृति का विषय कहते हैं—

यदि एक पक्ष का मूल लेने के बाद, दूसरे पक्ष में भावित के सहित वर्ग वर्ण हो तो वहाँ अन्तर्वर्ती जितने मूल मिलें, उनको लेना जो शेष बचे, उस में इष्ट का भाग देकर लब्धि में इष्ट घटाना। फिर, उस के आधे के साथ पूर्वगृहीत मूल का समीकरण करना

आद्यादाहृतौ राशी या १ । का १ । एतयोर्वर्गौ याव १ । काव १ । पञ्चषोडशाभ्यां गुणितौ याव ५ । काव १६ अनयोर्योगो विंशत्योनः याव ५ काव १६ रू २̇० अयं वर्ग इति नीलकवर्गेण समीकरणात्पक्षौ यथास्थितावेव—

याव ५ काव १६ रू २̇०
नीव १

द्वितीयपक्षस्य मूलं नी १ प्रथमपक्षे याव ५ काव १६ रू २̇० वर्णकृती रूपाणि च तत्र प्रथमवर्णवर्णाङ्कः प्रकृतिः ५ शेषं क्षेपः काव १६ रू २̇०

अत्र कनिष्ठकल्पनप्रकारोऽपि सिद्धान्ततत्त्वविवेकीयो यथा—

तावत्क्षेपं क्षेपरूपाणि कृत्वा
ह्रस्वज्येष्ठे साधनीये यथोक्ते ।
पूर्वक्षेपे योऽन्यवर्णस्य वर्ग-
स्तस्याङ्कघ्नो ज्येष्ठवर्गो विभक्तः ॥
रूपैर्निघ्न्या तत्प्रकृत्याप्तमूलं
तद्घ्नः पूर्वक्षेपजो वर्ण एव ।
ज्ञेयं ह्रस्वाव्यक्तखण्डं पुरोक्त—
ह्रस्वं तु स्याद् व्यक्तखण्डं तदैक्ये ॥
सरूपके क्षेपकजातिवर्णे
एवं स्वकीयं तु कनिष्ठमत्र ।

अत्र क्षेपः खण्डद्वयात्मकोऽस्ति काव १६ रु २० तत्रास्य द्वितीयं खण्डं रू २̇० क्षेपं प्रकल्प्य पूर्वकल्पितप्रकृतौ ५ ज्येष्ठं साध्यं तद्यथा—इष्टं कनिष्ठं कल्पितं ३ तद्वर्गात् ९ प्रकृति ५ गुणात् ४५ ऋणक्षेप २̇० युतात् २५ मूलं ज्येष्ठम् ५ अस्य वर्गः २५ खण्डद्वयात्मकक्षेपस्थकालकवर्गाङ्केन १६ गुणितः ४०० क्षेपस्थरूपेण २० धनकल्पितेन प्रकृति ५ गुणेन १०० भक्तः फलम् ४ अस्य मूलम् २ अनेन पूर्वक्षेपजो वर्णः कालको गुणितः का २ इदं कनिष्ठस्याव्यक्तखण्डं प्रकृतसाधितकनिष्ठं ३ तु व्यक्त-

(यहाँ कितने खण्ड का मूल लेना उचित है, यद्यपि यह नियम नहीं किया, तो भी ऐसा मूल लेना कि, जिस में केवल एक वर्ण वर्ग का

खण्डम् एवं जातं कनिष्ठम् का २ रू ३ अनेन कनिष्ठेन प्रथमपक्षे ज्येष्ठं साध्यं तद्यथा–कनिष्ठवर्गः काव ४ का १२ रू ९ प्रकृति ५ गुणः काव २० का ६० रू ४५ खण्डद्वयात्मकक्षेपेण काव १६ रू २० युतः काव ३६ का ६० रू २५ अस्य मूलं ज्येष्ठम् क ६ रू ५ इदं द्वितीयपक्षमूलेन नी १ सममिति लब्धं नीलकमानम् का ६ रू ५ कनिष्ठं तु का २ रू ३ प्रकृतिवर्णस्य यावत्तावतो मानम् । अत्र पूर्वं राशी कल्पितौ या १ । का १ । यावत्तावन्माने कालकस्य रूपं व्यक्तं मानं प्रकल्प्योत्थापनाद्यावत्तावन्मानम् ५ कालकमानं तु रूपम् १ एवमेतौ राशी ५ । १ । ज्येष्ठं का ६ रू ५ यद्येकस्य कालकस्येदं व्यक्तं मानं तदा कालकषट्कस्य किमिति रू ६ । रूपै ६ र्युतं जातं व्यक्तं नीलकमानम् ११ अत्र राशिवर्गौ २५ । १ । पञ्चषोडशगुणौ १२५ । १६ एतयोर्युतिः १४१ । विंशत्या हीना १२१ अस्या मूलं नीलकमानसमं जातम् ११ । एवं कालकस्य व्यक्तं मानं द्वयं कल्पितं तदा राशी ७ । २ रूपत्रयकल्पने राशी ९।३ अथ द्वितीयोदाहरणे राशी या १ । का १ । एतयोराद्यस्य वर्गः याव १ पंचगुणः याव ५ द्वितीयस्य वर्गेण विंशत्या गुणितेन हीनः याव ५ काव २० षोडशयुतो नीलकवर्गसम इति न्यासः ।

याव ५ काव २०̇ रू १६
नीव १

द्वितीयपक्षस्य मूलम् नी १ । प्रथमपक्षे पूर्ववर्णाङ्कः प्रकृतिः ५ शेषं क्षेपः काव २०̇ रू १६ अत्रापि तावत्क्षेपस्य रूपाणि १६ क्षेपतया प्रकल्प्य ज्येष्ठं साध्यते—इष्टं कनिष्ठं २ तद्वर्गात् ४ प्रकृतिगुणात् २० क्षेप १६ युतात् ३६ मूलं ६ ज्येष्ठम् । अथ पूर्वक्षेपे काव २०̇ रू १६ अन्यवर्णस्य वर्गः कालकवर्गस्तेंस्याङ्केन धनत्वेन कल्पितेन २० ज्येष्ठवर्गो ३६ गुणितः ७२० क्षेपरूपैः १६ प्रकृति ५ गुणितै ८० र्भक्तो लब्धम् ९ अस्य मूलम् ३ अनेन क्षेपजो वर्णः कालको गुणितः का ३ पूर्वानीतकनिष्ठेन २ युतः का ३ रू २ इदमेव कनिष्ठम् अस्य वर्गः काव ९ का १२ रू ४ प्रकृति ५ गुणितः काव ४५ का ६० रू २० क्षेपेण काव २०̇ रू १६ युतः काव २५ का ६० रू ३६ अस्य मूलं ज्येष्ठम् का ५ रू ६ अत्र कालकस्य व्यक्तं मानं प्रकल्प्य कनिष्ठ का ३ रू २ मुत्थापितं जातं यावत्तावन्मानम् ५ कालकमानं तु व्यक्तं कल्पितमेव । एवं जातौ राशी ५ । १ ज्येष्ठ, का ५ रू ६, मुत्थापितं जातं नीलकमानम् ११ । एवं कालकस्य मानं द्वयं कल्पितं तदा जातौ राशी ६ । २ नीलकमानं च १६

खण्ड शेष रहे, अन्यथा क्रिया का निर्वाह न होगा) और शेष का सजातीय वर्गात्मक इष्ट कल्पना करना । यहाँ भी 'असकृत्समत्वे'

रूपत्रयं कालकमानं व्यक्तं चेत्तदा राशी ११ । ३ नीलकमानं च २१ एवं कल्पना-वशादानन्त्यम् ।

अथान्यदुदाहरणम्—

तौ राशी कथय सखे यदीयकृत्यो-
र्धृत्युर्वीपरिवृढनिघ्नयोः समासः ।
संयुक्तो भवति खगैः कृतिस्वरूप-
श्चेद्वीजे तव मतिरस्ति जागरूका ॥

उक्तवज्जातौ पक्षौ—

याव १८ काव १६ रू ६
नीव १

अत्र द्वितीयपक्षमूलम् नी १ । आद्यपक्षस्यास्य याव १८ काव १६ रू ६ वर्गप्रकृत्या मूलं ग्राह्यं तत्र पूर्ववर्णाङ्कः १८ प्रकृतिः शेषं क्षेपः काव १६ रू ६ अत्र कालकं त्रय-मिष्टं प्रकल्प्योत्थाप्य च जातः क्षेपः रू १५३ अथ कनिष्ठं द्वयं कल्पितं २ तस्य वर्गः ४ प्रकृति १८ गुणितः ७२ क्षेप १५३ युतः २२५ अस्य मूलं ज्येष्ठम् १५ कनिष्ठं २ प्रकृतिवर्णस्य यावत्तावतो मानम् । कालकमानं तु पूर्वमेव कल्पितम् । एवं जातौ राशी २ । ३ ज्येष्ठं नीलकमानम् १५ । अथालापः । राशी २ । ३ एतयोर्वर्गौ ४ । ९ क्रमेणाष्टादशषोडशनिघ्नौ ७२ । १४४ अनयोः समासः २१६ खगैः ९ युतो जातो वर्गरूपः २२५ अस्य मूलं १५ ज्येष्ठसमं जातम् ।

अथान्यदुदाहरणान्तरम्—

'तान् राशीन्मम कथयाशु यत्कृतीनां
विंशत्या तरणिभिराशुगैर्हतानाम् ।
संयोगो नयनकुपीटयोनिमिश्रः
स्याद्वर्गो गणितपयोधिकर्णधार ॥

अत्राप्युक्तवज्जातौ पक्षौ—

याव २० काव १२ नीव ५ रू ३२
नीव १

द्वितीयपक्षमूलम् नी १ प्रथमपक्षस्य वर्गप्रकृत्या मूलं तत्र प्रथमवर्णाङ्कः २० प्रकृतिः शेषं क्षेपः काव १२ नीव ५ रू ३२ अत्र कालकनीलकयोर्व्यक्ते मानें कल्पिते २।३.

इस पूर्वोक्त नियम से राशिमान अव्यक्त सिद्ध होता है। यदि आलाप विधि बाकी न हो तो, एक राशि को व्यक्त मान कर क्रिया करना चाहिए।

उपपत्ति—

एक पक्ष का मूल लेने के अनन्तर, दूसरे पक्ष में जो भावित के साथ वर्ण वर्ग रहते हैं, वे भी वर्गात्मक हैं। क्योंकि दोनों पक्ष की समता की गई है। और जितने खण्ड का मूल आता है, वह खण्ड भी वर्गराशि है। अन्यथा उसका मूल कैसे मिलेगा? अब, बृहद्राशिवर्गरूप संपूर्ण पक्ष में, लघुराशि वर्गरूप पक्षखण्ड को घटा देने से, जो शेष रहता है, वह लघु और बृहत् राशि का वर्गान्तर है। इसलिये इष्ट अन्तर कल्पना कर के 'वर्गान्तरं राशिवियोगभक्तं—' सूत्र के अनुसार योग होता है (अर्थात् वर्गान्तररूप शेष में राश्यन्तर रूप इष्ट का भाग देने से योग मिलता है) फिर, योग और अन्तर जान कर 'योगोऽन्तरेणोनयुतोऽर्धितस्तौ राशी—' इस संक्रमण विधि से राशि ज्ञात होती हैं। यहां योग में अन्तर, जोड़ कर, आधा करने से बड़ी राशि होती है, पर उस की आवश्यकता नहीं है। इसी भाँति योग में अन्तर घटा कर, आधा करने से छोटी राशि होती है। वहाँ इष्ट से भाजित शेष योग है, इसलिये इष्ट कल्पित अन्तर से ऊन योग का आधा लघुराशि है। अब पहले अलग किया गया पक्षखण्ड वर्गात्मक लघु राशि है, इसलिये उस का मूल लघुराशि है। इसीलिये उन का समीकरण करना युक्त है। इस से 'शेषकस्य, इष्टोद्धृतस्येष्टविवर्जितस्य दलेन तुल्यं हि तदेव कार्यम्' यह उपपन्न हुआ॥

एतयोर्वर्गौ ४। ९ आभ्यामुक्तवर्णावुत्थाप्य रूपेषु ३२ प्रक्षिप्य जातः क्षेपः १२५ अथ रूपपञ्चकं कनिष्ठं कल्पितं ५ तस्य वर्गः २५ प्रकृतिः २० गुणः ५०० क्षेप १२५ युतः ६२५ अस्य मूलं ज्येष्ठम् २५ कनिष्ठं प्रकृतिवर्णस्य यावत्तावतो मानम् ५ कालकनीलकमाने पूर्वमेव कल्पिते २। ३ एवं जाता राशयः ५। २। ३ ज्येष्ठं पीतकमानम् २५ आलापः-राशयः ५। २। ३ एतेषां वर्गाः २५। ४। ९ क्रमेण विंशत्या द्वादशभिः पञ्चभिश्च गुणिताः ५००। ४८। ४५ एतेषां योगः ५९३ द्वात्रिंशता मिश्रो जातो वर्गः ६२५ अस्य मूल २५ ज्येष्ठ मूल समम्॥

उदाहरणम्—

तौ राशी वद यत्कृत्योः सप्ताष्टगुणयोर्युतिः ।
मूलदा स्याद्वियोगस्तु मूलदो रूपसंयुतः ६२॥

अत्र राशी या १ । का १ अनयोर्वर्गयोः सप्ताष्टगुणयोर्युतिः याव ७ काव ८ अयं वर्ग इति नीलकवर्गेण समीकरणार्थं न्यासः ।

याव ७ काव ८ नीव ०
याव ० काव ० नीव १

समशोधने कृते कालकवर्गाष्टकं प्रक्षिप्य गृहीतं नीलकपक्षस्य मूलम् नी १ परपक्षस्यास्य याव ७ काव ८ वर्गप्रकृत्या मूले तत्र यावत्तावद्वर्गे योऽङ्कः सा प्रकृतिः ७ शेषं क्षेपः काव ८ 'इष्टं ह्रस्वं—' इत्यादिना कालकद्वयमिष्टं प्रकल्प्य जाते मूले क का २ । ज्ये का ६ ज्येष्ठं नीलकमानं कनिष्ठं यावत्तावन्मानं तेन यावत्तावदुत्थाप्य जातौ राशी का २ । का १ पुनरेतयोर्वर्गयोः सप्ताष्टगुणयोरन्तरं सैकं जातं काव २० रू १ एतद्वर्ग इति प्राग्वल्लब्धं कनिष्ठमूलम् २ । वा । ३६ एतत्कालकमानेनोत्थापितौ जातौ राशी ४।२वा।७२।३६ ।

उदाहरण—

वे दो कौन राशि हैं, जिन के वर्गों को, क्रम से सात, आठ से गुण कर जोड़ लेते हैं तो, वह योग मूलप्रद होता है और अन्तर में एक जोड़ देने से मूलप्रद होता है।

कल्पना किया राशि या १। का १ इन के वर्ग याव १। काव१। सात और आठ से गुणित याव ७। काव ८ इन के योग का, नीलकवर्ग के साथ समीकरण के लिये न्यास—

याव ७ काव ८ नीव ०

याव ० काव ० नीव १

समशोधन से पक्ष यथा स्थित रहे, अनन्तर दूसरे पक्ष का मूल नी १ आया और पहले पक्ष याव ७ काव ८ का मूल वर्गप्रकृति से लेना चाहिये। यावत्तावत् के वर्गाङ्क ७ को प्रकृति और शेष कालक वर्गाङ्क ८ को क्षेप कल्पना किया। क्षेप के वर्गात्मक होने से, कनिष्ठ का २ कल्पना किया, उस का वर्ग काव ४ प्रकृति ७ से गुणित काव २८ हुआ। इस में क्षेप काव ८ जोड़ देने से, काव३६ का मूल का ६ ज्येष्ठ हुआ। यहां कनिष्ठ का २ प्रकृतिवर्ण यावत्तावत् का मान है। और ज्येष्ठ का ६ दूसरे पक्ष का मूल है। इसलिये उसका नीलक के साथ समीकरण के अर्थ न्यास—

का ६ रू ०

नी १ रू ~~६~~ ०

समशोधन से नीलक मान, ज्येष्ठ का ६ आया और यावत्तावन्मान का २ से यावत्तावन् १ में उत्थापन देने से पहली राशि का २ हुई और दूसरी राशि पूर्व कल्पित का १ है। इन के वर्ग काव ४। काव १ सात और आठ से गुणित काव २८। काव ८ हुए इन का अन्तर रूप युत काव २० रू १ हुआ, यह वर्ग है इस कारण नीलकवर्ग के साथ समीकरण के लिये न्यास—

काव २० रू १

नीव १ रू ०

समशोधन से पक्ष यथा स्थित रहे। दूसरे पक्ष का मूल नी १

आया और पहले पक्ष काव २० रू १ का मूल वर्गप्रकृति से, कनिष्ठ २ कल्पना किया, उस का वर्ग ४ प्रकृति २० से गुणित ८० में क्षेप १ जोड़ देने से ८१ का मूल ९ ज्येष्ठ हुआ। कनिष्ठ २ प्रकृतिवर्ण कालक का मान है, इससे का २ । का १ इन पहले की राशियों में उत्थापन देना है। कालक मान दूसरा राशि २ है, इस को २ से गुणा देने से पहली राशि ४ हुआ। इस भाँति दोनों राशि ४ । २ अथवा, कनिष्ठ ३६ से ज्येष्ठ १६१ हुआ, कालक मान कनिष्ठ, दूसरी राशि ३६ है यह २ से गुणित पहली राशि ७२ हुई इस भाँति राशि ७२ । ३६ । और ज्येष्ठ नीलक का मान ९ है अथवा १६१।

आलाप—राशि ४ । २ के वर्ग १६ । ४ हुए ७ । और ८ से गुणा देने से ११२ । ३२ हुए। इन का योग १४४ मूलप्रद है और अन्तर ८० सरूप ८१ मूलप्रद है ॥

उदाहरणम्—

घनवर्गयुतिर्वर्गो ययो राश्योः प्रजायते ।
समासोऽपि ययोर्वर्गस्तौ राशी शीघ्रमानय ॥९०

अत्र राशी या १ । का १ अनयोर्वर्गघनयोर्योगः याव १ काघ १ अयं वर्ग इति नीलकवर्गसमं कृत्वा पक्षयोःकालकघनं प्राक्षिप्य नीलकपक्षस्य मूलं नी १ परपक्षस्यास्य याव १ काघ १ वर्गप्रकृत्या मूले तत्र यावत्तावद्वर्गे योऽङ्कः सा प्रकृतिः शेषं क्षेपः प्रकल्प्यः ।

प्रकृतिः याव १ क्षेपः काघ १

'इष्टभक्तो द्विधा क्षेप—' इत्यादिना कालके-

ष्टेन जाते मूले क $\frac{\text{काव १ का }\dot{\text{१}}}{\text{२}}$ ज्ये $\frac{\text{काव १ का १}}{\text{२}}$

कनिष्ठं यावत्तावन्मानं तेनोत्थाप्य जातौ राशी। $\frac{\text{काव १ का }\dot{\text{१}}}{\text{२}}$ का १ अनयोः समासः $\frac{\text{काव १ का १}}{\text{२}}$

अयं वर्ग इति पीतकवर्गेण समीकरणं कृत्वा पक्षशेषं चतुर्भिः संगुण्य रूपं प्रक्षिप्य प्रथमपक्षमूलम् का २ रू १ परपक्षस्यास्य पीव ८ रू १ वर्गप्रकृत्या मूले

क ६ ज्ये १७

वा, क ३५ ज्ये ९९

ज्येष्ठं पूर्वमूलेनानेन का २ रू १ समं कृत्वा लब्धं कालकमानम् ८ वा ४९ अनेनोत्थाप्य जातौ राशी २८ । ८ वा । ११७६ । ४९ ।

अथवा राशी याव २ । याव ७ अनयोर्योगः याव ९ स्वयं वर्ग एव । अथानयोर्घनवर्गयोर्योगः यावघ८यावव४९ एष वर्ग इति कालकवर्गेण समीकृत्य प्राग्वद्यावत्तावद्वर्गेणापवर्त्य लब्धं यावत्तावन्मानम् २ । वा ७ अनेनोत्था-

पितौ राशी २८।८। वा ६८।३४३। वा १८। ६३। वा १२८। ४४८।

अथ वर्गगतप्रकृतावुदाहरणमनुष्टुभाह—यनेति। स्पष्टार्थमेतत्॥

उदाहरण—

वे दो कौन राशि हैं, जिन के घनवर्गों का योग और उन का योग, वर्ग होता है।

कल्पना किया या १। का १ इन में पहले का वर्ग और दूसरे का घन याव १। काघ १ हुआ, उनका योग याव १ काघ १ का नीलक वर्ग के साथ समीकरण के लिये न्यास—

याव १ काघ १
नीव १

समशोधन से हुए—

याव १ काघ ०
काघ १̇ नीव १

इन में कालक घन जोड़ देने से हुए—

याव १ काघ १
नीव १

दूसरे पक्ष का मूल नी १ आया, पहले पक्ष के यावत्तावत् वर्गाङ्क को प्रकृति और कालक घनाङ्क को क्षेप कल्पना किया—

प्रकृति ।	क्षेप ।
याव १	काघ १

अब 'इष्टभक्तो द्विधाक्षेप—' इसके अनुसार, क्षेप काघ १ में इष्ट का १ का भाग देने से काव १ लब्ध आया, वह इष्ट का १ से ऊन काव १ का १̇ और युत काव १ का १ हुआ और दोनों स्थानोंमें आधा करने से हुआ—

$\frac{\text{काव १ का } \dot{१}}{२}$ । $\frac{\text{काव १ का १}}{२}$

इनमें पहले आधे में प्रकृतिमूल या १ का भाग देने से यावत्तावत्

का मान $\frac{\text{काव १ का १̇}}{\text{२}}$ मिला और ज्येष्ठ यथास्थित $\frac{\text{काव १ का १}}{\text{२}}$ रहा। अब पहली राशि के स्थान में, यावत्तावत् का मान $\frac{\text{काव १ का १̇}}{\text{२}}$ हुआ और दूसरी राशि का १ है, इन का समच्छेद से योग $\frac{\text{काव १ का १}}{\text{२}}$ हुआ, यह वर्ग है तो पीतकवर्ग के साथ समीकरण के लिये न्यास—

$$\frac{\text{काव १ का १}}{\text{२}}$$

पीव १

समच्छेद और छेदगम से हुए—

काव १ का १

पीव २

चार से गुण कर, रूप जोड़ देने से हुए—

काव ४ का ४ रू १

पीव ८ रू १

पहले पक्ष का मूल का २ रू १ आया, दूसरे पक्ष में पीतक वर्गांक ८ को प्रकृति रू १ को क्षेप कल्पना किया और इष्ट ६ कनिष्ठ का वर्ग ३६ प्रकृति ८ गुणित २८८ क्षेप १ युत २८९ हुआ, इस का मूल १७ ज्येष्ठ हुआ। इस का पहले मूल के साथ समीकरण के लिये न्यास—

का २ रू १

का ० रू १७

समशोधन से कालक का मान ८ मिला। इस से $\frac{\text{काव १ का १̇}}{\text{२}}$। का १ इन दोनों राशियों में उत्थापन देते हैं—यदि १ कालक का ८ मान है तो कालकवर्ग का क्या ? यों अनुपात से 'वर्गेण वर्गं गुणयेत्—' के अनुसार उस का वर्ग ६४ हुआ। इस में इसी राशि का

दूसरा खण्ड ऋणकालक का मान ८ जोड़ देने से ५६ हुआ । अब हर २ का भाग देने से पहली राशि २८ आई और दूसरी राशि कालकमान ८ है । दोनों राशि २८ । ८

अथवा, दूसरे पक्ष पीव ८ रू १ के मूल के लिये इष्ट ३५ कनिष्ठ कल्पना किया, उस का वर्ग १२२५ प्रकृति ८ गुणित ९८०० और क्षेप १ युत ९८०१ हुआ, इस का मूल ९९ ज्येष्ठ है । इसका पहले पक्ष के मूल का २ रू १ के साथ समीकरण करने से कालक का मान ४९ आया यह दूसरी राशि है । अब उक्त रीति के अनुसार, उसका वर्ग २४०१ कालक मान ४९ से ऊन २३५२ और हर २ से भाजित पहली राशि ११७६ हुई । इस भाँति दोनों राशि ११६ । ४९ ।

अथवा, याव २ और याव ७ राशि हैं इनका योग याव ९ स्वतः वर्ग है, इसलिये उन के घन यावघ ८ और वर्ग यावव ४९ का योग यावघ ८ यावव ४९ हुआ । यह वर्ग है, इस कारण कालकवर्ग के साथ समीकरण के लिये न्यास—

यावघ ८ यावव ४९
काव १

यहाँ दूसरे पक्ष का मूल का १ आया और पहले पक्ष में यावत्तावद्वर्ग का अपवर्तन देने से, याव ८ रू ४९ । प्रकृति याव ८ और क्षेप रू ४९ हुआ । इष्ट २ कनिष्ठ माना उस का वर्ग ४ प्रकृति ८ गुणित ३२ क्षेप ४९ युत ८१ का मूल ९ ज्येष्ठ हुआ, कनिष्ठ २ प्रकृतिवर्ण यावत्तावत् का मान है । उस के वर्ग ४ से गुणा ज्येष्ठ ४×९= ३६ परपक्ष का मूल हुआ । इस का पूर्वमूल का १ के साथ समीकरण करने से कालक का मान ३६ मिला । पूर्वकल्पित राशि याव २ । याव ७ हैं इन में यावत्तावत् मान २ से (अर्थात् उत्थाप्य राशि के वर्गगत होने से मान २ वर्ग ४ से) उत्थापन देने से, राशि आईं । ८ । २८ ।

अथवा, कनिष्ठ ७ हैं इस का वर्ग ४९ प्रकृति ८ गुणित ३९२ क्षेप ४९ युत ४४१ का मूल २१ ज्येष्ठ हुआ । यहाँ भी परपक्ष में

वर्गवर्ग का अपवर्तन देने से ज्येष्ठ कनिष्ठ ७ के वर्ग ४९ से गुणा देने से परपक्ष का मूल १०२९ हुआ। यह कालक का मान है और कनिष्ठमिति यावत्तावन्मान ७ अर्थात् ४९ से पूर्व राशि में उत्थापन देने से राशि मिली ९८। ३४३।

'सभाविते वर्णकृती तु यत्र—' एतद्विषयीभूतमुदाहरणम्—

ययोर्वर्गयुतिर्घातयुता मूलप्रदा भवेत्।
तन्मूलगुणितो योगः सरूपश्चाशु तौ वद॥९॥

अत्र राशी या १। का १ अनयोर्वर्गयुतिर्घातयुता याव १ याकाभा १ काव १ अस्या मूलं नास्तीति नीलकवर्गसमं कृत्वा कालकवर्गं प्रक्षिप्य पक्षौ षट्त्रिंशता संगुण्य लब्धं नीलकपक्षमूलम् नी ६ परपक्षस्यास्य याव ३६ याकाभा ३६ काव ३६ यावतो मूलमस्ति तावतः 'सभाविते वर्णकृती' इत्यादिना मूलं गृहीतम् या ६ का ६ शेषस्यास्य काव २७ इष्टेन कालकेन १ हृतस्येष्टकालकवर्जितस्य च दलेन का १३ तन्मूलसमं कृत्वा लब्धं यावत्तावन्मानम् का $\frac{५}{३}$ अनेन यावत्तावदुत्थाप्य जातौ राशी का $\frac{५}{३}$। का १ अनयोर्वर्गयुतेः काव $\frac{३४}{९}$ घातयुतायाः काव $\frac{४९}{९}$ मूलमक $\frac{७}{३}$ अनेन

राशियोगो का $\frac{८}{३}$ गुणितः काव $\frac{५६}{९}$ सरूपो जातः काव $\frac{५६}{९}$ रू ९ अमुं पीतकवर्गसमं कृत्वा समच्छेदीकृत्य पक्षयोर्नव रूपाणि प्रक्षिप्य लब्धं कनिष्ठमूलम् ६ वा १८० एतत्कालकमानमित्यनेनोत्थापितौ जातौ राशी १०।६ वा ३००।१८०। एवमनेकधा॥

अथ 'सम्भाविते वर्णकृते तु यत्र–' एतद्विषयीभूतमुदाहरणमनुष्टुभाह–ययोरिति। हे गणक, ययो राश्योर्वर्गयुतिः राशिघातेन युता सती मूलप्रदा स्यात् तथा तन्मूलेन राशियोगो गुणितः सैकश्च मूलप्रदः स्यात्तौ राशी वद।

उदाहरण—

वे दो कौन राशि हैं, जिन के वर्गों का योग, राशि घात से युक्त मूलप्रद होता है और उस मूल से गुणा उनका योग, एक से युक्त मूलप्रद होता है।

यहां या १। का १ राशि हैं इन का वर्गयोग घात युत 'याव १ याकाभा १ काव १' यह वर्ग है। इस कारण नीलकवर्ग के साथ समीकरण के लिये न्यास—

याव १ याकाभा १ काव १ नीव०
याव ० याकाभा ० काव ० नीव १

समशोधन करने से हुए—

याव १ याकाभा १ काव ० नीव ०
याव ० याकाभा ० काव १ नीव १

कालकवर्ग जोड़ देने से हुए—

याव १ याकाभा १ काव १ नीव ०
याव ० याकाभा ० काव ० नीव १

३६ से गुणने से हुए—

याव ३६ या का भा ३६ काव ३६ नीव०

याव० या का भा० काव ० नीव ३६

दूसरे पक्ष का मूल नी ६ आया और अन्य पक्ष 'याव ३६ या का भा ३६ काव ३६' में जितने का मूल मिले वह लेना चाहिये, जिससे भावित का भङ्ग हो, पहले खण्ड याव ३६ का मूल या ६ आया और तीसरे खण्ड काव ३६ में नौ से गुणित कालकवर्ग को घटा देने से काव २७ शेष रहा और उस शोधित खण्ड काव ९ का मूल का ३ आया। अब या ६। का ३ इन के दूने घात याकाभा ३६ को 'संशोध्यमानं स्वमृणत्वमेति–' इस के अनुसार, अन्य पक्ष के दूसरे खण्ड याकाभा ३६ में घटा देने से, वह उड़ गया और तृतीय खण्ड संबन्धी काव २७ शेष रहा, इसमें इष्ट कालक १ भाग देने से भाज्य काव २७ ज्यों का त्यों रहा। परन्तु वर्गावर्ग में वर्ग का भाग देने से, लब्धि वर्णात्मक का १ आती है। इस भाँति वह अन्य पक्षीय तृतीय खण्ड संबन्धी शेष का २७ रहा, इस में इष्ट कालक १ घटाने से शेष का २६ का आधा का १३ पूर्वमूल या ६ का ३ के तुल्य है, इस कारण समीकरण के लिये न्यास—

या ६ का ३

या ० का १३

समशोधन से यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{१०}{६} = \frac{५}{३}$ आई इससे यावत्तावत् में उत्थापन देने से पहली राशि का $\frac{५}{३}$ और दूसरी पूर्व कल्पित का १ है इनके वर्गों $\frac{\text{का व २५}}{९}$। का व १ का योग $\frac{\text{काव ३४}}{९}$ है इस में राशिघात $\frac{\text{काव ५}}{३}$ जोड़ देने से $\frac{\text{काव ४९}}{९}$ हुआ इस का मूल $\frac{\text{का ७}}{३}$ आया। इससे का $\frac{५}{३}$। का १ इन दोनों राशियों के योग का

$\frac{८}{३}$ को गुणा देने से $\frac{\text{काव ५६}}{९}$ हुआ । इस में १ जोड़ देने से $\frac{\text{काव ५ रू ९}}{९}$ इसका पीतकवर्ग के साथ समीकरण के लिये न्यास—

$$\frac{\text{काव ५६ रू ९}}{९}$$

पीव १

समच्छेद और छेदगम से हुए—

काव ५६ रू ९

पीव ९

समशोधन करने से हुए—

काव ५६

पीव ९ रू ९̇

इन में ९ जोड़ देने से एक पक्ष का मूल पी ३ आया, अन्य पक्ष का वर्ग प्रकृति से प्रकृति काव ५६ और क्षेप ९ है । इष्ट ६ कनिष्ठ कल्पना किया, इसका वर्ग ३६ प्रकृति ५६ गुणित २०१६ क्षेप ९ युत २०२५ हुआ, इसका मूल ४५ ज्येष्ठ हुआ । यहाँ कनिष्ठ ६ कालक का मान है और उससे $\frac{\text{का ५ । का १}}{३}$ इस राशि में उत्थापन देने से $\frac{३०}{३}$ । ६ राशि हुई । इन में पहली राशि $\frac{३०}{३}$ में हर ३ का भाग देने से १० और दूसरी ६ हुई । अथवा, कनिष्ठ १८० से उत्थापन देने से राशि ३०० । १८० ।

आलाप—राशि १० । ६ का वर्ग १०० । ३६ योग १३६ राशि घात ६० युत १९६ मूलप्रद है । और इस मूल १४ से गुणित राशि योग १४×१६=२२४ सरूप २२५ मूलप्रद है ॥

अथ कस्याप्युदाहरणम्—

'यत्स्यात्साल्यवधार्धतो घनपदं यद्वर्गयोगा-त्पदं यद्योगान्तरयोर्द्विकाभ्यधिकयोर्वर्गान्त-

रात्साष्टकात् । तच्चैतत्पदपञ्चकं तु मिलितं स्याद्वर्गमूलप्रदं तौ राशी कथयाशुनिश्चलमते षट्काष्टकाभ्यां विना ॥'

साल्यवधस्यार्धाद् घनपदं ग्राह्यम् । अत्रालापानां बहुत्वेऽसकृत्क्रिया कार्या सा न निर्वहत्यतो बुद्धिमता तथा राशी कल्प्यौ यथैकेनैव वर्णेन सर्वेऽप्यालापा घटन्ते । तथा कल्पितौ राशी याव १ रू १̇ । या २ । अनयोः साल्यवधार्धतो घनपदं या १ वर्गयोगात्पदम् याव १ रू १ द्व्यधिकयोगपदम् या १ रू १ द्व्यधिकान्तरपदम् या १ रू १̇ साष्टवर्गान्तरपदम् याव १ रू ३̇ एषां योगः याव २ या ३ रू २̇ अयं वर्ग इति कालकवर्गसमं कृत्वा पक्षावष्टाभिः संगुण्य पञ्चविंशतिरूपाणि प्रक्षिप्य प्रथमपक्षस्य मूलम् या ४ रू ३ परपक्षस्यास्य काव ८ रू २५ वर्गप्रकृत्या मूले

क ५ । ज्ये १५

वा, क ३० । ज्ये ८५

वा, क १७५ । ज्ये ४९५

ज्येष्ठं पूर्वपदेन समं कृत्वा लब्धं यावत्तावन्मानम् ३ । वा $\frac{४१}{२}$। वा १२३। अनेनोत्थापितौ राशी ६।८ वा $\frac{१६७७}{४}$।४१। वा १५१२८। २४६ एवमनेकधा। अथवा। यावत्तावद्वर्गो यावत्तावद्द्वयेन युत एको राशिः। यावत्तावद्द्वयं (ऋण) रूपद्वययुतमन्यराशिः।

याव १ या २। या २ रू २। अथवा। यावत्तावद्वर्गो यावत्तावच्चतुष्टयं रूपत्रययुतं चैको राशिः यावत्तावद्द्वयं रूपचतुष्टयं चान्यः याव १ या ४ रू ३। या २ रू ४।

अथ क्रियालाघवं प्रदर्शयितुं कस्यचिदुदाहरणं शार्दूलविक्रीडितेनाह—यदिति । हे निश्चलमते षट्काष्टकाभ्यां विना यतः सर्वे आलापास्तयोर्घटन्ते इति तात्पर्यम् तौ राशी आशु कथय, ययोर्लघुबृहद्राश्योर्वधः साल्यः, अल्पेन लघुराशिना युक्तः साल्यः। स चासौ वधश्च साल्यवधः, तस्यार्धाद् घनपदं यत्। अत्र 'साल्यहतेर्दलात्' इति पाठश्चेत्साधीयान् यतोऽस्मिन् पाठे 'साल्या' इति हतिविशेषणं स्फुटं प्रतीयते। तयोरेव वर्गयोर्योगाद्यत्पदं वर्गमूलमिति यावत्। तयोरेवद्विकेन द्वाभ्यामधिकयोर्योगान्तरयोर्ये मूले तयोरेव साष्टकात् वर्गान्तराद्यत्पदम् । एतत्पदानां पञ्चकं मिलितमेकीकृतं सद्वर्गमूलप्रदं स्यात् ॥

उदाहरण—

वे दो कौन राशि हैं, जिन के घात में लघुराशि जोड़ कर, आधा करने से घनमूल आता है। और उन्हीं राशियों के वर्गों का योग

करने से वर्गमूल आता है, और उनके योग तथा अन्तर में, दो जोड़ देने से वर्गमूल आता है, और उन के वर्गान्तर में आठ मिला देने से वर्गमूल आता है, इस भाँति जो पांचों मूल आते हैं उन का योग भी मूलप्रद होता है। परंतु राशि छ और आठ से भिन्न होने चाहिए।

यहाँ पर अनेक आलाप होने से सकृत् (एकबारगी) क्रिया का निर्वाह नहीं होता, इसलिये ऐसी राशि कल्पित की है जिस में एक ही वर्ण से सब आलाप घटित होवें। जैसा——याव १ रू १̇। या २। इन का घात याघ २ या २̇ हुआ, इस में लघुराशि या २ जोड़ देने से याघ २ हुआ, इसके आधे का घन मूल या १ है। राशियों के वर्ग यावव १ याव २̇ रू १। याव ४ का यथास्थान योग यावव १ याव २ रू १ हुआ। इसका वर्गमूल याव १ रू १ है। राशियों याव १ रू १̇। या २ का योग, याव १ या २ रू १̇ हुआ, इस में रूप २ जोड़ देने से याव १ या २ रू १ हुआ, इसका मूल या १ रू १̇ है। राशियों याव १ रू १̇। या २ का अन्तर, याव १ या २̇ रू १̇ हुआ। इस में रूप २ जोड़ देने से याव १ या २̇ रू १ हुआ। इसका मूल या १ रू १̇ है। राशियों के वर्ग यावव १ याव २̇ रू १। याव ४ का अन्तर यावव १ याव ६̇ रू १ हुआ, इस में रूप ८ जोड़ देने से यावव १ याव ६̇ रू ९ हुआ। इस का मूल याव १ रू ३̇ है। इन पांचों मूलों का यथाक्रम न्यास——

या १
याव १ रू १
या १ रू १
या १ रू १̇
याव १ रू ३̇

यथास्थान योग करने से याव २ या ३ रू २̇ हुआ। यह वर्ग है इस कारण कालकवर्ग के साथ समीकरण के लिये न्यास——

याव २ या ३ रू २̇
काव १

समशोधन करने से हुए—

याव २ या ३
काव १ रू २

आठ से गुणा कर, रूप ६ जोड़ देने से हुए—

याव १६ या २४ रू ६
काव ८ रू २५

पहले पक्ष का मूल या ४ रू ३ आया और दूसरे पक्ष में कालकवर्गाङ्क ८ को प्रकृति और रूप २५ को क्षेप कल्पना किया, फिर इष्ट ५ कनिष्ठ कल्पना कर के उस का वर्ग २५ हुआ प्रकृति ५ से गुणाने से २०० हुआ इसमें क्षेप २५ जोड़ देने से २२५ हुआ इसका मूल १५ ज्येष्ठ है। अथवा, कनिष्ठ ३० है। इस से ज्येष्ठ ८५ हुआ। अथवा कनिष्ठ १७५ है इस से ज्येष्ठ ४९५ हुआ। अब उन ज्येष्ठ मूलों का, पूर्वानीत या ४ रू ३ इस प्रथम पक्षीय मूल के साथ समीकरण के लिये न्यास——

या ४ रू ३
या० रू १५

या ४ रू ३
या० रू ८५

या ४ रू ३
या० रू ४९५

समशोधन से क्रम से यावत्तावत् मान मिले ३ वा -४१/२ वा १२३। अब पहले यावत्तावन्मान ३ से राशि याव १ रू १̇। या २ में उत्थापन देते हैं—'वर्गेण वर्ग गुणयेत्—' के अनुसार, यावत्तावन्मान ३ का वर्ग ९ हुआ, इसमें १ कम कर देने से पहली राशि ८ हुई। इस को दूनी करने से दूसरी राशि ६ हुई। इस भाँति -४१/२ इस यावत्तावन्मान से राशि में उत्थापन देने से राशि $\frac{१६७७}{४}$ । ४१ आईं। और १२३ इस यावत्तावन्मान से राशियों में उत्थापन देने से १५१२८। २४६ राशि मिलीं।

अथवा। याव १ या २। या २ रू २ ये दो राशि कल्पना किये—

इन के घात के लिये न्यास—

याव १ या २

या २ रू २

याघ २ याव ४

याव २ या ४

घात= याघ २ याव ६ या ४

घात में छोटी राशि या २ रू २ जोड़ देने से, याघ २ याव ६ या ६ रू २ हुआ। इसके आधे याघ १ याव ३ या ३ रू १ का घन-मूल आता है। मूल के लिये 'आद्यं घनस्थानमथाघने द्वे—' इस रीति के अनुसार संकेतित करने से हुआ—

| — — |
याघ १ याव ३ या ३ रू १

अन्तघन याघ १ में या १ का घन घटा देने से शेष 'याव ३ या ३ रू १' रहा और उसके आद्य खण्ड याव ३ में त्रिगुणा घनमूलवर्ग याव ३ का भाग देने से रू १ लब्धि आई और शेष या ३ रू १ रहा। इसमें फलवर्ग १ अन्त्य या १ तथा ३ से गुणित या ३ घटा देने से शेष रू १ रहा, इसमें फल रू १ वर्ग रू १ घटा देने से निःशेषता हुई, और घनमूल या १ रू १ आया। इसका वर्ग याव व १ याघ ४ याव ४। याव ४ या ८ रू ४ इन का योग यावव १ याघ ४ याव ८ या ८ रू ४ हुआ, इसका मूल याव १ या २ रू २ मिला। राशियों का योग द्वियुक्त याव १ या ४ रू ४ हुआ, इसका मूल या १ रू २ है। अब राशियों याव १ या २। या २ रू २ का अन्तर करना है तो, याव १ या २ इस बड़ी राशि में छोटी राशि या २ रू २ घटा देने से शेष याव १ रू २ रहा। इसमें रूप २ जोड़ देने से याव १ शेष बचा। इसका मूल या १ है। राशि के वर्ग याव व १ याघ ४ याव ४। याव ४ या ८ रू ४ का अन्तर याव व १ याघ ४ याव० या ८ रू ४ हुआ, इस में रू ८ जोड़ देने से याव व १ याघ ४ याव० या ८ रू ४ हुआ, इस का मूल लेने के लिये न्यास—

| — | — |
याव व १ याघ ४ याव० या ८ रू ४

पहले खण्ड का मूल याव १ आया, द्विगुण उस याव २ का दूसरे खण्ड याव ४ में भाग देने से लब्धि या २ आई और इसके वर्ग याव ४ को तीसरे खण्ड याव० में घटा देने से 'च्युतं शून्यतस्तद्विपर्यासमेति' इस के अनुसार, वियोज्य के शून्य होने से वियोजक याव ४̇ ऋण हुआ। इस भाँति शेष याव ४̇ या ८̇ रू ४ बचा। अब इस में लब्ध याव १ या २ को दूना करके भाग देने से लब्धिरूप २̇ ऋण आई। और शेष रू ४ रहा। इस में आगतरूप २̇ का वर्ग रूप ४ घटा देने से निःशेषता हुई। और मूल याव १ या २ रू २̇ मिला। अब सब मूलों का क्रम से न्यास—

(१) या १ रू १
(२) याव १ या २ रू २
(३) या १ रू २
(४) या १
(५) याव १ या २ रू २̇

इन का यथास्थान योग करने से याव २ या ७ रू ३ हुआ। यह वर्ग है, इसलिये कालकवर्ग के साथ समीकरण करने के लिये न्यास—

याव २ या ७ काव ० रू ३
याव ० या ० काव १ रू ०

समशोधन करने से हुए—

याव २ या ७ काव ० रू ०
याव ० या० काव १ रू ३̇

आठ से गुण कर रूप ४९ जोड़ देने से हुए—

याव १६ या ५६ रू ४९
काव ८ रू २५

पहले पक्ष का मूल या ४ रू ७ आया और दूसरे पक्ष काव ८ रू २५ का मूल वर्गप्रकृति से लेना चाहिये। कालकवर्गाङ्क ८ को प्रकृति और रूप २५ को क्षेप कल्पना किया, फिर इष्ट ५ कनिष्ठ का वर्ग २५ प्रकृति ८ से गुणने से २०० हुआ, इसमें क्षेप २५ जोड़ने

से २२५ इसका मूल १५ ज्येष्ठ है। इसका पहले पक्ष के मूल के साथ समीकरण के लिये न्यास—

या ४ रू ७

या० रू १५

समशोधन से यावत्तावत् की उन्मिति २ आई। इस से याव १ या २ या २। रू २ इन पूर्व राशियों में उत्थापन देकर, रूप जोड़ देने से राशि ८। ६। अथवा। इष्ट ३० कनिष्ठ है, इस से ज्येष्ठमूल ८५ आया। इस का पूर्वमूल या ४ रू ७ के साथ समीकरण करने से यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{३९}{२}$ आई। इस से पहली राशि याव १ या २। या २ रू २ में उत्थापन देना है तो 'वर्गेण वर्गं गुणयेत्—' इसके अनुसार उन्मिति का वर्ग $\frac{१५२१}{४}$ हुआ। यह यावत्तावत् की उन्मिति है, इसमें द्विगुण उन्मिति $\frac{२ \times ३९}{२} = \frac{७८}{२}$ समच्छेद पूर्वक जोड़ देने से, पहली राशि $\frac{१६७७}{४}$। और यावत्तावत् उन्मिति $\frac{३९}{२}$ दूना करने से $\frac{७८}{२}$ हुई, इस में रूप २ जोड़ देने से दूसरी राशि ४१ आई। अथवा, यावत्तावत् वर्ग में ऋण यावत्तावत् दो पहली राशि और यावत्तावत् दो में ऋण रूप दो दूसरी राशि है याव १ या २̇। या २ रू २̇। इन से उक्त रीति के अनुसार, यावत्तावत् की उन्मिति $\frac{४३}{२}$ मिली। अथवा, याव १ या ४ रू ३ यह पहली राशि है और या २ रू ४ यह दूसरी है। इन से भी उक्त रीति के अनुसार, यावत्तावन्मान $\frac{३७}{२}$ आया॥

एवं सहस्रधा गूढा मूढानां कल्पना यतः।
क्रियया कल्पनोपायस्तदर्थमथ कथ्यते॥७०॥

---

१ 'तेषामथ च' इति मूलपुस्तकस्थः पाठः।

सूत्रम्—

सरूपमव्यक्तमरूपकं वा
वियोगमूलं प्रथमं प्रकल्प्य ।
योगान्तरक्षेपकभाजिताद्य-
द्वर्गान्तरक्षेपकतः पदं स्यात् ॥ ८० ॥
तेनाधिकं तत्तु वियोगमूलं
स्याद्योगमूलं तु तयोस्तु वर्गौ ।
स्वक्षेपकोनौ हि वियोगयोगौ
स्यातां ततः संक्रमणेन राशी ॥ ८१ ॥

अथ मन्दबोधार्थं राशिकल्पनोपाय आवश्यक आस्ते । तत्र तत्प्रतिपादकं सूत्रमेव यदि पठ्यते तर्हि कावेतौ राशी इति यदर्थमदः सूत्रं प्रवृत्तमिति कस्यचिदनवबोधो भवेत्तन्निरासार्थमादावनुष्टुभा प्रतिजानीते—एवमिति। यथेह चतुर्धा राशिकल्पना कृता एवं राशिकल्पना सहस्रधास्ति ता यतो मूढानां गूढाऽतस्तदर्थं मन्दार्थं क्रियया कल्पनोपायः कथ्यते । अथ प्रतिज्ञातमुपायमुपजातिकाभ्यामाह—सरूपेति । प्रथमं सरूपमरूपकं वा अव्यक्तं वियोगमूलं प्रकल्प्य पुनर्वर्गान्तरक्षेपात् योगान्तरक्षेपकभाजिताद्यल्लब्धं तस्य यत्पदं तेनाधिकं सहितं वियोगमूलं योगमूलं स्यात्। ततस्तयोर्योगवियोगमूलयोर्वर्गौ स्वक्षेपकोनौ वियोगयोगौ स्यातां ततो वियोगयोगाभ्यां संक्रमसूत्रेण राशी भवेताम् ॥

जैसे यहाँ पर चार प्रकार से राशि कल्पना की है, इसी भाँति नानाविध राशियों की कल्पना हो सकती है । परन्तु वह कठिन है, इसलिये, अब क्रिया से कल्पना की रीति कहते हैं——

पहले रूप से सहित अथवा रहित अव्यक्त को वियोग मूल कल्पना करना और वर्गान्तरक्षेप में योगान्तरक्षेप का भाग देने से जो मूल आवे उसको वियोग मूल में जोड़ देने से वह योगमूल होगा। उन योग वियोग के मूलों का वर्ग करना और उन में क्षेप घटाने से वे योग, वियोग होंगे। फिर उनसे संक्रमण द्वारा राशि सिद्ध होंगी।

उदाहरण—जैसा रूप से रहित अव्यक्त को वियोगमूल कल्पना किया या १ रू १̇ और वर्गान्तर क्षेप ८ में योगान्तरक्षेप २ का भाग देने से ४ लब्ध आया, इस का मूल २ कल्पित वियोगमूल या १ रू १̇ में जोड़ देने से योगमूल या १ रू १ हुआ। और योगमूल या १ रू १ तथा वियोगमूल या १ रू १̇ के वर्ग याव १ या २ रू १। याव १ या २̇ रू १ में योगान्तरक्षेप २। २ घटा देने से योग याव १ या २ रू १̇ और वियोग याव १ या २̇ रू १̇ हुआ। और योग याव १ या २ रू १̇ में वियोग याव १ या २̇ रू १̇ जोड़ देने से, याव २ रू २̇ हुआ इसका आधा पहली राशि याव १ रू १̇ हुई। और योग याव १ या २ रू १̇ में, वियोग याव १ या २̇ रू १̇ घटा देने से या ४ हुआ इसका आधा या २ दूसरी राशि हुई। इस भाँति 'यत्स्यात्साल्यवधार्धतो घनपदं–' इस उदाहरण में उक्त राशि सिद्ध हुई॥

इसी प्रकार रूपयुक्त अव्यक्त को वियोगमूल कल्पना किया या १ रू १ और वर्गान्तर क्षेप ८ में योगान्तर क्षेप २ का भाग देने से ४ लब्धि आई। इस का मूल २ को पूर्वकल्पित वियोगमूल या १ रू १ में जोड़ देने से योगमूल या १ रू ३ हुआ और योगमूल या १ रू ३ तथा वियोगमूल या १ रू १ के वर्ग याव १ या ६ रू ६। याव १ या २ रू १ में योगान्तरक्षेप २। २ घटा देने से, योग याव १ या ६ रू ७ और वियोग याव १ या २ रू १̇ हुआ। और याव १ या ६ रू ७ इस योग में, वियोग याव १ या २ रू १̇ जोड़ देने से याव २ या ८ रू ६ हुआ। इस का आधा पहली राशि याव १ या ४ रू ३ हुई और योग याव १ या ६ रू ७ में, वियोग याव १ या २ रू १̇ घटा देने से, शेष या ४ रू ८ रहा। इस का आधा दूसरी राशि या २ रू ४ हुई।

उपपत्ति—

राशियों के योगान्तर क्षेपयुत वर्गात्मक हैं, तो उन के मूल या१। का १ कल्पना किये। इन के वर्ग अपने अपने क्षेप से ऊन योगान्तर याव १ क्षे १̇ । काव १ क्षे १̇ हुए। इन में यदि अपने अपने क्षेप जोड़ दें तो, याव १ । काव १ ये वर्ग मूलप्रद होते हैं । अब योगान्तर के गुणन के लिये न्यास—

काव १ क्षे १̇
याव १ क्षे १̇

याव. काव १ याव. क्षे १̇
क्षे. काव १̇ क्षेव १

गुणनफल=याव. काव १ याव. क्षे १̇ काव. क्षे १̇ क्षेव १

यह राशियों का वर्गान्तर है, क्योंकि वह योगान्तर घात के तुल्य होता है । अब वर्गान्तर में जिस को जोड़ देने से मूल आवे, वह वर्गान्तर क्षेप है । उसका विचार करते हैं—

यहाँ गुणनफल में, चार खण्ड हैं, उन में से पहले और दूसरे खण्ड का या. का १ । क्षे १ यह मूल आता है और इन का ऋण दूना घात याकाक्षे २̇ है । यदि इस को और दूसरे याव. क्षे १̇, तीसरे काव. क्षे १̇ खण्ड के तुल्य धनगत खण्ड याव. क्षे १। काव. क्षे १ को वर्गान्तर याव. काव १ याव. क्षे १̇ काव. क्षे १̇ क्षेव १ में, जोड़ दें तो, दूसरे तथा तीसरे खण्ड के उड़ जाने से, शेष मूलप्रद होता है । इसलिये याव. क्षे १ काव. क्षे १ या का क्षे २̇ यह क्षेप ज्ञात हुआ । इस को चार खण्डवाले वर्गान्तर स्वरूप 'याव. काव १ याव. क्षे १̇ काव. क्षे १̇ क्षेव १' में जोड़ देने से 'याव. काव १ या का. क्षे २̇ क्षेव १' हुआ । इस का मूल या. का १ क्षे १̇ आया । इसलिये वर्गान्तर क्षेप याव. क्षे १ काव. क्षे १ या का क्षे २̇ में क्षेप क्षे १ का भाग देने से, लब्ध मूलान्तर वर्ग याव१ काव १ या. का २̇ आया । इसका मूल या १ का १̇ मूलान्तर है। इस कारण, वर्गान्तर क्षेप में योगान्तर क्षेप का भाग देने से जो लब्धि आती है, वह मूलान्तर है । उस को वियोग मूल में जोड़

देने से योगमूल होगा और उनके वर्ग में अपने अपने क्षेप को घटा देने से, उन दोनों राशियों का योग और अन्तर होगा। बाद में संक्रमण सूत्र से राशि मिलेंगे। इस से 'सरूपमव्यक्तमरूपकं वा—' यह सूत्र उपपन्न हुआ।

विशेष—

यहाँ वर्गान्तर का स्वरूप—याव. काव १ याव. क्षे १ काव. क्षे १ क्षेव १ है। इस में यदि याव. क्षे १ काव. क्षे १ याका क्षे २ इस क्षेप को जोड़ देते हैं तो, या. का १ क्षे १ यह मूल आता है। वह क्षेपयुत मूलघात है, इसलिये याव. क्षे १ काव. क्षे १ याका क्षे २ यह भी वर्गान्तर क्षेप है। इस में क्षे १ का भाग देने से, याव १ काव १ याका २ आया। इसका मूल या १ का १ है। यह मूल योग के तुल्य है, परन्तु ऐसा आचार्य ने नहीं कहा है।

कल्पना किया कि ६ । ८ राशि हैं। इन का योग १४ और अन्तर २ क्षेप २ जोड़ने से १६।४ हुआ, इसका मूल ४ और २ आया। इन का मान या १ का १ कल्पना किया। अब मूलान्तर २ के वर्ग ४ को क्षेप २ से गुणा देने से ८ हुआ। इस को आचार्य ने वर्गान्तर क्षेप कहा है। क्योंकि राशियों ६ । ८ के वर्गों ३६।६४ का अन्तर २८ में स्वक्षेप ८ जोड़ देने से ६ मूल आता है। इसी भाँति मूलों २ । ४ के योग ६ का वर्ग ३६ क्षेप २ से गुणित ७२ हुआ। इस में वर्गान्तर २८ जोड़ देने से १०० हुआ, यह मूलप्रद है। परन्तु ७२ इस क्षेप को ग्रन्थकार ने नहीं स्वीकार किया है।

उदाहरणम्—

राश्योर्योगवियोगकौ त्रिसहितौ वर्गौ भवेतां ययोर्वर्गैक्यं चतुरूनितं रवियुतं वर्गान्तरं स्यात्कृतिः। साल्पं घातदलं घनः पदयुतिस्तेषां

द्वियुक्ता कृतिस्तौ राशी वद कोमलामलमते षट्सप्त हित्वा परौ ॥ ६५ ॥

अत्र रूपोनमव्यक्तं वियोगमूलं प्रकल्प्य या १ रू १̇ अत्राप्यनयैव युक्त्या कल्पितौ राशी याव १ रू २̇ । या २ । वा कल्पितौ राशी याव १ या २ रू १̇ । या २ रू २ । राश्योर्योगस्त्रिसहितः याव १ या २ रू १ राश्योरन्तरं त्रिसहितं याव १ या २̇ रू १ । प्रथमराशिवर्गः यावव १ याव ४̇ रू ४ । द्वितीयराशिवर्गः याव ४ अनयोरैक्यं चतुरूनं यावव १ तयोरेवान्तरं रवियुतम् यावव १ याव ८ रू १६ राशिघातः याघ २ या ४̇ दलं याघ १ या २̇ साल्पं याघ १ एभ्यो मूलानि तत्र त्रियुतयोगमूलम् या १ रू १ रवियुतवर्गान्तरमूलम् याव १ रू ४̇ तथा घनमूलम् या १ पदपञ्चकयोगो द्वियुतो जातः याव २ या ३ रू २̇ एष वर्ग इति कालकवर्गेण समीकरणाय न्यासः ।

याव २ या ३ काव ० रू २̇
याव ० या ० काव १ रू ०

समीकरणात्पक्षशेषौ

याव २ या ३

काव १ रू २

अत्रैतावष्टभिः संगुण्य नव रूपाणि प्रक्षिप्याद्यपक्षस्य मूलम् या ४ रू ३ परपक्षस्यास्य काव ४ रू २५ वर्गप्रकृत्या मूले

क ५ । ज्ये १५ ।

वा, क १७५ । ज्ये ४९५ ।

ज्येष्ठं प्रथमपक्षमूलसमं कृत्वाप्तं यावत्तावन्मानम् ३ । वा १२३ वर्गेणाद्यं केवलेनान्त्यमुत्थाप्य जातौ राशी७।१६।वा।१५१२७।२४६

अथवा । कल्पिताद्द्वितीयराश्योर्योगास्त्रियुतः याव १ या ४ रू ४ वियोगस्त्रियुतः याव १ अत्राद्यवर्गः 'यावव १ याघ ४ याव २ या ४ रू १' द्वितीयराशिवर्गः 'याव ४ या ८ रू ४' अनयोरैक्यं चतुरूनं 'यावव १ याघ ४ याव ६ या ४ रू १' वर्गान्तरं रवियुतं 'यावव १ याघ ४ याव २ या १२ रू ९' राशिघातः 'याघ २ याव ६ या २ रू २' दलं 'याघ १ याव ३

या १ रू १' साल्य 'याघ १ याव ३ या ३ रू १' एभ्यो मूलानि तत्र त्रियुतयोगमूलम् या १ रू २ त्रियुतवियोगमूलम् या १ चतुरूनितवर्गैक्यमूलम् याव १ या २ रू १ रवियुतवर्गान्तरमूलम् याव १ या २ रू ३ घनमूलम् 'या १ रू १' पदपञ्चकयोगो द्वियुक्तः याव २ या ७ रू ३ एष वर्ग इति कालकवर्गेण समीकरणाय न्यासः ।

या २ या ७ काव० रू ३

या ० या ० काव १ रू०

समशोधनात्पक्षशेषौ

य २ या ७

काव १ रू ३

अत्र पक्षावष्टभिः संगुण्यैकोनपञ्चाशद्रूपाणि प्रक्षिप्याद्यपक्षमूलम् या ४ रू ७ परपक्षस्यास्य 'काव ८ रू २५' वर्गप्रकृत्या मूले ।

क ५ । ज्ये १५

वा, क १७५ । ज्ये ४९५

ज्येष्ठं प्रथमपक्षपदेन समं विधाय लब्धं

यावत्तावन्मानम् २ । वा १२२। अत्र वर्गेणा-ऽव्यक्तवर्गराशिं केवलेनाऽव्यक्तमुत्थाप्य जातौ राशी ७। ६। वा। १५१२७। २४६ तद्यथा या २ अस्य वर्गः ४ अनेन या १ गुणितः ४ केवलेन २ या २ गुणितः ४ उभयोर्व्यक्तत्वा-द्योगः ८ ऋणगे रूपे १ वियोजिते जात एकः ७ तथा या २ केवलेन या २ गुणितः ४ रूप २ युतो जातः परः ६। एवं द्वितीयः या १२२ वर्गः १४८८४ अनेन याव १ गुणितः १४८८४ केवलेन या १२२ या २ गुणितः २४४ उभ-योर्व्यक्तयोर्योगादृणं रूपं विशोध्य जात एकः १५१२७। तथा या २ केवलेन १२२ गुणितो व्यक्तरूप २ युतोऽपरः २४६। एवं बहुधा।

अथास्य सूत्रस्य व्याप्तिं प्रदर्शयितुमुदाहरणं शार्दूलविक्रीडिते-नाह—राश्योरिति। हे कोमलामलमते, कोमला सुकुमारा अमला अज्ञानरूपेण मलेन रहिता मतिर्यस्येति तत्संबोधनम्। षट् सप्त, क्रमेणी। हित्वा अत्रायमभिप्रायः—कयो राश्योर्योगवियोगौ त्रिसहितौ वर्गौ भवेतामित्यादिपरामर्शे षट्सप्तकयोः शीघ्रमुपस्थितिर्भवति यदृच्छया चानयोः सर्वेऽप्यालापा घटन्त इत्यनभिज्ञोऽपि प्रश्नस्यास्योत्तरं वदे-दिति तन्निरासार्थमुदितं 'षट्सप्त हित्वा' इति। तौ राशी वद, ययो राश्योः त्रिभिः सहितौ योगवियोगौ वर्गौ कृती भवेताम्। ययोश्चतुर्भिरूनितं वर्गैक्यं वर्गो भवेत्। ययोरेव वर्गान्तरं रवियुतं

वर्गः स्यात् । ययोर्घातस्य वधस्य दलमर्धं साल्पमल्पेन लघुराशिना समेतं घनः स्यात् तेषां पदानां द्वियुक्ता युतिः कृतिः स्यात् ॥

उदाहरण—

वे दो न्यूनाधिक कौन राशि हैं, जिन के योग तथा अन्तर में २ जोड़ देने से मूल आता ह, और वर्गों के योग में ४ घटा देने से मूल आता है, और वर्गों के अन्तर में १२ जोड़ देने से मूल आता है, और उन के घात के आधे में, लघु राशि जोड़ देने से घनमूल आता है, इस भाँति पाँचों मूलों क योग में २ जोड़ देने से भी, वह (योग) वर्ग होता है ।

पहले रूपोन अव्यक्त को वियोगमूल मान कर, राशियों का साधन करते हैं—वियोगमूल या १ रू १̇ है, यहाँ योगान्तरक्षेप ३ का वर्गान्तरक्षेप १२ में भाग देने से ४ लब्धि आई । इसके मूल २ को वियोगमूल में जोड़ देने से, या १ रू १ यह योगमूल हुआ । इन दोनों के वर्ग हुए—

वियोगमूलवर्ग=याव १ या २̇ रू १

योगमूलवर्ग=याव १ या २ रू १

इन में सक्षेप ३ योगान्तरक्षेप घटा देने से, वियोग और योग हुआ—

वियोग=याव १ या २̇ रू २̇

योग=याव १ या २ रू २̇

इन पर से 'योगोऽन्तरेणोनयुतोर्धितः—' इस सूत्र के अनुसार राशि याव १ रू २̇ । या २ इन का योग याव १ या २ रू २̇ हुआ इसमें ३ जोड़ने से याव १ या २ रू १ इस का मूल या १ रू १ है । राशियां के वर्ग यावव १ याव ४̇ रू ४ । याव ४ इनके योग यावव १ रू ४ में ४ घटा देन से, शेष यावव १ रहा । इस का मूल याव १ है । और राशियों का वर्गान्तर यावव १ याव ८̇ रू ४ इसमें १२ जोड़ देन से, यावव १ याव ८̇ रू १६ हुआ, इसका मूल याव १ रू ४̇ है । राशियों याव १ रू २̇ । या २ के घात याघ २ या ४̇ के आधे याघ १ या २̇ में लघु राशि या २ जोड़ दन से याघ १ हुआ, इस का घनमूल या १ है। इस भाँति पाँचों मूलों का क्रम से न्यास—

या १ रू १

या १ रू १̇

याव१ रू ०

याव१ रू ४̇

या १ रू ०

इन का यथास्थान, योग याव २ या ३ रू ४̇ हुआ। इस में २ जोड़ देने से याव २ या ३ रू २̇ हुआ, यह वर्ग है। इसलिये कालक-वर्ग के साथ समीकरण के लिए न्यास—

याव २ या ३ काव ० रू २̇

याव ० या ० काव १ रू ०

समशोधन करने से

याव २ या ३ काव ० रू ०

याव ० या ० काव १ रू २

आठ से गुण कर, रूप ९ जोड़ने से—

याव १६ या २४ रू ९

काव ८ रू २५

पहले पक्ष का मूल या ४ रू ३ आया। दूसरे पक्ष में काव ८ को प्रकृति और रू २५ को क्षेप कल्पना किया। फिर इष्ट ५ को कनिष्ठ मान कर, उस का वर्ग २५ प्रकृति ८ से गुणित २०० हुआ, इस में क्षेप २५ जोड़ने से २२५ इसका मूल १५ ज्येष्ठ है। इस के साथ पहले पक्ष के मूल का समीकरण के लिये न्यास—

या ४ रू ३

या ० रू १५

समशोधन से यावत्तावत् की उन्मिति ३ आई। अथवा, कनिष्ठ १७५ है, इस से ज्येष्ठ मूल ४९५ हुआ। इस के साथ पूर्वमूल या ४ रू ३ का समीकरण करने से यावत्तावत् की उन्मिति १२३ आई। पूर्व उन्मिति ३ से, याव १ रू १̇। या २ इन में उत्थापन देने से ८।६ राशि हुई और दूसरी उन्मिति १२३ से इन्हीं राशियों में उत्थापन देने से १५१२८। २४६ राशि हुई।

अथवा, पहली राशि याव १ या २ रू १̇ और दूसरी या २ रू २ है। इन का योग याव १ या ४ रू १ तीन जोड़ देने से याव १ या ४ रू ४ हुआ, इस का मूल या १ रू २ है। राशियों का अन्तर याव १ रू ३̇ तीन जोड़ देने से याव १ हुआ, इस का मूल या १ है। और राशियों के वर्ग यावव १ याघ ४ याव २ या ४̇ रू १। याव ४ या ८ रू ४ के योग 'यावव १ याघ ४ याव ६ या ४ रू ५' में ४ घटा देने से शेष 'यावव १ याघ ४ याव ६ या ४ रू १' रहा, इस का मूल याव १ या २ रू १ आया। और इन के वर्गों यावव १ याघ ४ याव २ या ४̇ रू १। याव ४ या ८ रू ४ का अन्तर, यावव १ याघ ४ याव २̇ या १२̇ रू ३̇ हुआ। इस में १२ जोड़ देने से यावव १ याघ ४ याव २̇ या १२̇ रू ९, इस का मूल याव १ या २ रू ३̇ आया। राशियों का घात याघ २ याव ६ या २ रू २̇ हुआ। इस का आधा याघ १ याव ३ या १ रू १̇ इस में लघुराशि या २̇ रू २ जोड़ देने से याघ १ याव ३ या ३ रू १ हुआ इस का घनमूल या १ रू १ आया, इन पदों का क्रम से न्यास—

या १ रू २
या १ रू ०
याव १ या २ रू १
याव १ या २ रू ३̇
या १ रू १

इन के योग याव २ या ७ रू १ में २ जोड़ देने से याव २ या ७ रू ३ यह कालक वर्ग के समान हुआ। इसलिये समीकरण के अर्थ न्यास—

याव २ या ७ काव ० रू ३
याव ० या ० काव १ रू ०

समशोधन करने से हुए—

याव २ या ७ काव ० रू ०
याव ० या ० काव १ रू ३̇

आठ से गुण कर, रूप ४९ जोड़ देने से हुए—

याव १६ या ५६ रू ४९
काव ८ रू २५

पहले पक्ष का मूल या ४ रू ७ आया। दूसरे पक्ष में काव ८ को प्रकृति, रू २५ को क्षेप कल्पना किया। बाद इष्ट ५ कनिष्ठ मानने से उक्त रीति के अनुसार, ज्येष्ठमूल १५ आया। अथवा कनिष्ठ १७५ हैं इस से ज्येष्ठमूल ४९५ आया। अब इन दोनों ज्येष्ठमूलों का प्रथम पक्षीय मूल या ४ रू ७ के साथ समीकरण करने से, यावत्तावत् का मान २। वा, १२२ आया। इन से पूर्व-राशि में उत्थापन देना चाहिये। पहला मान २ है, इसका वर्ग ४ हुआ, इस में द्विगुण यावत्तावन्मान ४ जोड़ देने से ८ हुआ, इसमें रूप १ घटा देने से, पहली राशि ७ हुई। और यावत्तावन्मान २ दूना करने से ४ हुआ, इस में रूप २ जोड़ देने से दूसरी राशि ६ हुई। इसी भाँति, दूसरे यावत्तावन्मान १२२ का वर्ग १४८८४ हुआ, इस में द्विगुण यावत्तावन्मान २ × १२२=२४४ जोड़ देने से १५१२८ हुआ, इस में १ कम कर देने से, पहली राशि १५१२७ हुई और इसी भाँति दूने यावत्तावन्मान २४४ में २ जोड़ देने से, दूसरी राशि २४६ हुई॥

अथाद्योदाहरणम्–

राश्योर्ययोः कृतियुति-
वियुती चैकेन संयुते वर्गौ।
रहितौ वा तौ राशी
गणयित्वा कथय यदि वेत्सि॥

अत्र कल्पितौ राशिवर्गौ याव ४। याव ५ रू १ अनयोर्योगवियोगौ रूपयुतौ मूलदौ भवतः कथितप्रथमवर्गस्य मूलमेको राशिः

या २ द्वितीयस्यास्य याव ५ रू १ वर्गप्रकृत्या मूले

क १ । ज्ये २

वा, क १७ । ज्ये ३८

अनयोर्ज्येष्ठपदं द्वितीयराशिः ह्रस्वं यावत्तावन्मानेनोत्थाप्याद्यराशिः एवं जातौ राशी २ । २ । वा ३४ । ३८ । अथ द्वितीयोदाहरणे तथैव कल्पितः प्रथमराशिः या २ द्वितीयस्यास्य याव ५ रू १ वर्गप्रकृत्या मूले

क ४ । ज्ये ९

वा, क ७२ । ज्ये १६१

कनिष्ठेन प्रथम उत्थापितो ज्येष्ठं द्वितीय इति जातौ राशी ८ । ९ वा । १४४ । १६१ ।

अत्राल्पराशिवर्गेण यो राशिरूनितो युतश्च मूलदःस्यात्स तावद् व्यक्त एव द्वितीयो ज्ञेयः। तस्यानयनेऽप्युपायस्तद्यथा—

कल्पितराशिवर्गः ४ अनेन द्वितीयराशिरूनितो युतश्च मूलदः स्यादित्ययं द्विगुणः ८ वर्गान्तरमिदं कयोरपि च योगान्तरघात-

समम् अतोऽन्तरमिष्टं २ कल्पितं 'वर्गान्तरं राशिवियोगभक्तं–' इति जाते वर्गान्तरयोगमूले १। ३। आद्यस्य वर्गे १ कल्पितराशिवर्गं४ प्रक्षिप्य द्वितीयस्य वर्गा ६ द्वा विशोध्य जातो द्वितीयः ५। अत्र चाल्पराशिवर्गस्तथा कल्प्यते यथा द्वितीयराशिरभिन्नः स्यात्तथान्यः कल्पितः ३६ द्विगुणः ७२ इदं वर्गान्तरं राश्यन्तरषट्के कल्पिते जातौ ३। ६ अन्यवर्गात् ८१ कल्पितं ३६ विशोध्य जातो द्वितीयः४५ चतुष्केण वा८५ द्विकेन वा३२५।

अथान्यथा कल्पने युक्तिः–

राश्योर्घातेन द्विगुणेन वर्गयोगो युतोनितोऽवश्यं मूलदः स्यात्। राशिवधो द्विगुणो यथा वर्गः स्यात्तथैको वर्गोऽन्यो वर्गार्धमिति कल्प्यौ, यतो वर्गयोर्वधो वर्गो भवतीति। तथा कल्पितौ एकोवर्गः १ अन्यो वर्गार्धम् २ अनयोर्घातो २ द्विगुणः ४ अयं प्रथमः अयमल्पराशिवर्गः, तयारेव वर्गयोगः ५ अयं द्वितीयो राशिः। अथवैको वर्गः ६ अन्यो वर्गार्धम् २ अनयोर्घातो १८ द्विगुणः३६ अयमल्पराशि-

वर्गः, अथ तयोरेव वर्गयोगः८५ अयं द्वितीयो राशिः, एतौ व्यक्तौ यावत्तावद्वर्गगुणितौ कल्पितौ, प्रथमोदाहरणे द्वितीयो राशी रूपेणोनो द्वितीयोदाहरणे रूपयुतः कार्यः, एवं कृत्वा तथा तौ राशिवर्गौ कल्प्यौ यथालापद्वयमपि घटते किंतु प्रथमस्य मूलं गृहीत्वा द्वितीयस्य वर्गप्रकृत्या मूलमित्यादि पूर्वोक्तमेव । एवमनेकधा ॥

अथार्यया निबद्धमाद्योदाहरणं शिष्यबुद्धिप्रसारार्थं प्रदर्शयति— राश्योरिति । हे गणक, तौ राशी यदि वेत्सि तदा गणयित्वा कथय । ययोः कृत्योर्युतिवियुती वर्गयोर्योगान्तरे एकेन संयुते अथवा रहिते वर्गौ भवेताम् ॥

उदाहरण—

वे दो कौन राशि हैं, जिन का वर्गयोग और वर्गान्तर, एक से युक्त अथवा ऊन, वर्ग होते हैं ।

यहां पर याव ४ । याव ५ रू १̇ राशि कल्पना किये हैं । इन का रूप से जुड़ा हुआ योग याव ६ और अन्तर याव १ मूलप्रद होता है । और कल्पित पहली राशि याव ४ का मूल या २ है, दूसरी राशि याव ५ रू १̇ का मूल वर्गप्रकृति से, वहां इष्ट १ कनिष्ठ है, उसका वर्ग १ प्रकृति ५ गुणित ५ क्षेप १̇ से ऊन ४ का मूल २ ज्येष्ठ हुआ । वा, कनिष्ठ १७ है, उस से ज्येष्ठ ३८ हुआ, कनिष्ठ १ । १७ यावत्तावन्मान हैं, दूना करने से पहली राशि २ । ३४ और ज्येष्ठ २ । ३८ दूसरी राशि हैं, इन का क्रम से न्यास । २ । २ । वा, ३४ । ३८ ।

दूसरे उदाहरण में भी पहले की राशि हैं। उन में से पहली का मूल या २ हुआ, दूसरी का वर्गप्रकृति से, वहां इष्ट ४ कनिष्ठ है, इस के वर्ग १६ प्रकृति ५ गुणित ८० क्षेप १ युत ८१ का मूल ९ ज्येष्ठ हुआ, वा कनिष्ठ ७२ है, इससे ज्येष्ठ १६१ आया। कनिष्ठ ४ यावत्तावन्मान है उसको दूना करने से पहली राशि ८ हुई, ज्येष्ठ दूसरी राशि है ९। वा १४४। १६१।

यहां जो राशि लघुराशि के वर्ग से, ऊन-युक्त मूलद हो, उसको व्यक्तात्मक दूसरी जानना, उस के जानने के लिए यह विधि है—

यहां लघुराशि वर्ग ४ है, इस से ऊन-युत दूसरी राशि मूलद है।

लराव १ द्विरा १ । लराव २

इसलिये लघुराशि का वर्ग ४ दूना ८ किसी दो राशि का वर्गान्तर है, और वह योगान्तरघात के तुल्य होता है। इसलिये 'वर्गान्तरं राशि-वियोगभक्तं—' के अनुसार, वर्गान्तर ८ में कल्पित वियोग २ का भाग देने से योग ४ आया। इन से संक्रमणसूत्र से राशि १। ३ आई। ये वर्गान्तर और वर्गयोग के मूल हैं। इन में पहली राशि १ का वर्ग १ है, इस में कल्पित लघुराशि २ का वर्ग ४ जोड़ देने से दूसरी राशि ५ है। अथवा, दूसरी राशि ३ के वर्ग ९ में, लघु-राशि वर्ग ४ घटा देने से वही राशि ५ आई। और ४ का मूल २ यह पहली राशि हुई। आलाप—बृहद्राशि ५ में लघुराशि वर्ग ४ जोड़ देने से वर्ग ९ हुआ। इसी भाँति घटा देने से वर्ग १ हुआ, और १।९ इन का अन्तर ८ दूने लघुराशि वर्ग २×४=८ के तुल्य है, इसलिये लघुराशि वर्ग दूना, वर्गान्तर के समान है। यहां पर लघुराशि वर्ग ऐसा मानना चाहिये, जिस में दूसरी राशि अभिन्न आवे, जैसा, दूसरी राशि ३६ कल्पित है, वह दूनी करने से ७२ हुई यह वर्गान्तर है, इस में कल्पित राश्यन्तर ६ का भाग देने से योग १२ आया। अब १२।६ इन योग-वियोग से संक्रमण द्वारा राशि आई ३। ९ ये वर्गान्तर और वर्गयोग के मूल हैं। इन में पहली राशि ३ के वर्ग ९ में कल्पित राशि ६ वर्ग ३६ जोड़ देने से दूसरी राशि ४५ हुई। और दूसरे मूल ९ वर्ग ८१ में, कल्पित राशि वर्ग ३६ घटा देने से भी वही

राशि ४५ मिली। इस भाँति पहली राशि ६ और दूसरी ४५ आई। वा, राशि वर्ग ३६ दूना करने से ७२ हुआ, यह वर्गान्तर है। इस में कल्पित राश्यन्तर ४ का भाग देने से योग १८ आया। इन से संक्रमण के द्वारा राशि ७। ११ आईं। इन में पहली राशि ७ के वर्ग ४९ में कल्पित राशि ६ वर्ग ३६ जोड़ देने से दूसरी राशि८५ हुई। वा २ अन्तर मानने से, दूसरी राशि ३२५ हुई। अथवा, राशि कल्पन में दूसरी युक्ति--

वर्गयोग दूने राशि घात से युत वा ऊन अवश्य मूलप्रद होता है। राशियों का घात दूना वर्ग हो ऐसा एक वर्ग कल्पना किया और दूसरा वर्गार्ध क्योंकि वर्गों का घात वर्ग होता है, तो १। २ राशि हैं इन का घात २ दूना हुआ ४ यह लघुराशि वर्ग ४ है। और १। २ इन का वर्ग १। ४ योग ५ दूसरी राशि हुई।

अथवा, एक वर्ग ९ और दूसरा वर्गार्ध २ है। इन का दूना घात ३६ यह लघु राशि वर्ग है, इस का मूल ६ पहली राशि है। और ९। २ इनका वर्ग ८१। ४ योग ८५ दूसरी राशि हुई। दोनों व्यक्तराशि यावत्तावद्वर्ग गुणित कल्पित की गई हैं। पहले उदाहरण में दूसरी राशि रूपोन और दूसरे उदाहरण में दूसरी राशि रूपयुत मानी गई है। जैसा-याव ४। याव ५ रू १̇। याव ४। याव ५ रू १ इसी प्रकार ऐसे राशिवर्ग कल्पना करने चाहिये, जिस में दो आलाप स्वतः घटित हों। उन में से पहली राशि का मूल स्वतः मिलेगा। दूसरे का वर्गप्रकृति से आवेगा।

सूत्रम्—

यत्राव्यक्तं सरूपं हि तत्र तन्मानमानयेत्।
सरूपस्यान्यवर्णस्य कृत्वा कृत्यादिना समम्॥
राशिं तेन समुत्थाप्य कुर्याद् भूयोऽपरां क्रियाम्
सरूपेणान्यवर्णेन कृत्वा पूर्वपदं समम्॥८३॥

यत्राद्यपक्षमूले गृहीते परपक्षेऽव्यक्तं सरू-

पमरूपं वा स्यात् तत्रान्यवर्णस्य सरूपस्य वर्गेण साम्यं कृत्वा तस्याऽव्यक्तस्य मानमानीय तेन राशिमुत्थाप्य पुनरन्यां क्रियां कुर्यात् तथा तेनान्यवर्णेन सरूपेणाद्यपक्षपदसाम्यं च, यदि पुनः क्रिया न भवेत्तदा तु व्यक्तेनैव वर्गादिना समक्रिया ॥

अथैकस्य पक्षस्य पदे गृहीते सति द्वितीयपक्षे यदि सरूपमरूपं वाऽव्यक्तं भवति तत्रोपायमनुष्टुब्द्वयेनाह—यत्रेति। यत्राद्यपक्षस्य मूले गृहीतेऽन्यपक्षेऽव्यक्तं सरूपमरूपं वा स्यात्तत्रान्यवर्णस्य सरूपस्य वर्गेण साम्यं कृत्वा तस्याव्यक्तस्य मानमानयेत् । यत्र तु प्रथमपक्षस्य घनपदे गृहीतेऽन्यपक्षेऽव्यक्तं सरूपमरूपं वाऽव्यक्तं स्यात्तत्रान्यवर्णस्य सरूपस्य घनेन साम्यं कृत्वा अव्यक्तमानमानयेत्, 'कृत्यादिना' इत्यादिपदोपादानात् । अथागतेन वर्णात्मकेनाव्यक्तमानेन राशिमुत्थाप्य सरूपेण कल्पितेनान्यवर्णेन आद्यपक्षपदसाम्यं च कृत्वा पुनरन्यां क्रियां कुर्यात् । यदि पुनः क्रिया नास्ति तदा सरूपस्यान्यवर्णस्य वर्गादिना समीकरणं न कार्यम्, यतस्तथा कृते राशिमानमव्यक्तमेव स्यात्। किंतु व्यक्तेनैव वर्गादिना समीकरणं कार्यं यत् एवं कृते राशिमानं व्यक्तमेव स्यात् । अव्यक्तवर्गोऽव्यक्तघनो वा तथा कल्प्यो यथा मानमभिन्नं स्यात् ॥

अब एक पक्ष का मूल लेने पर यदि दूसरे पक्ष में सरूप वा अरूप अव्यक्त हो तो वहाँ की क्रिया कहते हैं—

जहाँ पहले पक्ष के मूल लेने के अनन्तर दूसरे पक्ष में सरूप अथवा अरूप अव्यक्त हो, वहाँ पर सरूप अन्यवर्ण के वर्ग के साथ समीकरण कर के उस अव्यक्त का मान लाना । जहाँ पर आद्यपक्ष

के घनमूल लेने के बाद दूसरे पक्ष में रूप से युक्त वा, हीन अव्यक्त हो, वहाँ सरूप अन्यवर्ण के घन के साथ समीकरण कर के अव्यक्त-मान सिद्ध करना, और उस वर्णात्मक अव्यक्तमान से राशि में उत्थापन देना और आद्यपक्ष के मूल का कल्पित सरूप अन्यवर्ण के साथ समीकरण कर के फिर अन्य क्रिया करना यदि अन्य क्रिया न हो तो, सरूप अन्यवर्ण के वर्गादिक के साथ समीकरण न करना। क्योंकि वैसा करने से राशि का मान अव्यक्त आवेगा । किंतु व्यक्त राशि के वर्गादि के साथ समीकरण करना इस भाँति राशि का मान व्यक्त होगा । यहां अव्यक्त के वर्ग, घन आदि ऐसे कल्पना करना कि जिस में राशि का मान अभिन्न मिले ।

उपपत्ति—

एक पक्ष के मूल लेकर फिर यदि दूसरे पक्ष में सरूप अथवा अरूप अव्यक्त हो तो, वह भी वर्गात्मक है। क्योंकि पक्षों की समता ठहराई है । अब वहाँ पर, यदि केवल अव्यक्त हो तो अन्यवर्ण के वर्ग के साथ सम क्रिया करनी चाहिये और जो रूप के साथ अव्यक्त हो तो सरूप अन्य वर्ण के वर्ग के साथ समीकरण करना उचित है । क्योंकि वैसा करने से दूसरे पक्ष में सरूप वर्णवर्ग होगा, तब वर्गप्रकृति का विषय होगा ।

उदाहरणम्—

यस्त्रिपञ्चगुणो राशिः पृथक् सैकः कृतिर्भवेत् ।
वद तं बीजमध्येऽसि मध्यमाहरणे पटुः ॥९६॥

अत्र राशिः या १ एष त्रिगुणः सैकः या ३ रू १ अयं वर्ग इति कालकवर्गसमं कृत्वा पक्षयो रूपं प्रक्षिप्य लब्धं कालकपक्षस्य मूलम् का १ अन्यपक्षस्यास्य या ३ रू १ सरू-

पनीलकत्रयस्य वर्गेण नीव ९ नी ६ रू १ साम्यं कृत्वा लब्धयावत्तावन्मानेनोत्थापितो जातो राशिः नीव ३ नी २ पुनरयं पञ्चगुणः सैको वर्ग इति नीव १५ नी १० रू १ पीतकवर्गसमं कृत्वा समशोधने कृते पक्षौ नीव १५ नी १०

पीव १ रू १̇

इमौ पञ्चदशभिः संगुण्य पञ्चविंशतिरूपाणि प्रक्षिप्याद्यस्य पक्षस्य मूलम् नी १५ रू ५ परपक्षस्यास्य पीव १५ रू १० वर्गप्रकृत्या मूले

क ९। ज्ये ३५

वा, क ७१। ज्ये २७५

कनिष्ठं पीतकमानं ज्येष्ठमाद्यपक्षस्य मूलेनानेन 'नी १५ रू ५' समं कृत्वाप्तं नीलकमानम् २। वा १८। स्वस्वमानेनोत्थाप्य जातो राशिः १६। वा १००८। अथ वैकालापः स्वत एव संभवति तदा कल्पितो राशिः 'याव $\frac{१}{३}$ रू $\frac{१̇}{३}$' एष पञ्चगुणो रूपयुतो याव $\frac{५}{३}$ रू $\frac{२̇}{३}$' मूलद इति कालकवर्गसमं कृत्वा पक्षयोः ऋणत्र्यंशद्वयं प्रक्षिप्योक्तवद्गृहीतं कालकपक्षस्य मूलम्

का १ द्वितीयपक्षस्यास्य $\frac{\text{याव ५ रू २}}{\text{३ \quad ३}}$ वर्गप्रकृत्या मूले क ७ । ज्ये ६ वा, क ५५ । ज्ये ७१ अत्र कनिष्ठं प्रकृतिवर्णमानं तेन कल्पितराशिमुत्थाप्य जातो राशिः स एव १६ । वा १००८

अत्रोदाहरणमनुष्टुभाह—य इति । हे गणक, यदि त्वं बीजमध्ये मध्यमाहरणे पटुरसि तदा तं राशिं वद । यो राशिः पृथक् त्रिपञ्चगुणः सैकः कृतिर्भवेत् । अयमभिप्रायः—राशिस्त्रिगुणः सैकस्तथा पञ्चगुणः सैकश्च वर्गः स्यात् ॥

उदाहरण—

वह कौन राशि है, जो अलग अलग पांच और तीन से गुणा तथा दोनों स्थानों में १ से युत मूलप्रद होता है ।

राशि या १ है, इसे ३ गुणा कर १ जोड़ने से, या ३ रू १ हुआ वह वर्ग है, इसलिये कालक वर्ग के साथ साम्य हुआ—

या ३ काव ० रू १
या ० काव १ रू ०

समशोधन करने से हुए—

या ३
काव १ रू १̇

इनमें १ जोड़ देने से कालक पक्ष का मूल का १ आया और दूसरे पक्ष 'या ३ रू १' का, नी ३ रू १ इसके वर्ग के साथ साम्य के लिए न्यास—

या ३ नीव ० नी ० रू १
या ० नीव ६ नी ६ रू १

समशोधन से हुए—

या ३
नीव ६ नी ६

हर ३ का भाग देने से यावत्तावन्मान नीव ३ नी २ आया इससे

या १ राशि में उत्थापन देने से, नीव ३ नी २ राशि हुई। फिर यह ५ से गुणित और सैक वर्ग है, इसलिये पीतकवर्ग के साथ साम्य—

नीव १५ नी १० पीव ० रू १
नीव ० नी ० पीव १ रू ०

समशोधन से हुए—

नीव १५ नी १० पीव ० रू ०
नीव ० नी ० पीव १ रू १̇

१५ से गुण कर २५ जोड़ देने से हुए—

नीव २२५ नी १५० पीव ० रू २५
नीव ० नी ० पीव १५ रू १०

आद्य पक्ष का मूल नी १५ रू ५ हुआ। अन्य पक्ष का वर्ग प्रकृति से, वहां कनिष्ठ ९ कल्पना किया। उस से ज्येष्ठ ३५ आया। वा कनिष्ठ ७१, ज्येष्ठ २७५ कनिष्ठ पीतक का मान है और ज्येष्ठ आद्य पक्ष के मूल के तुल्य है। इसलिये साम्य के लिये न्यास—

नी १५ रू ५
नी ० रू ३५

नी १५ रू ५
नी ० रू २७५

समक्रिया से नीलक का मान २। वा १८ मिला। इस से राशि 'नीव ३ नी २' में उत्थापन देते हैं—मान २ का वर्ग ४ त्रिगुण १२ हुआ इसमें दूना मान ४ जोड़ने से राशि १६ हुई। अथवा, मान १८ का वर्ग ३२४ त्रिगुण ९७२ हुआ, इस में दूना मान २×१८= ३६ जोड़ने से राशि १००८ हुई। अथवा, राशि या १ त्रिगुण या ३ सैक या ३ रू १ वर्ग है, इसलिये काव १ के साथ साम्य—

या ३ काव ० रू १
या ० काव १ रू ०

समशोधन से यावत्तावत् का मान $\frac{\text{काव १ रू १̇}}{\text{या ३}}$ आया। इस से राशि

या १ में उत्थापन देने से राशि (काव १ रू १̇)/(या ३) हुई। वा, जिस में एक आलाप स्वतः घटित हो ऐसी राशि (याव १ रू १̇)/(३) कल्पित है। यह ५ से गुणा कर रूप १ जोड़ देने से (याव ५ रू २̇)/(३) मूलद है, इसलिये कालकवर्ग के साथ साम्य के लिए न्यास—

(याव ५ रू २̇)/(३)

काव १

समच्छेद और छेदगम से हुए—

याव ५ रू २̇

काव ३

समशोधन से हुए—

याव ५ रू ०

काव ३ रू २

५ से गुणाने से हुए—

याव २५ रू ०

काव १५ रू १०

आद्यपक्ष का मूल या ५ आया और दूसरे का वर्ग प्रकृति से, इष्ट ६ कनिष्ठ है, उसका वर्ग ८१ प्रकृति १५ गुणित १२१५ क्षेप १० युत १२२५ का मूल ३५ ज्येष्ठ हुआ। इस का आद्यपक्षीय मूल के साथ साम्य के लिये न्यास—

या ५ रू ०

या ० रू ३५

समशोधन से यावत्तावत् का मान ७ आया इस से राशि (याव १ रू १̇)/(३) में उत्थापन देते हैं—मान ७ वर्ग ४९ रूप १̇ से हीन ४८ हुआ, इस में हर ३ का भाग देने से वही राशि १६ आई। वा, कनिष्ठ ७१ ज्येष्ठ

२७५ है। समीकरण से यावत्तावत् का मान ५५ आया, मान ५५ वर्ग ३०२५ रूपोन ३०२४ हुआ, इस में हर ३ का भाग देने से १००८ राशि आई॥

अथाद्योदाहरणम्--

'को राशिस्त्रिभिरभ्यस्तः सरूपो जायते घनः।
घनमूलं कृतीभूतं त्र्यभ्यस्तं कृतिरेकयुक्॥'

अत्र राशिः या १ अयं त्र्यभ्यस्तो रूपयुतः या ३ रू १ एष घन इति कालकघनसमं कृत्वा प्राग्वज्जातो राशिः काघ $\frac{१}{३}$ रू $\frac{१}{३}$ अस्य त्रिगुणस्य सरूपस्य घनमूलं वर्गितं त्रिहतं रूपयुतं काव ३ रू १ एतत्कृतिरिति नीलकवर्गसमं कृत्वा पक्षयो रूपं प्रक्षिप्य प्रथमपक्षमूलम् नी १ द्वितीयपक्षस्यास्य काव ३ रू १ वर्गप्रकृत्या मूले

क १। ज्ये २

वा, क ४। ज्ये ७

वा, क १५। ज्ये २६

कनिष्ठं कालकमानम् ४ अस्य घने ६४ नोत्थापितो जातो राशिः २१। वा $\frac{३३७४}{३}$

अथ पूर्वपक्षस्य घनमूले गृहीते सत्यन्यवर्णस्य घनेन समीकरणं

कार्यमित्युक्तं तत्रोदाहरणमाद्यैरनुष्टुभा निबद्धं दर्शयति—क इति । को राशिस्त्रिभिरभ्यस्तो गुणितः सरूपो घनो जायते । घनस्य मूलं कृतीभूतं वर्गीकृतं त्र्यभ्यस्तं त्रिगुणितमेकयुक् कृतिः ॥

उदाहरण—

वह कौन राशि है, जिस को तीन से गुण कर, एक जोड़ देते हैं तो घन होता है और घनमूल के वर्ग को तीन से गुण कर, एक जोड़ देते हैं, तो वर्ग होता है ।

राशि या १ त्रिगुण और एक से युत या ३ रू १ हुआ, यह घन है इसलिये काघ १ के साथ साम्य—

या ३ रू १
काघ १ रू ०

समशोधन से यावत्तावत् का मान $\frac{\text{काघ १ रू } \dot{१}}{\text{या ३}}$ हुआ । यह ३ से गुणने से $\frac{\text{काघ ३ रू } \dot{३}}{\text{या ३}}$ = काघ १ रू $\dot{१}$ हुआ । इसमें १ जोड़ने से, घनमूल का १ आया । इस का वर्ग त्रिगुण रूप युत वर्ग है, इसलिये नीव १ के साथ साम्य—

काव ३ रू १
नीव १ रू ०

समशोधने से हुए—

काव ३ रू ०
नीव १ रू $\dot{१}$

१ जोड़ने से नीलक पक्ष का मूल नी १ आया और दूसरे पक्ष 'काव ३ रू १' का वर्ग प्रकृति से, वहां इष्ट ४ कनिष्ठ है, उसका वर्ग १६ प्रकृति गुणित ४८ क्षेप १ युत ४९ का मूल ७ ज्येष्ठ हुआ । कनिष्ठ कालक मान है । उस ४ के घन ६४ से राशि $\frac{\text{काघ १ रू } \dot{३}}{३}$ में उत्थापन देकर उसमें १ घटा कर हर ३ का भाग देने से, राशि २१ आई । वा, कनिष्ठ १५ से ज्येष्ठ २६ हुआ ।

कनिष्ठ १५ कालक का मान है, इस के घन ३३७५ में १ घटा कर हर ३ का भाग देने से राशि $\frac{३३७४}{३}$ ।

उदाहरणम्—

वर्गान्तरं कयो राश्योः पृथग् द्वित्रिगुणं त्रियुक्।
वर्गौ स्यातां वद क्षिप्रं षट्कपञ्चकयोरिव ८७॥

अथ विशेषप्रदर्शनार्थमपरमुदाहरणमनुष्टुभाह—वर्गान्तरमिति। षट्कपञ्चकयोर्वर्गान्तरमुक्तविधमस्तीति सुप्रसिद्धं तावत्। परं त्वेतयोर्वर्गान्तरं यथोक्तविधमस्ति तथान्ययोः कयोरस्तीति प्रश्नाभिप्रायः॥

उदाहरण—

पांच और छ के समान, वे दो कौन राशि हैं, जिन के वर्गान्तर अलग अलग २ और ३ से गुण कर ३ जोड़ देने से वर्ग होते हैं।

अथ राश्योरव्यक्तकल्पने क्रिया न निर्वहतीति वर्गान्तरमेवाव्यक्तं कल्प्यमिति प्रदर्शयन्ननुष्टुभाह—

यहां पर राशियों का अव्यक्तमान मानने से क्रिया नहीं चलती इसलिये वर्गान्तर ही को अव्यक्त कल्पना करना चाहिये, इत्यादि युक्ति दिखलाते हैं——

क्वचिदादेः क्वचिन्मध्यात्क्वचिदन्त्यात्क्रिया बुधैः
आरभ्यते यथा लघ्वी निर्वहेच्च यथा तथा ८४

क्वचिदादेः प्रश्नकर्त्रालापस्यादितः, क्वचिन्मध्यादालापमध्यात्, क्वचिदन्त्यात् विलोमकर्मद्वारेणेत्यर्थः, क्रिया प्रश्नोत्तरसाधिका युक्तिर्यथा लघ्वी यथा च निर्वहेत् तथा बुधैरारभ्यते। न खलु तादृशीं क्रियां समारभेत या महती प्रश्नोत्तरावष्टम्भिका च भवेत्॥

कहीं आलाप के प्रारम्भ से, कहीं उस के मध्य से, कहीं विलोम विधि के अनुसार अन्त ही से, इस भाँति क्रिया की जाती है। जिस में वह लघु हो और आगे की क्रिया चल सके।

अतोऽत्र वर्गान्तरं या १ एतद् द्विघ्नं त्रियुतं या २ रू ३ वर्ग इति कालकवर्गसमं कृत्वाप्तयावत्तावन्मानेनोत्थापितो जातो राशिः काव $\frac{१}{२}$ रू $\frac{३}{२}$ पुनरिदं त्रिघ्नं त्रियुतं काव $\frac{३}{२}$ रू $\frac{३}{२}$ वर्ग इति नीलकवर्गसमं कृत्वा समशोधने कृते जातौ पक्षौ नीव २ रू ३

काव ३

एतौ त्रिभिः संगुण्य कालकपक्षमूलं का ३ कृत्वा परपक्षस्यास्य नीव ६ रू ९ वर्गप्रकृत्या मूले

क ६ । ज्ये १५

वा, क ६० । ज्ये १४७

ज्येष्ठं प्रथमपक्षपदेन का ३ समं कृत्वा लब्धं कालकमानम् ५ । वा ४९ प्राग्वदाप्तकालकमानेनोत्थापितं जातं वर्गान्तरं राश्योः ११ । वा ११९९ इदमन्तरहृतं द्विधान्तरेणोनयुतमर्धितं राशी भवत इति प्रागुक्तमतोऽन्तरमिष्टं रूपं प्रकल्प्य जातौ राशी ६ । ५ । वा ६० । ५९९ । अथवान्तरमेकादश प्रकल्प्य जातौ राशी ६० । ४९ ।

उक्त शिक्षा के अनुसार, राशियों का वर्गान्तर या १ द्विगुण त्रियुत या २ रू ३ हुआ। इस का कालकवर्ग के साथ साम्य करने से, यावत्तावत् का मान $\frac{\text{काव १ रू ३̇}}{\text{२}}$ आया। यह भी राशि है, इस लिये

३ से गुण कर ३ जोड़ने से $\frac{\text{काव ३ रू ३̇}}{\text{२}}$ हुआ। यह वर्ग है, इस

लिये नीलकवर्ग के साथ साम्य—

$\frac{\text{काव ३ रू ३̇}}{\text{२}}$

नीव १

समच्छेद और छेदगम से हुए—

काव ३ रू ३̇

नीव २ रू ०

समशोधन से हुए—

काव ३ रू ०

नीव २ रू ३

३ से गुणने से हुए—

काव ६ रू ०

नीव ६̇ रू ९

कालक पक्ष का मूल का ३ आया, दूसरे पक्ष नीव ६̇ रू ९ का मूल वर्ग प्रकृति से, वहां इष्ट ६ कनिष्ठ है, उसका वर्ग ३६ प्रकृति ६̇ गुणित २१६̇ क्षेप ९ युत २२५ का मूल ज्येष्ठ १५ हुआ। कनिष्ठ ६० है, उससे ज्येष्ठ १४७ हुआ। ज्येष्ठ का पूर्व मूल के साथ साम्य के लिये न्यास—

का ३ रू ०

का ० रू १५

का ३ रू ०

का ० रू १४७

समीकरण से कालक का मान ५। वा ४९, आया। इस से

पूर्व राशि $\frac{\text{काव १ रू }\dot{३}}{\text{या २}}$ में उत्थापन देते हैं। १ कालक का ५ मान है, तो कालक वर्ग का क्या ? यों वर्ग २५ हुआ, इस में रूप ३̇ घटा कर, हर २ का भाग देने से राशि ११ आई। इसी भाँति ४९ से उत्थापन देने से ११९९ राशि हुई।

यहां यावत्तावन्मान को वर्गान्तर मान कर, राशिज्ञान के लिये यह युक्ति दिखलाई है। जैसा—वर्गान्तर ११ है, इस में इष्ट राश्यन्तर १ का भाग देने से राशि योग ११ आया। इस से संक्रमण द्वारा राशि ५। ६ मिलीं। वा, वर्गान्तर ११९९ है, इस में इष्ट अन्तर ११ का भाग देने से, राशि योग १०९ आया, बाद संक्रमण से राशि ६०। ४९ मिलीं।

अथान्यत्करणसूत्रं सार्धवृत्तम्—

वर्गादेर्यो हरस्तेन गुणितं यदि जायते।
अव्यक्तं तत्र तन्मानमभिन्नं स्याद्यथा तथा॥८५॥
कल्प्योऽन्यवर्णवर्गादिस्तुल्यः शेषं यथोक्तवत्।

यत्र वर्गादौ कुट्टकादौ वा एकपक्षमूले गृहीतेऽन्यपक्षेऽव्यक्तवर्गादिकस्य यो हरस्तेन गुणितमव्यक्तं यदि स्यात्तदा तस्य मितिरभिन्ना यथा स्यात्तथान्यवर्णवर्गादिः सरूपो रूपोनो वा तुल्यः कल्प्यः शेषं पूर्वसूत्रवत्॥

विशेष—

जिस स्थान में एक पक्ष के मूल लेने के बाद, दूसरे पक्ष में यदि अव्यक्त वर्गादि के हर से गुणा हुआ अव्यक्त हो तो, वहाँ पर सरूप वा, अरूप अन्य वर्ण के वर्ग आदि ऐसे कल्पना करना कि, जिस के साथ समीकरण करने से, उस अव्यक्त का मान अभिन्न आवे

उदाहरणम्—

को वर्गश्चतुरूनः सन् सप्तभक्तो विशुध्यति।
त्रिंशदूनोऽथवा कः स्याद्यदि वेत्सि वद द्रुतम्॥

अत्र राशिः या १ अस्य वर्गश्चतुरूनः सप्तभक्तो विशुध्यतीति लब्धिप्रमाणं कालकस्तद्गुणितहरेणास्य याव १ रू ४̇ साम्यं कृत्वा प्रथमपक्षमूलम् या १ परपक्षस्यास्य का ७ रू ४ मूलाभावात् 'वर्गादेर्यो हरस्तेन गुणितं यदि जायते' इत्यादिनाकरणेन नीलकसप्तकस्य रूपद्वयाधिकस्य वर्गेण तुल्यं कृत्वा लब्धं कालकमानमभिन्नं जातम् नीव७ नी४ यत्तु कल्पितं तस्य द्वितीयपक्षस्य मूलम् नी७ रू २ इदं प्राक्पक्षमूलस्यास्य या १ समं कृत्वाप्तं यावत्तावन्मानम् नी७ रू२ सक्षेपमूह्य अस्य वर्गो राशिः स्यात् ८१॥

उदाहरण—

वह कौन वर्ग है, जिस में चार वा, तीस घटा कर, सात का भाग देने से, निःशेष होता है।

राशि याव १ में ४ घटा कर ७ का भाग देने से $\frac{\text{याव १ रू ४̇}}{७}$ हुआ। यह निःशेष होता है, इसलिये लब्धि का मान का १ कल्पना

किया । अब हर ७ और लब्धि का १ का घात, शेष ० युत भाज्य राशि के तुल्य हुआ—

याव १ का ० रू ४̇
याव ० का ७ रू ०

समशोधन से हुए—

याव १ का ०
का ७̇ रू ४

पहले पक्ष का मूल या १ आया और दूसरे पक्ष का ७ रू ४ का मूल वर्गप्रकृति से नहीं आता, इसलिये 'वर्गादेर्यो हरः' इस सूत्र के अनुसार रूप २ से सहित अन्यवर्ण नी ७ रू २ के वर्ग के साथ साम्य के लिये न्यास—

का ७ नीव ० नी ० रू ४
का ० नीव ४९ नी २८ रू ४

समशोधन से हुए—

का ७ नीव ० नी ० रू ०
का ० नीव ४९ नी २८ रू ०

और उक्तवत् कालक का मान अभिन्न नीव ७ रू ४ आया । कल्पित मूल नी ७ रू २ पूर्व मूल या १ के तुल्य है, इसलिये समीकरण से यावत्तावत् का मान नी ७ रू २ आया । नीलक का व्यक्त १ मान मानने से यावत्तावत् का मान व्यक्त ९ हुआ । इसका वर्ग ८१ राशि है ।

अथवान्यवर्णकल्पनायां मन्दावबोधार्थं पूर्वैरुपायः पठितः । सूत्रम्—

'हरभक्ता यस्य कृतिः
शुध्यति सोऽपि द्विरूपपदगुणितः ।
तेनाहतोऽन्यवर्णो
रूपपदेनान्वितः कल्प्यः ॥

न यदि पदं रूपाणां
क्षिपेद्धरं तेषु हारतष्टेषु ।
तावद्यावद्वर्गो
भवति न चेदेवमपि खिलं तर्हि ॥
हित्वा क्षिप्त्वा च पदं
यत्राद्यस्येह भवति तत्रापि ।
आलापित एव हरो
रूपाणि तु शोधनादिसिद्धानि ॥'

हर भक्तेति । यस्याङ्कस्य कृतिर्हरभक्ता सती शुध्यति निःशेषा भवति, अपि च सोऽप्यङ्को द्वाभ्यां रूपपदेन गुणितो हरभक्तः सन् शुध्यति तदा तेनाङ्केन हतोऽन्यवर्णस्तेन रूपेणान्वितः कल्प्यः । यदि तु रूपाणां पदं न तदा तेषु हरतष्टेषु रूपेषु तावद्धरं क्षिपेद् यावद्वर्गो भवेत् तन्मूलं रूपपदं भवेत् । एवमपि कृते चेद्वर्गः कदाचिन्न भवेत्तदा तदुदाहरणं खिलं स्यात् । यत्र तु आद्यपक्षस्य मूलं 'हित्वा क्षिप्त्वा—' इत्यादिना लभ्यते तदा हर आलापित एव ग्राह्यः । न तु गुणितो विभक्तो वा । रूपाणि तु समशोधने कृते शोध-

नादि सिद्धानि यानि तान्येव ग्राह्याणि । एवं घनेऽपि योज्यम् । तद्यथा---यस्याङ्कस्य घनो हरभक्तः शुध्यति तथा च सोऽप्यङ्कस्त्रिभी रूपाणां घनमलेन गुणितो हरभक्तः शुध्यति तदा तेनाङ्केन हतोऽन्यवर्णो रूपाणां घनमूलेन चान्वितः कल्प्यः । यदि रूपाणां घनमूलं न लभ्यते तदा तेषु रूपेषु हरतष्टेषु तावद्धरं क्षिपेद्यावद् घनो भवेत् तत्र घनमूलं रूपपदं स्यात् एवमपि कृते च घनः कदाचिन्न भवेत्त-दुदाहरणं खिलं स्यादित्यग्रेऽपि योज्यमिति शेषः ॥

अथ द्वितीयोदाहरणे राशिः या १ अस्य यथोक्तं कृत्वाद्यपक्षस्य मूलम् या १ परपक्ष-स्यास्य का ७ रू ३० 'न यदि पदं रूपाणां---' इत्यादिकरणेन हारतष्टरूपेषु द्विगुणं हरं प्रक्षिप्य मूलम् ४ एतदधिकनीलकसप्तकवर्ग-समीकरणादिना प्राग्वज्जातो राशिः नी ७ रू ४ । अथ यदि ऋणरूपैरन्वितं नीलक-सप्तकं नी ७ रू ४̇ परिकल्प्यानीयते तदान्यो-ऽपि राशिः ३ स्यात् ॥

'वर्गादेर्यो हरः–' इस सूत्र में जो अन्यवर्ण के वर्ग आदि की कल्पना कही है, उसके ज्ञान के लिये अब पूर्वाचार्योक्त उपाय दिखलाते हैं—जिस राशि का वर्ग हर के भाग देने से निःशेष हो, उस राशि को दो और रूपमूल से गुणा देना। फिर उस में हर का भाग देना, यदि निःशेष हो तो, उस से अन्य वर्ण को गुणा देना और उस में रूपमूल जोड़ देना, तब उसको परपक्ष के मूलस्थान में कल्पना करना। यदि रूपों का मूल न आता हो तो, हार से तष्टित किये हुए रूपों में, हर को तब तक जोड़ते जाना जब तक वह वर्ग न हो जावे। यों जो उस का मूल आवे, उसको रूपपद कल्पना करना। यदि ऐसा करने से भी रूपों का मूल न मिले, तो वह उदाहरण दुष्ट होगा। और जहाँ पर पक्षों को गुणा कर, उन में रूप जोड़ कर आद्यपक्ष का मूल आता है, वहाँ हर आलापित अर्थात् पाठपठित लेना चाहिये। और रूपशोधनादि सिद्ध अर्थात् गुणन तथा योजन के अनन्तर रूप स्थान में जो रूप निष्पन्न हुये हैं, उन को ग्रहण करना चाहिये। इसी भाँति, घन में भी जानना चाहिये। जैसा, जिस राशि का घन हर के भाग देने से निःशेष हो, उसको तीन और रूपों के घन मूल से गुणा देना फिर उस में हर का भाग देना। यदि निःशेष हो तो, उस से अन्य वर्ण को गुणा देना और उस में रूपों के घनमूल को जोड़ देना। तब उस को परपक्ष के मूलस्थान में कल्पना करना चाहिए। यदि रूपों का घनमूल न आता हो तो, हार से तष्टित रूपों में, हर को तब तक जोड़ते जाना जब तक वह घन न हो जाय। यों जो उस का मूल आवे, उसको रूपपद कल्पना करना। यदि ऐसा करने से भी रूपों का घनमूल न मिले तो, वह उदाहरण दुष्ट होगा। इसी भाँति आगे भी जानना चाहिए।

यहाँ प्रकृत उदाहरण में, पहले पक्ष का मूल या १ आया है और दूसरे पक्ष का ७ रू ४ का मूल लाना है। हर ७ है, और रूप ७ के वर्ग ४९ में हर ७ का भाग देने से निःशेषता होती है। ७ दूना करने से १४ हुआ, परपक्ष के रूप ४ के मूल २ से गुणने

से २८ हुआ । यह हर ७ के भाग देने से शुद्ध होता है, इसलिये उस ७ से अन्यवर्णा नी १ को गुणा देने से नी ७ हुआ । इस में रूप ४ का मूल २ जोड़ देने से नी ७ रू २ हुआ । इसके वर्ग के साथ परपक्ष का ७ रू ४ का समीकरण के लिये न्यास—

का ७ नीव ० नी ० रू ४
का ० नीव ४९ नी २८ रू ४

उक्तवत् कालक मान अभिन्न नीव ७ नी ४ आया, और नी ७ रू २ यह दूसरे पक्ष का मूल है । अन्यथा इस का वर्ग दूसरे पक्ष के समान न होगा । इसलिये प्रथमपक्ष मूल या १ का, नी ७ रू २ इस द्वितीय पक्ष मूल के साथ समीकरण करने से, यावत्तावत् का मान नी ७ रू २ आया । यहाँ नीलक का व्यक्तमान १ कल्पना किया, वह ७ से गुणाने से ७ हुआ । इस में रूप २ जोड़ देने से यावत्तावत् का मान व्यक्त ९ हुआ । इसका वर्ग ८१ राशि है । और कालक का मान नीव ७ नी ४ है, मान १ के वर्ग १ को ७ से गुणा देने से ७ हुआ, इस में चौगुना नीलक मान ४×१=४ जोड़ देने से कालक का मान व्यक्त ११ हुआ ।

आलाप—राशि ८१ में ४ घटा कर ७७ उस में ७ का भाग देने से लब्धि ११ कालक मान ११ के तुल्य मिली ।

उपपत्ति—

यहाँ वर्गकुट्टक में, 'कौन वर्ग उद्दिष्ट क्षेप से युत वा ऊन और हर से भाजित निःशेष होता है ?' यह आलाप है । जिस भाँति उक्त रीति के अनुसार पहले पक्ष का मूल या १ ग्रहण किया है और दूसरे पक्ष का ७ रू ४ का मूल नहीं आता, इसलिये उस वर्गात्मक पक्ष का तीसरे कल्पित वर्गात्मक पक्ष के साथ समीकरण करना ठहराया है और समशोधन करने से अभिन्न मान लाये हैं, उस को सयुक्तिक दिखलाते हैं—यहाँ पर वर्गात्मक तीसरे पक्ष का मूल इष्टाङ्क से गुणित रूपयुत अन्यवर्णा को कल्पना किया, जैसा—नी ७ रू २ । और दूसरे पक्ष का ७ रू ४ के रूप ४ के मूल २ के तुल्य तीसरे पक्ष के मूलरूप २ को कल्पना किया । क्योंकि उस २ का वर्ग ४ करने

से समीकरण के समय, उन तुल्य रूपों का नाश हो जायगा। इसलिये 'रूपपदेनान्वित: कल्प्य:' यह कहा है। और इष्टाङ्क से गुणित अन्य वर्ण नी ७ में इष्टाङ्क रूप गुणक ७ ऐसा कल्पना किया कि, जिस में वर्गात्मक तृतीयपक्ष नीव ४९ नी २८ रू ४ द्वितीयपक्ष का ७ रू ४ के साथ समीकरण करने से निःशेष होवे। जैसा—आद्यपक्ष शेष नीव ४९ नी २८ में, अव्यक्त शेष का ७ का भाग देने से निरग्र लब्धि नीव ७ नी ४ आती है। इस से अभिन्न मान होगा। यहाँ जिस अङ्क का वर्ग हर ७ का भाग देने से निःशेष होता है, वह इष्टाङ्क ७ कल्पना किया गया है। और दूसरे पक्ष का अव्यक्त शेष का ७ आलाप विधि से हर गुणित वर्ण के तुल्य होता है, इसलिये 'हरभक्ता यस्य कृति: शुध्यति—' यह कहा है। और कल्पित तीसरे पक्ष का मूल खण्डद्वयात्मक नी ७ रू २ है, उसके वर्ग करने में, तीन खण्ड होते हैं—नीव ४९ नी २८ रू ४ अर्थात् अन्त्य नी ७ का वर्ग नीव ४९ पहला खण्ड, नीलक ७ और रूप २ इन का दूना घात नी २८ दूसरा, और रूपवर्ग ४ तीसरा। यहाँ पहला खण्ड नीव ४९ हर ७ का भाग देने से निःशेष ही होगा, क्योंकि 'हरभक्ता यस्य कृति:—' ऐसा कहा है। और दूसरा खण्ड नी २८ रूपपद २ और २ से गुणित इष्टाङ्क ७ है, इसलिये 'शुध्यति सोऽपि द्विरूपपदगुणित:' यह कहा है। इष्टाङ्क, रूपपद और दो इन के घात में इष्टाङ्क का भाग देने से, लब्ध रूपपद और दो इन का घात आता है, वह निःशेष ही है। इस युक्ति से तीसरे पक्ष के मूल का पहले पक्ष के मूल के साथ समीकरण करने से, राशि ज्ञान होना उचित है। क्योंकि वे तीनों पक्ष आपस में समान हैं।

अब 'न यदि पदं रूपाणां—' इस सूत्र खण्ड की व्याप्ति दिखलाने के लिये उदाहरण—

राशि या १ का वर्ग ३० से ऊन करने से याव १ रू ३̇० हुआ यह ७ के भाग देने से शुद्ध होता है इसलिये हर ७ और कल्पित लब्धि १ का घात का ७ भाज्य के तुल्य हुआ।

याव १ का ० रू ३̇०
याव ० का ७ रू ०

समशोधन से हुए—

याव १ का ० रू ०

याव ० का ७ रू ३०

पहले पक्ष का मूल या १ आया, दूसरे पक्ष में का ७ रू ३० 'हर भक्ता यस्य कृतिः' इसके अनुसार क्रिया करनी चाहिये। वहाँ रूप ३० के स्थान में मूलाभाव है। अत्र हार ७ तष्टित रूप २ में दूना हर २×७=१४ जोड़ देने से १६ हुआ। इसका मूल ४ आया, यह रूपपद हुआ। और इष्ट ७ का वर्ग ४९ हर ७ के भाग देने से शुद्ध होता है, वह ७ इष्टाङ्क है, दूना करने से १४ हुआ। रूपपद ४ से गुणने से ५६ हुआ। इसमें भी हर ७ का भाग देने से निःशेषता होती है। इसलिये इष्ट ७ से, अन्य वर्ण नीलक गुणा देने से नी ७ हुआ। इसमें रूपपद ४ जोड़ने से नी ७ रू ४ हुआ। यह कल्पित तीसरे पक्ष का मूल है। अब इसके वर्ग का, दूसरे पक्ष के साथ समीकरण करने के लिये न्यास—

का ७ नीव ० नी ० रू ३०

का ० नीव ४९ नी ५६ रू १६

समशोधन से कालक का मान अभिन्न नीव ७ नी ८ रू २̇ आया। अब कल्पित तृतीय पक्ष नी ७ रू ४ का आद्यपक्षीय मूल या १ के साथ समीकरण करने से यावत्तावन्मान अभिन्न नी ७ रू ४ आया। नीलक का मान व्यक्त १ मान कर, उत्थापन देने से राशि ११ आई। इसी भाँति, कालकमान नीव ७ नी ८ रू २̇ में उत्थापन देते हैं—नीलकमान १ का वर्ग १ हुआ ७ से गुणने से ७ हुआ, इस में अष्टगुण मान ८×१=८ जोड़ने से १५ हुआ, इस में २ घटा देने से १३ कालक का मान आया।

आलाप—राशि ११ के वर्ग १२१ में ३० घटा कर शेष ९१ में ७ का भाग देने से शुद्धि होती है और लब्धि १३ कालकमान १३ के तुल्य आती है।

उपपत्ति—

यदि दूसरे पक्ष के रूपों का मूल न आता हो तो, उन में इस भाँति इष्टगुणित हर जोड़ना कि जिस में वर्गरूप हो जावें। जैसा—प्रकृत

उदाहरण में, दूसरा पक्ष का ७ रू ३० है। यहाँ रूप ३० हर ७ से तष्टित करने से २ रहा, इस म द्विगुण हर १४ जोड़ देने से १६ हुआ, यह वर्ग दूने हर से ऊन ३०—१४=१६ रूप के तुल्य है। अब इसके मूल ४ को यदि रूप ४ कल्पना करें तो, उस के वर्ग १६ का, दूसरे पक्ष के रूप ३० के साथ समशोधन करने से शेष १४ रहता है, यह दूने हर के तुल्य है। तब उस में अव्यक्त शेष हर ७ का भाग देने से, इष्ट २ लब्धि मिलेगी और शेष का अभाव होगा। इस भाँति यहाँ पर भी, मान अभिन्न सिद्ध होता है। यदि 'वर्ग इष्ट अङ्क से गुणित, क्षेप से युत वा ऊन और हर से भाजित निःशेष होता है' ऐसा आलाप हो तो, इष्टाङ्क गुणित हर को, द्वितीय वर्णाङ्क कल्पना करना। इस प्रकार उक्त रीति से उद्दिष्ट सिद्धि होगी।

उदाहरणम्—

षड्भिरूनो घनः कस्य पञ्चभक्तो विशुध्यति।
तं वदाशु तवालं चेदभ्यासो घनकुट्टके ॥६६॥

अत्र राशिः या १ अस्य यथोक्तं कृत्वाद्यपक्षस्य घनमूलं या १ परपक्षस्यास्य काघ ५ रू ६ 'हरभक्तो यस्य घनः शुध्यति सोऽपि त्रिरूपपदगुणितः—' इत्यादि युक्त्या नीलकपञ्चकस्य रूपषट्काधिकस्य घनेन साम्यं कृत्वा प्राग्वज्जातो राशिः सक्षेपः नी ५ रू ६ उत्थापने कृते जातो राशिः ६। वा ११।

अथ घनकुट्टके क्रियादर्शनार्थमुदाहरणमनुष्टुभाह—षड्भिरिति। कुट्टको हि गुणविशेष इत्युक्तं प्राक्। स इह घनरूपोऽस्ति

यथा पूर्वस्मिन्नुदाहरणे वर्गरूपः, अत्र कुट्टकवत्क्रियासाम्यात् 'वर्गकुट्टकः' 'घनकुट्टकः' इति कथ्यते । अन्वर्थेयं संज्ञा ॥

उदाहरण—

वह कौन राशि है, जिस के घन में छः घटा कर, पांच का भाग देने से निःशेष होती है ।

राशि या १ का घन याघ १ छ से ऊन याघ १ रू ६̇ पांच का भाग देने से शुद्ध होता है, इसलिये हर ५ और कल्पित लब्धि का १ का घात भाज्य के तुल्य हुआ—

याघ १ का ० रू ६̇

याघ ० का ५ रू ०

समशोधन से हुए—

याघ १

का ५ रू ६

पहले पक्ष का घनमूल या १ आया और दूसरे पक्ष का घनमूल नहीं आता इसलिये 'हरभक्तो यस्य घनः शुध्यति—' इसके अनुसार क्रिया करनी चाहिये । वहां रूप ६ का भी घनमूल नहीं आता तो, अब हार ५ से तष्टित रूप १ में तैंतालीस से गुणित हार ४३×५= २१५ को जोड़ने से २१६ घनमूल ६ आया, यह रूपपद हुआ । और इष्ट घन १२५ हर ५ के भाग देने से शुद्ध होता है, तथा इष्ट ५ तीन ३ और रूपपद ६ से गुणा ६० हर ५ के भाग देने से शुद्ध होता है, इसलिये इष्ट ५ से अन्य वर्णा नी १ गुणा देने से नी ५ हुआ । रूपपद ६ जोड़ने से नी ५ रू ६ हुआ । इसको तीसरे पक्ष के मूल स्थान में कल्पना किया । अब इसके घन का दूसरे पक्ष के साथ साम्य के लिये न्यास—

का ५ नीव ० नीव ० नी ० रू ६

का ० नीघ १२५ नीव ४५० नी ५४० रू २१६

समशोधन से हुए—

का ५

का ० नीव १२५ नीघ ४५० नी ५४० रू २१०

उक्तवत् कालक का मान अभिन्न नीघ २५ नीव ६० नी १०८ रू ४२ आया। और कल्पितमूल नी ५ रू ६ का पहले पक्ष के मूल या १ के साथ, समीकरण करने से यावत्तावन्मान नी ५ रू ६ आया। नीलक में एक का उत्थापन देने से राशि ११ आई। इसी भाँति, कालक मान 'नीघ २५ नीव ६० नी १०८ रू ४२' में नीलक का व्यक्तमान १ मान कर, उत्थापन देने से व्यक्त कालकमान २६५ हुआ।

आलाप—राशि ११ के घन १३३१ में ६ घटा कर १३२५ उस में ५ का भाग देने से, लब्धि २६५ कालक मान के तुल्य मिली॥

उदाहरणम्—

यद्वर्गः पञ्चभिः क्षुण्णस्त्रियुक्तः षोडशोद्धृतः।
शुद्धिमेति तमाचक्ष्व दक्षोऽसि गणिते यदि १००

अत्र राशिः या १ अस्य यथोक्तं कृत्वाद्यपक्षमूलम् या ५ परपक्षस्यास्य का ८० रू १५ 'हित्वा क्षिप्त्वा च पदं यत्र—' इत्यादिनाप्यत्रालापित एव हरः स्थाप्यः, रूपाणि तु शोधनादिसिद्धानीति तथा कृते जातम् का १६ रू १५ अमुं नीलकाष्टकस्य सैकस्य वर्गेण समं कृत्वाप्तं कालकमानमभिन्नं नीव ४ नी १ रू १, कल्पितपदं नी ८ रू १ इदमाद्यस्यास्य या ५ समं कृत्वा कुट्टकाल्लब्धं यावत्तावन्मानम् पी ८ रू ५ उत्थापिते जातो राशिः १३।

अथवा ऋणरूपेणाधिके नीलाष्टके कल्पिते

साति लब्धं यावत्तावन्मानम् पी ८ रू ३ ।

एवं 'वर्गप्रकृत्या विषयो यथा स्यात्तथा सुधीभिर्बहुधा विचिन्त्यम्' इत्यस्य प्रपञ्चो बहुधा दर्शितः तथा वर्गकुट्टकेऽपि किंचिद्दर्शितम्। एवं बुद्धिमद्भिरन्यदपि यथासंभवं योज्यम् ॥

इति श्रीभास्करीये बीजगणितेऽनेकवर्णसम्बन्धिमध्यमाहरणभेदाः ॥

अथ 'हत्वा क्षिप्त्वा च पदं—' इत्यादेर्व्याप्तिं दर्शयितुमुदाहरणमनुष्टुभाह—यद्वर्ग इति । स्पष्टार्थमेतत् ।

इति द्विवेदोपाख्याचार्यश्रीसरयूप्रसादसुतदुर्गाप्रसादोन्नीते बीजविलासिन्यनेकवर्णमध्यमाहरणभेदाः ॥

उदाहरण—

वह कौन राशि है, जिस का वर्ग पांच से गुणा, तीन से जुड़ा और सोलह से भाजित शुद्ध होता है ।

राशि या १ का वर्ग याव १ पञ्चगुण और त्रियुत याव ५ रू ३ हुआ, यह १६ के भाग देने से शुद्ध होता है, इसलिये हर १६ और लब्धि का १ का घात भाज्य के तुल्य हुआ—

याव ५ रू ३
का १६ रू ०

समशोधन से हुए—

याव ५ रू ०
का १६ रू ३

५ से गुणने से हुए—

याव २५ रू ०
का ८० रू १५̇

पहले पक्ष का मूल वा ५ आया। दूसरे पक्ष का ८० रू १५̇ में मूल तथा रूपपद का अभाव है, इसलिये वहाँ पाठपठित हर का १६ लिया और रूप शोधनादि सिद्ध १५̇ ग्रहण किया। इस भाँति, दूसरे पक्ष का स्वरूप 'का १६ रू १५̇' हुआ। यहाँ हार १६ से तष्टित किये हुए रूप १५̇ में हर १६ जोड़ देने से १ शेष रहा, इसका मूल १ रूपपद है। और इष्ट ८ का वर्ग ६४ हर १६ के भागने से शुद्ध होता है तथा वही अंक ८ दो और रूपपद १ से गुणा १६ हर १६ के भाग देने से शुद्ध होता है। इसलिये उस इष्ट ८ से अन्य वर्ण नी १ को गुणा कर, उस में रूपपद १ जोड़ कर, दूसरे पक्ष के मूलस्थान में कल्पना किया। अब इसके वर्ग का दूसरे पक्ष का १६ रू १५̇ के साथ साम्य के लिये न्यास—

का १६ नीव ० नी ० रू १५̇
का० नीव ६४ नी १६ रू १

समशोधन से हुए—

का १६ नीव ० नी ० रू ०
का ० नीव ६४ नी १६ रू १६

उक्त रीति से कालक मान नीव ४ नी १ रू १ आया। कल्पित मूल नी ८ रू १ का पहले पक्ष के मूल या ५ के साथ समीकरण करने से, यावत्तावत् का मान भिन्न $\frac{\text{नी ८ रू १}}{\text{या ५}}$ आया। इसका अभिन्न मान जानने के लिये कुट्टक के लिए न्यास—

भा० ८। क्षे० १ वल्ली १
हा० ५।

१
१
१
०

उससे दो राशि ३ । २ वल्ली के विषम होने से, अपने अपने हार में शुद्ध करने से लब्धि ५ और गुण ३ हुआ। लब्धि भाजकवर्ण यावत्तावत् का मान और गुण नीलक का मान हुआ। पीतक १ इष्ट मानने से 'इष्टाहत—' इस के अनुसार सक्षेप हुए—

पी ८ रू ५ यावत्तावत्

पी ५ रू ३ नीलक

पीतक में शून्य का उत्थापन देने से यावत्तावन्मान ५ आया, यही राशि है। वा, पीतक में एक का उत्थापन देने से राशि १३ आई। यहाँ कालक मान में उत्थापन देने से, वह लब्धि के तुल्य नहीं आता और दूसरे पक्ष का कल्पितमूल के साथ साम्यक्रिया भी संदिग्ध है, क्योंकि हर पाठपठित और रूप शोधनादि सिद्ध ग्रहण किये गये हैं। इसलिये अब असंदिग्ध कहते हैं—

राशि या १ वर्ग पञ्चगुण और त्रियुत भाज्य याव ५ रू ३ हुआ, यह १६ के भाग देने से निरग्र होता है। इसलिये हर १६ और कल्पित लब्धि कालक का पञ्चमांश का $\frac{१}{५}$ इन का घात भाज्य के तुल्य हुआ—

याव ५ का ० रू ३

याव ० का $\frac{१६}{५}$ रू ०

समच्छेद और छेदगम से हुए—

याव २५ का ० रू १५

याव ० का १६ रू ०

समशोधन से हुए—

याव २५ का ० रू ०

याव ० का १६ रू १५̇

पहले पक्ष का मूल या ५ आया, दूसरे पक्ष का १६ रू १५̇ में पहला खण्ड पाठपठित हर के तुल्य है और दूसरा शोधनादि सिद्धरूप के तुल्य है। यहाँ उक्त रीति के अनुसार, यावत्तावन्मान पी ८ रू ५ कालक मान नीव ४ नी १ रू और नीलक मान पी ५ रू ३ आया। यावत्तावत् और नीलक के मान में पीतक में शून्य से उत्थापन देने से यावत्तावत् और नीलक का मान व्यक्त मिला ५ । ३ और नीलक

मान ३ से कालकमान नीव ४ नी १ रू १ में उत्थापन देने में, व्यक्त कालक मान ४० आया। इस में हर ५ का भाग देने से लब्धि का प्रमाण ८ मिला। जैसा—यावत्तावन्मान ५ के तुल्य राशि ५ के वर्ग २५ को ५ से गुण कर उसमें ३ जोड़ देने से १२८ हुआ, इस में हर १६ का भाग देने से वही ८ लब्धि आती ह।

'आलापित एव हरः' ऐसा जो नियम किया है, वह लाघव के लिये है अन्यथा शोधनादि सिद्ध हर से भी वही बात सिद्ध होती है। जैसा—उक्त रीति के अनुसार पक्ष हुए—

याव ५ का ० रू ३
याव ० का १६ रू ०

समशोधन करने से—

याव ५ का ० रू ०
याव ० का १६ रू ३̇

५ से गुणने से—

याव २५ का ० रू ०
याव ० का ८० रू १५̇।

पहले पक्ष का मूल या ५ आया, दूसरे में गुण से गुणित हर, रूप हैं। अब, हर ८० तष्ट रूप १५̇ में त्रिगुण हर २४० जोड़ने से २२५ इस का मूल १५ रूपपद हुआ। इष्ट ४० का वर्ग १६०० हर ८० का भाग देने से शुद्ध होता है तथा इष्ट ४० दो से और रूपपद १५ से गुणा हर ८० के भाग देने से शुद्ध होता है। अब इष्टाङ्क ४० से अन्य वर्ण नी १ को गुण कर, उसमें रूप १५ जोड़ने से, कल्पित मूल नी ४० रू १५ हुआ। इस के वर्ग का दूसरे पक्ष के साथ साम्य के लिये न्यास—

का ८० नीव ० नी ० रू १५̇
का ० नीव १६०० नी १२०० रू २२५

समशोधन करने से—

का ८० नीव ० नी ० रू ०
का ० नीव १६०० नी १२०० रू २४०

उक्त रीति से कालकमान अभिन्न नीव २० नी १५ रू ३ आया। और कल्पित मूल नी ४० रू १५ का आद्यपक्ष के मूल या १६ के साथ साम्य करने से यावत्तावन्मान नी ८ रू ३ आया। नीलक में शून्य ० का उत्थापन देने से राशि ३ हुई। और कालक मानान्तर्गत 'नीव २० नी १५ रू ३' नीलक वर्ण में शून्य ० का उत्थापन देने से कालक मान ३ आया और नीलकमान १ मानने से यावत्तावन्मान ११ और कालक मान ३८ आया।

अथवा 'तेनाहतोऽन्यवर्णो रूपपदेनान्वितः कल्प्यः' इस स्थान में 'स्वमूले धनर्णो' इस के अनुसार, रूपपद ऋण ग्रहण किया नी ४० रू १५̇, इस के वर्ग का, दूसरे पक्ष के साथ समीकरण करने से, कालकमान 'नीव २० नी १५̇ रू ३' आया। और कल्पितमूल नी ४० रू १५̇ का आद्यपक्ष के मूल या ५ के साथ साम्य करने से, यावत्तावन्मान नी ८ रू ३̇ आया। नीलक में १ का उत्थापन देने से यावत्तावन्मान ५ और कालक मान ८ आया॥

अनेकवर्णमध्यमाहरण समाप्त—

दुर्गाप्रसादरचिते भाषाभाष्ये मिताक्षरे।
पूर्तिं गतानेकवर्णमध्यमाहरणक्रिया॥

अथ भावितं तत्र सूत्रं वृत्तम्-

मुक्त्वेष्टवर्णं सुधिया परेषां
कल्प्यानि मानानि तथेप्सितानि ।
यथा भवेद्भावितभङ्ग एवं
स्यादाद्यबीजक्रिययेष्टसिद्धिः ॥ ८६ ॥

यत्रोदाहरणे वर्णयोर्वर्णानां वा वधाद्भावितमुच्यते तत्रेष्टं वर्णमपहाय शेषयोः शेषाणां वा वर्णानामिष्टानि व्यक्तानि मानानि कृत्वा तैस्तान् वर्णान् पक्षयोरुत्थाप्य रूपेषु प्रक्षिप्यैवं भावितभङ्गं कृत्वा प्रथमबीजक्रियया वर्णमानमानयेत् ॥

अथ भावितं व्याख्यायते-

अथ क्रमप्राप्तं भावितसंज्ञमनेकवर्णविशेषमुपजातिकयाह—मुक्तेति । स्पष्टार्थमिदं विवृतं चापि ग्रन्थकारैः ॥

भावित ।

अब क्रमप्राप्त भावित नामक अनेकवर्ण के विशेष का निरूपण करते हैं—

जिस उदाहरण में दो वा, अनेकवर्ण के घात से भावित उत्पन्न हो, वहां पर इष्ट वर्ण को छोड़ कर और वर्णों के ऐसे अभिमत व्यक्तमान कल्पना करना कि जिस में भावित का भङ्ग अथात् नाश हो । और दोनों पक्षों के वर्णों में उन व्यक्तमान से उत्थापन देना फिर एकवर्ण समीकरण की रीति के अनुसार इष्टसिद्धि होगी ॥

उदाहरणम्-

चतुस्त्रिगुणयो राश्योः संयुतिर्द्वियुता तयोः ।
राशिघातेन तुल्या स्यात्तौ राशी वेत्सि चेद्वद ॥

अत्र राशी या १ । का १ अनयोर्यथोक्ते कृते जातौ पक्षौ

या ४ का ३ रू २
या का भा १

एवं भाविते जाते 'मुक्त्वेष्टवर्णं-' इत्यादि-सूत्रेण कालकस्य किलेष्टं रूपपञ्चकं मानं कल्पितं तेन प्रथमपक्षे कालकमुत्थाप्य रूपेषु प्रक्षिप्य जातम् या ४ रू १७ द्वितीयपक्षे या ५ अनयोः समशोधने कृते प्राग्वल्लब्धं याव-त्तावन्मानम् १७ एवमेतौ जातौ राशी १५।५ अथवा षट्केन कालकमुत्थाप्य जातौ राशी १० । ६ एवमिष्टवशादानन्त्यम् ॥

उदाहरण—

जिन दो राशियों का चार और तीन से गुणित योग, दो से युक्त उन के घात के तुल्य होता है, वे दो कौन राशि हैं ।

चार और तीन से गुणित राशियों या ४ का ३ का, योग दो से जुड़ा या ४ का ३ रू २ उन के घात के तुल्य हुआ—

या ४ का ३ रू २
या का भा १

समशोधन से पक्ष ज्यों के त्यों रहे। यहाँ आद्य पक्ष में दो वर्ण हैं, उनमें से पहले वर्ण यावत्तावत् को छोड़कर, दूसरे कालक वर्ण का व्यक्तमान ५ कल्पना किया। फिर १ कालक का ५ व्यक्तमान, तो ३ का क्या ? १५ हुआ, इसमें रूप २ जोड़ने से आद्यपक्ष का स्वरूप या ४ रू १७ हुआ, और कालक मान ५ को पहले राशि या १ से गुणा देने से दूसरे पक्ष का स्वरूप या ५ हुआ। इनका समीकरण के लिये न्यास—

या ४ रू १७

या ५ रू ०

उक्तवत् यावत्तावन्मान १७ आया और कालकमान ५ व्यक्त हीं कल्पना किया था। इस भाँति राशि १७। ५ हुई। कालकमान ६ मानने से उक्त रीति के अनुसार राशि १०। ६ हुई॥

उदाहरणम्—

चत्वारो राशयः के ते यद्योगो नखसंगुणः।
सर्वराशिहतेस्तुल्यो भावितज्ञ निगद्यताम्॥

अत्र राशिः या १ शेषा दृष्टाः ५।४।२। अतः प्रथमबीजेन लब्धं यावत्तावन्मानम् ११। एवं जाता राशयः ११।५।४।२। वा २८।१०।३।१। वा ५५।६।४।१। वा ६०।८।३।१। एवं बहुधा॥

उदाहरण—

वे चार कौन राशि हैं, जिन का योग बीस से गुणित उन के घात के तुल्य होता है।

पहली राशि या १ है और शेष राशियों का मान व्यक्त कल्पना

किया ५ । ४ । २ इनका योग या १ रू ११ बीस से गुणा या २० रू २२० सर्वराशि-घात या ४० के तुल्य है—

या २० रू २२०

या ४० रू०

समशोधन से पहली राशि का मान ११ आया । और राशियों का मान व्यक्त कल्पना किया उन का क्रम से न्यास ११ । ५ । ४ । २ । इसी भाँति शेष राशि १० । ३ । १ वा ६ । ४ । १ वा ८ । ३ । कल्पना करने से पहली राशि २८ वा ५५ । वा ६० हुई ॥

उदाहरणम्—

यौ राशी[1] किल या च राशिनिहतिर्यौ राशिवर्गौ तथा तेषामैक्यपदं सराशियुगलं जातं त्रयोविंशतिः । पञ्चाशत्त्रियुताथवा वद कियत्तद्राशियुग्मं पृथक् तच्चाभिन्नमवेहि वत्स गणकः कस्त्वत्समोस्ति क्षितौ १०३ ॥

अत्र राशी या १ । रू २ । अनयोर्घातयुतिवर्गाणां योगः याव १ या ३ रू ६ इमं राशियोगोनत्रयोविंशतेः या १ रू २१ वर्गस्यास्य

---

१. ज्ञानराजदैवज्ञाः—

राश्योर्या वियुतिर्युतिश्च निहतिस्तद्वत्कृतिस्तद्युति-
स्तन्मूलं समभूत्सराशियुगलं सप्ताधिका विंशतिः ।
योगो युग्मयुगघ्नयोः शशियुतः स्याद्राशिघातोन्मित—
स्तौ राशी वद शास्त्रविस्तृतमते सद्भावितं वेत्सि चेत् ॥ राशी ६,५ । राशी ७,५ ॥

याव १ या ४२ रू ४४१ समं कृत्वा लब्धं यावत्तावन्मानम् $\frac{२६}{३}$ एवमेतौ राशी $\frac{२६}{३}$ । २ । अथवा राशी या १ । रू ३ । अतः प्राग्वज्जातौ राशी $\frac{६७}{११}$ । ३ ।

अथ द्वितीयोदाहरणे राशी या १ । रू २ । अनयोर्घातयुतिवर्गाणां योगः याव १ या ३ रू ६ अमुं राशिद्वयोनत्रिपञ्चाशद्वर्गस्यास्य याव १ या १०२ रू २६०१ समं कृत्वा प्राग्वज्जातौ राशी $\frac{१७३}{७}$ । २ । वा ११ । १७ । एवमेकस्मिन् व्यक्ते राशौ कल्पिते सति बहुनायासेनाभिन्नौ राशी ज्ञायेते ॥

अथ शिष्यबुद्धिप्रसारार्थमन्यदुदाहरणद्वयं शार्दूलविक्रीडितेनाह—यावितिं । स्पष्टार्थमेतत् ॥

उदाहरण—

वे दो राशि कौन हैं, जो राशि और उन का घात तथा वर्ग के योग मूल में वे ही दो राशि जोड़ देने से, तेईस अथवा तरेपन होते हैं ।

कल्पना किया पहली राशि या १ और दूसरी व्यक्त २ ह । इन का घात या २ हुआ और इन के वर्ग याव १ । रू ४ अब राशि या १ । रू २ । घात या २ और इन के वर्ग याव १ । रू ४ का योग 'याव १ या ३ रू ६' हुआ । इस के मूल में दो राशि जोड़ देने से तेईस होते हैं, तो विलोमविधि के अनुसार, दोनों राशि या १ । रू २ के योग को २३ में घटा देने से, शेष या १ रू २१ रहा, इसका वर्ग याव १ या ४२ रू ४४१ पहले योग के तुल्य है, इसलिये समीकरण के लिये न्यास—

याव १ या ३ रू ६

याव १ या ४२ रू ४४१

समशोधन से यावत्तावत् का मान $\frac{\text{रू ४३५}}{\text{४५}}$ पंद्रह के अपवर्तन देने से $\frac{\text{२९}}{\text{३}}$ हुआ। यह पहली राशि है और दूसरी व्यक्त २ है। यदि दूसरी राशि ३ कल्पना करें, तो पहली राशि $\frac{\text{६७}}{\text{९}}$ आई। इसी भाँति यदि दूसरी राशि का मान व्यक्त ५ कल्पना करें, तो पहली राशि ७ हुई।

दूसरे उदाहरण में, या १ । रू २ राशि है, इनका घात या २ हुआ, और इन के वर्ग याव १ । रू ४ अब राशि या १ । रू २ इनके घात या २ और वर्ग याव १ । रू ४ का योग, याव १ या ३ रू ६ हुआ, इसके मूल में, वे दो राशि जोड़ देने से तरेपन होते हैं, तो विलोम-विधि के अनुसार ५३ में दोनों राशि के योग या १ रू २ को घटा देने से शेष या १ रू ५१ रहा, इस का वर्ग याव १ या १०२ रू २६०१ पहले योग के तुल्य है, इसलिये समीकरण के लिये न्यास—

याव १ या ३ रू ६

याव १ या १०२ रू २६०१

समशोधन से यावत्तावन्मान $\frac{\text{रू २५९५}}{\text{१०५}}$ में १५ का अपवर्तन देने से पहली राशि $\frac{\text{१७३}}{\text{७}}$ हुई और दूसरी २ है। इसी भाँति, यदि दूसरी राशि का मान व्यक्त १७ कल्पना करें तो पहली राशि ११ अभिन्न आता है। इस प्रकार, एक राशि का व्यक्तमान मानने से, बड़े प्रयास से अभिन्न राशी जानी जाती हैं ॥

अथ तौ यथाल्पायासेन भवतस्तथोच्यते—

तत्र सूत्रं सार्धवृत्तद्वयम्—

भावितं पक्षतोऽभीष्टात्त्यक्त्वा वर्णौ सरूपकौ ॥
अन्यतो भाविताङ्केन ततः पक्षौ विभज्य च ।

वर्णाङ्काहतिरूपैक्यं भक्तेष्टेनेष्ट तत्फले ॥ ८८॥
एताभ्यां संयुतावूनौ कर्तव्यौ स्वेच्छया च तौ।
वर्णाङ्कवर्णयोर्माने ज्ञातव्ये ते विपर्ययात् ८६॥

समयोः पक्षयोरेकस्माद्भावितमपास्यान्यतो वर्णौ रूपाणि च ततो भाविताङ्केन पक्षावपवर्त्य द्वितीयपक्षे वर्णाङ्कयोर्घातं रूपयुतेन केनचिदिष्टेन विभज्य तदिष्टं तत्फलं च द्वे अपि वर्णाङ्काभ्यां स्वेच्छया युक्ते सती वर्णयोर्माने विपर्ययेण ज्ञातव्ये, यत्र कालकाङ्को योजितस्तद्यावत्तावन्मानम्, यत्र यावत्तावदङ्कस्तत्कालकमानमित्यर्थः। यत्र तु इयत्तावशादेवं कृते सत्यालापो न घटते तत्रेष्टफलाभ्यां वर्णाङ्कावूनितौ व्यत्ययान्माने भवतः॥

अथ यथाल्पायासेनैव राशिमानमभिन्नं सिध्यति तथा सार्धानुष्टुब्द्वयेनाह—भावितमिति ॥ अस्यार्थ आचार्यैरेव व्याख्यातः ॥

अब अल्प प्रयास से अभिन्न राशि ज्ञान की रीति कहते हैं—

तुल्य दो पक्षों में से, अभीष्ट एक पक्ष में, भावित को घटा कर, दूसरे पक्ष में सरूप वर्ण को घटा देना और पक्षों में भाविताङ्क का भाग देकर वर्णाङ्कघात और रूप के योग में इष्टाङ्क का भाग देना और इष्टाङ्क तथा इष्टभक्त फल को दो स्थान में रखना उन (इष्ट-फल) को वर्णाङ्क में अपनी इच्छा से जोड़ या घटा देने से वे व्यत्यय से वर्णों के मान होंगे। अर्थात् जहां कालक वर्णाङ्क जोड़ा गया है, वहां पर यावत्तावत्

का मान होगा और जहां यावत्तावद्वर्णाङ्क जोड़ा गया है, वहां कालक का मान होगा ।

अथ प्रथमोदाहरणम्—' चतुस्त्रिगुणयो राश्योः संयुतिर्द्वियुता तयोः । राशिघातेन तुल्या—' इति । तत्र यथोक्ते कृते पक्षौ

या ४ का ३ रू २

या का भा १

वर्णाङ्काहतिरूपैक्यम् १४ एतदेकेनेष्टेन हृतं जाते इष्टफले १ । १४ । एते वर्णाङ्काभ्यां ४।३ स्वेच्छया युते जाते यावत्तावत्कालकमाने ४ । १८ वा १७।५ द्विकेन जाते ५।११ वा । १०।६।

'चतुस्त्रिगुणयोः—' इस पहले उदाहरण के अनुसार तुल्य पक्ष हुए—

या ४ का ३ रू २

या का भा १

यहां वर्णाङ्क ४ । ३ घात १२ हुआ इस में रूप २ जोड़ने से १४ हुआ । इस में इष्ट १ का भाग देने से फल १४ आया । अब इष्ट १ और फल १४ क्रम से वर्णाङ्क ४ । ३ में जोड़ देने से कालक का मान ५ और यावत्तावत् का मान १७ आया । अथवा, इष्ट १ और फल १४ को कालक यावत्तावद्वर्णाङ्क ३ । ४ में जोड़ने से, उन के मान ४ । १८ हुए । इसलिये 'एताभ्यां संयुतावूनौ कर्तव्यौ स्वेच्छया च तौ' यह कहा है । अथवा, वर्णाङ्क घात १२ और रूप २ के योग १४ में इष्ट २ का भाग देने से, फल ७ आया । अब इष्ट २ और फल ७ को कालक और यावत्तावत् के अङ्क ३ । ४ में जोड़ देने से यावत्तावत् और कालक के मान ५ । ११ हुए ।

भावितोपपत्ति—

समान पक्षों में समान ही घटाने से उन का समानत्व नष्ट नहीं होता, इसलिये पक्षों में भावित समान घटाया है, फिर पक्षों में अन्यपक्ष समान घटाया है। इस प्रकार, पक्ष भावित के समान होगा। यदि भावित किसी अङ्क से गुणित हो तो उस भाविताङ्क का पक्षों में भाग देकर, पक्ष को भावित के समान बनाना। फिर राशि जानने के लिये यावत्तावत् और कालक राशि कल्पना किया तथा अव्यक्तों के अङ्क को क्रम से य और क मान लिये, तब पक्ष भावित के समान हुआ—

या. य १ का. क १ रू १
या का भा १

'आद्यं वर्णं शोधयेदन्यपक्षात्—' के अनुसार शोधन करने से—

का. क १ रू १
या. य १̇ या का भा १

अथवा—

का. क १ रू १
या (का १ य १̇)

अपवर्तन देने से—

$$\frac{\text{का. क १ रू १}}{\text{का १ य १̇}} = \text{या १}$$

भाग देने से—

का १ य १̇) का.क१ रू १ (क १ $\qquad \frac{\text{क. य १ रू १}}{\text{का १ य १̇}}$
का.क१ क.य१̇
क.य१ रू१

कल्पना किया—

$$\frac{\text{क.य१ रू १}}{\text{का १ य १̇}} = \text{फल}।$$

का १ य १̇ = इष्ट।

वर्णाङ्काहतिरूपैक्य=क.य१ रू १ = फ. इ।

यहां कालकाङ्क तुल्य क में फल को जोड़ देने से, यावत्तावत् का

मान सिद्ध होता है और इष्ट में यावत्तावत् अङ्क के तुल्य य को जोड़ देने से कालक का मान सिद्ध होता है—

या १ = क १ फ १ । का १ = इ १ य १

यदि इष्ट और फल ऋण हों तो, उन का घात धन होगा। उस अवस्था में ऋण इष्ट तथा फल से वर्णाङ्क को युक्त करने से उन का अन्तर होगा—

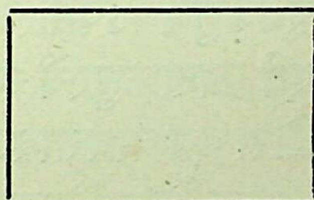
या १ = क १ फ १̇ । का १ = य १ इ १̇

इससे 'भावितं पक्षतोऽभीष्टात्—' इत्यादि सूत्र उपपन्न हुआ। यह उपपत्ति श्री ६ बापुदेवशास्त्रिकृत है। यहां आचार्योक्त उपपत्ति संप्रदायाविच्छेद से गड़बड़ हो गई है।

अस्योपपत्तिः—

सा च द्विधा सर्वत्र स्यात्। एका क्षेत्रगता अन्या राशिगतेति। तत्र क्षेत्रगतोच्यते—द्वितीयपक्षः किल भावितसमो वर्तते भावितं त्वायतचतुरस्रक्षेत्रफलं तत्र वर्णौ भुजकोटी

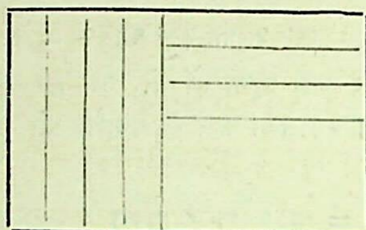
न्यासः या १



का १

अत्र क्षेत्रान्तर्यावच्चतुष्टयं वर्तते कालकत्रयं द्वे रूपे। अतः क्षेत्राद्यावत्तावच्चतुष्टये रूपचतुष्टयोने कालके स्वाङ्कगुणे चापनीते जातम्

४

न्यासः या  ३

का

द्वितीयपक्षे च तथा कृते जातम् १४ एतद्भावितक्षेत्रान्तर्वर्तिनोऽवशिष्टक्षेत्रस्याधस्तनस्य फलं तद्भुजकोटिवधाज्जातं ते चात्र ज्ञातव्ये। अत इष्टो भुजः कल्पितस्तेन फलेऽस्मिन् १४ भक्ते कोटिर्लभ्यते अनयोर्भुजकोट्योरेकतरा यावत्तावदङ्कतुल्यै रूपै ४ रधिकतरा सती भावितक्षेत्रस्य कोटिर्भवति यतो भावितक्षेत्रस्य यावत्तावच्चतुष्टयेऽपनीते तत्कोटिश्चतुरूना जाता एवं कालकतुल्यै रूपै ३ रधिकतरो भुजो भवति त एव यावत्तावत्कालकमाने।

अथ राशिगतोपपत्तिरुच्यते-

सापि क्षेत्रमूलान्तर्भूता तत्र यावत्तावत्कालकभुजकोटिमानात्मकक्षेत्रान्तर्गतस्य लघुक्षेत्रस्य भुजकोटिमानेऽन्यवर्णौ कल्पितौ नी १।

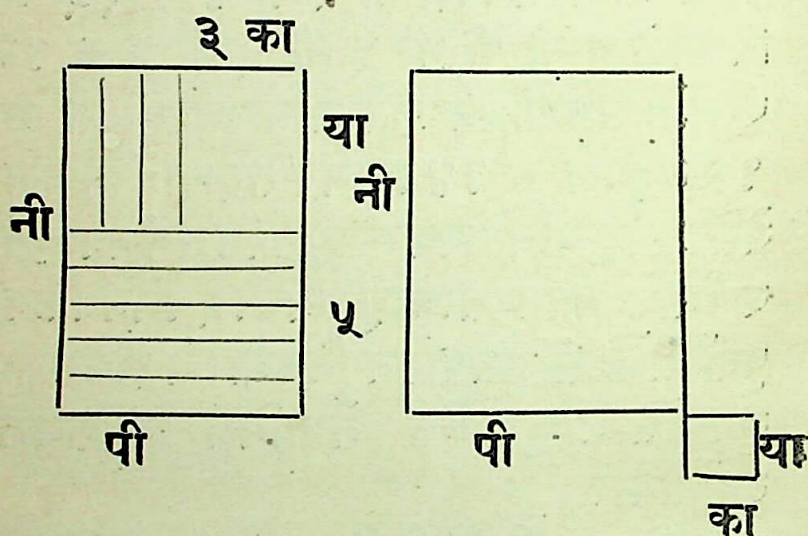
पी १। अत एतयोरेकतरो यावत्तावदङ्कतुल्यै रूपैरधिको बहिःक्षेत्रकोटेः कालकस्य मानमन्यः कालकतुल्यै रूपैरधिको भुजस्य यावत्तावतो मानं कल्पितम् नी १ रू ४। पी १ रू ३। आभ्यां पक्षयोर्यावत्तावत्कालकवर्णावुत्थाप्योपरितनपक्षे नी ३ पी ४ रू २६ भावितपक्षे च नी पी भा १ नी ३ पी ४ रू १२ एतयोः समशोधने कृते जातमधः नी पी भा १ ऊर्ध्वपक्षे रू १४ इदमेव तदन्तःक्षेत्रफलमेतद्वर्णाङ्कयोर्घातस्य रूपयुतस्य समं स्यादतो वर्णमाने भवतस्तत्प्रागुक्तमेव। इयमेव क्रिया पूर्वाचार्यैः संक्षिप्तपाठेन निबद्धा। ये क्षेत्रगतामुपपत्तिं न बुध्यन्ति तेषामियं राशिगता दर्शनीया।

उपपत्तियुतं बीजगणितं गणका जगुः।
न चेदेवं विशेषोऽस्ति न पाटीबीजयोर्यतः ६०

अत इयं भावितोपपत्तिर्द्विविधा दर्शिता। यत्तूक्तं वर्णाङ्कयोर्घातोरूपैर्युतो भावितक्षेत्रान्तर्वर्तिनोऽन्यस्य लघुक्षेत्रस्य कोणस्थस्य फलमिति तत्कचिदन्यथा स्यात् । यथा यदा

वर्णाङ्कौ ऋणगतौ भवतस्तदा तस्यैवान्तर्भावितक्षेत्रं कोणस्थं स्यात्। यदा तु भावितक्षेत्रे भुजकोटिभ्यां वर्णाङ्कावधिकौ धनगतौ भवतस्तदा भावितक्षेत्राद् बहिःकोणस्थं क्षेत्रं स्यात्तद्यथा—

न्यासः



यदीदृशं तदेष्टफलाभ्यामूनितौ वर्णाङ्कौ यावत्तावत्कालकयोर्माने भवतः

उदाहरणम्—

द्विगुणेन कयो राश्योर्घातेन सदृशं भवेत्।
दशेन्द्राहतराश्यैक्यं द्व्यूनषष्टिविवर्जितम्॥

अत्र राशी या १ । का १ । अनयोर्यथोक्ते कृते भाविताङ्केन भक्ते जातम् या ५ का ७ रू २६ अत्र वर्णाङ्काहतिरूपैक्यं ६ द्विहृतमिष्टफले २ । ३ । आभ्यां वर्णाङ्कौ युतौ राशी १०।७ वा ६।८ वा ऊनितौ जातौ ४ । ३ वा ५ । २ ॥

अथ त्रयाणामपि धनत्वे 'चतुस्त्रिगुणयोः—' इत्युदाहरणं प्रदर्शितम् । अथ यत्र वर्णाङ्कौ धनं रूपाणि ऋणं स्युस्तादृशमुदाहरणमनुष्टुभाह—द्विगुणेनेति । उत्तानाशयः ॥

उदाहरण—

वे दो कौन राशि हैं, जिन का दूना घात अट्ठावन से ऊन, दस और चौदह से गुणित उन्हीं राशियों के योग के समान होता है ।

राशि या १, का १ हैं इन का दूना घात या का भा २ । १० और १४ से गुणित या १० का १४, इन्हीं राशियों के ५८ से घटे हुए योग या १० का १४ रू ५८̇ के तुल्य होता है, इसलिये साम्य करने के लिए न्यास—

या १० का १४ रू ५८̇
या का भा २

'भाविताङ्केन ततः पक्षौ विभज्य च' इस के अनुसार, भाविताङ्क २ के भाग देने से हुए—

या ५ का ७ रू २९̇
या का भा १

और वर्णाङ्क ५।७ का घात ३५ हुआ, इसमें 'धनर्णयोरन्तरमेव योगः' के अनुसार, २९̇ जोड़ देने से शेष ६ रहा । इस में इष्ट २ का भाग देने से ३ फल आया । अब इष्ट २ और फल ३ को वर्णाङ्क ५ में जोड़ देने से, व्यत्यय से उन के मान १० । ७ हुए । अथवा ६।८ हुए । और इष्ट २ तथा फल ३ को वर्णाङ्क ५ । ७ में घटा देने से व्यत्यय से उन के मान ४ । ३ अथवा ५ । २ हुए ।

उदाहरणम्—

त्रिपञ्चगुणराशिभ्यां युतो राश्योर्वधः कयोः ।
द्विषष्टिप्रमितो जातस्तौ राशी वेत्सि चेद्वद ॥

अत्र यथोक्ते कृते जातौ पक्षौ

या ३̇ का ५̇ रू ६२

या का भा १

वर्णाङ्काहतिरूपैक्यम् ७७ इष्टतत्फले ७।११
आभ्यां वर्णाङ्कौ युतावेव इष्टतत्फलाभ्यामा-
भ्यां ७। ११ ऊनितौ चेद्विधीयेते तदा आग-
गतौ भवतः अत आभ्यां ७।११ युतौ जातौ
राशी ६।४ वा २।८ ऊनितौ १२̇।१४̇।१६̇।१०̇

अथ यत्र वर्णाङ्कावृणं रूपाणि तु धनं स्युस्तादृशमुदाहरण-
मनुष्टुभाह—त्रिपञ्चेति । स्पष्टोऽर्थः ॥

उदाहरण—

वे दो राशि कौन हैं, जिन का घात त्रिगुण तथा पञ्चगुण राशि
जोड़ देने से, बासठ के तुल्य होता है ।

कल्पना किया या १ । का १ राशि हैं । इन का घात या का भा १
हुआ । इसमें ३ और ५ से गुणित उन राशियों को जोड़ देने से, या
३ का ५ याकाभा १ यह योग ६२ के तुल्य हुआ—

या ३ का ५ याकाभा १

रू ६२

'भावितं पक्षतोऽभीष्टात्—' इस सूत्र के अनुसार—

या ० का ० याकाभा १

या ३̇ का ५̇ रू ६२

वर्णाङ्कौ ३̇ । ५̇ का घात धन १५ हुआ। इस में रूप ६२ जोड़ देने से ७७ हुआ। इसमें इष्ट ७ का भाग देने से, फल ११ आया। अब इष्ट ७ और फल ११ को वर्णाङ्क में युक्त करना चाहिये। क्योंकि उन को यदि घटा देंगे तो, राशि ऋणागत आवेंगी। इसलिये जोड़ देने से व्यत्यय से वर्णों के मान ६।४ अथवा २। ८ हुए। और घटा देने से ऋणागत मान १२̇। १४̇ अथवा १६̇। १०̇ मिले।

अथ पूर्वचतुर्थोदाहरणम्—'यौ राशी किल या च राशिनिहतिर्यौ राशिवर्गौ तथा तेषामैक्यपदं सराशियुतं' इति। अत्र राशी या १। का १। अनयोर्घातयुतिवर्गाणां योगः याव १ काव १ याकाभा १ या १ का १ अस्य मूलाभावाद्राशिद्वयोनत्रयोविंशतेः या १̇ का १̇ रू २३ वर्गेणानेन याव १ काव १ याकाभा २ या ४६̇ का ४६̇ रू ५२९ साम्यं तत्र समयोगवियोगादौ समतैवेति समवर्गगमे शोधने च कृते भाविताङ्केन हृते जातम् या ४७ का ४७ रू ५२̇९ अत्र वर्णाङ्काहती रूपयुता १६८० इयं चत्वारिंशतेष्टेन हृता फलम् ४२ इष्टम् ४० अत्रेष्टफलाभ्यामाभ्यां वर्णाङ्कावूनावेव कार्यौ, तेन जातौ राशी ७।५ युतौ चेत्क्रियेते तर्हि 'जातं त्रयोविंशतिः' इति पूर्वालापो न घटते॥

अथ यत्र रूपाणामृणत्वे प्रकाराभ्यामुत्पन्नयोर्मानयोरेकतरे एवोपपन्ने भवतस्तादृशमुदाहरणं पूर्वचतुर्थमस्तीति तदेव प्रदर्शयति-याविति ॥

'यौ राशी किल—' इस पूर्व उदाहरण में या १। का १ राशि कल्पना किया, उन का घात याकाभा १ हुआ और उन के वर्ग याव १। काव १ हुए। इन सब का योग याव १ काव १ याकाभा १ या १ का १ इन्हीं दोनों राशि से घटे हुए तेईस के वर्ग 'याव १ काव १ याकाभा २ या ४६̇ का ४६̇ रू ५२६' के तुल्य है, इस कारण समीकरण के लिये न्यास—

याव १ काव १ याकाभा १ या १ का १ रू ०

याव १ काव १ याकाभा २ या ४६̇ का ४६̇ रू ५२९

'भावितं पक्षतोऽभीष्टात्—' के अनुसार क्रिया करने से हुए—

या ४७ का ४७ रू ५२९̇

याकाभा १

वर्णाङ्कों ४७।४७ का घात २२०९ हुआ। इस में ऋण रूप ५२९ जोड़ देने से १६८० शेष रहा। इस में इष्ट ४० का भाग देने से फल ४२ आया। अब इष्ट ४० और फल ४२ को वर्णाङ्क ४७। ४७ में घटा देने से राशि ७। ५ आईं। और यदि इष्ट ४० तथा फल ४२ को वर्णाङ्क ४७। ४७ में जोड़ दें तो 'जातं त्रयोविंशतिः' यह आलाप नहीं घटेगा ॥

चतुर्थोदाहरणम्[1]— 'पञ्चाशत्त्रियुताथवा—' इति। अत्रोदाहरणे यथोक्तकृतभाविताङ्केनविभक्ते जातम् या १०७ का १०७ रू २८०९ अत्र वर्णाङ्काहतिरूपैक्यम् ८६४० इष्टतत्फले ९०।

---

१ कुत्रचिन्मूलपुस्तके 'पूर्वोदाहरणम्' इति पाठः।

९६ आभ्यां वर्णाङ्कावूनितौ राशी ११ । १७ एवमन्यत्रापि ॥

क्वचिद्बहुषु साम्येषु भावितोन्मितीरानीय ताभ्यः समीकृतच्छेदगमाभ्यः साम्ये पूर्वबीज-क्रिययैव राशी ज्ञायेते । अत्र 'राशी' इति द्वि-वचनोपादानादन्येषामादिवर्णानामिष्टानि मा-नानि कल्प्यानीत्यर्थात्सिद्धम् ॥

इति श्रीभास्करीये बीजगणिते भावितम् ॥

इति द्विवेदोपाख्याचार्यश्रीसरयूप्रसादसुत-दुर्गाप्रसादोन्नीते बीजविलासिनि भावितं समाप्तम् ॥ इति शिवम् ॥

'पञ्चाशत्त्रियुताथवा——' इस चौथे उदाहरण में, उक्त रीति के अनुसार समान पक्ष सिद्ध हुए——

याव १ काव १ या का भा १ या १ का १ रू ०

याव १ काव १ या का भा २ या १०६ का १०६ रू २८०६

'भावितं पक्षतोऽभीष्टात्——' इसके अनुसार क्रिया करने से हुए—

या १०७ का १०७ रू २८०६

या का भा १

वर्णाङ्कों १०७ । १०७ का घात ११४४९ हुआ । इसमें ऋण २८०६ जोड़ देने से, शेष ८६४० रहा । इसमें इष्ट ९० का भाग देने से ९६ लब्धि आई । अब इष्ट ९० और लब्धि ९६ को वर्णाङ्क

१०७ । १०७ में घटा देने से राशि ११ । १७ मिले । इसी भाँति और भी जानना चाहिये ।

सोदाहरण भावित समाप्त हुआ ॥

दुर्गाप्रसादरचिते भाषाभाष्ये मिताक्षरे ।
वासनासंगतं पूर्णं भावितं चापि सांप्रतम् ॥

आसीन्महेश्वर इति प्रथितः पृथिव्या-
माचार्यवर्यपदवीं विदुषां प्रयातः ।
लब्ध्वावबोधकलिकां तत एव चक्रे
तज्जेन बीजगणितं लघु भास्करेण ॥९१॥

अथ प्रकृतग्रन्थस्य प्रचारार्थं गुरूत्कर्षप्रतिपादनात्मकं मङ्गलमाचरन्प्रबन्धसमाप्तिं दर्शयति—आसीदिति । विदुषां पण्डितानां मध्ये आचार्यवर्यपदवीं प्रयातः । अत एव पृथिव्यां प्रथितः । अनन्यसाधारणाचार्योपाधिभाक्तया जगत्प्रसिद्ध इत्यर्थः । 'महेश्वरः' इत्यासीत् । तज्जेन तदङ्गजन्मना भास्करेण ततो महेश्वराचार्यादेव अवबोधकलिकां ज्ञानकलिकां लब्ध्वा प्राप्य लघु पाठेन स्वल्पकायं बीजगणितं चक्रे । वसन्ततिलकावृत्तमेतत् ॥

ब्रह्माह्वयश्रीधरपद्मनाभ-
बीजानि यस्मादतिविस्तृतानि ।
आदाय तत्सारमकारि नूनं
सद्युक्तियुक्तं लघु शिष्यतुष्ट्यै ॥ ९२ ॥

ननु बीजगणितानि ब्रह्मगुप्तादिभिः प्रतिपादितानि तत्किमर्थमाचार्येण यतितमिति शङ्कायामुत्तरमाह—ब्रह्मेति । ब्रह्माह्वयो ब्रह्मगुप्तः, श्रीधरः श्रीधराचार्यः, पद्मनाभः, एतेषां बीजानि यस्मात् अतिविस्तृतानि तस्मात् सारमादाय शिष्याणां तुष्ट्यै सद्युक्तियुक्तं सत्यः समीचीना या युक्तयः प्रश्नभङ्गरूपा वासनारूपा वा ताभिर्युक्तं लघु तद्बीजमकारि नूनम् । इन्द्रवज्रावृत्तमदः ॥

अत्रानुष्टुप्सहस्रं हि ससूत्रोद्देशके मितिः ।

ननु कथं लघ्वित्याशङ्कायामाह—अत्रेति । हि यतोऽत्र ससूत्रोद्देशके बीजे अनुष्टुभां सहस्रं मितिः परिमाणम् । पूर्वेषां बीजगणितेषु तु सहस्रद्वयादिमानमस्तीत्यतः संक्षिप्तमिदं न तु विस्तृतम् ॥

क्वचित्सूत्रार्थविषयं व्याप्तिं दर्शयितुं क्वचित् ॥ ३ ॥
क्वचिच्च कल्पनाभेदं क्वचिद्युक्तिमुदाहृतम् ।

नन्विदमपि विस्तृतमस्ति क्वचित्, क्वचिदेकस्मिन्नेव विषय उदाहरणबाहुल्योक्तेरित्याशङ्कायामुत्तरमाह—क्वचिदिति । क्वचित्सूत्रार्थविषयं दर्शयितुमुदाहृतम् यथा—'चतुस्त्रिगुणयो राश्योः—' इति । 'विगुणेन कयोराश्योः—' इति । 'त्रिपञ्चगुणराशिभ्यां—' इति । 'यौ राशी किल—' इति । न ह्येकस्मिन्नुदाहृते 'भावितं पक्षतः—' इति सूत्रस्यार्थः सर्वोऽपि विषयीभवति । तस्मादशेषं सूत्रार्थं दर्शयितुमुदाहरणचतुष्टयस्याप्यावश्यकता । क्वचिद् व्याप्तिं दर्शयितुमुदाहृतम् । यथा—'पञ्चकशतदत्तधनात्—' इत्युदाहृत्य 'एकैकशतदत्तधनात्—' इति तादृशमेव पुनरुदाहृतम् । इदं यदि नोदाह्रियते तर्हि स्वकृते प्रकारविशेषे मन्दानां विश्वासो न भवेदित्येतदावश्यकम् । एवं कल्पनाभेदं दर्शयितुम् 'एको ब्रवीति—'

इत्युदाहरणमेकवर्णसमीकरण उदाहृतम् । एवं विविधयुक्तिप्रदर्शनार्थमपि बहुत्रोदाहृतमस्ति तस्मादसौ विस्तृतिर्न दोषावहा ॥

न ह्युदाहरणान्तोऽस्ति स्तोकमुक्तमिदं यतः ॥

ननु पूर्वबीजेषूदाहरणानि बहूनि सन्तीह तु स्वल्पान्येवोक्तानीति न सकलोदाहरणावगमः स्यादित्यत आह नेति । हि यत उदाहरणान्तो नास्ति अत इदं स्तोकं स्वल्पमुक्तम् ॥

दुस्तरः स्तोकबुद्धीनां शास्त्रविस्तरवारिधिः ।
अथ वा शास्त्रविस्तृत्या किं कार्यं सुधियामपि

नन्वत्र स्वल्पमुक्तं पूर्वबीजानि त्वतिविस्तृतान्यस्तान्येव मन्दप्रयोजनायालमिति शङ्कायामाह—दुस्तर इति । यो हि विस्तरः स मन्दप्रयोजकः सुधीप्रयोजको वा । नाद्यः । यतः शास्त्रविस्तरवारिधिः स्तोकबुद्धीनां दुस्तरो दुरवगाहः । नान्त्यः । सुधियामपि शास्त्रविस्तृत्या किं कार्यम् । यतस्ते कल्पनाकल्पकाः । ननु लघ्वपि बीजं मन्दप्रयोजकं सुधीप्रयोजकं वा । नाद्यः तैर्ज्ञातुमशक्यत्वात् । नान्त्यः । तेषां कल्पकत्वात् । इति चेन्न, स्वल्पग्रन्थस्य मन्दानामभ्याससाध्यत्वान्न तावदाद्यपक्षे दोषः । द्वितीयेऽपि न दूषणमित्याह—

उपदेशलवं शास्त्रं कुरुते धीमतो यतः ।
तत्तु प्राप्यैव विस्तारं स्वयमेवोपगच्छति ९६

उपदेशलवमिति । यतः शास्त्रं धीमत उपदेशलवं कुरुते तत्तु शास्त्रं सुधियं प्राप्यैव स्वयमेव विस्तारमुपगच्छति। न हि सुधियोऽपि किंचिदनधीत्य जानन्ति । अत इदं मदुक्तं सुधीमन्दसाधारणप्रयोजनायेति सर्वैरपि पठनीयम् ॥ अत्र दृष्टान्तमाह—

जले[1] तैलं खले गुह्यं पात्रे दानं मनागपि ।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः[2]

जले इति । मनाक् ईषदपि तैलं जले वस्तुशक्तितः वस्तुशक्ति-महिम्ना स्वयं विस्तारं याति । बिन्दुमात्रमपि तैलं सलिले प्रक्षिप्तं सद्रुतमेवाबद्धचन्द्रककलापेन तत्सलिलमाच्छादयतीति तात्पर्यम्। एवमग्रेऽपि योजनीयम् । खलो दुष्टः । गुह्यं वाचानुद्घाटनीयं वृत्तम् । पात्रं योग्यतमः पुरुषः । दानं मूल्यग्रहणं विना स्वस्वत्व-ध्वंसपूर्वकपरस्वत्वजनकस्त्यागः । प्राज्ञः । शास्त्रं, यत्र तद्विदां संकेतः स ग्रन्थकलापः ॥

गणक भणितिरम्यं बाललीलावगम्यं
सकलगणितसारं सोपपत्तिप्रकारम् ।
इति बहुगुणयुक्तं सर्वदोषैर्विमुक्तं
पठ पठ मतिवृद्ध्यै लघ्विदं प्रौढिसिद्ध्यै ९८

इति श्रीभास्करीये सिद्धान्तशिरोमणौ
बीजगणिताध्यायः समाप्तः ।

---

१ 'जले–' इत्यस्य प्राक् 'यथोक्तं यन्त्राध्याये' इति पाठः प्रायो मूलपुस्तक उपलभ्यते ।

२—'वस्तुशक्तितः' इत्यस्याग्रे 'तथा गोले मयोक्तम्—उल्लसदमलमतीनां त्रैराशिकमात्रमेव पाटी बुद्धिरेव बीजम् । तथा गोलाध्याये मयोक्तम्—अस्ति त्रैराशिकं पाटी बीजं च विमला मतिः । किमज्ञातं सुबुद्धीनामतो मन्दार्थमुच्यते ।' इत्यपि पाठः प्रायो मूल-पुस्तके दृश्यते परं टीकाकारैर्न स्वीकृतः ।

एवं स्वकृतस्य बीजगणितस्य गुणान्युक्त्वा संस्थाप्योपसंहरति—गणकेति। हे गणक, मतिवृद्ध्यै, प्रौढिसिद्ध्यै च, भणितिरम्यं भणितयः शब्दास्तै रम्यं रमणीयम्। बाललीलया सुखेनेति तात्पर्यम्, अवगम्यम्। सकलगणितानां सारं, वासनामूलकतयेति भावः। सोपपत्तयः प्रकारा यस्मिन् तादृशम्। इति प्रदर्शितैर्बहुभिर्गुणैर्युक्तं समेतम्। सर्वदोषैः प्रमेयांशादिदूषकदोषसमूहैर्विशेषेण मुक्तं वर्जितम्। लघु, ग्रन्थसंख्यया क्षुद्रकायमिदं बीजगणितं पठ पठ। आदरातिशयोक्तिरियम्। इह वृद्धिसिद्धिशब्दौ कुल्याप्रवृत्तिन्यायेन मङ्गलार्थमपि प्रकाशयतः, प्रायेण माङ्गलिका आचार्या महतः शास्त्रौघस्य मङ्गलार्थं वृद्धिसिद्ध्यादिशब्दानादितः[1] प्रयुञ्जते। अत एव भगवता महाभाष्यकारेण 'वृद्धिरादैच्' इति सूत्रव्याख्यानावसरे 'मङ्गलादीनि हि शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषकाणि भवन्त्यायुष्मत्पुरुषकाणि चाध्येतारश्च वृद्धियुक्ता यथा स्युरिति' सिद्धान्तितमिति शिवम्॥

विलासी व्याख्योपसंहारः—

अखण्डसौभाग्यविभूतिसूति-
विश्वंभरालंकरणैकहेतुः।
समीहिताकल्पनकल्पवल्ली
जयत्ययोध्या कमलालया च॥ १ ॥

तस्याः पृष्ठचरीव पश्चिमदिशि क्रोशाष्टकाभ्यन्तरे
पाण्डित्यास्पदमस्ति पण्डितपुरी पिल्खावपर्यन्तभूः।

---

१ आदिरित्युपलक्षणं तेन मध्यान्तयोरपि ज्ञेयम्।

यत्राभ्यर्थनतोऽपि भूरिदतया गीतावदानोत्करः
प्रालेयद्युतिशेखरो विजयते श्रीजङ्गलीवल्लभः ॥ २ ॥
तत्र श्रीशिवपादपद्मभजनप्राप्तप्रसादोदय-
श्चञ्चत्कुन्नृपरामचन्द्रचरिते दुर्गाप्रसादः सुधीः ।
मुग्धानामपि बोधसाधनविधिं बीजोपरि व्याकृतिं
प्राणैषीत्पिपठीर्हिताय गुणभूभोगीन्दु (१८१३) संख्ये शके॥ ३॥
॥ शं बोभवीतु ॥



श्रीः

परिशिष्ट (१)

बीजपरिचय।

सांप्रत में पाश्चात्य पद्धति से बीजगणित का पठन-पाठन प्रचलित है। इस पद्धति का परिचय संस्कृतज्ञ छात्रों के लिए आवश्यक है। इसलिए संक्षेप में उसकी परिभाषा आदि का निरूपण किया जाता है।

१. जिस प्रकार अङ्कगणित में संख्याओं के स्थान में १, २, ३, ४, ५ आदि अङ्क लिखते हैं, उसी प्रकार बीजगणित में संख्याओं के स्थान में अक्षर लिखते हैं। व्यक्त अर्थात् ज्ञात राशियों के लिए अ, क, ग आदि और अव्यक्त अर्थात् अज्ञात राशियों के लिए य, र, ल, व आदि लिखते हैं। और व्यक्ताव्यक्त संख्या के बोधक त, थ, द आदि लिखते हैं।

श्लोक।

'व्यक्तस्य द्योतका आद्या, याद्या अव्यक्तबोधकाः।
भवन्ति तादिका वर्णा व्यक्ताव्यक्तत्वदर्शकाः॥'

२. + यह धन चिह्न है। जैसा—अ + क अर्थात् अ में क जुड़ा है।

— यह ऋण चिह्न है। अ—क अर्थात् अ में क घटा है।

( ), { }, [ ], ————, इन में पहले तीन कोष्ठ और चौथा श्रृङ्खल कहा जाता है।

(अ+क) + (ग+घ), {अ+क} — {ग+घ}, [अ+क]

± $\overline{[ग+घ]}$ $\overline{अ+क}$ ∓ ग+घ ये चारों क्रम से यह प्रकाशित करते हैं कि अ+क में ग+घ; धन, ऋण, धनर्ण, और ऋणधन किया गया है। इसी प्रकार इन सब कोष्ठकों का उपयोग गुणन-भजन आदि में लिया जाता है।

×, ·, ये दोनों गुणन के चिह्न हैं। जैसा, अ×क, अ·क अर्थात् अ, क से अथवा क, अ से गुणित है; इसी कारण, अ, क आपस में गुण्य-गुणकरूप अवयव कहलाते हैं। और यदि बीजात्मक अवयव हों, तो गुणन चिह्न नहीं भी किया जाता। जैसा, य र ल।

÷, यह भाग का चिह्न है। जैसा अ ÷ क अर्थात् अ, क से भाजित है। अथवा भिन्न की रीति से $\frac{अ}{क}$ ऐसा लिखते हैं

अ^{२}, अ^{३}, अ^{४}, इत्यादि क्रम से अ के वर्ग, घन और चतुर्घात आदि के बोधक हैं। वर्ग के समद्विघात होने से उसका घातमापक २, इसी प्रकार घन का घातमापक ३, चतुर्घात का ४ होता है। इससे यह स्पष्ट है कि वर्गादि घातक्रिया के प्रकाशक घातमापक होते हैं। ऐसे ही अ^{न}, अ^{म} ये अ के न, म घात के बोधक हैं।

$\sqrt{अ}$, $\sqrt[३]{अ}$, $\sqrt[४]{अ}$ इत्यादि अ के वर्गमूल, घनमूल और चतुर्घात मूल के बोधक हैं। इस से यह ज्ञात होता है कि वर्गादि घातों के घातमापक, वर्गादि मूल के मूलमापक होते हैं। इसी प्रकार, $\sqrt[न]{अ}$, $\sqrt[म]{अ}$, ये अ के न-घातमूल और म-घातमूल के बोधक हैं।

अथवा, अ$^{\frac{१}{२}}$, अ$^{\frac{१}{३}}$, अ$^{\frac{१}{४}}$, अ$^{\frac{१}{न}}$, अ$^{\frac{१}{म}}$, इस रीति से भी अ के वर्गमूल आदि प्रकट किये जाते हैं।

३· :, =, :, यह और :, ::, : यह चिह्न अनुपात के हैं। जैसा, अ : क = ग : घ, अथवा अ : क :: ग : घ, अर्थात् अ का, क में, तथा ग का, घ में, भाग देने से समान ही फल आता है $\frac{क}{अ} = \frac{घ}{ग}$। इस सम्बन्ध और अनुपात का पूरा विचार क्षेत्रमिति के पाँचवें अध्याय में किया गया है।

=, यह चिह्न समत्व का दर्शक है। जैसा अ = क।

<, यह चिह्न अथवा > यह चिह्न विषमत्व का प्रकाशक है जैसा अ > क यह सूचित करता है कि अ, क से बड़ा है। और क < अ अर्थात् अ, से क छोटा है।

∽, यह चिह्न अन्तर को प्रकाशित करता है। जैसा अ ∽ क अर्थात् अ और क के बीच जो छोटा हो, उसको बड़े में से घटा देना चाहिए।

∵, यह चिह्न 'जिस लिए' का वाचक है।

∴, यह 'इसलिए' का वाचक है।

........, यह इत्यादि का बोधक है।

४. अ, २ क, ६ गय^{४}, इत्यादि एक संख्या के बोधक होने से केवल पद, और अ+क, अ+क—ग इत्यादि केवल पद से संयुक्त होने से द्वियुक्, त्रियुक् आदि पद, और १, २, ३, आदि व्यक्त पद कहे जाते हैं। यदि बीजात्मक पद दो आदि संख्या से गुणित हों तो उनके गुण्य-गुणकरूप खण्ड मान कर, गुणक को गुण्य का 'वारद्योतक' कहते हैं। जैसा २ क में २, क का वारद्योतक है। इसी प्रकार व्यक्त पद में भी जानना चाहिए।

* * *

प्रसिद्धार्थ—

५. (क) जो राशियाँ किसी दूसरी राशियों के तुल्य हों वे सब आपस में भी तुल्य हैं।

(ख) तुल्य दो राशियों में तुल्य ही जोड़ देने से, या, तुल्य ही घटा देने से, या, उन को तुल्य ही से गुणा देने से, या, उन में तुल्य ही का भाग देने से भी वे तुल्य ही रहती हैं।

(ग) इसी प्रकार विषम (अतुल्य) दो राशि, तुल्य ही जोड़ने आदि से वे विषम ही रहती हैं।

(घ) किसी दो राशि में एक में जितना घटाया जाय, उतना

ही दूसरे में जोड़ दिया जाय, तो भी उनके योग आदि तुल्य ही रहेंगे।

(च) जो राशियाँ प्रत्येक दूनी आदि किसी दूसरी राशियों के समान हैं, वे सब आपस में भी समान ही हैं।

(छ) जो राशियाँ प्रत्येक किसी दूसरी राशि के आधे आदि भागों के समान हैं, वे सब आपस में भी समान हैं।

(ज) किसी राशि में, जितना जोड़ा जाय, उतना ही उसमें से घटा दिया जाय अथवा, जितने से वह गुणी जाय, उतने ही से फिर भाजित की जाय, तो भी वह राशि यथावत् ही रहती है।

(झ) कोई राशि अपने खण्ड से बड़ी होती है और अपने सब खण्डों के योग के समान होती है।

संकलन।

६· यदि संकलनीय पद सजातीय हों अर्थात् उनके वर्ण, दो आदि घात और धनर्ण चिह्न, एक जाति के हों तो पहले उनके वारद्योतकों का योग लिखकर, उसके साथ ही पदों के वर्ण लिखना और आदि में यथागत धन किंवा ऋण चिह्न लिखना। यदि व्यक्त पद हों, तो उनको भी जोड़कर लिख देना। यदि संकलनीय पद विजातीय हों, तो एक-एक जातिवालों को जोड़कर लिखना और यथासंभव धन और ऋण के अन्तर को योग जानना।

श्लोक।

'समानजातिं भजतां पदानां,
योगो वियोगोऽपि विदा विधेयः
वर्णेन घातेन धनर्णकाभ्यां
साजात्यवैजात्यभिदावधेया ॥'

(१)

य + १
७ य
१० य + १७
---
१८ य + १८

(२)

२ यर^{2} − ५ अ^{3}
५ यर^{2} − अ^{3}
३ यर^{2} − ४ अ^{3}
---
१० यर^{2} − १० अ^{3}

(३)

४ य^{2} − ३ अक^{3} + ७
य^{2} + ७ अक^{3} − १
५ य^{2} − अक^{3} + १०
---
१० य^{2} + ३ अक^{3} + १६

(४)

अ^{2} − क^{2}
६ अ^{3} − क^{2}
− २ अ^{4} + ३ क^{3}

अ^{2} − क^{2} + ६ अ^{3} − क^{2} − २ अ^{4} + ३ क^{3}

(५)

५ य^{2}र + ल + ३
य^{2}र + ल − ७
− अ^{2}क − व^{2} + २
---
६ य^{2}र + २ ल − ४ = अ^{2}क − व^{2} + २

(१) उदाहरण में य + १ इस संयुक्तपद में, य वर्ण का १ वारद्योतक है, उसके लिखने का संप्रदाय नहीं है। क्योंकि १ से गुणक को गुणने से वह अविकृत ही रहता है। एक य, सात य, दश य, अथवा—१, ७, १० गुणित य ; अथवा, १ + ७ + १० = १८ गुणित य ; अर्थात् य पदद्योत्य पदार्थ १८ बार होगा, इसलिए रेखा के नीचे योग में, य पद का १८ बार द्योतक हुआ। + १८ यह + १ + १७ इन व्यक्त पदों का योग है। व्यक्त पद को पूर्वाचार्य रूप कहते हैं। यहाँ लाघवार्थ धन पद के आदि में प्रायः धन का चिह्न नहीं लिखते।

यहाँ (१) उदाहरण में वर्ण, चिह्न एक जाति के (२) में वर्ण, चिह्न, घात एक जाति के (३) में चिह्न मात्र भिन्न जाति के, (४) में चिह्न और घात भिन्न जाति के और (५) में सब भिन्न जाति के हैं।

व्यवकलन।

७. वियोज्य पद के नीचे वियोजक पद लिखना। यदि वियो-

जक पद में, केवल पद धन हो तो उसको ऋण और ऋण हो तो धन मानकर, धन-धन का ऋण-ऋण का योग और धन, ऋण का अन्तर करना वही योग होगा। यदि वियोज्य-वियोजक विजातीय हों, तो उनको अलग रखना चाहिए।

आचार्यसूत्र।

'योगे युतिः स्यात् क्षययोः स्वयोर्वा,
धनर्णयोरन्तरमेव योगः।
संशोध्यमानं स्वमृणत्वमेति
स्वत्वं क्षयस्तद्युतिरुक्तवच्च ॥'

(१)
$$\begin{array}{r} १९\ \text{य} \\ १३\ \text{य} \\ \hline ६\ \text{य} \end{array}$$

(२)
$$\begin{array}{r} -१०\ \text{अक} \\ -\ ९\ \text{अक} \\ \hline -\ \text{अक} \end{array}$$

(३)
$$\begin{array}{l} -\sqrt{७\,\text{त}}+\sqrt{५\,\text{थ}} \\ +\sqrt{१२\,\text{त}}-\sqrt{१०\,\text{थ}} \\ \hline -\sqrt{१९\,\text{त}}+\sqrt{१५\,\text{थ}} \end{array}$$

(४)
$$\begin{array}{r} \text{अय}^{\frac{१}{२}}-७\,\text{लव}^{\frac{१}{३}} \\ ४\,\text{अय}^{\frac{१}{२}}+९\,\text{लव}^{\frac{१}{३}} \\ \hline -\text{अय}^{\frac{१}{२}}-१६\,\text{लव}^{\frac{१}{३}} \end{array}$$

(५)
$$\begin{array}{l} ६\,(\text{अ}+\text{क})^{३}+१०\,(\text{अ}-\text{क})\,\text{ग}^{२}-\text{घ} \\ ८\,(\text{अ}+\text{क})^{३}-\ ३\,(\text{अ}-\text{क})\,\text{ग}^{२}-\text{घ} \\ \hline -२\,(\text{अक})^{३}+१३\,(\text{अ}-\text{क})\,\text{ग}^{२} \end{array}$$

कोष्ठक-निरास।

धन कोष्ठक का निरास (भङ्ग) करने के लिए, उसके भीतर के सब पद यथास्थित रहेंगे। यदि ऋण कोष्ठक हो तो जितने केवल पद होंगे, उन सबके धनर्ण चिह्न पलट जायँगे। इस प्रकार जितने कोष्ठक होवें, उतनी बार क्रिया करने से, सब कोष्ठकों का निरास होगा।

श्लोक ।

'विधीयते चेद् धनकोष्ठभङ्ग-
स्तदा पदं पूर्ववदेव तिष्ठेत् ।
यदृणकोष्ठापगमस्तदानीं
पदे धनर्णत्वविपर्ययः स्यात् ॥'

'धनकोष्ठे गतं किंचित् पदं तिष्ठेद् यथास्थितम् ।
ऋणकोष्ठे नीयमानं विपर्यासं प्रपद्यते ॥
कोष्ठे धनर्णवैलोम्ये तस्याभ्यन्तरवर्तिनः ।
प्रत्येकस्य पदस्यापि तथात्वे सति नान्तरम् ॥'

(१) (अ + क) + (अ − क) = अ + क + अ − क
= २ अ ।

(२) (अ + क) − (अ − क) = अ + क − अ + क
= २ क ।

(३) − (अ + क) − (अ − क) = − अ − क − अ
+ क = − २ अ ।

(४) ४ यर − { ($य^२$ + २ यर + $र^२$) − ($य^२$ − २यर
+ $र^२$) } = ४ यर − ($य^२$ + २ यर + $र^२$)
+ ($य^२$ − २ यर + $र^२$) = ४ यर − $य^२$ − २ यर
− $र^२$ + $य^२$ − २ यर + $र^२$ = ० ।

(५) $त^२$ + तथ − [$त^२$ + { तथ − ($त^२$ − $थ^२$) }]
= $त^२$ − $थ^२$ ।

अव्यक्त वारद्योतकों का योग और अन्तर ।

८. यदि वारद्योतक के केवल पद वा संयुक्त पद एक जाति के हों, तो उनका योग चिह्न के साथ कोष्ठक में लिखकर, आगे सजातीय पद लिखना और कोष्ठक के आदि में यथागत धनर्ण चिह्न करना । यदि

संयुक्त पद एक जाति के न हों तो 'कोष्ठे धनर्णवैलोम्ये—' के अनुसार धन चिह्न किंवा, ऋण चिह्न करके सजातीय बनाकर योग करना, वही इष्ट योग होगा। वियोज्य-वियोजक पदों में वियोजक के धनर्ण चिह्न को पलटकर योग करना, तब वही अन्तर होगा।

श्लोक।

'कोष्ठे निवेश्य वाग्द्योतकपदयोगमालिखेदग्रे।
सामान्यगुणयमादौ, चिह्नविधाने भवेद् योगः॥
संयुक्तपदनिपाते धनमथवर्णं विधाय साजात्यम्।
विश्लेषस्तु वियोजकपदवैलोम्ये सति श्लेषः॥'

(१) अय — तर
कय — ८ थर
२ गय — दर

(अ + क + २ ग) य — (त + ८ थ + द) र

(२) (य — ३ फ) य — (व — भ) र
(३ प + फ) य — (४ ब — भ) र
(५ प — ७ फ) य — (३ ब + भ) र

(९ प — ९ फ) य — (८ ब — भ) र.

(३) — अय — ४ तल
५ खय — २ थल
— २ गय + दल

+ (— अ + ५ ख — २ ग) य — (४ त + २ थ — द) ल

(४) — (२ अ — क) र + (४ त — २ थ) ल
(५ अ + क) र — (४ त + थ) ल
(अ + क) र — (३ त — ५ थ) ल

(४ अ + क) र — (३ त + २ थ) ल

(५) $(२य + ३र)य^२ + (५र - ७ल)यर - (५ल-य)र^२$

$(य - ५)य^२ - (४र + ३ल)यर + (३ल + य)र^२$

$(३य - र)य^२ - (र - ११ल)यर - (ल-२य)र^२$

$(५य + र)य^२ - (२र + ५ल)यर + (२ल-३य)र^२$

$(११य-२र)य^२ + (-२र-४ल)यर + (-ल+य)र^२$

वा, $(११य-२र)य^२ - (२र + ४ल)यर - (ल + य)र^२$

(१) वियोज्य = अय − तर

वियोजक = कय − ८ थर

अन्तर = (अ − क) य − (८थ + त) र

(२) $-(अ - क)र + (४त - २थ)ल^३$

$(५अ + क)र - (४त + थ)ल^३$

$-७अर - (८त + ३थ)ल^३$

गुणन।

६. गुण्य के प्रत्येक केवल पद को, गुणक के प्रत्येक केवल पद से गुणाकर, उनका योग करना, वही गुणनफल होगा। यहां गुण्य-गुणक के केवल पद धन, धन हों, अथवा ऋण, ऋण हों तो उनका गुणन फल धन होगा। यदि एक धन और दूसरा ऋण हो तो गुणनफल ऋण होगा। सजातीय-बीजात्मक वारद्योतकों का घात, उनका वर्गादिघात तथा संख्याओं का घात संख्यात्मक होगा। यदि गुण्य-गुणक में सजातीय वर्ण हों, तो उनकी घातमापक संख्याओं के योग तुल्य गुणनफल में घातमापक की संख्या होगी।

श्लोक।

'गुण्यस्य केवलपदं गुणयेद् गुणकस्य केवलेन पदा
संकलिते फलजाते गुणनफलं कीर्तयन्त्यार्याः॥
चिह्ने समानजातिनि गुणनफलं स्याद् धनं विजातीये।
ऋणमथ वारद्योतकघाताद्येवं विजानीयात्॥

वर्णो वर्णाङ्कवधे वर्गादि भवेत् समानजातीये ।
समवर्णघातमापकसंख्यायोगो मतो गुणने ॥'

(१) गुण्य = ३ य
गुणक = ७ रल
गुणनफल = २१ यरल

(२) − ५ अ^{२}क
− अच
५ अ^{३}कच

(३) अय + १
− ७ प^{२}
− ७ अयप^{२}
− ७ प^{२}
− अयप^{२} − ७ प^{२}
= − (अय + १) ७ प^{२}

(४) अ^{३} + अ^{२}क + अक^{२}
अ^{२} − अक
अ^{५} + अ^{४}क + अ^{३}क^{२}
− अ^{४}क − अ^{३}क^{२} − अ^{२}क^{३}
अ^{५} − अ^{२}क^{३}

(५) य^{४} + य^{२} + १
य^{४} − य^{२}
य^{८} + य^{६} + य^{४}
− य^{६} − य^{४} − य^{२}
य^{८} − य^{२}

(६) य^{६} + य^{४} + १
− य^{४} + १
− य^{१२} − य^{८} − य^{४}
+ य^{८} + य^{४} + १
− य^{१२} + १

(७) $य^{२} + यर^{२} + ३\,र^{३}ल$

$३\,य^{३} - य^{२}र + ५\,र^{४}ल$

$३\,य^{५} + ३\,य^{४}र^{२} + ६\,य^{३}र^{३}ल$

$- य^{४}र - य^{३}र^{३} - ३\,य^{२}र^{४}ल$

$+ ५\,य^{२}र^{४}ल + ५\,यर^{६}ल + १५र^{७}ल^{२}$

$३\,य^{५} + ३य^{४}र^{२} - य^{४}र - य^{३}र + ६\,य^{३}र^{३}ल + २\,य^{२}र^{४}ल + ५\,यर^{६}ल + १५\,र^{७}ल^{२}$

वा, $३\,य^{५} + य^{३}र\,(३\,यर - य - र^{२}) + य^{३}ल\,(६\,य^{२} + २\,य^{३}र + ५\,र^{३}) + १५\,र^{७}ल^{२}$.

वा, $३\,य^{५} + य^{४}र\,(३\,र - १) - य^{३}र^{३} + र^{३}ल\,(६\,य^{३} + २\,य^{४}र + ५\,यर^{३} + १५\,र^{४}ल)$

(८) $य^{४} + तय^{३} + (त - १)\,य^{२} + (त - २)\,य + त - ३$

$य - त$

$य^{५} + तय^{४} + (त-१)\,य^{३} + (त-२)\,य^{२} + तय - ३\,य$

$- तय^{४} - त^{२}य^{३} - (त-१)\,तय^{२} - (त-२)\,तय - त^{२} + ३\,त$

$य^{५} - (त^{२} - त + १)\,य^{३} - (त^{२} - २त + २)\,य^{२} - (त^{२} - ३त + ३)\,य - त^{२} + ३\,त$.

यहाँ पर, $य^{५} = य^{५}$

$+ तय^{४} - तय^{४} = ०$

$+ (त-१)\,य^{३} - त^{२}य^{३} = -(त^{२} - त + १)य^{३}$

$-(त-१)\,तय^{२} + (त-२)य^{२} = -(त^{२} - २त + २)य^{२}$ गुणनफल.

$-(त-२)\,तय + तय - ३य = -(त^{२} - ३त + ३)\,य$.

$- त^{२} + ३\,त = - त^{२} + ३\,त$.

(९) $अ + (अ + \frac{१}{२})\,य + (अ + १)\,य^{२} + (अ + \frac{३}{२})\,य^{३} + (अ + २)\,य^{४} + (अ + \frac{५}{२})\,य^{५}$ इसको $१ - २\,य + य^{२}$ इससे गुणा देने से गुणनफल में तीन पंक्ति हुई—

$अ + (अ + \frac{१}{२}) य + (अ + १) य^{२} \; (अ + \frac{३}{२}) य^{३} + (अ + २) य^{४} + (अ + \frac{५}{२}) य^{५}$

$- २ अय - (अ + \frac{१}{२}) ३ य^{२} - (अ + १) २ य^{३} - (अ + \frac{३}{२}) २ य^{४} - (अ + २) २ य^{५} - (अ + \frac{५}{२}) २ य^{६}$

$+ अय^{२} + (अ + \frac{१}{२}) य^{३} + (अ + १) य^{४} + (अ + \frac{३}{२}) य^{५} + (अ + २) य^{६} + (अ + \frac{५}{२}) य^{७}$

यहाँ पर,

$$
\begin{aligned}
अ &= अ \\
(अ+\tfrac{१}{२}) य - २ अय &= -(अ+\tfrac{१}{२})य. \\
(अ+१)य^{२} - (अ+\tfrac{१}{२}) २ य^{२} + अय^{२} &= ० \\
(अ+\tfrac{३}{२}) य^{३} - (अ+१) २ य^{३} + (अ+\tfrac{१}{२}) य^{३} &= ० \\
(अ+२) य^{४} - (अ+\tfrac{३}{२}) २ य^{४} + (अ+१) य^{४} &= ० \\
(अ+\tfrac{५}{२}) य^{५} - (अ+२)^{२} य^{५} + (अ+\tfrac{३}{२}) य^{५} &= ० \\
-(अ+\tfrac{५}{२}) २ य^{६} + (अ+२) य^{६} &= -(अ+३)य^{६} \\
(अ + \tfrac{५}{२}) य^{७} &= (अ+\tfrac{५}{२})य^{७} \\
\hline
\therefore अ - (अ+\tfrac{१}{२}) य - (अ+३) य^{६} &+ (अ+\tfrac{५}{२}) य^{७}
\end{aligned}
$$

भागहार ।

१०. किसी एक वर्ण के घातमापक क्रम से घटते अथवा बढ़ते हुए रहें, इस क्रम से भाज्य तथा भाजक को व्यक्तगणित के अनुसार लिखना । फिर भाज्य के पहले केवल पद में, भाजक का पहला केवल पद, जिससे गुणित घट सके, उससे भाजक के प्रत्येक पद को गुणाकर, भाज्य में घटा देना । वह गुणक भजनफल का पहला पद होगा । जो शेष बचे, उसको फिर भाज्य मानकर, उक्त क्रिया करनी । इस प्रकार जब भाज्य निःशेष हो जाय तब पूरा भजनफल होगा । यदि भाजक से कम भाज्य शेष रहे, तो उसके नीचे भिन्न रीति के अनुसार भाजक लिखकर, उसको प्राप्त हुए

भजनफल के आगे रखना । गुणन की भाँति यहाँ भाज्य-भाजक के चिह्न सजातीय हों तो, भजनफल धन और विजातीय हों तो ऋण होगा । यदि भाज्य-भाजक केवल पद हों अथवा, भाजक मात्र केवल पद हो तो उनमें वारद्योतकाङ्क, घातमापक और वर्णों में, यथासंभव अपवर्तन देने से ही भजनफल सिद्ध होगा ।

श्लोक ।

'क्रमादेकस्य वर्णस्य यथा स्याद् घातमापकः ।
हीयमानस्तथा न्यस्ताद् भाज्यादन्त्यात्तु भाजकः ॥
येन निघ्नो विशुद्धेत् तत् फलमेवं पुनः क्रिया ।
शेषे तु त्वदधो हारो धनर्णं गुणनोक्तिवत् ॥
भाज्य-भाजकयोरेकपदत्वे भाजकस्य वा ।
यथावदपवर्तेन भागहारे फलं भवेत् ॥'

(१) भाजक ।	भाज्य ।	भजनफल
५ अकग²)	१५ अ²कग⁴	(३ अग

अर्थात् $\frac{१५ अ^२ क ग^४}{५ अ क ग^२} = ३ अ ग$

यहाँ वारद्योतकाङ्कों में ५ का, अ² में अ के एक घात अ का, ग⁴ में ग के द्विघात ग² का और क वर्णों में क का, अपवर्तन देने से शेष भजनफल ३ अग हुआ ।

(२) $\frac{- अ य + अ य^२ - क य^३}{- अ य} = १ - य + \frac{क य^२}{अ}$

यहाँ भाज्य के प्रत्येक पद में भाजक का अपवर्तन लगाने से भजनफल उत्पन्न हुआ ।

(३) २ – य) ६४ – य^{६} (३२ + १६ य + ८ य^{२} + ४ य^{३} + २ य^{४} + य^{५}

६४ – ३२ य

३२ य

३२ य – १६ य^{२}

१६ य^{२}

१६ य^{२} – ८ य^{३}

८ य^{३}

८ य^{३} – ४ य^{४}

४ य^{४}

४ य^{४} – २ य^{५}

२ य^{५} – य^{६}

२ य^{५} – य^{६}

....

(४) ३य^{२} + ५य – ७) ६य^{४} – २य – ३१य^{२} + ३३य – ७ (२य^{२} – ४य + १

६य^{४} + १० य^{३} – १४ य^{२}

– १२ य^{३} – १७य^{२} + ३३य

– १२य^{३} – २०य^{२} + २८य

३य^{२} + ५य – ७

३य^{२} + ५ य – ७

. . .

(५) अ – क + ग) (अ^{२} + २अक + क^{२} – ग^{२}

अ^{३} + अ^{२}क – अक^{२} – क^{३} + अ^{५}ग + २अकग + क^{२}ग – अग^{२} + कग^{२} – ग^{३}

अ^{३} – अ^{२}क + अ^{२}ग

२ अ^{२}क – अक^{२} + २ अ क ग

२ अ^{२}क – २ अ क^{२} + २ अ क ग

अ क^{२} – क^{३} + क^{२}ग

अ क^{२} – क^{३} + क^{२}ग

– अग^{२} + कग^{२} – ग^{३}

– अग^{२} + कग^{२} – ग^{३}

. . .

अथवा, अ—क+ग) (अ^{2}+२अक+क^{2}—ग^{2}

अ^{3}+ (क+ग)अ^{2}—(क^{2}—२कग+ग^{2}) अ+ (क+ग)कग—क^{3}—ग^{3}

अ^{3}—अ^{2}क+अ^{2}ग

२ अ^{2}क—(क^{2}—२कग+ग^{2}) अ

२ अ^{2}क—२अक^{2}+२ अ क ग

अक^{2}—अग^{2}+(क+ग) कग — क^{3}

अ क^{2} — क^{3} + क^{2}ग

— अग^{2}+कग^{2}—ग^{3}

— अग^{2}+कग^{2}—ग^{3}

. . .

(६) १+१—त=१+त+त^{2}+त^{3}+त^{4}+त^{5} इत्यादि।

यहां भजनफल का अन्त न होगा चाहो जबतक भाग किया जाय। इसलिए ऐसे भजनफल को अनन्त श्रेढी कहते हैं।

(७) $\frac{\text{१+त}}{\text{१+त}}$ =१+२त+त^{2}+त^{3}+त^{4}+त^{5}+.................।

घातक्रिया।

११. उद्दिष्ट पद का जितना घात करना हो, उतने स्थानों में उसको रखकर गुणन करने से वह घात होगा। और पद धन हो तो उसका घात धन होगा। यदि ऋण हो तो उसका घात धन अथवा, ऋण होगा।

श्लोक।

'समद्वित्र्यादिको घातः क्रमाद्वर्गघनादिकः।
घातमापकसाम्ये स्याद् धनमेषोऽन्यथात्वृणम्॥'

(१) $\pm १ - \text{य}$ इसके वर्गादिघात करना है—

$$१ - \text{य}$$
$$१ - \text{य}$$
$$- \text{य}$$
$$- \text{य} + \text{य}^{२}$$
$$\text{वर्ग} = १ - २\text{य} + \text{य}^{२}$$
$$१ - \text{य}$$
$$१ - २\text{य} + \text{य}^{२}$$
$$- \text{य} + २\text{य}^{२} - \text{य}^{३}$$
$$\text{घन} = १ - ३\text{य} + ३\text{य}^{२} - \text{य}^{३}$$
$$\text{वा,} - १ + ३\text{य} - ३\text{य}^{२} + \text{य}^{३}\ ।$$
$$१ - \text{य}$$
$$१ - ३\text{य} + ३\text{य}^{२} - \text{य}^{३}$$
$$- \text{य} + ३\text{य}^{२} - ३\text{य}^{३} + \text{य}^{४}$$
$$\text{चतुर्घात} = १ - ४\text{य} + ६\text{य}^{२} - ४\text{य}^{३} + \text{य}^{४}\ \text{इत्यादि ।}$$

विशेष—

यदि $\text{क}^{४}$ को $\text{क}^{३}$ से गुणाना है। यहां $\text{क}^{४}$ का यह अर्थ है कि चार क आपस में गुणे गये हैं।

अर्थात् क × क × क × क और $\text{क}^{३}$ अर्थात् तीन क आपस में गुणे हैं, क × क × क।

$$\therefore \text{क}^{४} \times \text{क}^{३} = \text{क} \times \text{क} \times \text{क} \times \text{क} \times \text{क} \times \text{क} \times \text{क} = \text{क}^{७}$$

इससे यह जानना चाहिए कि घातफल का घातमापक घात के अवयवों के घातमापक के योग के तुल्य होता है और $\text{क}^{५}$ में $\text{क}^{२}$ का भाग देना है तो $\frac{\text{क}^{५}}{\text{क}^{२}} = \frac{\text{क} \times \text{क} \times \text{क} \times \text{क} \times \text{क}}{\text{क} \times \text{क}} = \text{क} \times \text{क} \times \text{क} = \text{क}^{३}$ इससे ज्ञात हो कि लब्धि का घात-

मापक भाज्य और भाजक के घातमापकों के अन्तर के तुल्य होता है। जैसा. $\frac{क^{न}}{क^{म}} = क^{न म}$ ....(१)

इसमें म = न मानें तो $\frac{क^{न}}{क^{न}} = क^{न - न}$.

∴ $क^{0}$ = १, अर्थात् प्रत्येक राशि जिसका घातमापक शून्य है, एक १ के तुल्य होती है।

इसी प्रकार, घातक्रिया में राशि का वर्ग घातमापकों के गुणन से और मूल भाग देने से ही सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार के गणितों के लिए, 'प्रधानमापक-सारणी' 'Chambers' Mathematical Tables' से पूर्ण परिचित होना चाहिए।

घात-श्लोक।

'यो घातः खलु यस्याः संख्यायाः कर्तुमिष्टः स्यात्।
तद् घातमापकसमे स्थाने विन्यस्य तान् गुणयेत्॥'

जैसा. २ का द्विघात, त्रिघात, चतुर्घात करना है, तो यहाँ क्रम से घातमापक २, ३, ४ हैं।

∴ २ × २ = ४ वर्ग.
२ × २ × २ = ८ घन.
२ × २ × २ × २ = १६ चतुर्घात (वर्ग-वर्ग)

'कस्याश्चित्संख्याया घातानामाहतिस्तावत्।
तद् घातमापकयुतेः समानमानैव निर्दिष्टा॥'

जैसा, २ का दो-तीन-चार घातों का घात, २ का नव-घात होगा। अर्थात् ४ × ८ × १६ = ५१२

'संघटते संख्याया घातस्याभीष्टघातोऽपि ।
तद् घातमापकहतेः समान एवात्र नियमेन ॥'

जैसा, $२^{३×३} = २^{६} = ५१२$.

'एकस्या यो घातः स एव घातः परस्याश्च ।
तद् घातस्यापि तथा प्राक्परघाताहतिस्तृतीयः स्यात् ॥

जैसा, $२^{२} = ४$, $४^{२} = १६$, $(२ × ४)^{२} = ६४$.
और, ४ × १६ = ६४.

'कस्या अपि संख्यायाः सैव स्यादेकघात इह नूनम् ।
एकश्च शून्यघातो न्यरूपि संशोधकाचार्यैः ॥'

किसी संख्या का एक घात वही संख्या होती है और शून्य घात १ एक होता है ।

'एकस्य १ कोऽपि घातः संगच्छत एक एवात्र ।
शून्यस्य ० शून्यघातं विहाय यः कोऽपि शून्यं स्यात् ॥

अर्थात्—एक का कोई घात एक ही होता ह और शून्य का प्रत्येक घात शून्य होता है ।

संयुक्तपद के वर्ग का प्रकारान्तर ।

१२. प्रथम केवल पद का वर्ग करके, द्विगुण केवल पद से अगले पदों को गुणाना । फिर द्वितीय केवल पद का वर्ग करके, द्विगुण केवल पद से उसके अगले पदों को गुणाना । इस प्रकार अन्त तक क्रिया करके यथासंभव पदों को जोड़ने से वर्ग सिद्ध होगा ।

श्लोक ।

'कृतिं पदस्य पूर्वस्य कृत्वा, द्विघ्नेन तेन वा ।
हन्यादन्यपदान्येवं द्वितीयादेर्युती कृतिः ॥'

(१) $(य^2+२य-१)^2=य^4+४य^3+२य^2-४य+१$
(२) $(२य+५र)^2-(२य-५र)^2=४०यर$.

मूल-क्रिया ।

१३. जिस संयुक्त पद का वर्गमूल लाना हो, उसको ऐसा लिखना चाहिए कि जिसमें किसी एक वर्ण के घातमापक क्रम से घटते या बढ़ते हुए रहें। फिर उसके प्रथम पद में, वर्ग घटाकर मूल को दाहने लब्धि स्थान में और मूल को दूना करके बाएँ भाजक-स्थान में लिखना। पुन: उस (दूने मूल) का शेष के प्रथम पद में भाग देने से, जो लब्धि मिलने योग्य हो, उसको लब्धि स्थान तथा भाजक स्थान में जोड़ देना। फिर उस लब्धि गुणित भाजक (पंक्ति) को शेष में घटा देना। पहले फल को और दूने इस फल को नीचे पंक्ति में लिखना। इस प्रकार अन्त तक क्रिया करने से लब्धि स्थान में वर्गमूल होगा।

श्लोक ।

'स्यान्मानकोऽत्रापचितश्चितो वा
यथा तथा न्यस्य हि वर्गराशिम्।
आद्यात् पदाद् वर्गमपास्य मूलं
दत्ते निदध्याद् द्विगुणं तु पङ्क्त्याम्॥
अनेन भक्ते तु पदे तदाद्ये
यल्लभ्यते तद् विनियोज्य दत्ते।
पङ्क्त्यां च, तेनैव हताथ पङ्क्ति-
रपासनीयोर्वरितात्ततश्च॥
एतत्फलं द्व्याहतमन्यपङ्क्त्यां
पूर्वेण लब्धेन सहाकलय्य।

पङ्क्त्या विभक्ते तु पदे तदाद्ये
शेषे विधेयं पुनरेवमत्र ॥'

(१) $य^{४}+४य^{३}र+४य^{२}र^{२}+६य^{२}+१२यर+९$ ($य^{२}+२यर+३$
$य^{४}$ — वा, $-य^{२}-२यर-३$.

$२य^{२}+यर$) $+४य^{३}र+४य^{२}र^{२}$
$+४य^{३}र+४य^{२}र^{२}$

$२य^{२}+२यर+३$) $+६य^{२}+१२यर+९$
$+६य^{२}+१२यर+९$
. . .

जब 'घातमापकसाम्ये स्यात् —' (११) के अनुसार धन व ऋण राशि का समद्विघात (वर्ग) धन ही होता है, तो धन राशि का वर्गमूल धन वा, ऋण दोनों हो सकता है। आचार्य ने भी कहा है—'स्वमूले धनर्णे' इसलिए यहाँ मूल को ऋण भी जानना चाहिए।

(२) $९य^{६}-१२य^{५}र+४य^{४}र^{२}-६य^{३}+४य^{२}र+१$) $३य^{३}-२य^{२}र-१$
$९य^{६}$

$६य^{३}-२य^{२}र$) $-१२य^{५}र+४य^{४}र^{२}$
$-१२य^{५}र+य^{४}र^{२}$

$६य^{३}-४य^{२}र-१$) $-६य^{३}+४य^{२}र+१$
$-६य^{३}+४य^{२}र+१$
. . .

(३) $१६य^{८}+२२४य^{६}+७८४य^{४}+३९२य^{४}+२७४४य^{२}+२४०१$ इसका चतुर्घात-मूल क्या है?
दो बार वर्गमूल लेने से उत्तर = $२य^{२}+७$.

(४) $\frac{१}{४}-य$ इसका वर्गमूल क्या होगा ?

$\frac{१}{४} - \text{य} (\frac{१}{२} - \text{य} - \text{य}^{२} - २\text{य}^{३} - ५\text{य}^{४} - $ इत्यादि
मूल अनन्त श्रेढी कही जाती है ।

$$\therefore \frac{१}{४} - \text{य}$$

$$\frac{१}{४}$$

$$१ - \text{य}) \quad -\text{य}$$

$$-\text{य} + \text{य}^{२}$$

$$१ - २\text{य} - \text{य}^{२}) \quad -\text{य}^{२}$$

$$-\text{य}^{२} + २\text{य}^{३} + \text{य}^{४}$$

$$१ - २\text{य} - २\text{य}^{२} - २\text{य}^{३}) \quad -२\text{य}^{३} - \text{य}^{४}$$

$$२\text{य}^{३} + ४\text{य}^{४} + ४\text{य}^{५} + ४\text{य}^{६}$$

$$१ - २\text{य} - २\text{य}^{२} - ४\text{य}^{३} - ५\text{य}^{४}) \quad -५\text{य}^{४} - ४\text{य}^{५} - ४\text{य}^{६}$$

$$-५\text{य}^{४} + १०\text{य}^{५} + १०\text{य}^{६} + २०\text{य}^{७} + २५\text{य}^{८}$$

$-१४\text{य}^{५} - १४\text{य}^{६} - २०\text{य}^{७} - २५\text{य}^{८}$ . . इत्यादि अनन्त ।

महत्तमापवर्तन ।

१२. जिन पदों से उद्दिष्ट बीजात्मक पद निःशेष भाजित होते हैं, वे उनके अपवर्तन कहलाते हैं । और उनमें सबसे बड़े अपवर्तनाङ्क को, उन पदों का महत्तमापवर्तन कहते हैं ।

जैसा, अतयर और क य त ल ये पद त, य और तय इन तीन पदों से निःशेष भाजित होते हैं, इसलिए ये तीनों, उक्त दोनों पदों के अपवर्तन हुए । परंतु इनमें तय अपवर्तन बड़ा है, इसलिए यही महत्तमापवर्तन हुआ । यहाँ महत्तमापवर्तन को सदा घन ही मानते हैं ।

प्रकार—

१३. यदि किसी केवल पद का उद्दिष्ट पदों में, निःशेष भाग लगता हो, तो पहले उनको भाग देकर लघु कर लेना । यदि भाग न लगे, तो वे स्वयं लघु हैं । उन लघु पदों में, जिसका जिसमें भाग लगे, उसका उसमें भाग देना । जो शेष बचे, उसका उसके भाजक में भाग

देना । इस प्रकार, परस्पर में बार-बार भाग देने से, जिस शेष से उसका भाजक निःशेष भाजित होगा, वह उन लघुपदों का महत्तमापवर्तन होगा : यदि पहले उद्दिष्ट पद, केवल पद से भाजित हों तो, उस (केवलपद) से इस महत्तमापवर्तन को गुणा देने से वह उन लघुपदों का महत्तमापवर्तन होगा । यदि उद्दिष्ट पद दो से अधिक हों तो, पहले उक्त रीति से दो पदों का महत्तमापवर्तन निकालकर, फिर उस महत्तमापवर्तन और तीसरे पद का महत्तमापवर्तन सिद्ध करना । इसी प्रकार आगे क्रिया करनी । अन्त में जो महत्तमापवर्तन निकलेगा, वही उद्दिष्ट पदों का महत्तमापवर्तन होगा ।

श्लोक ।

'केवलपदेन भाज्ये पदे यथा नापरेण भज्येते।
ते लघुपदे भवेतामथवा स्वयमेव ये लघुनी ॥
अनयोर्मिथो विहतयोर्यच्छेषेणात्मभाजकः शुध्येत्।
तद्भवति महत्तमापवर्तनमपवर्तिते गुणितम् ॥
अग्रे त्वस्य परस्य च पदस्य संसाधयेदिदं प्राग्वत्।
केवलपदानि चेत् स्युस्तदापवर्तादिनैवैतत् ॥'

(१) $य^2+६य+८$ और $य^2+५य+६$ का महत्तमापवर्तन क्या है ?

$$
\begin{array}{l}
य^2+५य+६)\ य^2+६य+८\ (१ \\
\qquad\qquad\quad \underline{य^2+५य+६} \\
\qquad\qquad\qquad\quad य+२ \\
य+२)\ य^2+५य+६\ (य+३ \\
\qquad\ \underline{य^2+२य} \\
\qquad\qquad ३य+६ \\
\qquad\qquad \underline{३य+६} \\
\qquad\qquad\ \cdot\ \cdot
\end{array}
$$

य + २ यह उद्दिष्ट पदों का महत्तमापवर्तन हुआ। इससे भाजित उद्दिष्ट पद दृढ़ कहलाते हैं *।

लघुतमापवर्त्य।

१४. यदि एक राशि में, दूसरी राशि का निःशेष भाग लग जाय, तो पहली राशि को अपवर्त्य कहते हैं। और यदि एक राशि में दो या, अधिक राशियों का अलग-अलग निःशेष भाग लग जाय, तो पहली राशि को उन राशियों का अपवर्त्य कहते हैं। इसी प्रकार, यदि किसी दूसरी सबसे छोटी राशि में, उन राशियों का निःशेष भाग लग जाय, तो छोटी राशि को लघुतमापवर्त्य कहते हैं।

जब एक राशि, दूसरी राशि का अपवर्त्य हो तो, दूसरी राशि अपवर्त्य का एक गुणक रूप अवयव होगी। और जो दो या, अधिक राशियों की एक राशि अपवर्त्य हो तो, प्रत्येक राशि अपवर्त्य का गुणकरूप अवयव होगी।

और यदि तीन या, अधिक पदों का लघुतमापवर्त्य जानना हो तो, पहले दो पदों का ज्ञात करके, शेष पदों में से किसी एक के साथ लघुतमापवर्त्य जानना, इस प्रकार शेष पदों के साथ क्रिया करने से, अन्त में जो फल सिद्ध होगा वही अभीष्ट लघुतमापवर्त्य है।

(१) जैसा, ५ का १५ अपवर्त्य है, क्योंकि १५ में ५ का तीन बार भाग लग जाता है और ३ का भी १५ अपवर्त्य है, क्योंकि उसमें ३ का ५ बार ठीक भाग लग जाता है। इसलिए ५ और ३ का १५ अपवर्त्य है। ऐसे ही ५ और ३ के ३० और ४५ भी अपवर्त्य हैं। परन्तु उन सबों से छोटा १५ है, इसलिए ५ और ३ का १५ लघुतमापवर्त्य हुआ।

---

* पूज्यपाद श्री ६ द्विवेदीजी ने यहीं तक 'बीजपरिचय' किसी समय लिखा था। यहाँ उसका स्वरूप दिखलाया है। विशेष श्रीबापूदेव शास्त्रीजी के 'हिन्दी-बीजगणित' में देखना चाहिए।

इसी प्रकार, यहाँ २ अक, अ का अपवर्त्य है; क्योंकि २ अक में अ, × २ क बार जा सकता है, ऐसे ही २ अक क का भी अपवर्त्य है। अर्थात् अ और क का २ अक अपवर्त्य है और अक लघुतमापवर्त्य है। जैसे ३, १० और ६ का लघुतमापवर्त्य ३, १, २, ५ ये भिन्न गुणक रूप अवयव होते हैं, इसका गुणन = ३० होता है। इसी प्रकार, २ अ, ६ अक और ८ अक इन का लघुतमापवर्त्य—२ अ = २ × अ; ६ अक = २×३×अक ८ अक = २ × २ × २ अक। इन में २, ३ अ और क भिन्न गुणकरूप अवयव हैं और एक राशि में २ संख्या तीन बार आई हैं, इस कारण २ × २ × २ × ३ अक = २४ अक, यह लघुतमापवर्त्य हुआ।

(२) दो वा अधिक संयुक्त पदों का लघुतमापवर्त्य जानने के लिए कल्पना किया—क और ख दो पदों के द्योतक हैं और घ उनका महत्तमापवर्तन है।

क = त घ, ख = थ घ तो महत्तमापवर्तन की रीति से त और थ में कोई साधारण गुण्य-गुणक रूप अवयव नहीं हैं, इसलिए त थ उनका लघुतमापवर्त्य है और सबसे लघुपद त थ घ है। यहाँ त थ और थ घ का निःशेष भाग लग सकता है और त थ घ= थ क = त ख = $\frac{\text{क ख}}{\text{घ}}$ । इससे सिद्ध होता है कि—पदों के गुणनफल में उनके महत्तमापवर्तन का भाग देना चाहिए अथवा, एक पद में उनके महत्तमापवर्तन का भाग देना और भजनफल को दूसरे पद से गुणा करना।

जैसा, अ^{२} − ४ अ + ३ और ४ अ^{३} − ६ अ^{२} −१५ अ + १८ इसका लघुतमापवर्त्य निकालना है, तो इनका महत्तमापवर्तन अ − ३ है, अ^{२} − ४ अ + ३ में अ − ३ का भाग देने से भजनफल अ − १ मिला, इसलिए (अ − १) (४ अ^{३} − ६ अ^{२} − १५ अ + १८) लघुतमापवर्त्य है और गुणन से,

$४ अ^४ - १३ अ^३ - ६ अ^२ + ३३ अ - १८$ फल मिला। यह स्पष्ट है कि $अ - १$ का निःशेष भाग $४ अ^३ - ९ अ^२ - १५ अ + १८$ में लगता है, इसलिए क्रिया करने से $(अ - ३) (अ - १) (४ अ^२ + ३ अ - ६)$ लघुतमापवर्त्य हुआ। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि लघुतमापवर्त्य को गुण्य-गुणक खण्डों में लिखने से सुभीता पड़ता है।

महत्तमापवर्तन और लघुतमापवर्त्य के आपस में सम्बन्ध और विभिन्न गणितों की व्याप्ति के उदाहरण पूर्वोक्त हिन्दी बीजगणित में देखना आवश्यक है।

भिन्न।

१५. भिन्न शब्द का अर्थ व्यक्तगणित में और यहाँ पर एक ही है। जैसे $\frac{अ}{क}$ से ज्ञात होता है कि एक या, पूरी राशि क तुल्य भागों में विभाजित हुई है। और उन भागों में से अ भाग लिये गये हैं। $\frac{अ}{क}$ भिन्न है, अ अंश, क छेद कहा जाता है। छेद या, हर से ज्ञात होता है कि एक की संख्या कितने तुल्य भागों में विभाजित हुई है। और अंश सूचित करता है कि उन में से कितने भाग लिये गये हैं। यहाँ अंश और छेद की राशियों के स्थान में इष्ट संख्या की कल्पना भी कर सकते हैं।

(१) भिन्न के अंश और हर को किसी राशि से गुणने पर उनके मान में अन्तर नहीं पड़ता।

जैसा, $\frac{अ}{क} = \frac{२ अ}{२ क} = \frac{३ अ}{३ क} = \frac{न अ}{न क}$;

इसलिए, $\frac{अ}{क} = \frac{३ अ}{३ क} = \frac{न अ}{न क}$; यहाँ न के स्थान में इष्ट संख्या मान सकते हैं।

$\frac{\text{न अ}}{\text{न क}}$ में १ के न क तुल्य खण्ड हुए हैं। और $\frac{\text{अ}}{\text{क}}$ में १ के क तुल्य खण्ड हुए हैं। इसलिए $\frac{\text{न अ}}{\text{न क}}$ का प्रत्येक खण्ड $\frac{\text{अ}}{\text{क}}$ के प्रत्येक खण्ड का $\frac{१}{\text{न}}$ भाग है। क्योंकि किसी संख्या में बड़ी संख्या का भाग दिया जाय और उसी में छोटी का भी भाग दिया जाय तो पहली लब्धि दूसरी से छोटी होगी। इसलिए १ के न क भाग को न बार लें तो, $\frac{\text{न अ}}{\text{न क}}$, $\frac{\text{अ}}{\text{क}}$ के तुल्य है। क्योंकि $\frac{\text{न अ}}{\text{न क}} = \frac{\text{अ}}{\text{क}}$ इससे सिद्ध होता है कि किसी भिन्न के अंश और हर में एक ही राशि का भाग देने से भिन्न का मान वही बना रहता है।

(१) $\frac{\text{अ}}{\text{क}} = \frac{\text{अ} \times \text{ग}}{\text{क} \times \text{ग}} = \frac{\text{अ ग}}{\text{क ग}}$ ।

(२) $\frac{\text{अ}}{\text{क}} = \frac{\text{अ} \times \text{घ च}}{\text{क} \times \text{घ च}} = \frac{\text{अ घ च}}{\text{क घ च}}$ ।

(३) $\frac{\text{अ} - \text{य}}{\text{य}} = \frac{\text{२ अ} - \text{२ य}}{\text{२ य}}$ ।

(४) $\frac{\text{अ} - \text{य}}{\text{य}} = \frac{\text{अ}^{२} - \text{अ य}}{\text{अ य}}$ ।

(५) $\frac{१ - \text{य}}{१ + \text{य}} = \frac{\text{र} - \text{य र}}{\text{र} + \text{यर}}$ ।

इन उदाहरणों से ज्ञात होता है कि इस रीति से भिन्नों का लघुतम रूप हो जाता है, और मानों में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

जैसा, $\frac{२ अ य}{३ य} = \frac{२ अ}{३}$ । $\frac{४ अ क ग}{२ अ ग} = क २$ ।

$\frac{२ य^{२} - ३ य}{५ य} = \frac{२ य - ३}{५}$ । इत्यादि ।

संकलन और व्यवकलन ।

१६. व्यक्तगणित की 'अंशाहतिश्छेदवधेन भक्ता—, इस रीति से भिन्नपदों का समच्छेद करके योग किंवा अन्तर किया जाता है ।

(१) यदि समान छेद हो जैसे $\frac{अ}{क} + \frac{ग}{क} = \frac{अ + ग}{क}$ योग हुआ । यदि $\frac{अ}{क} + \frac{ग}{घ}$ ऐसा पद हो तो—

$$\frac{अ}{क} + \frac{ग}{घ} = \frac{अ घ}{क घ} + \frac{क ग}{क घ} = \frac{अ घ + क ग}{क घ}$$

(२) $\frac{अ}{क}, \frac{ग}{घ}, \frac{च}{ज}$, इनका योग— $\frac{अ}{क} = \frac{अ घ ज}{क घ ज}$, $\frac{ग}{घ}$ $= \frac{ग \times क ज}{घ \times क ज} = \frac{क ग ज}{क घ ज}$; क्योंकि, $ग \times क = क ग$ और $घ \times क = क घ$ । इसी प्रकार $\frac{च}{ज} = \frac{क घ \times च}{क घ \times ज} = \frac{क घ च}{क घ ज}$,

इस कारण $\frac{अ}{क} + \frac{ग}{घ} + \frac{च}{ज} = \frac{अ ग च}{क घ ज} + \frac{क ग ज}{क घ ज} + \frac{क घ च}{क घ ज}$

$= \frac{अ घ ज + क ग ज + क घ च}{क घ ज}$ । इस प्रकार चार या अधिक भिन्नपदों का योग होता है ।

(३) यदि $\frac{अ}{क} - \frac{ग}{क} = \frac{अ - ग}{क}$ और $\frac{अ}{क} - \frac{ग}{घ} = \frac{अ घ - क ग}{क घ}$

किसी राशि को भिन्न का रूप देना हो तो, उसके नीचे १ हर लिख देना। $अ = \frac{अ}{१}$, $य = \frac{य}{१}$, $अ - क = \frac{अ - क}{१}$ आदि।

क्योंकि, $अ = \frac{अ \times १}{१} = \frac{अ}{१}$।

यह जानना चाहिए कि हरों के लघुसमापवर्त्य में प्रत्येक भिन्न के हर का निःशेष भाग लग जाता है। इसलिए लब्धियों से अपने अपने अंश और हर को गुणने से भिन्नों के समच्छेद लघुतमरूप में हो जाते हैं। जैसा, $\frac{७ य}{६}$, $\frac{३ य}{५}$, $\frac{य}{३०}$ इनका लघुतम रूप समच्छेद ३० है।

$$\frac{७ य}{६} = \frac{३५ य}{३०}, \quad \frac{३ य}{५} = \frac{१८ य}{३०},$$

$$\therefore \text{योग} = \frac{३५ य + १८ य + य}{३०} = \frac{५४ य}{३०} = \frac{९ य}{५}।$$

(४) $\frac{२ अ}{७ क} - \frac{९ अ}{७ क}$, यहाँ, $\frac{९ अ}{७ क} - \frac{२ अ}{७ क} = \frac{९ अ - २ अ}{७ क} = \frac{७ अ}{७ क} = \frac{अ}{क}$।

इसी प्रकार, $\frac{३ य}{२४ र} - \frac{३ य}{४ र}$, यहाँ भी, $\frac{३ य}{४ र} = \frac{६ \times ३ य}{६ \times ४ र} = \frac{१८ य}{२४ र}$।

$$\therefore \text{अन्तर} = \frac{१८ य}{२४ र} = \frac{३}{२४ र} = \frac{१५ य}{२४ र} = \frac{५ य}{८ र}।$$

गुणन और भागहार।

१७. व्यक्तगणित के 'अंशाहतिश्छेदवधेन' और 'छेदं लवं च

परिवर्त्य—' इन नियमों के अनुसार भिन्नों का पूर्णाङ्क किंवा भिन्नाङ्क से गुणन-भजन होता है। भिन्न के अंश को गुणाकर घात के नीचे उसका हर रख देना। जैसे ग × $\frac{अ}{क} = \frac{अ ग}{क}$। $\frac{अ}{क}$ और $\frac{अ ग}{क}$ इन दोनों भिन्नों में, १ के क तुल्य खण्ड हुए हैं और $\frac{अ}{क}$ भिन्न में वैसे तुल्य खण्ड अ लिये हैं और $\frac{अ ग}{क}$ भिन्न में अ के तुल्य खण्ड ग बार लिये हैं। इस कारण $\frac{अ ग}{क}$ भिन्न $\frac{अ}{क}$ भिन्न की अपेक्षा ग बार बड़ा है।

(१) यदि $\frac{अ}{क}$ को २ से गुणना है—

घात = $\frac{२ अ}{क}$, क्योंकि दो गुणा $\frac{अ}{क} = \frac{अ}{क} + \frac{अ}{क} =$ $\frac{अ + अ}{क} = \frac{२ अ}{क}$।

(२) $\frac{अ - य}{क}$ को २ अ से गुणा तो, घात= २ अ × $\frac{अ - य}{क}$ $= \frac{२ अ^{२} - २ अ य}{क}$।

(३) $\frac{अ - य}{र}$ को $\frac{६}{य}$ से गुणा तो, $\frac{६}{य} \times \frac{अ - य}{र}$ $= \frac{६ अ - ६ य}{य र}$। इत्यादि।

इसी प्रकार भाग का भी विषय जानना चाहिए। यदि भिन्न के अंश में पूर्णाङ्क का पूरा भाग लग जाय तो लब्धि के नीचे भिन्न के हर

को रख देना । या, भिन्न के हर को पूर्णाङ्क से गुणा के घात को हर मानकर, इसके ऊपर भिन्न का अंश लिखना ।

जैसा, $\frac{अ ग}{क} \div ग = \frac{अ}{क}$ और $\frac{अ}{क} \div ग = \frac{अ}{क ग}$ ।

अथवा, $\frac{७ अ - ७ य}{अ + य}$ इसमें म का भाग दिया, क्योंकि, अंश $\div ७ = अ - य$ ।

$\therefore$ लब्धि $= \frac{अ - य}{अ + य}$ ।

(४) यदि भिन्न भाजक हो तो ऊपर जो 'छेदं लवं च....' श्लोक लिखा है, उसके अनुसार — $\frac{२ अ क}{३ य र} \div \frac{अ क}{य र}$,

यहाँ पर, $\frac{२ अ क}{३ य र} \div \frac{म}{क} = \frac{२ अ क}{३ य र} \times \frac{य}{क} = \frac{२ अ क य}{३ क य र}$

$= \frac{२ अ}{३ र}$ ।

(५) $\frac{२ अ^२ क}{१० य^२ र^२} \div \frac{अ क}{य र} = \frac{२ अ^२ क}{१० य^२ र^२} \times \frac{२ य र}{अ क}$

$= \frac{२ अ \cdot अ क \cdot २ य र}{५ य र \cdot २ य र \cdot अ क} = \frac{२ अ}{५ य र}$ ।

(६) $\frac{अ^२ - य^२}{अ य} \div \frac{अ + य}{अ}$ ।

यहाँ पर, $\frac{अ^२ - य^२}{अ य} \times \frac{अ}{अ + य} = \frac{अ - य}{य}$ ।

(७) $\frac{१ + य^२ + २ य}{३ य} \div \frac{१ + य}{२ य}$ ।

$$\text{लब्धि} = \frac{१ + य^२ + २ य}{३ य} \times \frac{२ य}{१ + य} = \frac{१ + य}{३}$$

$$\times \frac{१ + य}{य} \times \frac{२ य}{१ + य} = \frac{१ + य}{३} \times २ = \frac{२ + २ य}{३} ।$$

इसी प्रकार अभ्यासार्थ अनेक उदाहरण करने चाहिए । भिन्नों की घातक्रिया, मूलक्रिया आदि हिन्दी बीजगणित में देखना चाहिए ।

करणी ।

१८. जिस राशि का वर्गमूलादि अपेक्षित है, परन्तु निःशेष मूल नहीं मिलता है, तो उस मूल को करणी कहते हैं । करणी को सूचित करने के लिए उसके आदि में उस मूल का द्योतक चिह्न लिखते हैं ।

(१) जैसा, २ का वर्गमूल अभीष्ट है पर वह मूल कोई निःशेष संख्या नहीं है, न भिन्न है, न अभिन्न है । इसलिए इसको $\sqrt{२}$ या $२^{\frac{१}{२}}$ इस चिह्न से लिखते हैं । अ कोई पूरा वर्ग नहीं है, इसलिए $\sqrt{अ}$ या, $अ^{\frac{१}{२}}$ यह करणी है । इसी प्रकार, $\sqrt{अ+क}$, या, $(अ + क)^{\frac{१}{२}}$, $\sqrt[३]{अ^२ + २ अ क}$, या, $(अ^२ + २ अ क)^{\frac{१}{२}}$ इत्यादि सब करणी हैं ।

(२) मूल में 'द्विकाष्टमित्योस्त्रिभसंख्ययोश्च—' इत्यादि करणी के योग और वियोग का उदाहरण है । इन चिह्नों के अनुसार उस का गणित—

$$\sqrt{८} + \sqrt{२} = \sqrt{२ \times ४} + \sqrt{२} = २\sqrt{२}$$
$$+ \sqrt{२} = (२+१) \sqrt{२} = ३\sqrt{२} ।$$
$$= \sqrt{९ \times २} = \sqrt{१८} ।$$ अन्तर में — $\sqrt{८} - \sqrt{२}$
$$= २\sqrt{२} - \sqrt{२} = (२-१) \sqrt{२} = \sqrt{२} ।$$

इसी प्रकार, 'त्रिभसंख्ययोश्च' इस उदाहरण की क्रिया इस प्रकार है—

$\sqrt{२७} + \sqrt{३} = \sqrt{९ \times ३} + \sqrt{३} = ३\sqrt{३} + \sqrt{३} = (३ + १)\sqrt{३} = ४\sqrt{३} = \sqrt{१६ \times ३} = \sqrt{४८}$ ।

और,

$\sqrt{२७} - \sqrt{३} = \sqrt{९ \times ३} - \sqrt{३} = (३ - १)\sqrt{३} = २\sqrt{३}, = \sqrt{४ \times ३} = \sqrt{१२}$ ।

(३) यहाँ करणियों के भेदों को जानना चाहिए । जिन राशियों में करणी न हो उनको अकरणीगत राशि कहते हैं । जैसा, $अ^२ + अ य, य^३ + य र - य^३$ इत्यादि । और जिन राशियों में करणी हो वह करणीगत है । जैसा, $\sqrt[३]{५}$, $२ + \sqrt{३ य}$, $अ + \sqrt{व}$ इत्यादि सब करणी हैं ।

इसी प्रकार, जिस करणी में कोई अकरणीगत राशि गुणक हो उसको मिश्रकरणी और जिसमें गुणक नहीं है उसको अमिश्र-करणी कहते हैं । जैसा ; $२\sqrt{३}$ और $अ\sqrt{क}$ और $\sqrt{८}$, $\sqrt[३]{अ^३ य}$ ।

और जिस करणी में जितना मूलमापक होगा, उतने घात मूल की वह करणी होती है । जैसा $\sqrt{अ}$ यह वर्गमूल करणी है और $\sqrt[३]{अ - क}$ यह घनमूल करणी है । $\sqrt[४]{य^२ - ३ य}$ यह चतुर्घात मूल करणी है ।

(४) जिन करणियों के मूलमापक समान हैं उनको समूल करणी कहते हैं और जिनके मूलमापक विषम हैं, उनको विमूल करणी कहते हैं । जैसा, $\sqrt{५}$, $३\sqrt{७}$, $२\sqrt{अ}$ अथवा, $\sqrt[३]{अ}$, $\sqrt[३]{१०}$ सब समूल हैं । और $\sqrt{२}$, $\sqrt[३]{अ}$, $\sqrt[४]{क}$ इत्यादि विमूल हैं ।

(५) जिन समूल करणियों में करणीगत अवयव समान हैं उनको सजातीय और जो सजातीय नहीं हैं उनको विजातीय कहते हैं । जैसा, $३\sqrt{३}$, $५\sqrt{३}$, अथवा, $\sqrt[३]{अ}$, $क\sqrt[३]{अ}$ और $\sqrt{३}$, $\sqrt[३]{३}$, $\sqrt{५}$ विजातीय हैं और जो करणी

अ $\pm \sqrt{}$क अथवा, $\sqrt{}$अ $\pm \sqrt{}$क इस रूप की होती हैं, उनको द्वियुक्करणी कहते हैं।

(६) किसी अकरणीगत पद को करणी का रूप देने का प्रकार यह है कि उस पद का वर्गादि घात करके उसमें उस करणी का मूल चिह्न लगा देना चाहिए।

जैसा, + अ इसका वर्गमूल करणी रूप = + $\sqrt{\text{अ}^2}$। और − अ का = − $\sqrt{\text{अ}^2}$। यहाँ $\sqrt{\text{अ}^2}$ का वर्गमूल ± अ यह होता है। करणी के वास्तव मान के धनर्णत्व को स्पष्ट करने के लिए $\sqrt{}$ इस चिह्न के आदि में धन-ऋण चिह्न करते हैं इसीलिये आचार्य ने करणीषड्विध में 'क्षयो भवेच्च क्षयरूपवर्गः —' इत्यादि लिखा है। इस प्रकार, ±२ इसका घनमूल-करणी रूप = $\sqrt[3]{\pm ८}$ = $\sqrt[3]{८}$ यह होता है।

(७) अभिन्न करणियों के गुणन-भजन में गुण्य-गुणक अथवा भाज्य-भाजक रूप करणी यदि विमूल हों तो उनको समूल करके फिर आगे की क्रिया करनी चाहिए।

जैसा आचार्योक्त 'द्वित्र्यष्टसंख्या गुणकः करण्यो —' इत्यादि उदाहरण में—

$(\sqrt{२} + \sqrt{३} + \sqrt{८}) \times (\sqrt{३} + ५)$

$\sqrt{२} \times \sqrt{३} + \sqrt{३} \times \sqrt{३} + \sqrt{२ \times ४} \times \sqrt{३}$

$+ ५ \times \sqrt{२} + ५ \times \sqrt{३} + ५ \times \sqrt{२ \times ४}$

$\sqrt{६} + ३ + २\sqrt{६} + ५\sqrt{२} + ५\sqrt{३} + १०\sqrt{२}$

$३ + ३\sqrt{६} + १५\sqrt{२} + ५\sqrt{३}$। गुणनफल हुआ।

अथवा—

$३ + \sqrt{९ \times ६} + \sqrt{२२५ \times २} + \sqrt{२५ \times ३}$

$= ३ + \sqrt{५४} + \sqrt{४५०} + \sqrt{७५}$।

इसी प्रकार मूलोक्त प्रथम उदाहरण में—

भाज्य $= \sqrt{९} + \sqrt{४५०} + \sqrt{७५} + \sqrt{५४}$

$= ३ + १५\sqrt{२} + ५\sqrt{३} + ३\sqrt{६}$।

और भाजक $= \sqrt{२} + \sqrt{३} + \sqrt{८} = \sqrt{२} + \sqrt{३} + २\sqrt{२}$
$= \sqrt{३} + ३\sqrt{२}$ । इस प्रकार—

$\sqrt{३} + ३\sqrt{२}$) $३ + ३\sqrt{६} + ५\sqrt{३} + १५\sqrt{२}$ ($\sqrt{३} + ५$
$३ + ३\sqrt{६}$ = लब्धि ।
$५\sqrt{३} + १५\sqrt{२}$
$५\sqrt{३} + १५\sqrt{२}$
....

इस प्रकार अभ्यासार्थ कई उदाहरण करने चाहिए ।

अब करणीवर्ग के लिए मूलोक्त प्रथम उदाहरण में—
$(\sqrt{२} + \sqrt{३} + \sqrt{५})^२$ 'स्थाप्योन्त्यवर्गो द्विगुणान्त्यनिघ्नाः' इत्यादि रीति से—

$= \sqrt{२^२} + २\sqrt{२ \times ३} + २\sqrt{२ \times ५} + \sqrt{३^२}$
$+ २\sqrt{३ \times ५} + \sqrt{५^२}$ ।
$= २ + \sqrt{४ \times २ \times ३} + \sqrt{४ \times २ \times ५}$
$+ ३ + \sqrt{४ \times ३ \times ५} + ५$ ।
$= २ + ३ + ५ + \sqrt{२४} + \sqrt{४०} + \sqrt{६०}$ ।

अर्थात् = रु १० क २४ क ४० क ६० सिद्ध हुआ । इसी प्रकार वर्गमूल आदि की क्रिया को भी समझना चाहिए ।

समीकरण ।

(१९) जब दो बीजात्मक पद परस्पर तुल्य होते हैं और उनके मध्य में = यह चिह्न होता है, तो उसको समीकरण कहते हैं । और सम चिह्न के द्वारा युक्त पदों को पक्ष कहते हैं । बाईं ओर के पक्ष को प्रथम पक्ष अव्यक्त और दाहनी ओर के पक्ष को दूसरा पक्ष व्यक्त कहते हैं । समीकरण दो प्रकार के होते हैं, एक प्राकृत दूसरा कल्पित । प्राकृत समीकरण के दोनों पक्षों का साम्य स्वाभाविक रहता है । इसलिए उसके पदों के वर्णों के स्थान में इष्ट संख्या मान सकते हैं और कल्पित समीकरण के पक्षों का साम्य किसी

नियत नियम के अनुसार होता है, वहाँ मनमानी कोई संख्या किसी वर्ण के स्थान में नहीं मान सकते ।

इस प्रकार, अ + य = अ + य

अथवा, $\frac{अ^2 - य^2}{अ + य}$ = अ−य यह प्राकृत समीकरण है ।

और, य + अ = क, इसका अर्थ है कि य एक ऐसी नियत संख्या है कि जिसमें अ को जोड़ देने से, योग क के समान होता है। यह कल्पित समीकरण है । इस में अव्यक्त का मान वह है, जिससे उस समीकरण में उत्थापन करने से वह समीकरण प्राकृत हो जाय अर्थात् दोनों पक्ष एकरूप हो जायँ जैसा, य + अ = क, इसमें य अव्यक्त है और अ, क व्यक्त पद हैं, यहाँ य का मान क−अ है । क्योंकि उत्थापन से य के स्थान में क−अ को रखने से, क−अ + अ = क या, क = क ।

(१) जिस में एक ही अव्यक्त है उसको एकवर्ण समीकरण और जिस में अनेक अव्यक्त हैं, उसको अनेकवर्ण समीकरण कहते हैं। छेदगम, अपवर्तन आदि क्रिया के बाद समीकरण में, सबसे बड़ा जो घात रहता है, उसी घात के नाम का वह समीकरण कहलाता है। जैसा य = अ यह एकघात-समीकरण है । यदि समीकरण में अव्यक्त का सबसे बड़ा घात वर्ग ही हो तो वह वर्गसमीकरण होता है, इसके केवल वर्गसमीकरण और मध्यमाहरण दो भेद हैं। जैसा, $अ य^2 + क = 0$, यह केवल वर्गसमीकरण है ।

और $अय^2+कय=ग$, यह मध्यमाहरण है। इसी प्रकार घनसमीकरण आदि को भी समझना चाहिए ।

(२) अभ्यासार्थ समीकरणों का स्वरूप प्रदर्शन किया जाता है—

(क) ७य+३=२य+२३, इसमें य का मान क्या है ?

पक्षान्तरानयन से, ७ य − २ य = २३ − ३

योग करने से, ५ य = २०

भाग देने से, य = $\frac{२०}{५}$ = ४ यह मान है। इसका उक्त समीकरण में य के स्थान में उत्थापन से—

७ × ४ + ३ = २ × ४ + २३, अथवा, २८ + ३ = ८ + २३ अर्थात् ३१ = ३१।

(ख) १२ य − २१ = ३ य + ३३ इस में य का मान क्या है ?

यहाँ ३ के अपवर्तन से ∵ ४य − ७ = य + ११

पक्षान्तरानयन से ∵ ४य − य = ११ + ७

योग करने से ∵ ३ य = १८

भाग देने से ∵ य = $\frac{१८}{३}$ = ६

(ग) ११ य − (१३ − य) = ९५ ; इसमें य का मान क्या है ?

कोष्ठ को उड़ा देने से—

११ य − १३ + य = ९५

१२ य = ९५ + १३ = १०८

भाग देने से, य = $\frac{१०८}{१२}$ = ९।

(घ) ५ (य − ३) − ५१ = ५९ − २ (१७ − २ य)

इसमें य का मान क्या है ?

यहाँ कोष्ठ के आदि के पद से भीतर के पदों को गुणा देने से—

(५ य − १५) − ५१ = ५९ − (३४ − ४ य) कोष्ठ को हटाने से—

५ य − १५ − ५१ = ५९ − ३४ + ४ य, पक्षान्तरानयन से—
५ य − ४ य = ५९ − ३४ + १५ + ५१,
∴ य = १२५ − ३४ = ९१ ।

(च) क य − अ = ग − घ य ; य का क्या मान है ?

पक्षान्तरानयन से, क य + घ य = अ ग

$$\therefore (\text{क} + \text{घ})\,\text{य} = \text{अ} + \text{ग और य} = \frac{\text{अ} + \text{ग}}{\text{क} + \text{घ}} \text{ ।}$$

(छ) $\frac{\text{य}}{२} - \frac{५\,\text{य}}{३} - \frac{४}{३} = \frac{४\,\text{य}}{३} - ३$; य का मान जानना है—

२×३ या ६ से पक्षों को गुणा, ३य − १० य − ८ = ८य − १८

पक्षान्तरानयन से . . ३य − १०य − ८य = ८ − १८

योग करने से . . −१५य = − १०

− १५ का भाग देने से, $\text{य} = \frac{-१०}{-१५} = \frac{२}{३}$ ।

(ज) $\frac{४\,\text{य}}{३} - \frac{२\,\text{य}}{१०} + \frac{\text{य}}{६} = ३९$ य का मान क्या है ?

यहां ३, १०, ६ का लघुतमापवर्त्य ३० है । प्रत्येक पद को ३० से गुणा—

$$\therefore ३० \times \frac{४\,\text{य}}{३} = १० \times ४\,\text{य} = ४०\,\text{य},$$

$३० \times \frac{-३\,\text{य}}{१०} = -६\,\text{य}$, $३० \times \frac{\text{य}}{६} = ५\,\text{य}$ और ३० × ३९ = ११७०

∴ ४० य − ६ य + ५ य = ११७०

योग करने से . . ३९य = ११७०

३९ का भाग देने से या $= \frac{११७०}{३९} = ३०$ ।

इसी प्रकार अनेक उदाहरण हो सकते हैं । इसका बड़ा विस्तार

है जैसी कि ऊपर एकघात एकवर्ण-समीकरण की रीति दिखलाई है, ऐसी ही रीति से वर्गसमीकरण, मध्यमाहरण के उदाहरण भी करना चाहिए।

(भ) $३य^२ - २ = २ य^२ + २$ इस वर्गसमीकरण में य का क्या मान है—

पक्षान्तरानयन से ∴ $३ य^२ - २ य^२ = २ + २$

योग करने से ∴ $य^२ = ४$

वर्गमूल लेने से ∴ $य = \sqrt{४} = \pm २$ ।

(प) $य^२ + ६ य = १६$ इस में य का मान क्या है ?

यहाँ वर्गपूर्ति के लिए ६ का आधा ३ का वर्ग ९ दोनों पक्ष में जोड़ने से हुआ—

$य^२ + ६ य + ९ = १६ + ९ = २५$ या $(य + ३)^२ = २५$ दोनों पक्षों का वर्गमूल — $य + ३ = ५$

∴ $य = २$ यहाँ य का दो प्रकार का मान हो सकता है।

क्योंकि २५ का मूल — ५ और + ५ होगा, इसी से $य + ३ = -५$ भी होना संभव है।

∴ $य = -८$ इससे य का मान २ किंवा, -८ होगा।

(फ) $\frac{य+१}{य-१} - \frac{य-१}{य+१}$; इसमें य का मान क्या है ?

छेदगमार्थ दोनों पक्षों को $(य - १)\ (य + १)$ से गुणा तो—

$(य+१)^२ - (य-१)^२ = (य-१)\ (य+१)$ ।

अथवा, $य^२ + २य + १ - य^२ + २य - १ = य^२ - १$ ।

पक्षान्तरानयन और योग से, $य^२ - ४ य = १$ । दोनों पक्षों में $(\frac{४}{२})^२$ या ४ जोड़ा तो $य^२ - ४ य + ४ = ५$ पक्षों का मूल लिया, $य - २ = \pm \sqrt{५}$ अतः पक्षान्तरानयन से, $य = \pm \sqrt{५}$ ।

परिशिष्ट (२)

(१) अब सम्बन्ध या, निष्पत्ति, अनुपात, स्थिर-राशि और चल-राशि के विषय में आवश्यक बातें लिखी जाती हैं।

सजातीय बड़ी और छोटी राशियों में यह सम्बन्ध ज्ञात करते हैं कि बड़ी राशि में छोटी राशि कितनी है अर्थात् छोटी राशि बड़ी राशि का कौन सा भाग है, तो इस भाग को छोटी और बड़ी राशियों का सम्बन्ध कहते हैं। इससे यह मालूम होता है कि जब दो राशियों में सम्बन्ध खोजना हो, तो पहली राशि में दूसरी राशि का भाग देने से जो लब्धि मिले वही इष्ट सम्बन्ध है। जैसे ९ और ३ में सम्बन्ध है तो $९ \div ३ = ३$, यही अङ्क ९ और ३ का सम्बन्ध हुआ अर्थात् ९ में ३ संख्या ३ बार है। ऐसे ही ३ और ९ में सम्बन्ध, $३ \div ९ = \frac{१}{३}$ यह है अर्थात् ९ का ३ तृतीयांश है।

इसी प्रकार, $\frac{अ}{क}$ इससे अ, क का सम्बन्ध ज्ञात होता है और इन दोनों वर्णों के स्थान में इष्ट संख्या मान सकते हैं। जब दो राशियों का सम्बन्ध प्रकट करना होता है, तो उसको अ : क या, $\frac{अ}{क}$ इस प्रकार लिखते हैं। इसलिए $अ : क = \frac{अ}{क}$ दोनों का एक ही अर्थ है।

ऐसे ही, $ग : घ = \frac{ग}{घ}$; यदि अ, क राशियों का सम्बन्ध और ग, घ का सम्बन्ध समान हो, अर्थात्—

$अ : क = ग : घ$ या $\frac{अ}{क} = \frac{ग}{घ}$, तो ऐसे दो सम्बन्धों की समता को अनुपात कहते हैं। उसको इस प्रकार लिखते हैं—

अ : क : : ग : घ : क्योंकि $\frac{२}{३} = \frac{४}{६}$ ।

∴ २ : ३ : : ४ : ६ अर्थात् २ और ३ में जो सम्बन्ध है वही ४ और ६ में है और २, ३, ४ और ६ इनको अनुपातीय अवयव कहते हैं । जिन राशियों का सम्बन्ध हो, उनको भिन्नरूप में कर लेने से वही सम्बन्ध का मापक होगा । जैसे, अ : क को $\frac{अ}{क}$ । और अनुपात को उसके समीकरण का रूप देना चाहिए ।

जैसा, अ : क : : ग : घ, इसको $\frac{अ}{क} = \frac{ग}{घ}$, लिखते हैं ।

सम्बन्ध के भिन्नरूप से जो क्रिया हो सकती है, वही सम्बन्ध पर और अनुपात को जो समीकरण के रूप में लिखते हैं, इससे समीकरण सम्बन्धी क्रिया अनुपात पर हो सकती है ।

उदाहरण—७ : ४ यह एक सम्बन्ध है और ८ : ५ यह दूसरा है, इनमें कौन सा सम्बन्ध बड़ा है ?

७ : ४ का $\frac{७}{४}$ मापक है ।
८ : ५ का $\frac{८}{५}$ मापक है ।

$\frac{७}{४}$ । $\frac{८}{५}$ समच्छेद से $\frac{३५}{२०}$, $\frac{३२}{२०}$ । परन्तु $\frac{३५}{७} = \frac{३२}{२०} + \frac{३}{२०}$, इसलिए $\frac{३५}{२०}$ या, $\frac{७}{४}$ यह $\frac{३२}{२०}$ या, $\frac{८}{५}$ से बड़ा है — ७ : ४ > ८ : ५ ।

(२) यदि सम्बन्ध के पदों को एक राशि से गुणित किंवा भाजित करें तो भी सम्बन्ध-मान में अन्तर नहीं पड़ता ।

यदि, अ : क : : ग : घ;
∴ अ घ = क ग । क्योंकि,

अ : क : : ग : घ या, $\frac{अ}{क} = \frac{ग}{घ}$ इन तुल्य राशियों को क घ से गुणा किया तो—

$\frac{\text{अ क घ}}{\text{क}} = \frac{\text{ग क घ}}{\text{घ}}$ । परन्तु अ क घ = क· अ घ और ग क घ = घ· क ग,

$\therefore \frac{\text{क · अ घ}}{\text{क}} = \frac{\text{घ · क ग}}{\text{घ}}$ अथवा, अ घ= क ग ।

अब यदि अ घ = क ग है, तो क घ का भाग देने से—

$\frac{\text{अ घ}}{\text{क घ}} = \frac{\text{क ग}}{\text{क घ}}$, अथवा, $\frac{\text{अ}}{\text{क}} = \frac{\text{ग}}{\text{घ}}$ या, अ : क : : ग : घ।

और, अ : क : : ग : य, तो पूर्व रीति से अ य = क ग, अ का भाग देने से, य = $\frac{\text{क ग}}{\text{अ}}$, यह त्रैराशिक उपपन्न हुआ ।

इस प्रकार, त्रैराशिक के तीन पद अनुपातीय मालूम होते हैं, तो चौथा पद भी ज्ञात हो जाता है । क्षेत्रमिति के पाँचवें अध्याय में जो अनुपात की परिभाषा मानी गई है, उसके और बीजगणित के अनुसार अनुपातीय राशियों को सिद्ध करने में कोई भेद नहीं है । पूर्व लिखी हुई निष्पत्तियों में क्रम, उत्क्रम और एकान्तर आदि राशियों के सम्बन्ध-विस्तार करने से सब बातें स्पष्ट प्रतीत होंगी ।

(३) यदि किसी राशि के कई अलग अलग मान होते हैं, तो ऐसी राशी को चलराशि कहते हैं । और यदि एक राशि का एक ही मान हो, तो ऐसी राशि को स्थिरराशि कहते हैं ।

जब इन राशियों में ऐसा सम्बन्ध हो कि पहली राशि जितनी गुनी बढ़ जाय उतनी गुनी ही दूसरी भी बढ़ जाय अथवा, दोनों राशि आपस में उतनी ही गुनी घट जायँ, तो ऐसे सम्बन्ध को 'अनुलोम-चलन' कहते हैं । यदि अ, क दो राशियों में अनुलोम-चलन हो और अ राशि क के समान हो जाय और क राशि घ राशि के समान हो जाय तो—अ : क : : क : घ ।

और जहाँ एक राशि का मान, अधिक वा न्यून होने से दूसरी अर्थात् उसकी अधीन राशि का मान न्यून वा अधिक होता है;

उसको 'विलोमचलन' कहते हैं। दो राशियों के बीच $\propto$ ऐसा चिह्न उनका चलनसंबन्ध सूचित करता है। जैसा, र $\propto$ य, यदि य = २ और र = २० तो जब र का मान २० है तो य का मान २ है, इसलिए दोनों के बीच क्रम चलन (रूपान्तर) है।

$\therefore$ र : २० : : य : २,

अथवा—

र : य : : १० : १.

(४) यदि दो चलराशियों में चलन का सम्बन्ध हो और राशियों के मान व्यक्त हों, तो चलन का समीकरणस्वरूप इस प्रकार हो सकता है—

अ $\propto$ क, चलन से रूपान्तर—

अ = ग और क = घ तो अ : ग : : क : घ

$\therefore$ अ घ = ग क, घ का भाग देने से—

$$अ = \frac{ग क}{घ} = \frac{ग घ}{घ} . क ।$$

इस प्रकार यदि र $\propto$ य, तो मान लिया, य = १ र = ३ है, चलन से रूपान्तर—

र : ३ : : य : १

$\therefore$ र = ३ य ;

यदि अ, क में अनुलोम-चलन हो, तो $\frac{अ}{क}$ यह सम्बन्ध सदा एकसा बना रहेगा, क्योंकि भिन्न के अंश, हर को एक राशि से गुणने वा, भाग देने से उसके मान में अन्तर नहीं पड़ता अर्थात् $\frac{अ}{क}$ यह स्थिर राशि होगी, यह अ और क के क्रम-चलन से न बदलेगी, इस कारण $\frac{अ}{क}$ के स्थान में म या, न कोई अक्षर रख लेते हैं।

$\frac{\text{अ}}{\text{क}}$ = म, या अ = म क।

यदि ग ∝ घ के बीच उक्त चलन हो तो $\frac{\text{ग}}{\text{घ}}$, यह स्थिर-राशि ही बनी रहेगी। परंतु ग, घ के चलन होने से $\frac{\text{ग}}{\text{घ}}$, यह राशि $\frac{\text{अ}}{\text{क}}$ राशी के समान न हो जायगी। इसलिए $\frac{\text{ग}}{\text{घ}}$ को न के समान मान लेना होगा, क्योंकि म = $\frac{\text{अ}}{\text{क}}$ है और यहाँ ग = न घ; यह स्वरूप होता है।

इसी प्रकार, विलोम-चलन के भी सम्बन्धों का स्वरूप और समीकरण उदाहरणों से सविस्तर जानना चाहिए।

योगज और अन्तर श्रेढी।

(१) श्रेढी शब्द का अर्थ पंक्ति है। जब एक पंक्ति में राशियाँ इस क्रम से हों कि प्रत्येक पास की दो राशियों के बीच समान अन्तर हो और वह अन्तर समान रूप से बढ़ता हो या, उसी क्रम से घटता हो तो ऐसी श्रेढी को क्रम से योगज और अन्तर श्रेढी कहते हैं।

श्रेढी के प्रथम पद को आदि या, मुख और सबसे पीछे के पद को अन्त पद एवं प्रत्येक दो राशियों के बीच जो समान अन्तर है, उसको चय कहते हैं। आदि और अन्त पद के बीच जितने पद हों, उनको मध्यपद और पदों की संख्या को गच्छ एवं श्रेढी के सब पदों के योग को श्रेढी फल कहते हैं।

जैसा, १, ३, ५, ७, ९, ११ .... आदि, योगज श्रेढी है, क्योंकि प्रत्येक दो पास के पदों में पहले से दूसरा २ के समान बड़ा है। और २०, १९, १८, १७ इस पंक्ति में पहले से दूसरा १ के समान छोटा है, यह अन्तरश्रेढी है।

यदि श्रेढी का आदि पद = अ, चय = च,

अ, अ + च, अ + २ च, अ + ३ च आदि योगश्रेढी ।

अ, अ − च, अ − २ च, अ − ३ च आदि अन्तरश्रेढी ।

अब, अ, अ + च, अ + २ च, अ + ३ च........श्रेढी में अ आदिपद, ऐसे ही आगे के पद हैं । इससे यह बात निकलती है कि जो 'स' को श्रेढी के किसी पद की संख्या मानें तो सौवें स्थान का पद अ + (स − १) च; इसके तुल्य होगा । इसका कारण यह है कि यदि स को १ मानें और पहला पद सिद्ध करें, तो अ + (स − १) च ; इसमें स के स्थान में १ मानें तो प्रथम पद अ हुआ । क्योंकि—

अ + (१ − १) च = अ + ० × च = अ + ० = अ ।

इसी प्रकार, दूसरे पद के लिए स के स्थान में २ रक्खा तो अ + च, यह हुआ । क्योंकि, अ + (२ − १) च = अ + १ × च = अ + च । ऐसे ही क्रिया होती ह । अन्तरश्रेढी में सौवें स्थान का पद अ − (स − १) च यह होगा, इस पर क्रिया बढ़ानी चाहिए । यहाँ यह भी ज्ञात हुआ कि यदि आदि पद और चय मालूम हो तो श्रेढी का अभीष्ट पद निकल सकता है ।

जैसा;

१, ५, ९, १३, १७ .... श्रेढी का पचासवाँ पद ज्ञात करना है । यह योगज श्रेढी है इसलिए अ + (स − १) च, में स के स्थान में ५० माना और अ के स्थान में १ और च के स्थान में ५ − १ या, ४ रक्खा तो—

१ + (५० − १) ४ = १ + २०० − ४ = १९७ यही श्रेढी का पचासवाँ पद हुआ ।

उपपत्ति ।

(२) अ = आदि पद, च = चय और प = अन्त्य पद है, तो—

अ, अ + च, + २ च, अ + ३ च + आदि........ + प, यह श्रेढी का स्वरूप हुआ और कल्पना किया कि श्रेढी के पदों का

योग = य है, तो य = अ + अ + च + अ + २ च + अ + ३ च + आदि — + य। श्रेढी के पास के प्रत्येक पदों के बीच च अन्तर समान है और योगज श्रेढी में प अन्तिम पद है। इसलिए प — च पद इसके पूर्व होगा और इसके पूर्व प — २ च यह पद होगा। ऐसे ही अन्य पद भी होंगे। अब इन पदों को उत्क्रम से लिखा——

य = प + प — च + प — २ च + आदि........अ + च + अ;

और, य = अ + अ + च + अ + २च + आदि........प — च + प;

इनका योग करने से——

२ य = अ + प + अ + प + अ + प + आदि........ अ + प + अ + प। श्रेढी में जितने पद होंगे उतने ही बार अ + प आवेगा।

और यदि ग को गच्छ या, पदों की संख्या मानें, तो——

२ य = ग बार अ + प या, ग × (अ + प)।

इस कारण य = ½ ग (अ + प) ऐसे ही जो अन्तरश्रेढी हो तो भी श्रेढीफल अथवा, य = ½ ग (अ + प)।

केवल अन्तरश्रेढी में योगजश्रेढी की अपेक्षा + च के स्थान में—च होगा और उत्क्रमअन्तरश्रेढी में—च के स्थान में + च होगा। इसका कारण यह है कि अन्तरश्रेढी में कोई पद, जैसा प, पूर्व पद से च के समान छोटा होगा। इसलिए अन्तरश्रेढीफल य = अ, अ — च, अ — २ च, अ — ३ च, + आदि........+ प।

यदि अ, क दो राशियों के बीच मध्यपद निकालना हो अर्थात् यदि उन तीन राशियों को क्रम से रक्खें तो उनमें प्रत्येक पास की दो राशियों के बीच समान अन्तर हो।

यदि य, ऐसी राशि है, तो अ, य, क ये श्रेढीपद होंगे और जो योगजश्रेढी होगी तो य—अ, चय होगा और क — य भी चय होगा।

∴ य — अ = क — य ;

पक्षान्तरानयन से—

२ य = अ + क, २ का भाग देने से, य+ $\frac{\text{अ} + \text{क}}{२}$ ।

इससे सिद्ध होता है कि योगज किंवा अन्तरश्रेढी की दो राशियों के बीच मध्यपद निकालना हो तो दोनों राशियों का आधा योग—इष्ट मध्यपद होगा। आचार्य ने भी लीलावती में '....मुख-युग्दलितं तन्मध्यधनम्।' इत्यादि लिखा है।

इसी प्रकार गुणोत्तरश्रेढी वा, घातश्रेढी का भी प्रपंच है।

× × ×

पाश्चात्य बीज में चित्र (क्षेत्र) Graph द्वारा प्रश्नों का विचार है, उससे राशियों का मान निकालना, अव्यक्त राशियों को ज्ञात करना आदि और क्षेत्रमिति सम्बन्धी प्रश्न, जैसे त्रिभुज, चतुर्भुजों का क्षेत्रफल, दो स्थानों की दूरी मालूम करना इत्यादि का बहुत बड़ा प्रपञ्च है। वह सब यहाँ नहीं लिखा। आचार्य ने एकवर्ण-मध्यमाहरण के अन्त में 'क्षेत्रे तिथिनखैस्तुल्ये'— इस उदाहरण के प्रसङ्ग से कोष्ठात्मक क्षेत्रों की कल्पना पर राशियों का मान निकालने का दिग्दर्शन किया है। इसी मूल ने पाश्चात्य बीज में विशाल रूप धारण किया है, जो वास्तव में ज्ञेय और माननीय है।

इति शिवम्।

परिशिष्ट (३)

बीजगणित-सम्बन्धी कतिपय पाश्चात्य पारिभाषिक शब्दों के नाम—

बीजगणित	Algebra.
संकलन	Addition.
व्यवकलन	Subtraction.
गुणन	Multiplication.
भजन	Division.
वर्ग	Square.
वर्गमूल	Square-root.
घन	Cube.
घनमूल	Cube-root.
घातक्रिया	Involution.
घातमापक	Index of power. (Coefficient of power.)
महत्तमापवर्तन	Greatest Common Measure G. C. M.)
लघुतमापवर्त्य	Lowest Common Multiple L. C. M.)
अपवर्तन	Common Factor.
अव्यक्त राशि	Unknown quantity.
भिन्न	Fraction.
अंश	Numerator.
हर	Denominator.
पूर्णाङ्क	Whole Number.
दशमलव	Decimal Fraction.
त्रैराशिक	Rule of Three.
व्यस्त त्रैराशिक	Inverse Rule of Three.
पञ्चराशिक	Double Rule of Three.
मूलधन	Principal.
मिश्रधन	Amount (Arithmetic).
कलान्तर	Interest.

करणी	Surds
करणीगत-राशि	Radical quantity.
श्रेढी (योगान्तर)	Arithmetical Progression.
श्रेढी (गुणोत्तर)	Geometrical Progression.
क्षेत्र	Figure.
क्षेत्रफल	Area.
वृत्त	Circle.
परिधि	Circumference.
व्यास	Diameter.
त्रिज्या	Radius.
घनफल	Volume.
कुट्टक	Pulverizer. (Indeterminate Multiple).
समीकरण	Equation.
एकवर्ण-समीकरण	Simple Equation.
,, (मध्यमाहरण)	Adfected Quadratic Equation.
अनेकवर्ण-समीकरण	Equation containing more than one unknown quantity.
,, (मध्यमाहरण)	Equation containing quadratic.
राशि (धन)	Positive quantity.
राशि (ऋण)	Negative quantity.
उत्थापन	Substitution.
पक्षान्तरानयन	Transposition.
सम्बन्ध, निष्पत्ति	Ratio.
अनुपात	Proportion.
त्रिभुज	Triangle.
चतुर्भुज	Quadrilateral.
वर्गक्षेत्र	Square.